मआसिरुल उमरा

भाग २

अनुवादक—

ब्रजरत्न दास, बी. ए., एल-एल. बी.

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला-१३



मआसिरुल् उमरा

या

मुगल-दरबार

(अकबर से मुहम्मदशाह के समय तक के सर्दारों की जीवनियाँ)

भाग २

अनुवादक

ब्रजरत्न दास बी. ए., एल-एल. बी.

प्रकाशक

नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी

देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला—१२

प्रकाशक

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

प्रथम संस्करण

मूल्य ४)

सं० १९९५ वि०

मुद्रक—

ना० रा० सोमण,

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

निवेदन

इस ग्रंथ के प्रथम भाग में इस ग्रंथ का परिचय दिया जा चुका है और उक्त भाग की भूमिका में प्रायः चालीस पृष्ठों में मुग़ल-राज्य-संस्थापन से पानीपत के तृतीय युद्ध तक का संक्षिप्त इतिहास भी सम्मिलित कर दिया गया है, जिससे एक एक सर्दार की जीवनी पढ़ने पर यदि कोई घटना अशृंखलित-सी मालूम पड़े तो उसकी सहायता से इसकी शृंखला ठीक ज्ञात हो सकेगी। इस भाग में एक सौ चौवन सर्दारों की जीवनियाँ संगृहीत हैं। ये हिंदी अक्षरानुक्रम से रखी जा रही हैं और इस भाग में केवल स्वर से आरंभ नाम वालों ही की जीवनियाँ संकलित हुई हैं। इनमें मुग़ल-साम्राज्य के प्रधान मंत्री, प्रसिद्ध सेनापति, प्रांताध्यक्ष आदि सभी हैं, जिनके वंश-परिचय, प्रकृति, स्वतः उन्नयन के प्रयत्न आदि का वह विवरण मिलता है, जो बड़े से बड़े भारत के इतिहास में प्राप्त नहीं है तथा जिससे पाठकों का बहुत सा कौतूहल शांत होता है। यह ग्रंथ भारत-विषयक इतिहास-संबंधी फारसी या अरबी ग्रंथों में अद्वितीय है और विस्तृत विवेचन करते हुए भी बड़ी छान-बीन के साथ लिखा गया है।

इसके अनुवाद का श्रीगणेश प्रायः सोलह वर्ष हुए तभी हो चुका था और सं० १९८६ वि० में इसका प्रथम भाग किसी न किसी प्रकार प्रकाशित हो गया था। समय की कमी से अनुवाद करने में तथा प्रकाशक की ढिलाई से दूसरे भाग के प्रकाशन में भी सात आठ वर्ष लग गए। इस भाग में टिप्पणियाँ कम हैं तथा बहुत आवश्यक समझी जाने पर दी गई हैं। इसका कारण दो है। एक तो ग्रंथ यों ही बहुत बड़ा है, उसे और विशद बनाना ठीक नहीं है और दूसरे उसकी विशदता के कारण ही विशेष टिप्पणियों की आवश्यकता नहीं पड़ी है। अस्तु, यह ग्रंथ इस रूप में इतिहास प्रेमी पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है।

विजयादशमी }
१९९५ }

विनीत—
व्रजरत्नदास।

माला का परिचय

जोधपुर के स्वर्गीय मुंशी देवीप्रसादजी मुंसिफ इतिहास और विशेषतः मुसलिम काल के भारतीय इतिहास के बहुत बड़े ज्ञाता और प्रेमी थे तथा राजकीय सेवा के कामों से वे जितना समय बचाते थे, वह सब इतिहास का अध्ययन और खोज करने अथवा ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने में ही लगाते थे। हिंदी में उन्होंने अनेक उपयोगी ऐतिहासिक ग्रंथ लिखे हैं जिनका हिंदी-संसार ने अच्छा आदर किया है।

श्रीयुक्त मुंशी देवीप्रसादजी की बहुत दिनों से यह इच्छा थी कि हिंदी में ऐतिहासिक पुस्तकों के प्रकाशन की विशेष रूप से व्यवस्था की जाय। इस कार्य के लिये उन्होंने ता० २१ जून १९१८ को ३५०० रु० अंकित मूल्य और १०५०० मूल्य के बंबई बंक लि० के सात हिस्से सभा को प्रदान किये थे और आदेश किया था कि इनकी आय से उनके नाम से सभा एक ऐतिहासिक पुस्तकमाला प्रकाशित करे। उसी के अनुसार सभा यह 'देवी-प्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला' प्रकाशित कर रही है। पीछे से जब बंबई बंक अन्यान्य दोनों प्रेसिडेंसी बंकों के साथ सम्मिलित होकर इम्पीरियल बंक के रूप में परिणत हो गया, तब सभा ने बंबई बंक के सात हिस्सों के बदले में इम्पीरियल बंक के चौदह हिस्से, जिनके मूल्य का एक निश्चित अंश चुका दिया गया है, और खरीद लिये और अब यह पुस्तकमाला उन्हीं से होनेवाली तथा स्वयं अपनी पुस्तकों की बिक्री से होनेवाली आय से चल रही है। मुंशी देवीप्रसादजी का वह दानपत्र काशी नागरीप्रचारिणी सभा के २६ वें वार्षिक विवरण में प्रकाशित हुआ है।

विषय-सूची

नाम	पृष्ठ संख्या
ए	
१४२. एकराम खाँ, सैयद हुसेन	५१२
१४३. एतकाद खाँ फर्रुखशाही	५१३–५२१
१४४. एतकाद खाँ मिर्जा बहमनयार	५२२–५२४
१४५. एतकाद खाँ मिर्जा शापूर	५२५–५२७
१४६. एतबार खाँ ख्वाजासरा	५२८–५२९
१४७. एतबार खाँ नाजिर	५३०
१४८. एतमाद खाँ ख्वाजासरा	५३१–५३३
१४९. एतमाद खाँ गुजराती	५३४–५३९
१५०. एतमादुद्दौला मिर्जा गियास बेग	५४०–५४५
१५१. एमादुल् मुल्क	५४६–५५३
१५२. एरिज खाँ	५५४–५५७
१५३. एवज खाँ काकशाल	५५८
ऐ	
१५४. ऐनुल्मुल्क शीराजी, हकीम	५५९–५६०

मआसिरुल् उमरा

१. अग़रखाँ पीर मुहम्मद

यह औरंगजेब का एक अफसर था। इसका खेल (गोत्र) अगज़ तक पहुँचता है, जो नूह के पुत्र याफस का वंशज था। इसी कारण वह इस नाम से भी पुकारा जाता है। इनमें से बहुत से साहस के लिए प्रसिद्ध हुए और कई देशों के लिए अपने प्राण तक दिए। शाहजहाँ के समय इनमें से एक हुसेन कुली ने, जिसने अपनी सेना सहित बादशाह की सेवा कर ली थी, डेढ़ हजारी ८०० सवार का मंसब और खाँ की पदवी पाई। यह २५वें वर्ष में मर गया। औरंगजेब के प्रथम वर्ष में अगज खाँ अपनी सेना का मुखिया हुआ और शाहजादे मुहम्मद सुलतान तथा मुअज्जम खाँ के साथ सुलतान शुजाअ का पीछा करने बंगाल की ओर गया। इसने वहाँ युद्ध में अच्छी वीरता दिखलाई। कहते हैं कि एक दिन शाही सेना को गंगा पार करना था और मुहम्मद शुजाअ की सेना दूसरी ओर रोकने को तैयार खड़ी थी। जासूस अग़ज़ हरावल के अध्यक्ष दिलेर खाँ के

आगे था। इसने बड़ी वीरता से नदी में घोड़ा डाल दिया और दूसरी ओर पहुँच कर शत्रु से द्वन्द्व युद्ध करने लगा। शत्रु के हरावल के एक मस्त हाथी ने इसे घोड़े सहित सूँड़ से उठा लिया और दूर फेंक दिया, परन्तु अग़ज़ ने तुरंत उठ कर महावत को तलवार से मार डाला और हाथी पर चढ़ बैठा। उसी समय दिलेर खाँ भी यह घटना आँखों से देख कर वहाँ आ पहुँचा। इसने उसकी प्रशंसा की और उसकी फेरी देने लगा। अग़ज़ ने कहा कि 'मैंने यह हाथी हुजूर ही के लिए लिया है। आप कृपया मुझे एक कोतल घोड़ा प्रदान करें।' दिलेर ने कहा कि 'हाथी तुम्हीं को मुबारक रहे' और दो अच्छे घोड़े उसके लिए भेज दिए।

इसी वर्ष अग़ज़ को खाँ की पदवी मिली और वह खानखानाँ के साथ आसाम की चढ़ाई पर भेजा गया, जहाँ इसने अपनी बहादुरी दिखलाई। खानखानाँ इस पर प्रसन्न था पर इसके मुगल सैनिक ग्रामीणों को कष्ट देते थे। वे शिक्षित नहीं थे और न मना करने से मानते थे, इसलिए खानखानाँ ने इस पर कुछ भी कृपा दृष्टि नहीं की। इससे अग़ज़ दुखित हुआ और ५ वें वर्ष में खानखानाँ से किसी प्रकार छुट्टी पाकर दरबार चला गया। यद्यपि खानखानाँ के अपने पुत्र मीर बख्शी मुहम्मद अमीन अहमद को यह सब लिख देने से अग़ज़ कुछ समय तक अप्रतिष्ठा में रहा, इसे कोई पद न मिला तथा उसका दरबार जाना भी बंद रहा पर बाद को इस पर कृपा हुई और यह काबुल के सहायकों में नियत हुआ। वहाँ इसने खैबर के अफगानों को, जो सर्वदा विद्रोह करते रहते थे, दंड देने में खूब प्रयास किया और उन पर

चढ़ाई कर उनको मार डालने तथा उनके निवासस्थान को नष्ट करने में कुछ उठा न रखा। १३ वें वर्ष में यह दरबार बुला लिया गया और दक्षिण की चढ़ाई पर भेजा गया, जहाँ शिवा जी भोंसला गड़बड़ किए हुए था। यहाँ भी इसने वीरता दिखलाई और मराठों पर बराबर चढ़ाई कर उन्हें परास्त किया। आज्ञा आने पर यह दरबार लौट गया और १७ वें वर्ष फिर काबुल भेजा गया। इस बार भी इसने वहाँ साहस दिखलाया। १८ वें वर्ष में यह जगदलक का थानेदार नियत हुआ और २४वें वर्ष में अफ़ग़ानिस्तान की सड़कों का निरीक्षक हुआ तथा डंका पाया। राजधानी में कई वर्षों तक यह किसी राजकार्य पर नियत रहा। ३५ वें वर्ष में बादशाह ने इसे दक्षिण बुलाया और जब यह मार्ग में आगरे पहुँचा तब जाटों ने, जो उस समय उपद्रव मचा कर डाँके डाल रहे थे, एक कारवाँ पर आक्रमण कर कुछ गाड़ियों को, जो पीछे रह गई थीं, लूट लिया और कुछ आदमियों को क़ैद कर लिया। जब अग़ज़ ने यह वृत्तांत सुना तब एक दुर्ग पर चढ़ाई कर उसने कैदियों को छुड़ाया पर दूसरे दुर्ग पर दुस्साहस से चढ़ाई करने में गोली लगने से सन् ११०२ हि०, सन् १६९१ ई० में मारा गया। अग़ज़ खाँ द्वितीय इसका पुत्र था। इसने क्रमशः पिता की पदवी पाई और यह मुहम्मद शाह के समय तक जीवित था। यह भी प्रसिद्ध हुआ और समय आने पर मरा।

---

२. अद्हम खाँ कोका

यह माहम अनगा का छोटा पुत्र था, जो अपनी विशिष्ट समझदारी तथा राजभक्ति के कारण अकबर पर अपना विशेष प्रभाव रखती थी। अपनी लंबी सेवा तथा विश्वास के कारण वह पालने से राजगद्दी तक कृपापात्र बनी रही। बैराम खाँ का प्रभुत्व छीनने में यह अग्रणी थी और राजनैतिक तथा आर्थिक दोनों कार्य चलाती थी। यद्यपि मुनइम खाँ साम्राज्य के वकील थे पर प्रबंध यही करती थी। अद्हम खाँ पाँच हज़ारी मंसबदार था। इसने पहिले पहिल मानकोट के घेरे में वीरता दिखला कर प्रसिद्धि पाई थी, जब यह बादशाह के साथ था। यह दुर्ग सिवालिक के ऊँचे शृंगों पर स्थित है और पहाड़ियों के सिरों पर चार भागों में इस प्रकार बना हुआ है कि एक ज्ञात होता है। सलीम शाह ने गक्खरों की चढ़ाई से लौटते समय इसे बनवाया था कि पंजाब की उनसे रक्षा हो। वह लाहौर को उजाड़ कर मानकोट को बसाना चाहता था। परन्तु लाहौर बड़ा नगर था और इसमें सभी प्रकार के व्यापारी तथा अनेक जाति के मनुष्य बसे हुए थे। वहाँ भारी तथा सुसज्जित सेना तैयार की जा सकती थी। यह मुगल सेना के मार्ग में था और यहाँ पहुँचने पर उसे बहुत सहायता मिल सकती थी, जिससे कार्य असाध्य हो सकता था। बस यही विचार करते करते वह मर गया। दूसरे वर्ष सिकंदर सूर ने यहाँ शरण लिया पर अंत में उसे जब रक्षा-वचन मिल गया तब उसने दुर्ग दे दिया। तीसरे वर्ष बैराम खाँ

ने, जो अद्हम खाँ से सदा सशंकित रहता था, इसे आगरे के पास हतकाँठ जागीर दिया, जिसमें भदौरिया राजपूत बसे हुए थे और जो बादशाहों के विरुद्ध विद्रोह तथा उपद्रव करने के लिए प्रसिद्ध थे। उसने ऐसा इस कारण किया कि एक तो वहाँ शान्ति स्थापित हो और दूसरे यह बादशाह से दूर रहे। वह अन्य अफसरों के साथ वहाँ भेजा गया, जहाँ उसने शांति स्थापित कर दी। बैराम खाँ की अवनति पर अकबर ने इसको पीर-मुहम्मद खाँ शरवानी तथा दूसरों के साथ पाँचवें वर्ष के अंत, सन् ९६८ हि० के आरंभ में मालवा विजय करने भेजा, क्योंकि वहाँ के सुलतान बाज बहादुर के अन्याय तथा मूर्खता की सूचना बादशाह को कई बार मिल चुकी थी। जब अद्हम खाँ सारंगपुर पहुँच गया, जो बाज बहादुर की राजधानी थी, तब उसे कुछ ध्यान हुआ और उसने युद्ध की तैयारी की। कई लड़ाइयाँ हुईं पर अंत में बाज बहादुर परास्त होकर खानदेश की ओर भागा। अद्हम खाँ फुर्ती से सारंगपुर पहुँचा और बाज बहादुर की संपत्ति पर अधिकार कर लिया, जिसमें जगद्विख्यात् पातुर तथा गणिकाएँ भी थीं। इन सफलताओं से यह घमंडी हो गया और पीर मुहम्मद की राय पर नहीं चला। इसने मालवा प्रांत अफसरों में बाँट दिया और कुल लूट में से कुछ हाथी सादिक खाँ के साथ दरबार भेजकर स्वयं विषय-भोग में तत्पर हुआ। इससे अकबर इस पर अत्यंत अप्रसन्न हुआ। उसने इसे ठीक करना आवश्यक समझा और आगरे से जल्दी यात्रा करता हुआ १६ दिन में छठे वर्ष के २७ शाबान (१३ मई सन् १५६१ ई०) को वहाँ पहुँच गया। जब अद्हम खाँ सारंगपुर से दो कोस

पर गागरौन दुर्ग लेने पहुँचा तब एकाएक बादशाह आ पहुँचे। यह सुनकर उसने आकर अभिवादन किया। बादशाह उसके डेरे पर गए और वहीं ठहरे। कहते हैं कि अदहम के हृदय में कुछ कुविचार थे और वह उसे पूरा करने का बहाना खोज रहा था पर दूसरे दिन माहम अनगा स्त्रियों के साथ आ पहुँची। उसने अपने पुत्र को होश दिलाया कि वह बादशाह को भेंट दे, मजलिस करे और जो कुछ बाज बहादुर से धन संपत्ति, सजीव-निर्जीव, और पातुरें उसे मिली हैं, उन्हें बादशाह को निरीक्षण करावे। अकबर ने उसमें से कुछ वस्तु उसे दी और चार दिन वहाँ ठहर कर वह आगरे को रवाना हो गया। कहते हैं कि जब वह लौट रहा था तब अदहम खाँ ने अपनी माता को, जो हरम की निरीक्षिका थी, पहिले पड़ाव पर बाज बहादुर की दो सुंदर पातुरें उसे गुप्त रूप से दे देने को बाध्य किया। उसने समझा था कि यह किसी को न मालूम होगा पर दैवात् बादशाह को यह मालूम हो गया और उसे खोजने की आज्ञा हुई। जब अदहम खाँ को मालूम हुआ तब उसने उन दोनों को सेना में छुड़वा दिया। जब वे पकड़ कर लाई गई तब माहम अनगा ने उन दोनों निरपराधिनियों को मरवा डाला। अकबर ने इस पर कुछ नहीं कहा पर उसी वर्ष मालवा का शासन पीर मुहम्मद खाँ शरवानी को देकर अदहम खाँ को दरबार बुला लिया।

जब शम्सुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा को कुल प्रबंध मिल गया तब अदहम खाँ को बड़ी ईर्ष्या हुई और मुनइम खाँ भी इसी ईर्ष्या के कारण उसके क्रोध को उभाड़ता रहता था। अंत में सातवें वर्ष के १२ रमजान (१६ मई सन् १५६२ ई०) को

जब अतगा खाँ, मुनइम खाँ तथा अन्य अफ़सर आफ़िस में बैठे कार्य कर रहे थे, उसी समय अदहम खाँ कई लुच्चों के साथ वहाँ आ पहुँचा। अतगा ने अर्द्धभ्युत्थान तथा और सब ने पूर्णोत्थान से उसका सम्मान किया। अदहम कटार पर हाथ रखकर अतगा खाँ की ओर बढ़ा और अपने साथियों को इशारा किया। उन सबने अतगा को घायल कर मार डाला और तब अदहम तलवार हाथ में लेकर उद्दण्डता के साथ हरम की ओर गया तथा उस बरामदे पर चढ़ गया, जो हरम के चारों ओर है। इस पर बड़ा शोर मचा, जिससे अकबर जाग पड़ा और दीवाल पर सिर निकाल कर पूछा कि 'क्या हुआ है ?' हाल ज्ञात होने पर क्रोध से तलवार हाथ में लेकर वह बाहर निकला। ज्योंही उसने अदहम खाँ को देखा त्यों ही कहा कि 'ए पिल्ले, तैंने हमारे अतगा को क्यों मारा ?' अदहम ने लपक कर बादशाह का हाथ पकड़ लिया और कहा कि 'जहाँपनाह, विचार कीजिए, ज़रा झगड़ा हो गया है।' बादशाह ने अपना हाथ छुड़ाकर उसके मुख पर इतने वेग से घूँसा मारा कि वह जमीन पर गिर पड़ा। फरहत खाँ खास-खेल और संग्राम होसनाक वहाँ खड़े थे। उन्हें आज्ञा दी कि 'खड़े क्या देख रहे हो, इस पागल को बाँध लो।' उन्होंने आज्ञानुसार उसे बाँध लिया। तब अकबर ने उसे बुर्ज पर से सिर नीचे कर फेंकने को कहा। दो बार ऐसा किया गया, तब उसकी गर्दन टूट गई। इस प्रकार सन् ९६९ हि०, १५६२ ई० में उस अपवित्र खूनी को बदला मिल गया। आज्ञानुसार दोनों शव दिल्ली भेजे गए और 'दो खून शुद' से तारीख निकली। कहते हैं कि माहम अनगा ने, जो उस

समय बीमार थी, केवल यह समाचार सुना कि अदहम खाँ ने एक रक्तपात किया है और बादशाह ने उसे कैद कर रक्खा है। मातृ-प्रेम से वह उठ कर बादशाह के पास आई कि स्यात् वह उसे छोड़ दे। बादशाह ने उसे देखते ही कहा कि 'अदहम ने हमारे अतगा को मार डाला और हमने उसको दण्ड दिया।' बुद्धिमान् स्त्री ने कहा कि 'बादशाह ने उचित किया।' वह यह नहीं समझी कि उसे प्राणदण्ड मिल चुका है पर जब उसे यह ज्ञात भी हुआ तब भी वह अदब के कारण नहीं रोई पर उसके चेहरे का रंग उड़ गया और उसके हृदय में सहस्रों घाव हो गए। बादशाह ने उसकी लंबी सेवा के विचार से उसे आश्वासन देकर घर बिदा किया। वहाँ वह शोक करने लगी और उसकी बीमारी बढ़ गई। इस घटना के चालीस दिन बाद उसकी मृत्यु हो गई। बादशाह उस पर दया दिखलाने को उसके शव के साथ कुछ दूर गए और तब उसे दिल्ली भेज दिया, जहाँ उसके तथा अदहम के कबरों पर भारी इमारत बनवाई गई।

३. अज़दुद्दौला एवज़ खाँ बहादुर क़सवरै जंग

इसका नाम ख्वाजा कमाल था और यह समरकंद के मीर बहाउद्दीन के बहिन का दौहित्र था। इसका पिता मीर एवज़ हैदरी सैयदों में से एक था। अज़दुद्दौला का विवाह क़ुलीज़ खाँ की पुत्री ख़दीजा बेगम से हुआ था। इसका मामा नियाज़ खाँ औरंगज़ेब के १७वें वर्ष में डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसबदार तथा बीजापुर का नाएब सूबेदार था। उक्त बादशाह की मृत्यु पर जब सुलतान कामबख्श बीजापुर पर गया तब यह पता लगाने का बहाना कर कि वह बाद को उसका पक्ष ग्रहण कर लेगा, उसे बिना सूचना दिए एकाएक जाकर आज़म शाह से मिल गया। सैयद नियाज़ खाँ द्वितीय का, जो प्रथम का पुत्र था और एतमादुद्दौला कमरुद्दीन की लड़की से जिसका निकाह हुआ था, नादिरशाह के समय कुछ मिज़ाज दिखलाने के कारण पेट फाड़ डाला गया था। अजदुद्दौला औरंगज़ेब के समय तूरान से भारत आया और खाँ फीरोज़जंग के प्रभाव से उसे एवज़ खाँ की पदवी मिली और वह फीरोजजंग के साथ रहने लगा। यह अहमदाबाद में उसके घर का प्रबंध देखता था। फीरोज़जंग की मृत्यु पर यह दरबार आया और पहिले मीर जुमला के द्वारा यह फर्रुखसियर के समय बरार में नियत हुआ। इसके बाद अमीरुल् उमरा हुसेनअली खाँ का नाएब होकर वह उक्त प्रांत का अध्यक्ष हुआ। इसने अच्छा प्रबंध किया और साहस दिखलाया। मुहम्मदशाह के २रे वर्ष जब निज़ामुल्मुल्क आसफ़-

जाह् बहादुर मालवा से दक्षिण गया, तब इसने पत्रों का वास्तविक अर्थ समझा और योग्य सेना एकत्र कर बुर्हानपुर में आसफ़ जाह् से जा मिला। दिलावर अली खाँ के साथ के युद्ध में, जिसने बड़े वेग से इस पर धावा किया और इसके बहुत से आदमियों को मार डाला था, यद्यपि इसका हाथी थोड़ा पीछे हटा था पर इसने साहस नहीं छोड़ा और अपना प्राण संकट में डालने से पीछे नहीं रहा। आलम अली खाँ के साथ के युद्ध में यह दाहिने भाग में था और विजयोपरांत, जो औरंगाबाद के पास हुई थी, इसने पाँच हज़ारी ५००० सवार का मंसब और अज़दुद्दौला बहादुर कसवरै जंग की पदवी पाई। यह साथ ही बरार का स्थायी प्रांताध्यक्ष भी नियुक्त हुआ। क्रमशः इसने सात हज़ारी ७००० सवार का मंसब पाया और जब २रे वर्ष आसफ़जाह बीजापुर प्रांत में शांति स्थापित करने निकला तब अज़दुद्दौला औरंगाबाद में उसका प्रतिनिधि हुआ। इसके बाद जब आसफ़जाह मुहम्मद शाह के बुलाने पर राजधानी को चला तब अज़दुद्दौला को दीवानी तथा बख्शीगिरी सौंप कर उसको अपना स्थायी प्रतिनिधि नियत कर गया। राजधानी पहुँचने पर जब उसे अहमदाबाद प्रांत में हैदरकुली खाँ नासिरजंग को दंड देने की आज्ञा हुई, जो वहाँ उपद्रव मचाए हुए था तब उसने अज़दुद्दौला को बुला भेजा। यह ससैन्य वहाँ पहुँच कर कुछ समय तक साथ रहा, पर मालवा के अधीनस्थ झाबुआ में उसने साथ छोड़ कर अपनी रियासत को जाने की आज्ञा ले ली। मुबारिज़ खाँ इमादुल्मुल्क के साथ के युद्ध में इसने अच्छी सेवा

की और इसके अनंतर सन् ११४३ हि० (१७३०-१ ई०) में रोग से मरा और शेख बुर्हानुद्दीन ग़रीब के मज़ार में गाड़ा गया। इसने अच्छा पढ़ा था और मननशील भी था। यह विद्वानों का सम्मान करता और फकीरों तथा पवित्र पुरुषों से नम्रता का व्यवहार करता। यह अत्याचारियों को दमन करने तथा निर्बलों की सहायता करने में प्रयत्नशील था। न्याय करने तथा दंड देने में यह शीघ्रता करता था। औरंगाबाद में शाहगंज की मसजिद बनवाई, जिसकी तारीख 'खुजस्तः बुनियाद' है। यद्यपि इसके सामने का ताळाब हुसेनअली खाँ का बनवाया था पर इसने उसे चौड़ा कराया था। उस नगर में जो हवेली तथा बारहदरी बनवाई थी वे प्रसिद्ध हैं। इसके भोजनालय में काफ़ी सामान रहता। इसके पुत्रों में सब से बड़ा सैयद जमाल खाँ अपने पिता के सामने ही वयस्क होकर युद्धों में साहस दिखला कर ख्याति प्राप्त कर चुका था। मुबारिज़ खाँ के साथ के युद्ध के बाद यह पाँच हज़ारी ५००० सवार का मंसबदार होकर बरार के शासन में अपने पिता का प्रतिनिधि हुआ था। जब आसफ़जाह दरबार गया और निज़ामुद्दौला को दक्षिण में छोड़ गया तथा मराठों का उपद्रव बढ़ता गया तब यह बरार का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और इसे कसवरै जंग की पदवी मिली। आसफ़जाह के लौटने पर यह नासिर जंग के साथ जाकर शाह बुर्हानुद्दीन ग़रीब के रौज़ा में बैठा और नासिर जंग के पिता के साथ के युद्ध में इसने भी योग दिया। बाद को आसफ़जाह ने इसको क्षमा कर दिया और बुला कर इसकी जागीर बहाल कर दी। यह सन् ११५९ हि० (१७४६ ई०) में मर गया। इसको कई

लड़के थे। द्वितीय पुत्र ख्वाजा मोमिन खाँ था, जो आसफ़जाह के समय हैदराबाद का नाएब सूबेदार और मुत्सद्दी नियत हुआ था। इसने रघू भोंसला के सेवक अली खाँ करावल को दमन करने में अच्छा कार्य किया। वह कुछ दिन बुर्हानपुर का अध्यक्ष रहा और सलाबत जंग के समय अजीजुद्दौला पदवी पाकर नानदेर का अध्यक्ष नियुक्त हुआ। अंत में उसने बरार के अंतर्गत परगना पातूर शेख बाबू की जागीर पर सन्तोष कर लिया। यह कुछ वर्ष बाद भारी परिवार छोड़कर मरा। तीसरा पुत्र ख्वाजा अबुलहादी खाँ बहुत दिनों तक माहवर दुर्ग का अध्यक्ष रहा। सलाबत जंग के शासन के आरंभ में यह हटाया गया पर बाद को फिर बहाल किया जाकर जहीरुद्दौला कसवरै जंग पदवी पाया। कुछ वर्ष हुए वह मर गया और कई लड़के छोड़ गया। यह राज-स्वभाव का पुरुष था और इसका हृदय जागृत था। लेखक पर उसका बहुत स्नेह था। चौथा ख्वाजा अब्दुर्रशीद खाँ बहादुर हिम्मते जंग और पाँचवाँ ख्वाजा अब्दुश्शहीद खाँ बहादुर हैबतजंग था। दोनों निज़ामुद्दौला आसफ़जाह के नौकर हैं।

४. अज़ीज़ कोका मिर्ज़ा खाने आज़म

शम्सुदीन मुहम्मद खाँ अतगा का छोटा पुत्र था। यह अकबर का समवयस्क तथा खेल का साथी था। उसका यह सदा अंतरंग मित्र और कृपापात्र रहा। इसकी माता जीजी अनगा का भी अकबर से दृढ़ संबंध था, जो उसपर अपनी माता से अधिक स्नेह दिखलाता था। यही कारण था कि बादशाह खाने आज़म की उद्दंडता पर तरह दे जाता था। वह कहता कि 'हमारे और अज़ीज़ के मध्य में दूध की नदी का संबंध है जिसे नहीं पार कर सकते।' जब पंजाब अतगा लोगों से ले लिया गया, क्योंकि वे बहुत दिनों से वहाँ बसे थे तब मिर्ज़ा नहीं हटाए गए और दीपालपुर तथा अन्य स्थानों में जहाँ वह पहिले से थे बराबर रहे। जब सोलहवें वर्ष में सन् ९७८ हि० (१५७१ ई०) के अंत में अकबर शेख फरीद शकरगंज के मज़ार का, जो पंजाब पत्तन प्रसिद्ध नाम अजोधन में है, ज़ियारत कर दीपालपुर में पड़ाव डाला तब मिर्ज़ा कोका की प्रार्थना पर उसके निवास-स्थान में गया। मिर्ज़ा ने मजलिस की बड़ी तैयारी की और भेंट में बहुत से सुनहले तथा रुपहले साज सहित अरबी और पारसीक घोड़े, हौदे तथा सिक्कड़ सहित बलवान हाथी, सोने के पात्र तथा कुरसी, बहुमूल्य जवाहिरात और हर एक प्रांत के उत्तम वस्त्र दिए। इस पर कृपाएँ भी अपूर्व हुईं। शाहज़ादों और बेगमों को भी मूल्यवान भेंट दी तथा अन्य अफ़सर, विद्वन्मंडली तथा पड़ाव के सभी मनुष्य इसकी उदारता के साझी हुए। शेख-

मुहम्मद ग़ज़नवी ने इस मजलिस की तारीख 'मेहमानाने अजीजंद शाहो शहजादा' (अर्थात् शाह तथा शाहजादे अजीज़ के अतिथि हुए, ९७८ हि०)।

तबक़ात का लेखक लिखता है कि ऐसे समारोह के साथ मजलिस कभी कभी होती है। सत्रहवें वर्ष में अहमदाबाद गुजरात अकबर के अधिकार में आया, जिसका शासन महींद्री नदी तक मिर्ज़ा को मिला और अकबर स्वयं सूरत गया। विद्रोहियों अर्थात् मुहम्मद हुसेन मिर्ज़ा और शाह मिर्ज़ा ने शेर खाँ फौलादी के साथ मैदान को खाली देखकर पत्तन को घेर लिया। मिर्ज़ा कोका कुतुबुद्दीन खाँ आदि अफ़सरों के साथ, जो हाल ही में मालवा से आए थे, शीघ्रता से वहाँ गया और युद्ध की तैयारी की। पहिले हार होती मालूम हुई पर ईश्वरीय कृपा से विजय की हवा बहने लगी। कहते हैं कि जब दायाँ भाग, हरावल और उसका पीछा आक्रमण न रोक सके तथा साहस छोड़ दिया तब मिर्ज़ा मध्य के साथ आगे बढ़ा और स्वयं धावा करने का विचार किया। वीरों ने यह कह कर कि ऐसे समय में सेनाध्यक्ष के स्वयं आक्रमण करने से कुल सेना के अस्त व्यस्त होने का भय है, उसे रोक दिया। मिर्ज़ा इस पर डटा रहा और शत्रुओं में कुछ पीछा करने और कुछ लूटमार करने में लग गए थे, इसलिए छितरा कर भाग निकले। मिर्ज़ा विजय पाकर अहमदाबाद लौट आया।

जब बादशाह गुजरात की चढ़ाई से लौटकर २ सफर सन् ९८१ हि० (३ जून सन् १५७३ ई०) को फतेहपुर पहुँचे तब इख्तेयारुल् मुल्क, जिसने ईडर में शरण ली थी, अहमदाबाद

के पास पहुँच कर उपद्रव करने लगा। मुहम्मद हुसेन मिर्जा भी दक्षिण से लौट कर खंभात के चारों ओर लूटमार करने लगा। इसके बाद दोनों ने सेनाएँ मिलाकर अहमदाबाद लेना चाहा। यद्यपि खानआजम के पास काफी सेना थी पर उसने उसमें राजभक्ति तथा ऐक्य की कमी देखी। इस पर उसने युद्ध के लिए जल्दी नहीं की पर नगर में सतर्क रह कर उसकी दृढ़ता का प्रबंध करने लगा। शत्रु ने भारी सेना के साथ आकर उसे घेर लिया और तोप-युद्ध होने लगा। मिर्जा ने बादशाह को आने के लिए लिखा। शैर—

विद्रोह ने है सिर उठाया, दैव है प्रतिकूल।

और यह प्रार्थना की—

सिवा सरसरे शहसवाराने शाह।
न इस गर्द को रह से सकता हटा॥

अकबर ने कुछ अफसरों को आगे भेजा और स्वयं ४ रबीउल् अव्वल (४ जुलाई १५७२ ई०) को उसी वर्ष पास के थोड़े सैनिकों के साथ साँडनी पर सवार हो रवाने हुआ। शैर—

यलाँ ऊँट पर तरकश अन्दर कमर।
चले उड़ शुतुर्मुर्ग की तरह सब॥

जालौर में आगे के अफसर मिले और बालसाना में पत्तन से पाँच कोस पर मीर मुहम्मद खाँ वहाँ की सेना के साथ आ मिला। अकबर ने सेना को, जो ३००० सवार थे, कई भागों में बाँट दिया और स्वयं सौ के साथ घात में पीछे रहा। देर न कर वह आगे बढ़ा और अहमदाबाद से तीन कोस पर पहुँच कर

डंका तथा तुरही बजवाया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा पता लेने को नदी के किनारे आया और सुभान कुली तुर्क से, जो आगे था, पूछा कि 'यह किसकी सेना है?' उसने कहा कि 'ये शाही निशान हैं।' मिर्जा ने कहा कि 'आज ठीक चौदह दिन हुए कि विश्वासी चरों ने बादशाह को राजधानी में छोड़ा था और यदि बादशाह स्वयं आए हैं, तो युद्धीय हाथी कहाँ है?' सुभान कुली ने कहा कि 'वे सच्चे हैं, केवल नौ दिन हुए कि बादशाह रवाने हुए हैं और यह स्पष्ट है कि हाथी इतनी जल्दी नहीं आ सकते।'

मुहम्मद हुसेन मिर्जा डर गया और इख्तियारुल् मुल्क को पाँच सहस्र सेना के साथ फाटकों की रक्षा को छोड़कर, कि दुर्ग-वाले बाहर न निकलें, स्वयं पन्द्रह सहस्र सवारों के साथ युद्ध के लिए तैयारी की। इसी समय शाही सेना पार उतरी और युद्ध आरंभ हो गया। शाही हरावल शत्रु की संख्या के कारण हारने ही को था कि अकबर सौ सवारों के साथ उन पर टूट पड़ा और शत्रु को भगा दिया। मुहम्मद हुसेन मिर्जा और इख्तियारुल् मुल्क तलवार के घाट उतरे। मिर्जा के विवरण में इसका पूरा वर्णन है।

इस तरह के शीघ्र कूचों का पहिले के बादशाहों के विषय में भी विवरण मिलता है, जैसे सुलतान जलालुद्दीन मनगेरनी का भारत से किर्मान तक और वहाँ से गुर्जिस्तान तक, अमीर तैमूर गुर्गन का करशी पर विजय, सुलतान हुसेन मिर्जा का हिरात-विजय और बाबर बादशाह का समरकंद-विजय। पर अन्वेषकों से यह छिपा नहीं है कि इन बादशाहों ने आवश्यकता पड़ने पर या यह

देख कर कि शत्रु सतर्क नहीं है या साधारण युद्ध होगा, ऐसा समझ कर किया था। उनकी ऐसे बादशाह से तुलना नहीं की जा सकती थी, जिसके अधीन दो लाख सवार थे और जिसने स्वेच्छा से शत्रु की संख्या को तथा मुहम्मद हुसेन मिर्जा से वीर सैनिक की अध्यक्षता को समझ कर, जिसने अपने समकालीनों की शक्ति से बढ़कर युद्ध में कार्य दिखलाया था, आगरे से गुजरात चार सौ कोस दूर पहुँच कर वह काम कर दिखलाया था, जैसे कार्य की सृष्टि के आरंभ से अब तक कहानी नहीं कही गई थी।

इस विजय के बाद मिर्जा नया जीवन प्राप्त कर नगर से बाहर निकला और बादशाही सेना के गर्द को प्रतीक्षा की आँखों के के लिए सुरमा समझ कर ग्रहण किया। दूसरे वर्ष जब बादशाह अजमेर में थे तब मिर्जा बड़ी प्रसन्नता से मिलने आया। बादशाह ने कुछ आगे बढ़कर उसका स्वागत किया और गले मिले। इसके अनंतर जब इख्तियारुल् मुल्क गुजराती के लड़कों ने विद्रोह किया तब यह आगरे से वहाँ भेजा गया।

२० वें वर्ष में जब अकबर ने सैनिकों के घोड़ों को दागने की प्रथा चलाना निश्चित किया तब कई अफसरों ने ऐसा करने से इनकार किया। मिर्जा दरबार बुलाया गया कि वह दाग प्रथा को चलावे पर इसने सबसे बढ़ कर विरोध किया। बादशाह का मिर्जा पर अपने लड़के से अधिक प्रेम था पर इस पर वह अप्रसन्न हो गया और इसे अमीर पद से हटा कर जहाँआरा बाग में, जिसे इसी ने बनवाया था, नजर कैद कर दिया। २३ वें वर्ष मिर्जा पर फिर कृपा हुई और वह अपने पूर्व पद पर नियत हुआ। पर उसी समय मिर्जा इस भांति से कि

बादशाह उस पर पूरी कृपा नहीं रखते एकांतवासी हो गया। २५ वें वर्ष सन् ९८८ हि० (सन् १५८० ई०) में पूर्वीय प्रांतों में बलवा हो गया और बंगाल का प्रांताध्यक्ष मुजफ्फर खाँ मारा गया। मिर्जा को पाँच हजारी मंसब तथा खाने-आजम पदवी देकर बड़ी सेना के साथ वहाँ भेजा। बिहार के उपद्रव के कारण मिर्जा बंगाल नहीं गया पर उस प्रांत के शासन तथा विद्रोहियों के दंड देने का उचित प्रबंध किया और हाजीपुर में अपना निवास-स्थान बनाया। २६ वें वर्ष के अंत में जब अकबर काबुल की चढ़ाई से लौटकर फतहपुर आया तब मिर्जा कोका सेवा में उपस्थित हुआ और कृपाएँ पाकर सम्मानित हुआ। २७ वें वर्ष में जब्बारी, खबीता और तरखान दीवाना बंगाल से बिहार आए और मिर्जा के आदमियों से हाजीपुर लेकर वहाँ उपद्रव आरंभ कर दिया। तब मिर्जा ने बिहार के विद्रोहियों को दंड देने के लिए छुट्टी ली और उसके बाद बंगाल पर चढ़ाई करने का निश्चय किया। मिर्जा के पहुँचने के पहिले विजयी सेना ने बलवाइयों को उनके उपयुक्त दंड दे दिया था और वर्षा भी आरंभ हो गई थी, इसलिए मिर्जा आगे नहीं बढ़े। पर वर्षा बीतने पर २८ वें वर्ष के आरंभ में वह इलाहाबाद, अवध और बिहार के जागीरदारों के साथ बंगाल गया और सहज ही गढ़ी ले लिया, जो उस प्रांत का फाटक है। मासूम काबुली ने, जो इन बलवाइयों का मुखिया था, आकर घाटी गंग के किनारे पड़ाव डाला। प्रति दिन साधारण युद्ध होता था पर बादशाह के पक्ष वाले विद्रोहियों से भय के कारण जम कर युद्ध नहीं करते थे। इसी बीच मासूम और काकशालों में वैमनस्य हो गया और

खाने-आजम ने अंतिम से इस शर्त पर सुलह कर ली कि वे समय पर अच्छी सेवा करेंगे। यह तय हुआ था कि वे युद्ध से अलग रहेंगे और अपने गृह जाकर वहाँ से शाही सेना में चले आवेंगे। मासूम खाँ घबड़ा गया और भागा। खाने-आजम ने एक सेना कतलू लोहानी पर भेजा, जो इस गड़बड़ में उड़ीसा और बंगाल के कुछ भाग पर अधिकृत हो गया था। इसने स्वयं अकबर को लिखा कि यहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए हानिकर है, जिससे आज्ञा हुई कि वह प्रांत शाहबाज खाँ कंबू को दिया जाय, जो वहाँ जा रहा था और खाने-आजम अपनी जागीर बिहार को चला आवे। उसी वर्ष जब अकबर इलाहाबाद आया तब मिर्जा ने हाजीपुर से आकर सेवा की और उसे गढ़ा तथा रायसेन मिला। ३१वें वर्ष सन् ९९४ हि० (१५८६ ई०) में यह दक्षिण विजय करने पर नियुक्त हुआ। सेना के एकत्र होने पर यह रवाने हुआ पर साथियों के दो रुखी चाल तथा झूठ-सच बोलने के कारण गड़बड़ मचा और शहाबुद्दीन अहमद ने, जो सहायक था, पुराने द्वेष के कारण इसे धोखा दिया। मिर्जा कुविचार करने लगा और अवसर पर रुकने तथा हटने बढ़ने से बहुत थोड़े सैनिक बच रहे। शत्रु अब तक डर रहा था पर साहस बढ़ने से वह युद्ध को आया। मिर्जा उसका सामना करने में अपने को असमर्थ समझ कर लौट आया और बरार चला गया। नौरोज को एलिचपुर को अरक्षित देखकर उसे लूट लिया और बहुत लूट के साथ गुजरात को चला। शत्रु ने उसके इस भागने से चकित होकर उसका शीघ्रता से पीछा किया। मिर्जा भय से फुर्ती कर भागा और नजरबार पहुँचने तक बाग न रोकी।

यद्यपि शत्रु उसे न पा सके पर जो प्रांत विजय हो चुका था वह फिर हाथ से निकल गया। मिर्जा सेना एकत्र करने के लिए नजरबार से गुजरात शीघ्रता से चला गया। खानखानाँ ने, जो वहाँ अधिपति था, बड़ा उत्साह दिखलाया और थोड़े समय में अच्छी सेना इकट्ठी हो गई। परंतु मनुष्यों के मूर्ख विचारों से यह सफल नहीं हुआ। ३२ वें वर्ष में मिर्जा की पुत्री का सुलतान मुराद के साथ ब्याह हुआ और अच्छी मजलिस हुई। ३४ वें वर्ष के अंत में खानखानाँ के स्थान पर गुजरात का शासन इसे मिला। मिर्जा मालवा पसंद करके गुजरात जाने में ढिलाई करने लगा। अंत में ३५ वें वर्ष में वह अहमदाबाद गया। जब सुलतान मुजफ्फर ने कच्छ के जमींदार, जाम तथा जूनागढ़ के अध्यक्ष की सहायता से विद्रोह किया तब ३६ वें वर्ष में मिर्जा वहाँ आया और शत्रु को परास्त कर दिया। ३७ वें वर्ष में जाम तथा अन्य जमींदारों ने अधीनता स्वीकार कर ली और सोमनाथ आदि सोलह बंदरों पर अधिकार हो गया तथा सोरठ प्रांत की राजधानी जूनागढ़ को घेर लिया गया। अमीन खाँ गोरी के उत्तराधिकारी दौलत खाँ के पुत्रों मियाँ खाँ और ताज खाँ ने दुर्ग दे दिया। मिर्जा ने प्रत्येक को उपजाऊ जागीर दी और सुलतान मुजफ्फर को, जो विद्रोह का मूल था, कैद करने का प्रयत्न करने लगा। उसने सेना द्वारिका भेजी, जहाँ के भूम्याधिकारी की शरण में वह जा छिपा था। वह भूम्याधिकारी लड़ा पर हार गया। मुजफ्फर कच्छ भागा। मिर्जा स्वयं वहाँ गया और उसका घर जाम को देने का प्रस्ताव किया। इस पर उसने अधीनता स्वीकार कर ली और मुजफ्फर को दे दिया। उसे वे मिर्जा के

पास ला रहे थे कि उसने लघु शंका निवारण करने के बहाने एकांत में जाकर छुरे से, जो उसके पास था, अपना गला काट लिया और मर गया।

३९ वें वर्ष सन् १००१ ई० (१५९२-३ ई०) में अकबर ने जब मिर्जा को बुला भेजा तब यह शंका करके हिजाज चला गया। कहते हैं कि वह बादशाह को सिज्दा करना, डाढ़ी मुँड़ाना तथा अन्य ऐसे नियम, जो दरबार में प्रचलित हो चुके थे, नहीं मानता था और इसी के विरोध में लंबी डाढ़ी रखे हुए था। इस लिए उसने सामने जाना ठीक नहीं समझा और बहाने लिखता रहा। अंत में बादशाह ने उत्तर में लिखा कि तुम आने में देर कर रहे हो, ज्ञात होता है कि तुम्हारी डाढ़ी के बाल तुम्हें दबाए हैं। कहते हैं कि मिर्जा ने भी धर्म-विषयक कठोर तथा व्यंग्य पूर्ण बातें लिखीं जैसे बादशाह ने उसमान और अली के स्थान पर अबुल् फजल और फैजी को बैठा दिया है पर दोनों शेखों के स्थान पर किसको नियत किया है?

अंत में मिर्जा ने द्यू बंदर पर आक्रमण करने के बहाने कूच किया और फिरंगियों से संधि कर सोमनाथ के पास बलावल बंदर से इलाही जहाज पर अपने छ पुत्र खुर्रम, अनवर, अब्दुल्ला, अब्दुल्लतीफ, मुर्तजा और अब्दुल् गफूर तथा छ पुत्रियों, उनकी माताओं और सौ सेवकों के साथ सवार हो गया। अकबर को यह सुन कर बड़ा कष्ट हुआ और उसने मिर्जा के दो पुत्र शम्सी और शादमान को मंसब तथा जागीर देकर कृपा दिखलाई। शेख अब्दुल् कादिर बदाऊनी ने तारीख लिखा—

खाने-आजम ने धर्मात्माओं का स्थान लिया पर बादशाह के

विचार से वह भटका हुआ था। जब मैंने हृदय से वर्ष की तारीख पूछा, तब कहा कि 'मिर्जा कोका हज्ज को गया' (१००२ हि०)

कहते हैं कि उसने पवित्र स्थानों में बहुत धन व्यय किया और शरीफों तथा मुखियों को सम्मान दिखलाया। इसने शरीफ को पैगंबर के मकबरे को रक्षा करने का पचास वर्ष का व्यय दिया। इसने कोठरियाँ खरीद कर उस पवित्र इमारत को दे दिया। जब उसने पुनः अकबर का कृपा-पूर्ण समाचार पाया तब समुद्र पार कर उसी बलावल बंदर में उतरा और सन् १००३ हि० के आरंभ में सेवा में भर्त्ती हो गया। उसे उसका मंसब तथा बिहार में उसकी जागीर मिल गई और ४० वें वर्ष में वकील के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित हुआ तथा उसे शाही मुहर मिली, जिस पर मौलाना अली अहमद ने तैमूर तक के कुल पूर्वजों के नाम खोदे थे। ४१ वें वर्ष में मुलतान प्रांत उसकी जागीर हुई। ४५ वें वर्ष में जब यह आसीर के घेरे पर अकबर के साथ था तब इसकी माता बीबा ज्यू मर गई। अकबर ने उसका जनाजा कंधे पर रखा और शोक में सिर तथा मोछ मुँड़ाए। ऐसा प्रयत्न किया गया कि उसके पुत्रों के सिवा और कोई न मुँड़ावे पर न हो सका तथा बहुत से लोगों ने वैसा किया। इसी वर्ष के अंत में खान देश के शासक बहादुर खाँ ने मिर्जा की मध्यस्थता में अधीनता स्वीकार कर ली और दुर्ग दे दिया। मिर्जा की पुत्री का विवाह सुलतान सलीम के बड़े पुत्र खुसरो के साथ हुआ था, जो राजा मानसिंह का भांजा था; इस लिए साम्राज्य के इन दो स्तंभों ने खुसरो को बढ़ाने में बहुत प्रयत्न किया। विशेष कर मिर्जा, जो उस पर अत्यंत स्नेह रखते थे, कहा करते कि 'मैं चाहता हूँ कि दैव

उसकी बादशाहत का समाचार मुझे दाहिने कान में दे और बाँये कान से हमारा प्राण ले ले।' अकबर के मृत्यु-रोग के समय यौवराज्य के लिए षड्यंत्र रचा गया पर सफल नहीं हुआ। अकबर के जीवन का एक स्वाँस बाकी था, जब शेख फरीद बख्शी आदि शाहजादा सलीम से जा मिले। वह बादशाह के इशारे तथा इन शुभचिंतकों के उपद्रव के भय से दुर्ग के बाहर एक गृह में बैठ रहा था। राजा मानसिंह खुसरो के साथ दुर्ग से इस शर्त पर निकल आए कि वह उसे लेकर बंगाल चले जायँगे। खाने आजम ने भी डर कर अपना परिवार राजा के गृह पर इस सूचना के साथ भेज दिया कि वह भी आ रहा है क्योंकि धन भी ले जाना उचित है और उसके पास मजदूर नहीं हैं। राजा को भी वही बहाना था। लाचार हो मिर्जा को दुर्ग में अकेले रहकर बादशाह अकबर को गाड़ने तथा अंतिम संस्कार का निरीक्षण करना पड़ा। इसके बाद जहाँगीर के १ म वर्ष में खुसरो ने बलवा किया और मिर्जा उसका बहकाने वाला बतलाया जाकर असम्मानित हो गया।

कहते हैं कि खाने-आजम कफन पहिर कर दरबार जाता था और उसे आशा थी कि वे उसे मार डालेंगे पर तब भी वह जिह्वा रोक नहीं सकता था। एक रात्रि अमीरुल् उमरा से खूब कहा सुनी हो गई। बादशाह ने समिति समाप्त कर दिया और एकांत में राय लेने लगा। अमीरुल् उमरा ने कहा कि 'उसे मार डालने में देर नहीं करना चाहिए।' महाबत खाँ ने कहा कि 'हम तर्क वितर्क नहीं जानते। हम सिपाही हैं और हमारे पास मजबूत तलवार है। उसे कमर पर मारेंगे और अगर वह दो टुकड़े न

हो जाय तो आप हमारा हाथ काट सकते हैं।' जब खानजहाँ लोदी के बोलने की पारी आई तब उसने कहा कि 'हम उसके सौभाग्य से चकित हैं। जहाँ जहाँ बादशाह का नाम पहुँचा है, वहाँ वहाँ उसका नाम भी गया है। हमें उसका कोई ऐसा प्रकट दोष नहीं दिखलाई देता जो उसके मारे जाने का कारण हो। यदि उसे मारेंगे तो लोग उसे शहीद कहेंगे।' बादशाह का क्रोध इससे कुछ शांत हुआ और इसी समय बादशाह की सौतेली माता सलीमा सुलतान बेगम ने पर्दे में से पुकार कर कहा कि 'बादशाह, मिर्जा कोका के लिए प्रार्थना करने को कुल बेगमात यहाँ जनाने में इकट्ठी हुई हैं। आप यहाँ आवें तो उत्तम है, नहीं तो वे आप के पास आ ेंगी।' जहाँगीर को बाध्य होकर जनाने में जाना पड़ा और उनके कहने सुनने पर उसका दोष क्षमा करना पड़ा। अपनी खास डिब्बी से उसकी मोताद अफीम उसे दिया, जो वह नहीं ले सका था और उसे जाने की छुट्टी दी। परंतु एक दिन प्रायः उसी समय ख्वाजा अबुल् हसन तुर्बती ने एक पत्र दिया, जिसे मिर्जा कोका ने खानदेश के शासक राजा अली खाँ को लिखा था और जिसमें अकबर के विषय में ऐसी बातें लिखी थीं, जो किसी साधारण व्यक्ति के विषय में न लिखना चाहिए। आसीर गढ़ लिए जाने पर यह पत्र ख्वाजा के हाथ पड़ गया था और उसे वह कई वर्षों तक अपने पास रखे था। अंत में वह उसे पचा न सका और जहाँगीर को दे दिया। जहाँगीर ने उसे खानेआजम के हाथ में रख दिया और वह उसे अविचलित भाव से जोर से पढ़ने लगा। उपस्थित लोग उसे गाली तथा शाप देने लगे और बादशाह ने कहा कि 'अर्श-अशियानी (अकबर) और तुम्हारे

बीच जो अंतरंग मित्रता थी, वही मुझे रोकती है नहीं तो तुम्हारे गर्दनों से शिर का बोझ हटवा देता।' उसने उसका पद और जागीर छीन लिया तथा नजर कैद रखा। दूसरे वर्ष गुजरात का शासन इसके नाम में लिखा गया और उसका सबसे बड़ा पुत्र जहाँगीर कुली खाँ उसका प्रतिनिधि होकर उक्त प्रांत की रक्षा के लिये भेजा गया।

दक्षिण का कार्य जब अफसरों की आपस की अनबन के कारण ठीक नहीं हो रहा था तब खानेआजम दस सहस्र सवारों से साथ ५ वें वर्ष वहाँ भेजा गया। इसके अनंतर उसने बुरहानपुर से प्रार्थना पत्र भेजा कि उसे राणा का कार्य सौंपा जाय। वह कहता था कि यदि उस युद्ध में मारा गया तो शहीद हो जाऊँगा। उसकी प्रार्थना पर उस चढ़ाई के उपयुक्त सामान मिल गया। जब कार्य आरंभ किया तब उसने प्रार्थना की कि बिना शाही झंडे के यहाँ आए यह कठिन गाँठ नहीं खुलेगी। इस पर ८ वें वर्ष सन् १०२२ हि० (१६१३ ई०) में जहाँगीर अजमेर आया और मिर्जा कोका के कहने पर शाहजहाँ उस कार्य पर नियुक्त किया गया पर कुल भार मिर्जा पर ही रहा। खुसरो के प्रति पक्षपात रखने के कारण इसने शाहजहाँ से ठीक बर्ताव नहीं किया, जिससे उदयपुर से उसे दरबार लाने के लिए महाबत खाँ भेजा गया। ९ वें वर्ष यह आसफ खाँ को इसलिए दे दिया गया कि ग्वालियर दुर्ग में कैद किया जाय। मिर्जा के एक कथन की लोगों ने सूचना दी, जिसका आशय था कि मैंने कभी मंत्र तंत्र करने का विचार नहीं किया। आसफ खाँ ने जहाँगीर से कहा था कि एक मनुष्य उसे नष्ट करने को अनुष्ठान कर रहा

है। एकांतवास और मांसाहार तथा मैथुन का त्याग सफलता के कारण हैं और कैदखाने में ये सभी मौजूद हैं, इसलिए आज्ञा दी गई कि खाने के समय मुर्ग और तीतर के अच्छे मांस बना कर मिर्जा को दिए जाँय—शेर—

ईश्वर की कृपा से शत्रु से भी लाभ ही होता है।

एक वर्ष बाद जब वह कैद से छूटा तब उससे इकरारनामा लिखाया गया कि बादशाह के सामने वह तब तक न बोलेगा जब तक कि उससे कोई प्रश्न न किया जाय, क्योंकि उसका अपनी जबान पर अधिकार नहीं है। एक रात्रि जहाँगीर ने जहाँगीर कुली खाँ से कहा कि 'तुम अपने पिता के लिए जामिन हो सकते हो ?' उसने उत्तर दिया कि 'हम उनके सब कार्य के लिए जामिन हो सकते हैं पर जबान के लिए नहीं।' जब यह विचार हुआ कि उसे पंजहजारी नियुक्ति की सूचना दी जाय तब जहाँगीर ने शाहजहाँ से कहा कि 'जब अकबर ने खानेआजम को दो हजारी की तरक्की देना चाहा था तब शेख फरीद बख्शी और राजा राम दास को उसके घर पर मुबारकबादी देने को भेजा। उस समय वह हम्माम में था और वे फाटक पर एक प्रहर तक प्रतीक्षा करते रहे। इसके बाद जब वह अपने दरबारी कमरे में आया तब इन लोगों को बुलाकर इनकी बात सुनी। इस पर वह बैठ गया और हाथ माथे पर रख कर कहा कि 'उसे दूसरा समय इस कार्य के लिए निश्चित करना होगा।' इसके बाद बिना किसी शील या सौजन्य के उन दोनों को बिदा कर दिया। मैं यह बात याद किए हूँ और यह लज्जा की बात होगी कि यदि तुम को बाबा

उसका प्रतिनिधि होकर सलाम करना पड़े, जो मिर्जा कोका को उसकी नियुक्ति की बहाली पर करना चाहिए था।'

१८ वें वर्ष में मिर्जा कोका खुसरो के पुत्र दावरबख्श का अभिभावक तथा साथी बनाया जाकर भेजा गया, जो गुजरात का शासक नियुक्त हुआ था। १९ वें वर्ष सन् १०३३ हि० (१६२४ ई०) में अहमदाबाद में यह मर गया। यह बुद्धि की तीव्रता तथा वाक्शक्ति में एक ही था। ऐतिहासिक ज्ञान भी इसका बढ़ा चढ़ा था। यह कभी कभी कविता करता। यह उसके शैर का अर्थ है—

नाम तथा यश से मुझे मनचाहा नहीं मिला।
इसके बाद कीर्तिरूपी आईने पर पत्थर फेंकना चाहता हूँ॥

यह नस्तालीक बहुत अच्छा लिखता था। यह मुल्ला मीर अली के पुत्र मिर्जा बाकर का शिष्य था और अच्छे समालोचकों की राय में प्रसिद्ध उस्तादों से लेखन में कम नहीं था। यह मतलब को स्पष्टत: लिखने में बहुत कुशल था। यद्यपि यह अरबी का विद्वान् नहीं था तब भी कहता था कि वह अरबी भाषा जानने में 'अरब की दासी' के समान है। बातचीत करने में अपना जोड़ नहीं रखता था और अच्छे महावरे या कहावत जानता था। उनमें से एक यह है कि 'एक मनुष्य ने कुछ कहा और मैंने सोचा कि सत्य है। उसी बात पर वह विशेष जोर देने लगा तब शंका होने लगी। जब वह शपथ खाने लगा तब समझा कि यह झूठ है।' उसका एक विनोदपूर्ण कथन है कि 'पैसे वाले के लिए चार स्त्रियाँ होनी चाहिए—एक एराकी सत्संग के लिए, एक खुरासानी गृहस्थी के लिए, एक हिंदुस्तानी मैथुन के लिए और एक मावरुन्नहरी कोड़े मारने के लिए, जिसमें दूसरों को

उपदेश मिले।' परन्तु विषय-वासना, धोखेबाजी तथा कठोर बोलने में यह अपने समकालीनों में सबसे बढ़कर था तथा बहुत ही क्रोधी था। जब उसका कोई उगाहने वाला सेवक सामने आता तब यदि वह कुल हिसाब, जो उसके जिम्मे निकलता था, चुका देता तो उसे छुट्टी दे दी जाती और नहीं तो उस पर इतनी मार पड़ती कि वह मर जाता। इतने पर भी यदि कोई बच जाता तो उसे फिर कष्ट न देता, चाहे लाखों उसके जिम्मे निकले। कोई ऐसा वर्ष नहीं बीतता था कि अपने दो एक हिंदुस्तानी लेखकों का सिर न मुँड़ा देता। कहते हैं कि एक अवसर पर उनमें से बहुतों ने गंगा स्नान के लिए छुट्टी ली तब इसने अपने दीवान राय दुर्गादास से कहा कि 'तुम क्यों नहीं जाते'। उसने उत्तर दिया कि 'मुझ दास का गंगा-स्नान आपके पैरों के नीचे है।' यह सुनकर इसने स्नान की छुट्टी देना बंद कर दिया। यद्यपि यह प्रतिदिन निमाज नहीं पढ़ता था तब भी यह धर्मांध था। इसी कारण तत्कालीन सम्राट् के धार्मिक नास्तिकता तथा अपवित्रता का साथ नहीं दिया और प्रकट रूपसे यह उन सबसे विद्वेष रखता। यह समय देखकर नहीं काम करनेवाला था। जहाँगीर के राज्यकाल में एतमादुद्दौला के परिवार का बहुत प्रभाव था पर यह उनमें से किसी के द्वार पर नहीं गया, यहाँ तक कि नूरजहाँ बेगम के द्वार तक नहीं गया। यह खानखानाँ मिर्जा अब्दुर्रहीम के बिलकुल विरुद्ध था क्योंकि वह एतमादुद्दौला के दीवान राय गोवर्द्धन के घर गया था।

अकबर की नास्तिकता का जिक्र आ गया है इसलिए उस विषय में कुछ कहना आवश्यक हो गया, नहीं तो यह इबलीस

शैतान की नास्तिकता से कम प्रसिद्ध नहीं है। यद्यपि तत्कालीन लेखकों तथा वाकेआनवीसों ने हानि के भय से इस बात का उल्लेख नहीं किया है पर कुछ ने किया है और शेख अब्दुल्कादिर बदायूनी या वैसे ही लोगों ने इस विषय में खुल्लमखुल्ला लिखा है। इस कारण जहाँगीर ने आज्ञा निकाली कि साम्राज्य के पुस्तक विक्रेता शेख के इतिहास को न खरीदें और न बेंचे। इस कारण वह ग्रंथ कम मिलता है। उलमा का निकाला जाना तथा सिज्दे आदि नियमों का चलाना अकबर की विचार-परंपरा के सबूत हैं। इससे बढ़कर क्या सबूत हो सकता है कि तूरान के शासक अब्दुल्ला खाँ उजबेग ने अकबर को वह बातें लिखीं, जो कोई साधारण व्यक्ति को नहीं लिखता, बादशाह की कौन कहे। उत्तर में इसने बहुत सी धर्म की बातें लिखीं और इस शैर से क्षमा का प्रार्थी हुआ—

खुदा के बारे में कहते हैं उसे पुत्र था, कहते हैं कि पैगंबर वृद्ध था
खुदा और पैगंबर मनुष्यों की जबान से नहीं बचे तब मेरा क्या।

इसका अकबरनामे तथा शेख अबुल्फजल के पत्रों में उल्लेख है। परंतु इस ग्रंथ के लेखक को कुल सबूत देखने पर यही निश्चित ज्ञात होता है कि अकबर ने कभी ईश्वरत्व और पैगम्बरी का दावा नहीं किया था। वास्तव में बादशाह विद्या का आरंभ भी नहीं जानते थे और न पुस्तकें ही पढ़ी थीं पर वह बुद्धिमान था और उसका ज्ञान उच्चकोटि का था। वह चाहते थे कि जो कुछ विचार के अनुकूल है वही होना चाहिए। बहुत से उलमा सांसारिक लाभ के लिए हाँ में हाँ मिलाने लगे और चापलूसी करने लगे। फैजी और अबुल्फजल के बढ़ने का यही

कारण है। उन दोनों ने बादशाह को बुद्धिसंगत तथा सूफी विचार बतलाए और प्राचीन प्रथाओं को तोड़ने को जांच करने के लिए इन्होंने उसे अपने समय का अन्वेषक तथा मुजतहीद बतलाया। इन दोनों भाइयों की योग्यता तथा विद्वत्ता इतनी बढ़ी हुई थी कि उनके समय कोई विद्वान उनसे तर्क न कर सके, जिससे वे दर्वेशजादा और दरिद्री से बढ़कर न होते हुए एकदम बादशाह के अंतरंग तथा प्रभावशाली मित्र बन गए। ईर्ष्यालु मनुष्य, जिनसे दुनिया भरी है, और मुख्यकर प्रतिद्वंद्वी मुल्ले, जो दब चुके थे, अपनी अप्रसन्नता तथा ईर्ष्या को धर्म रक्षा का नाम देकर झूठी बातें फैलाने लगे, जिसकी कोई सीमा न था। ऐसे कोई उपद्रव नहीं थे, जो इन्होंने नहीं किए। धर्मांधता तथा पक्षपात से अपना जीवन तथा ऐश्वर्य निछावर कर दिया। ईश्वर उन्हें क्षमा करे।

खाने आजम को कई पुत्र थे। सबसे बड़े जहांगीर कुलीखाँ का अलग वृत्तांत दिया है। दूसरा मिर्जा शादमान था, जिसे जहाँगीर के समय शादखाँ की पदवी मिली। अन्य मिर्जा खुर्रम था, जो अकबर के समय गुजरात में जूनागढ़ का अध्यक्ष था, जो उसके पिता की जागीर थी। जहाँगीर के समय वह कमाल खाँ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और शाहजादा सुलतान खुर्रम के साथ राणा के विरुद्ध नियत हुआ। एक और मिर्जा अब्दुल्ला था, जिसे जहाँगीर के समय सर्दार खाँ की पदवी मिली। बादशाह ने इसे इसके पिता के साथ ग्वालियर में कैद किया था। पिता के छुटकारे पर इस पर भी दया हुई। एक और मिर्जा अनवर था, जिसकी जैन खाँ कोका की पुत्री से शादी हुई थी। प्रत्येक ने दो हजारी तीन हजारी मंसब पाए थे।

५. अजीजुल्ला खाँ

हुसेन टुकरिया के पुत्र यूसुफ खाँ का पुत्र था, जिन दोनों का वृत्तांत अलग दिया गया है। अजीजुल्ला काबुल में नियत हुआ और जहाँगीर के राज्य के अंत में दो हजारी १००० सवार का मंसबदार था। शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने पर इसका मंसब बहाल रहा और ७ वें वर्ष इज्जत खाँ पदवी और झंडा उपहार में मिला। ११ वें वर्ष में इसका मंसब दो हजारी १५०० सवार का हो गया और उसी वर्ष सईद खाँ बहादुर के साथ कंधार के पास फारसीयों के युद्ध में यह साथ रहा, जिनमें वे परास्त हुए और इसको ५०० सवार की तरक्की मिली। कंधार से पुरदिल खाँ के साथ बुस्त दुर्ग लेने गया। १२ वें वर्ष इसे डंका और बुस्त तथा गिरिश्क दुर्गों की रक्षा का भार मिला, जो अधिकृत हो चुके थे। १४ वें वर्ष इसका मंसब तीन हजारी २००० सवार का हो गया और अजीजुल्ला खाँ पदवी मिली। १७ वें वर्ष सन् १०५४ हि० (सन् १६४० ई०) में मर गया।

६. अजीजुल्ला खाँ

यह खलीलुल्ला खाँ यज्दी का तीसरा पुत्र था। पिता की मृत्यु पर इसे योग्य मंसब तथा खाँ की पदवी मिली। २६ वें वर्ष औरंगजेब ने इसे मुहम्मद यार खाँ के स्थान पर मीर तुजुक बनाया। ३० वें वर्ष जब इसका भाई रूहुल्ला खाँ बीजापुर का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ तब यह उस दुर्ग का अध्यक्ष हुआ। ३६ वें वर्ष में रूहुल्ला की मृत्यु पर इसका मंसब डेढ़ हजारी ८०० सवार का हो गया। इसके बाद यह कूरबेगी हुआ और ४६ वें वर्ष में सरदार खाँ के स्थान पर कंधार दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। इसका मंसब डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। इसका और कुछ हाल नहीं ज्ञात हुआ।

७. अफजल खाँ

इसका नाम ख्वाजा सुलतान अली था। हुमायूँ के राज्य काल में यह कोषागार का लेखक था। अपनी सचाई तथा योग्यता से शाही कृपा प्राप्त किया और सन् ९५६ हि० (सन् १५४९ ई०) में यह दीवाने खर्च बनाया गया। सन् ९५७ में हुमायूँ के छोटे भाई कामराँ ने अपने बड़े भाई का विरोध किया, जो उस पर पिता से बढ़कर कृपा रखता था और काबुल में अपना राज्य स्थापित किया। उसने शाही लेखकों तथा नौकरों पर कड़ाई की और ख्वाजा को कैद कर धन और सामान वसूल किया। जब हुमायूँ ने भारत पर चढ़ाई करने का विचार किया तब ख्वाजा मीर बख्शी नियत हुआ। हुमायूँ की मृत्यु पर तार्दी बेग खाँ, जो अपने को अमीरुल्उमरा समझता था, ख्वाजा के साथ दिल्ली का प्रबंध देखने लगा। हेमू के साथ के युद्ध में ख्वाजा मीर मुंशी अशरफ़ खाँ और मौलाना पीर मुहम्मद शर्वानी के साथ, जो अमीरुल् उमरा तार्दी बेग को नष्ट करने का अवसर ढूँढ़ रहे थे, भाग गए। जब ये अफसर पराजित और अप्रतिष्ठित होकर अकबर के पड़ाव पर आए, जो हेमू से युद्ध करने पंजाब से सरहिंद आया था, तब बैराम खाँ ने तुरंत तार्दी बेग खाँ को मरवा डाला और ख्वाजा तथा मीर मुंशी को निरी-क्षण में रखा क्योंकि उन पर धोखे तथा घूस खाने की शंका थी। इसके अनंतर ख्वाजा तथा मीर मुंशी भागकर हिजाज चले गए।

अकबर के राज्य के ५ वें वर्ष में इन्हें अभिवादन करने की आज्ञा मिली और ख्वाजा का अच्छा स्वागत हुआ तथा तीन हजारी मंसब मिला। संपादक ने यह निश्चय नहीं किया कि ख्वाजा का इसके बाद क्या हुआ और वह कब मरा।

---

८. अफजल खाँ अल्लामी मुल्ला शुक्रुल्ला शीराजी

विद्या के निवासस्थान शीराज में शिक्षा प्राप्त कर इसने कुछ समय साधारण विषय पढ़ाने में व्यतीत किया। जब यह समुद्र से सूरत आया और वहाँ से बुर्हानपुर गया तब खान-खानाँ ने, जो हृदयों को आकर्षित करने के लिए चुंबक था, इसको अपने यहाँ रख कर इसका प्रबंध किया और इसे अपना साथी बना लिया। इसके अनंतर यह शाहजादा शाहजहाँ की सेवा में गया और सेना का मीर अदल हो गया। उदयपुर के राणा के कार्य में यह उसका सेक्रेटरी और विश्वासपात्र था। जब इसकी उचित राय से राणा के साथ संधि हो गई, तब इसकी प्रसिद्धि बढ़ी और यह शाहजादा का दीवान हो गया। इस चढ़ाई का काम निपटने पर शाहजहाँ की प्रार्थना से इसे अफजल खाँ की पदवी मिली। दक्षिण में यह शाहजादा की ओर से राजा विक्रमाजीत और आदिल शाही वकीलों के साथ बीजापुर गया और आदिल शाह को सत्यता तथा अधीनता के मार्ग पर लाया। वहाँ ५० हाथी, असाधारण अद्भुत वस्तुएँ, जड़ाऊ हथियार और धन कर स्वरूप लाया। १७ वें वर्ष में शाहजादा को परगना धौलपुर जागीर में मिला और इसने दरिया खाँ को उसका अधिकार लेने भेजा। इसके पहिले प्रार्थना की गई थी कि वह परगना सुलतान शहर-यार को मिले और उस पर उसकी ओर से शरीफुल्मुल्क ने आकर

अधिकार कर लिया था। दोनों में लड़ाई का अवसर आ गया और ऐसा हुआ कि अनायास एक गोली शरीफुल्मुल्क को आँख में घुस गई और वह अंधा हो गया। यह एक विप्लव का कारण हो गया। नूरजहाँ बेगम शहरयार का पक्ष लेने से क्रुद्ध हो गई और जहाँगीर, जिसने कुल अधिकार उसे सौंप रखा था युवराज से विमनस हो गया। शाहजहाँ, जो कंधार की चढ़ाई के लिए दक्षिण से बुलाया गया था, मौकूफ कर दिया गया और शहरयार मीर रुस्तम की अभिभावकता में उस चढ़ाई पर नियत हुआ। शाहजादे को आज्ञा मिली कि अपनी पुरानी जागीर के बदले दक्षिण, गुजरात या मालवा में इच्छित जागीर लेकर वहीं ठहरे और सहायक अफसरों को कंधार की चढ़ाई पर जाने को भेज दे। ऐसा इस कारण किया गया कि यदि शाह-जादा ने जागीर दे देने और सेना भेज देने की अधीनता स्वीकार कर ली तब उसकी उच्चता और ऐश्वर्य में कमी हो जायगी और यदि उसने विद्रोह कर उपद्रव मचाया तो दंड देने का अवसर मिल जायगा। कपटी संसार क्या आश्चर्यजनक कार्य नहीं कर सकता ?

शाहजादे ने अफजल खाँ को दरबार भेजा कि वह जहाँ-गीर को अच्छी तरह समझावे कि यह सब नीति ठीक नहीं है और ऐसे भारी कार्य को इतना साधारण समझ लेना साम्राज्य को हानि पहुँचाना है। सब कार्य स्त्रियों को सौंप देना उचित नहीं है, स्वयं अपने दूरदर्शी मस्तिष्क को काम लाना चाहिए। यह अत्यंत दुःख की बात होगी कि यदि इस सच्चे अनुगामी की भक्ति में कुछ कमी हो जाय। यदि बेगम के कहने पर

आज्ञा दे देंगे कि उसकी जागीर ले ली जाय तो वह शत्रुओं में किस प्रकार रह सकता है ? इसके साथ ही उसने प्रार्थना की कि मालवा और गुजरात की जागीरें भी उससे ले ली जायँ और उसे मक्का का फाटक सूरत का बंदर मिल जाय, जिसमें वह वहाँ जाकर फकीर हो जाय ।

शाहजादे की इच्छा थी कि उपद्रव की धूल शांति तथा नम्रता के छिड़काव से दब जाय और सम्मान तथा प्रतिष्ठा का पर्दा न उठ जाय पर इसके शत्रुओं तथा षड्यंत्रकारियों ने झगड़ों का सामान इस प्रकार नहीं तैयार किया था कि वह अफजल खाँ से ठीक किया जा सके। यद्यपि जहाँगीर पर कुछ असर हुआ और उसने बेगम से कुछ प्रस्ताव किये पर उसने और भी हठ किया। उसका वैमनस्य बढ़ गया और अफजल बिना कुछ कर सके विदा कर दिया गया। जब शाहजादे ने समझ लिया कि वह जो कुछ अधीनता दिखलावेगा वह निर्बलता समझी जायगी और उससे शत्रुओं को आगे बढ़ने का अवसर मिलेगा, इसलिए उसने शाही सेना के इकट्ठे होने के पहिले हट जाना उचित समझा क्योंकि स्यात् इसके बाद परदा हट सके। इसका वृत्त अन्यत्र विस्तार-पूर्वक दिया गया है इसलिए उसे न दुहरा कर अफजल की जीवनी ही दी जाती है ।

जब शाहजादा पिता के यहाँ न जाकर लौटा और मांडू होता बुर्हानपुर में जाकर दृढ़ता से जम गया तब अफजल खाँ बीजापुर कुछ कार्य निपटाने भेजा गया। शाही सेना के आने के कारण शाहजादे ने बुर्हानपुर में रहना ठीक नहीं समझा तब तेलिंगाना होते हुए बंगाल जाने का निश्चय किया। इसके बहुत से नौकर

इस समय स्वामिद्रोही हो गए और अफजल खाँ का पुत्र मुहम्मद अपने परिवार के साथ अलग होकर भाग गया। शाहजादे ने सैयद जाफर बारहः प्रसिद्ध नाम शुजाअत खाँ को खानकुली उजबेग के साथ, जो कुलीज खाँ शाहजहानी का बड़ा भाई था, उसको लौटा लाने को उसके पीछे भेजा। आज्ञा थी कि यदि न आवे तो उसका सिर लावे। वह भी वीरता से उठकर तीर चलाने लगा। इन सब ने बहुत समझाया पर कुछ फल न निकला। खानकुली को तै कर सैयद जाफर को घायल किया। स्वयं वीरता से लड़कर मारा गया। शाहजादा बराबर पिता को प्रसन्न कर भूतकाल के कार्य्यों का प्रायश्चित्त करना चाहता था, इसलिए बंगाल से लौटने पर जहाँगीर के २०वें वर्ष सन् १०३५ हि० (सन् १६२६ ई०) में अफजल खाँ को योग्य भेंट के साथ दरबार भेजा पर जहाँगीर ने निर्ममता से उसे रोक रखा और उसे खानसामाँ नियत कर सम्मानित किया। २२ वें वर्ष में जहाँगीर के काश्मीर जाते समय यह लाहौर में रह गया क्योंकि यात्रा की कठिनाइयों के साथ गृह-कार्य भी अधिक था। लौटते समय जहाँगीर की मृत्यु हो गई। शहरयार ने लाहौर में अपने को सम्राट् घोषित कराया और अफजल को अपना वकील तथा कुल कार्यों का केंद्र बना दिया। यह हृदय से शाहजहाँ का शुभचिंतक था, इसलिए जब शहरयार ने सेना एकत्र कर उसे सुलतान बायसंगर के आधीन आसफ खाँ का सामना करने भेजा और स्वयं भी सवार होकर उसके पीछे चला तब अफजल ने राय दी कि उसका जाना उचित नहीं है और सेना से समाचार आने तक उसे ठहरना चाहिए। अपने तर्क से इसने उसे तब तक

रोक रखा जब तक वह सेना बिना हाथ पाँव के, जो मुफ्त का धन पाकर इकट्ठी हो गई थी और बिना नायक के थी, बिना युद्ध के छिन्न-भिन्न हो गई और शहरयार निराश्रय हो दुर्ग में जा बैठा। जब सन् १०३७ हि० (१६२६ ई०) में शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तब अफजल ने लाहौर से १म वर्ष में २६ जमादिउल् आखिर (२२ फरवरी सन् १६२८ ई०) को दरबार आकर सेवा की तथा अपनी बुद्धिमानी आदि के कारण पहिले की तरह वह मीर सामान बनाया गया और पाँच सदी ५०० सवार की तरक्की मिली, जिससे उसका मंसब चार हजारी २००० सवार का हो गया। दूसरे वर्ष में यह इरादत खाँ सावजी के स्थान पर दीवान-कुल नियत हुआ और एक हजारी १००० सवार की तरक्की हुई। 'शुद फलातूं वजीरे इसकंदर' (सिकंदर का वजीर अफलातून हुआ) से तारीख निकलती है। ६ठे वर्ष में इसने प्रार्थना की कि शाहजहाँ उसके घर पर पधारकर उसे सम्मानित करे, जिसका नाम "मंजिले अफजल" (अफजल का मकान या प्रतिष्ठित मकान) हुआ और जिससे तारीख भी निकलती है (सन् १०३८ हि०)। सवार होने के स्थान से उसके गृह तक, जो २५ जरीब था, भिन्न-भिन्न प्रकार की शतरंजियाँ बिछी हुई थीं। ११वें वर्ष में सात हजारी मंसब मिलने से इसकी प्रतिष्ठा का सिर शनीश्चर तक ऊँचा हो गया। १२वें वर्ष में यह सत्तरवीं साल में पहुँचा और बीमारी का जोर होने से संसार से बिदा होने के लक्षण उसके मुख पर झलकने लगे। शाहजहाँ उसे देखने गया और उसका हाल चाल पूछने की कृपा की। १२ रमजान सन् १०४८ हि०

(७ जनवरी सन् १६३९ ई०) को यह लाहौर में मर गया, जिसकी तारीख 'जेखूबी बुर्द गोए नेकनामी' (सुख्याति के गेंद को सुंदरता से ले गया) से निकलती है।

इस अच्छे आदमी का चरित्र निष्कलंक था। शाहजहाँ प्राय: कहता कि २८ वर्ष की सेवा में उसने अफजल खाँ के मुख से एक भी शब्द किसी के विरुद्ध नहीं सुना। वाक्शक्ति प्रशंसनीय थी और ज्योतिष, गणित तथा बहीखाते में योग्य था। कहते हैं कि इस सब विद्वत्ता और योग्यता के होते उसने कभी कुछ कागज पर नहीं लिखा और वह अंकों को नहीं जानता था। यह उसकी उच्चता तथा आलस्य के कारण था। वास्तव में उसने सब कार्य अपने पेशकार दियानतराय नागर गुजराती पर छोड़ दिया था। वही सब निरीक्षण करता था। किसी मसखरे कवि ने मर्सिए में, जो उसकी मृत्यु पर लिखी गई थी, कहा है कि जब कब्र में किसी हूर ने कुछ प्रश्न किया तब खाँ ने उत्तर दिया कि 'दियानत राय से पूछो, वही उत्तर देगा।' इसका मकबरा जमुना के उस पार आगरे में है। उसे कोई पुत्र नहीं थे। इसने अपने भतीजे इनायतुल्ला खाँ को, जिसकी पदवी आकिल खाँ थी, पुत्र के समान पाला था।

६. अबुल् खैरखाँ बहादुर इमामजंग

यह फारूकी शेखों के वंश में था और इसके पूर्वज शेख फरीदुद्दीन शकरगंज थे। इसके पूर्वजों का निवासस्थान अवध के अंतर्गत खैराबाद सरकार में मीरपुर था। यह कुछ दिन शिकोहाबाद (मैनपुरी जिले में) रहा था, इसलिए यह शिकोहाबादी कहलाया। इसका पिता शेख बहाउद्दीन औरंगजेब के समय में दो हजारी मंसबदार था और शिकोहाबाद का सदर और बाजारों का निरीक्षक था। अबुल्खैर को पहिले तीन सदी मंसब मिला और मालवा के शादियाबाद माँडू नगर में महमत खाँ का सहकारी रहा। जिस वर्ष निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह मालवा से दक्षिण को गया, इसने उसका साथ दिया। यह अनुभवी सैनिक था और ऐसे कार्यों में अच्छी राय देता था, इसलिए इसकी सम्मति ली और मानी जाती थी। इसे ढाई हजारी मंसब, खाँ का खिताब, योग्य जागीर तथा पूना जिले के नबीनगर अर्थात् जुन्नुरस्थान की फौजदारी मिली। सन् ११३६ हि० (सन् १७२४ ई०) में जब अद्वितीय अमीर आसफ़जाह राजधानी से दक्षिण आया तब वह धार के दुर्गाध्यक्ष और मालवा प्रांत में माँडू के फौजदार ख्वाजम कुली खाँ को अपने साथ लेता आया और खाँ को वहाँ उस पद पर छोड़ आया। बाद को जब कुतुबुद्दीन अली खाँ पनकोड़ी दरबार से उक्त पदों पर नियत हुआ तब खाँ आसफजाह के पास चला आया और खानदेश के प्रांताध्यक्ष इफ़्ज़ोजुद्दीन खाँ के साथ नियुक्त हुआ। इसने मराठों के विरुद्ध अच्छा कार्य किया और क्रमशः चार हजारी २००० सवार का मंसब, बहादुर की पदवी

तथा डंका निशान पाकर विश्वासपात्र हुआ। यह थोड़े थोड़े समय तक गुलशनाबाद का फौजदार, खानदेश का नायब तथा बगलाना सरकार का फौजदार रहा। नासिर जंग के समय यह शमशेर बहादुर की पदवी पाकर औरंगाबाद का नायब हुआ। मुजफ्फर जंग के समय यह खानदेश का प्रांताध्यक्ष हुआ। सलाबत जंग के समय इसे पाँच हजारी ४००० सवार का मंसब, झालरदार पालकी और इमाम जंग की पदवी मिली। राजा रघुनाथ दास की दीवानी के समय मराठों से जो युद्ध हुआ, उसमें यह हरावल का अध्यक्ष था। युद्ध में शहीद बनने की इच्छा से मृत्यु खोजता था पर भाग्य से युद्ध के बाद साधारण रोग से सन् ११६६ हि० (१७५३ ई०) में मर गया। यह वीर तथा बोलने में निडर था। यह शिक्षित भी था। जिस वर्ष एक मराठा सर्दार बाबू नायक ने हैदराबाद कर्णाटक में चौथ इकट्ठा करने को भारी सेना एकत्र की उस समय यह ससैन्य उक्त कर्णाटक के ताल्लुकेदार अनवरुद्दीन खाँ, कड़प्पा के फौजदार अब्दुन्नबी खाँ और कर्नोल के फौजदार बहादुर खाँ के साथ उसका सामना करने पर नियत हुआ। इसका शत्रु पर आक्रमण करना, सामान लूटना तथा उसे परास्त करना, जिससे उस सर्दार ने फिर गड़बड़ नहीं मचाया, सब पर विदित है। इसे दो पुत्र थे। बड़ा अबुल् बर्कात खाँ इमाम जंग साहसी था पर युवावस्था ही में मर गया। दूसरा शम्सुद्दौला अबुल् खैर खाँ बहादुर तेग-जंग था, जो लिखते समय निजामुद्दौला आसफ़जाह का कृपापात्र है और जिसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब, डंका निशान और बीदर प्रांत का पश्चिमीय महाल जागीर में मिला है। इसमें अच्छे गुण हैं तथा इसका अच्छा नाम है।

१०. अबुलफज्ल, अल्लामी फहामी शेख

यह शेख मुबारक नागौरी का द्वितीय पुत्र था। इसका जन्म सन् ९५८ हि० (६ मुहर्रम, १४ जनवरी सन् १५५१ ई०) में हुआ था। यह अपनी बुद्धि-तीव्रता, योग्यता, प्रतिभा तथा वाक्चातुरी से शीघ्र अपने समय का अद्वितीय एवं असामान्य पुरुष हो गया। १५ वें वर्ष तक इसने दार्शनिक शास्त्र तथा हदीस में पूरा ज्ञान प्राप्त कर लिया। कहते हैं कि शिक्षा के आरम्भिक दिनों में जब वह २० वर्ष का भी नहीं हुआ था तब सिफाहानी या इस्फहानी की व्याख्या इसको मिली, जिसका आधे से अधिक अंश दीमक खा गये थे और इस कारण वह समझ में नहीं आ रहा था। इसने दीमक खाये हुये हिस्सों को अलग कर सादे कागज जोड़े और थोड़ा विचार कर के प्रत्येक पंक्ति का आरंभ तथा अंत समझ कर सादे भाग को अंदाज से भर डाला। बाद को जब दूसरी प्रति मिल गई और दोनों का मिलान किया गया, तो वे मिल गए। दो तीन स्थानों पर समानार्थी शब्द-योजना की विभिन्नता थी और तीन चार स्थानों पर के उद्धरण भिन्न थे पर उनमें भी भाव प्रायः मूल के ही थे। सबको यह देखकर अत्यंत आश्चर्य हुआ। इसका स्वभाव एकांतप्रिय था, इसलिये इसे एकांत अच्छा लगता था और इसने लोगों से मिलना जुलना कम कर दिया तथा स्वतत्र जीवन व्यतीत करना चाहा। इसने किसी व्यापार के द्वार को खोलने का प्रयत्न नहीं किया। मित्रों के कहने पर १९ वें

वर्ष में यह बादशाह अकबर के दरबार में उस समय उपस्थित हुआ जब वह पूर्वीय प्रांतों की ओर जा रहा था और अयातुल् कुरसी पर लिखी हुई अपनी टीका उसे भेंट की। जब अकबर फतेहपुर लौटा तब यह दूसरी बार उसके यहाँ गया और इसकी विद्वत्ता तथा योग्यता की ख्याति अकबर तक कई बार पहुँच चुकी थी इसीलिये इस पर असीम कृपायें हुईं। जब अकबर कट्टर मुल्लाओं से बिगड़ बैठा तब ये दोनों भाई, जो अपनी उच्च कोटि की विद्वत्ता तथा योग्यता के साथ धूर्तता तथा चापलूसी में भी कम नहीं थे, बार-बार शेख अब्दुन्नबी और मखदूमुल्मुल्क से, जो अपने ज्ञान तथा प्रचलित विद्याओं की जानकारी से साम्राज्य के स्तम्भ थे, तर्क करके उन्हें चुप कर देने में अकबर की सहायता करते रहते थे, जिससे दिन प्रतिदिन इनका प्रभुत्व और बादशाह से मित्रता बढ़ती गई। शेख तथा इसके बड़े भाई शेख फैजी का स्वभाव बादशाह की प्रकृति से मिलता था, इससे अबुल् फज़ल अमीर हो गया। ३२ वें वर्ष में यह एक हजारी मंसबदार हो गया। ३४ वें वर्ष में जब शेख की माँ की मृत्यु हुई तब अकबर ने शोक मनाने के लिए इसके गृह पर जाकर इसको समझाया कि यदि मनुष्य अमर होता और एक एक कर न मरता तो सहानुभूतिशील हृदयों के विरक्ति की आवश्यकता ही न रह जाती। इस सराय में कोई भी अधिक दिनों नहीं रहता, तब क्यों हम लोग असंतोष का दोष अपने ऊपर लें। ३७ वें वर्ष में इसका मंसब दो हजारी हो गया।

जब शेख का बादशाह पर इतना प्रभुत्व बढ़ गया कि शाह-जादे भी इससे ईर्ष्या करने लगे तब अफसरों का कहना ही क्या

और यह बराबर बादशाह के पास रत्न तथा कुंदन के समान रहने लगा तब कई असंतुष्ट सर्दारों ने अकबर को शेख को दक्षिण भेजने के लिये बाध्य किया। यह प्रसिद्ध है कि एक दिन सुलतान सलीम शेख के घर पर गया और चालीस लेखकों को कुरान तथा उसकी व्याख्या की प्रतिलिपि करते देखा। वह उन सब को पुस्तकों के साथ बादशाह के पास ले गया, जो सशंकित होकर विचारने लगा कि यह हमको तो और किस्म की बातें सिखलाता है और अपने यहाँ गृह के एकांत में दूसरा करता है। उस दिन से उनकी मित्रता की बातों तथा दोस्ती में फर्क पड़ गया।

४३ वें इलाही वर्ष में यह दक्षिण शाहजादा मुराद को लाने भेजा गया। इसे आज्ञा मिली थी कि यदि वहाँ के रक्षार्थ नियुक्त अफसर ठीक कार्य कर रहे हों तो वह शाहजादे के साथ लौट आवे और यदि ऐसा न हो तो वह शाहजादा को भेज दे और मिर्जा शाहरुख के साथ वहाँ का प्रबंध ठीक करे। जब वह बुर्हानपुर पहुँचा तब खानदेश के अध्यक्ष बहादुर खाँ ने, जिसके भाई से अबुल्फजल को बहन ब्याही हुई थी, चाहा कि इसे अपने घर लिवा जाकर इसकी खातिरी करें। शेख ने कहा कि यदि तुम मेरे साथ बादशाह के कार्य में योग देने चलो तो हम निमंत्रण स्वीकार कर लें। जब यह मार्ग बंद हो गया तब उसने कुछ वस्त्र तथा रुपये भेंट भेजे। शेख ने उत्तर दिया कि मैंने खुदा से शपथ ली है कि जब तक चार शर्तें पूरी न हों तब तक मैं कुछ उपहार स्वीकार नहीं करूँगा। पहली शर्त प्रेम है, दूसरी यह कि उपहार का मैं विशेष मूल्य नहीं समझूँगा; तीसरी यह

कि मैंने उसको माँगा न हो और चौथी यह कि उसकी मुझे आवश्यकता हो। इनमें पहिले तीन तो पूरे हो सके हैं पर चौथा कैसे पूरा होगा? क्योंकि शाहंशाह की कृपा ने इच्छा रहने ही नहीं दी है।

शाहजादा मुराद, जो अहमदनगर से असफल होकर लौटने के कारण मस्तिष्क विकार से ग्रसित हो रहा था और उसके पुत्र रुस्तम मिर्जा की मृत्यु से उसमें अधिक सहायता मिली, अन्य मदिरा पायियों के प्रोत्साहन से पान करने लगा और उसे लकवा की बीमारी हो गई। जब उसे अपने बुलाये जाने की आज्ञा का समाचार मिला, तो वह अहमदनगर चला गया, जिसमें इस चढ़ाई को दरबार न जाने का एक बहाना बना ले। यह पूर्ना नदी के किनारे दीहारी पहुँच कर सन् १००७ हि० (१५९९ ई०) में मर गया। उसी दिन शेख फुर्ती से कूच कर पड़ाव में पहुँचा। वहाँ अत्यंत गड़बड़ मचा हुआ था। छोटे बड़े सभी लौट जाना चाहते थे पर शेख ने यह सोच कर कि ऐसे समय जब शत्रु पास है और वे विदेश में हैं, लौटना अपनी हानि करना है। बहुतेरे क्रुद्ध होकर लौट गए पर इसने दृढ़ हृदय तथा सच्चे साहस के साथ सर्दारों को शांत कर सेना एकत्रित रखा और दक्षिण-विजय के लिये कूच कर दिया। थोड़े समय में भागे हुए भी आ मिले और उसने कुल प्रांत की अच्छी तरह रक्षा की। नासिक बहुत दूर था, इसलिये नहीं लिया जा सका, पर बहुत से स्थान, बटियाला, तलतुम, सितूँदा आदि साम्राज्य में मिला लिए गए। गोदावरी के तट पर पड़ाव डाल चारों ओर योग्य सेना भेजी। संदेश मिलने पर इसने चाँद

बीबी से यह ठीक प्रतिज्ञा तथा वचन ले लिया कि अभंग खाँ हब्शी के, जिससे उसका विरोध चल रहा था, दंड पा जाने पर वह अपने लिये जुनेर जागीर में लेकर अहमदनगर दे देगी। शेख शाहगढ़ से उस ओर को रवाना हुआ।

इसी समय अकबर उज्जैन आया और उसे ज्ञात हुआ कि आसीर के अध्यक्ष बहादुर खाँ ने शाहजादा दानियाल की कोर्निश नहीं किया है तथा शाहजादा उसे दंड देना चाहता है। बादशाह बुर्हानपुर तक आना चाहते थे इसलिए शाहजादे को लिखा कि वह अहमदनगर लेने में प्रयत्न करे। इस पर पत्र पर पत्र शाहजादे के यहाँ से शेख के पास आने लगे कि उसका उत्साह दूर दूर तक लोगों को मालूम है पर अकबर चाहता है कि शाहजादा अहमदनगर विजय करे, इसलिए अबुल्फजल उस चढ़ाई से हाथ खींचे। जब शाहजादा बुर्हानपुर से चला तब शेख आज्ञानुसार मीर मुर्तजा तथा ख्वाजा अबुल्हसन के साथ मिर्जा शाहरुख के अधीन कंप छोड़ कर दरबार चला गया। १४ रमजान सन् १००८ हि० (१९ मार्च सन् १६०० ई०) को ४५ वें वर्ष के आरंभ में बीजापुर राज्य में करगाँव में बादशाह से भेंट की। अकबर के होंठ पर इस आशय का शेर था—

सुन्दर रात्रि तथा सुशोभित चंद्र हो, जिसमें
तुम्हारे साथ हर विषय पर मैं वार्तालाप करूँ।

मिर्जा अजीज कोका, आसफ खाँ जाफर और शेख फरीद बख्शी के साथ शेख दुर्ग आसीर घेरने पर नियत हुए और खानदेश प्रांत का शासन उसे मिला। उसने अपने पुत्र तथा भाई के अधीन अपने आदमियों को भेजकर २२ थाने स्थापित

किए और विद्रोहियों को दमन करने में प्रयत्न किया। उसी समय इसने चार हजारी मंसब का झंडा फहराया।

एक दिन शेख तोपखाना का निरीक्षण करने गए। घिरे हुओं में से एक आदमी ने, जो तोपखाने के मनुष्यों से आ मिला था, मालीगढ़ के दीवाल तक पहुँचने का एक मार्ग बतला दिया। आसीर के पर्वत के मध्य में उत्तर की ओर दो प्रसिद्ध दुर्ग माली और अंतरमाली हैं, जिनमें से होकर ही लोग उक्त दृढ़ दुर्ग में जा सकते थे। इसके सिवा वायव्य, उत्तर तथा ईशान में एक और दुर्ग जूना माली है। इसके दीवाल पूरे नहीं हुए थे। पूर्व से नैऋत्य तक कई छोटी पहाड़ियाँ हैं और दक्षिण में ऊँची पहाड़ी कोर्था है। दक्षिण-पश्चिम में सापन नामक ऊँची पहाड़ी है। यह अंतिम शाही सेना के हाथ में आ गया था, इससे शेख ने तोपखाने के अफसरों से यह निश्चित किया कि जब वे डंके तुरही आदि का शब्द सुनें तब सभी सीढ़ी लेकर बाहर निकल आवें और बड़ा डंका पीटें। वह स्वयं एक अंधकार-पूर्ण तथा बादल-मय रात्रि में अपने सैनिकों के साथ सापन पर चढ़ आया और वहाँ से आदमियों को पता देकर आगे भेजा। उन सब ने माली का फाटक तोड़ डाला और भीतर घुसकर डंका पीटने और तुरही बजाने लगे। दुर्गवाले लड़ने लगे पर शेख भी सुबह होते होते आ पहुँचा तब दुर्गवाले आसीर गढ़ में चले गए। जब दिन हुआ तब घेरने वाले कोर्था, जूनामाली आदि सब ओर से आ पहुँचे और भारी विजय हुई। बहादुर खाँ शरणागत हुआ और खानेआजम कोका के मध्यस्थ होने पर कोर्निश करने की उसे आज्ञा मिली। जब शाहजादा दानियाल आसीर-विजय की खुशी में दरबार आया तब

राजूमना के कारण वहाँ गड़बड़ मचा और निजामशाह के चाचा के लड़के शाह अली को गद्दी पर बिठाने का प्रयत्न हुआ। खानखानाँ अहमदनगर आया और शेख को नासिक विजय करने की आज्ञा मिली। पर शाह अली के पुत्र को लेकर बहुत से आदमी अशांति मचाये हुए थे इसलिए आज्ञानुसार शेख वहाँ से लौटकर खानखानाँ के साथ अहमदनगर गया।

जब ४६ वें वर्ष में अकबर बुर्हानपुर से हिंदुस्तान लौटा तब शाहजादा दानियाल वहीं रह गया। जब खानखानाँ ने अहमदनगर को अपना निवास-स्थान बनाया तब सेनापतित्व और युद्ध-संचालन का भार शेख पर आ पड़ा। युद्धों के होने के बाद शेख ने शाह अली के लड़के से संधि कर ली और तब राजूमना को दंड देने की तैयारी की। जालनापुर तथा आस-पास के प्रांत पर, जिसमें शत्रु थे, अधिकार कर वह दौलताबाद घाटी तथा रौजा की ओर चला। कटक चतवारा से कूच कर राजूमना से युद्ध किया और विजयी रहा। राजू ने दौलताबाद में कुछ दिन शरण ली और फिर उपद्रव करता पहुँचा। थोड़ी ही लड़ाई पर वह पुनः भागा और पकड़ा जा चुका था कि वह दुर्ग की खाई में कूद पड़ा। उसका सब सामान लुट गया।

४७ वें वर्ष में जब अकबर शाहजादा सलीम से कुछ घटनाओं के कारण खफा हो गया तब उसने, क्योंकि उसके नौकर शाहजादा का पक्ष ले रहे थे और सत्यता तथा विश्वास में कोई भी अबुल्फजल के बराबर नहीं था, शेख को अपना कुल सामान वहीं छोड़ कर बिना सेना लिये फुर्ती से लौट आने के लिये लिखा। अबुल्फजल अपने पुत्र अब्दुर्रहमान के अधीन अपनी सेना

तथा सहायक अफसरों को दक्षिण में छोड़ कर फुर्ती से रवाना हो गया। जहाँगीर ने इसकी अपने स्वामी के प्रति भक्ति तथा श्रद्धा के कारण इस पर शंका की तथा इसके आने को अपने कार्य में बाधक समझा और इसके इस प्रकार अकेले आने में अपना लाभ माना। अगुणग्राहकता से शेख को मार्ग से हटा देने को उसने अपने साम्राज्य की प्रथम सीढ़ी मान लिया और वीरसिंह देव बुंदेला को बहुत सा वादा कर, जिसके राज्य में से होकर शेख आने वाला था, इसे मार डालने पर तैयार किया। वह घात में लग गया। जब यह समाचार शेख को उज्जैन में मिला तब लोगों ने राय दी कि उसे मालवा से घाटी चाँदा के मार्ग से जाना चाहिये। शेख ने कहा कि "डाँकुओं की क्या मजाल है कि मेरा रास्ता रोकें"। ४ रबीउल् अव्वल सन् १०११ हि० (१२ अगस्त १६०२ ई०) को शुक्रवार के दिन बड़ा की सराय से आध कोस पर, जो नरवर से ६ कोस पर है, वीरसिंह देव ने भारी घुड़सवार तथा पैदल सेना के साथ धावा किया। शेख के शुभचिंतकों ने शेख को युद्ध स्थल से हटा ले जाने का प्रयत्न किया और इसके एक पुराने सेवक गदाई अफ़गान ने कहा भी कि आंतरी बस्ती में पास ही रायरायान तथा राजा सूरजसिंह तीन हजार घुड़सवारों सहित मौजूद हैं, जिन्हें लेकर उसे शत्रु का दमन करना चाहिये पर शेख ने भागने की अप्रतिष्ठा नहीं उठानी चाही और जीवन के सिक्के को वीरता से खेल डाला।

जहाँगीर स्वयं लिखता है कि शेख अबुल्फजल ने उसके पिता को समझा दिया था कि 'हजरत पैगंबर में वाक्-शक्ति पूर्ण थी और उन्हीं ने कुरान लिखा है। इस कारण शेख के

दक्षिण से लौटते समय उसने वीरसिंह देव को उसे मार डालने को कह दिया और इसके बाद उसके पिता के विचार बदले।'

चगत्ताई वंश में नियम था कि शाहजादों की मृत्यु का समाचार बादशाहों को खुले रूप से नहीं दिया जाता था। उनके वकील नीला रूमाल हाथ में बाँध कर कोर्निश करते थे, जिससे बादशाह उक्त समाचार से अवगत हो जाते थे। शेख की मृत्यु का समाचार बादशाह को कहने का जब किसी को साहस नहीं हुआ तब यही नियम बरता गया। अकबर को अपने पुत्रों की मृत्यु से अधिक शोक हुआ और कुल वृत्त सुनकर कहा कि 'यदि शाहजादा बादशाहत चाहता था तो उसे मुझे मारना और शेख की रक्षा करना चाहता था। उसने यह शैर एकाएक पढ़ा—

जब शेख हमारी ओर बड़े आग्रह से आया,

तब हमारे पैर चूमने की इच्छा से बिना सिर पैर के आया।

खाने आज़म ने शेख की मृत्यु की तारीख इस मुअम्मा में कहा—'खुदा के पैगंबर ने बाग़ी का सिर काट डाला' (१०११ हि० १६०२ ई०)।

कहते हैं कि स्वप्न में शेख ने उससे कहा कि "मेरी मृत्यु की तारीख 'बंदः अबुल्फ़जल' है, क्योंकि खुदा की दुनिया में भटके हुओं पर विशेष कृपा होती है। किसी को निराश नहीं होना चाहिए।"

शाह अबुल् मआली क़ादिरी के विषय में, जो लाहौर के शेखों का एक मुखिया था, कहा जाता है कि उसने कहा था कि "मैंने अबुल्फ़जल के कार्यों का विरोध किया था। एक रात्रि

मैंने स्वप्न में देखा कि अबुल्फजल पैगंबर के जलसे में लाया गया। उसने अपनी कृपा दृष्टि उस पर डाली और अपने जलसे में स्थान दिया। उसने कृपा कर कहा कि इस आदमी ने अपने जीवन के कुछ भाग कुकार्य में व्यतीत किए पर इसकी वह दुआ, जिसका आरंभ यों है कि 'ऐ खुदा, अच्छे लोगों को उनकी अच्छाई का पुरस्कार दे और बुरों पर अपनी उच्चता से दया कर' उसकी मुक्ति का कारण हो गई।"

छोटे बड़े सभी के मुख पर यह बात थी कि शेख काफ़िर था। कोई उसे हिंदू कह कर उसकी निंदा करता था तो कोई अग्नि-पूजक बतलाता था तथा मतांध की पदवी देता था। कुछ लोगों ने अपनी घृणा यहाँ तक दिखलाई है कि उसे नापाक तथा अनीश्वर वादी तक कहा है। पर दूसरे जिनमें न्याय बुद्धि अधिक है और जो सूफी मत के अनुयायियों के समान बुरे नाम वालों को अच्छे नाम देते हैं, इसे उनमें गिनते हैं, जो सबसे शांति रखते हैं, अत्यंत उदार हृदय हैं, सब धर्मों को मानते हैं, नियम को ढीला करते हैं तथा स्वतंत्र प्रकृति के हैं। आलमआरा अब्बासी का लेखक लिखता है कि शेख अबुल्फज्ल नुक्तवी था, जैसा कि एक अक्षर के रूप में लिखे हुए एक मन्शूर से मालूम होता है, जिसे अबुल्फजल ने मीर सैयद अहमद काशी के पास भेजा था, जो उस मत का एक मुखिया तथा उस नुक्ता मत की पुस्तकों का एक लेखक था। यह सन् १००२ हि० (सन् १५९४ ई०) में, जब काफिरों को फारस में मार रहे थे, काशान में शाह अब्बास के निजी हाथों से मारा गया था। नुक्तामत कुफ्र, अपवित्रता, वंचकता और घोर ईसाईपन है और नुक्तवी लोग दार्शनिकों के समान

विश्व को अनादि मानते हैं। वे प्रलय तथा अंतिम दिन और अच्छे बुरे कर्मों के बदले को नहीं मानते। वे स्वर्ग और नरक को यही सांसारिक सुख और दुख मानते हैं। खुदा हमें बचावे।

यह सब होते शेख योग्य पुरुष था और इसमें मेधाशक्ति तथा विवेचना की शक्ति बहुत थी। सांसारिक कार्यों तथा प्रचलित प्रश्नों को, चाहे वे कैसे भी नाजुक हों, समझने की इसमें ऐसी शक्ति थी कि कुछ भी इसकी दृष्टि से नहीं छूटता था। तब किस प्रकार यह विद्वानों से एक राय नहीं हो सका और इसने कैसे ठीक रास्ता छोड़ा ? सांसारिक कार्यों में मनुष्य, जो अनित्य है, अपनी बुराई आप नहीं करता और अपने को हानि नहीं पहुँचाता। उस अंतिम संसार के कार्यों में, जो नित्य और अमिट हैं, क्यों जान बूझ कर अपना नाश चाहेगा ? 'वे, जिन्हें खुदा भटकने देता है, बिना मार्ग-प्रदर्शक के हैं।'

जाँच करने पर यही ज्ञात होता है कि अकबर समझ आने के समय ही से भारत के चाल व्यवहार आदि को बहुत पसंद करता था। इसके बाद वह अपने पिता के उपदेशों पर, जिसने फारस के शाह तहमास्प की सम्मति मान ली थी, चला। (निर्वासन के समय) हुमायूँ के साथ बातचीत करते हुए भारत तथा राज्य छिन जाने के विषय में चर्चा चलाकर उसने कहा कि 'ऐसा ज्ञात होता है कि भारत में दो दल हैं, जो युद्ध-कला तथा सैनिक-संचालन में प्रसिद्ध हैं, अफगान तथा राजपूत। इस समय पारस्परिक अविश्वास के कारण अफगान आपके पक्ष में नहीं आ सकते, इसलिए उन्हें सेवक न रखकर व्यापारी बनाओ और राजपूतों को मिला रखो।' अकबर ने इस दल को मिला रखना

एक भारी राजनैतिक चाल माना और इसके लिए पूरा प्रयत्न किया। यहाँ तक कि उसने उनकी चाल अपनाई, गाय मारना बंद कर दिया, डाढ़ी बनवाता, मोती के बाले पहिरता, दशहरा तथा दिवाली त्योहार मनाता आदि। शेख का बादशाह पर प्रभाव था पर स्यात् प्रसिद्धि के विचार से उसने इसमें हस्तक्षेप नहीं किया। इस सबका उसी पर उलटा असर पड़ा।

जखीरतुल् खवानीन में लिखा है कि शेख रात्रि में दर्वेशों के यहाँ जाता, उनमें अशर्फियाँ बाँटता और अपने धर्म के लिए उनसे दुआ माँगता। इसकी प्रार्थना यही होती कि 'शोक, क्या करना चाहिए ?' तब अपने हाथ घुटनों पर रखकर गहरी साँस खींचता। इसने अपने नौकरों को कभी कुवचन नहीं कहा, अनुपस्थिति के लिए दंड नहीं लगाया और न उनकी मजदूरी आदि जब्त किया। जिसे एक बार नौकर रख लिया, उसे यथा संभव ठीक काम न करने पर भी कभी नहीं छुड़ाया। यह कहता कि लोग कहेंगे कि इसमें बुद्धि की कमी है जो बिना समझे कि कौन कैसा है, रख लेता है। जिस दिन सूर्य मेष राशि में जाता है उस दिन यह सब घराऊ सामान सामने मँगवाकर उसकी सूची बनवा लेता और अपने पास रखता। यह अपने बही खातों को जलवा देता और कुल कपड़ों को नौरोज को नौकरों में बाँट देता, केवल पैजामों को सामने जलवा देता। इसका भोजन आश्चर्यजनक था। कहते हैं कि ईंधन पानी छोड़कर इसका नित्य भोजन २२ सेर था। इसका पुत्र अब्दुर्रहमान इसे भोजन कराता और पास रहता। बावर्चीखाना का निरीक्षक मुसलमान था, जो खड़ा होकर देखता रहता। जिस तश्तरी में शेख दो बार

हाथ डालता वह दूसरे दिन फिर तैयार किया जाता। यदि कुछ स्वाद-रहित होता तो वह उसे अपने पुत्र को खाने को देता और तब वह जाकर बावर्चियों को कहता था। शेख स्वयं कुछ नहीं कहते थे।

कहते हैं कि दक्षिण की चढ़ाई के समय इसके साथ के प्रबंध और कारखाने ऐसे थे जो विचार से परे थे। चेहल रावटी में शेख के लिए मसनद बिछता और प्रतिदिन एक सहस्र थालियों में भोजन आता तथा अफसरों में बँटता। बाहर एक नोगजी लगी रहती, जिसमें दिन रात सबको पकी पकाई खिचड़ी बँटती रहती थी।

कहा जाता है कि जब शेख वकील-मुतलक था तब एक दिन खानखानाँ सिंध के शासक मिर्जा जानीबेग के साथ इससे मिलने आया। शेख बिस्तर पर लंबा सोया हुआ अकबरनामा देख रहा था। इसने कुछ भी ध्यान नहीं दिया और उसी प्रकार पड़े हुए कहा कि 'मिर्जे आओ और बैठो'। मिर्जा जानीबेग में सल्तनत की बू थी इसलिए वह क्रुद्ध कर लौट गया। दूसरी बार खानखानाँ के बहुत कहने से मिर्जा शेख के गृह पर गए। शेख फाटक तक स्वागत को आया और बहुत सुव्यवहार करके कहा कि 'हम लोग आपके साथी नागरिक हैं और आपके सेवक हैं।' मिर्जा ने आश्चर्य में पड़कर खानखानाँ से पूछा कि 'उस दिन के अहंकार और आज की नम्रता का क्या अर्थ है।' खानखानाँ ने उत्तर दिया कि 'उस दिन प्रधान अमात्य के पद का विचार था, छाया को वास्तविकता के समान माना। आज भ्रातृत्व का बर्ताव है।'

अस्तु, इन सब बातों को छोड़िए। शेख की साहित्यिक शैली अत्यंत मनोरंजक थी। मुंशियाना आडंबर और लेखनकला के चालों से इसकी शैली स्वतंत्र थी। शब्दों का ओज, वाक्यविन्यास की गूढ़ता, एक एक शब्द की योजना, सुंदर संधियाँ और यमक का आश्चर्यजनक योग सभी ऐसे थे कि दूसरे को उनका नकल करना कठिन था। फारसी शब्दों का यह विशिष्ट प्रयोग करता था, जिससे कहा जाता है कि इसने निजामी की मसनवी का गद्य कर डाला है। इस कला की इसकी अद्भुत योग्यता के कारण यह अपने सम्राट् के विषय में बहुत सी बातें लिख सका है और भूमिकाएँ लिखा है जो अचरज पैदा करती हैं और जिन्हें बहुत मनन कर समझ सकते हैं।

---

११. अबुल् फतह

यह मौलाना अब्दुर्रज्जाक गीलानी का पुत्र था तथा इसका पूरा नाम हकीम मसीहुद्दीन अबुल् फतह था। मौलाना ध्यान तथा भक्ति का पूरा ज्ञाता था। बहुत दिनों तक उस देश की सदारत उसके हाथ में थी। जब सन् ९७४ हि० (सन् १५६६–७ ई०) में शाह तहमास्प सफवी ने गीलान पर अधिकार कर लिया और वहाँ का शासक खान अहमद अपनी कार्य-अनभिज्ञता के कारण कैद हो गया तब मौलाना ने अपनी सत्यता तथा धर्मांधता के कारण कैद तथा दंड में अपना प्राण खोया। हकीम अपने भाइयों हकीम हुमाम और हकीम नूरुद्दीन के साथ, जो निदान करने की शीघ्रता, प्रचलित विज्ञानों की योग्यता तथा बाहरी पूर्णता के लिए प्रसिद्ध थे, अपने देश को छोड़कर भारत आया। २० वें वर्ष में अकबर की सेवा में भर्ती हुए और तीनों भाइयों की योग्य उन्नति हुई।

अबुल्फतह की योग्यता दूसरे प्रकार की थी और उसे सांसारिक अनुभव तथा ज्ञान अधिक था, इसलिए दरबार में अच्छी तरक्की की और २४वें वर्ष में बंगाल का सदर और अमीन नियत हुआ। इसके बाद जब बंगाल तथा बिहार के विद्रोही मिल गए और प्रांताध्यक्ष मुजफ्फर खाँ को मार डाला तब हकीम तथा अन्य राजभक्त अफसर कैद हो गए। एक दिन अवसर पाकर यह दुर्ग पर से कूद पड़ा और कुशल-पूर्वक कठिनाई के साथ पैर में

कुछ चोट खाकर नीचे पहुँच गया। इसके अनंतर यह अकबर के दरबार में उपस्थित हुआ।

जब इसने देहली चूमा तब यह प्रभाव और मित्रता में अपने बराबरवालों से बहुत बढ़ गया। यद्यपि इसका मंसब हजारी से अधिक नहीं था पर यह वजीर या वकील से बढ़कर था। जब ३०वें वर्ष में जैन खाँ कोका की सहायता के लिए राजा बीरबर जा रहे थे, जो यूसुफजई खेल को दमन करने के लिए नियत हुआ था, तब हकीम भी उसके स्वतंत्र सहायक होकर भेजे गए थे। इन सबने एक दूसरे का ख्याल नहीं किया और मिलकर कार्य नहीं किया। इस अहंता तथा घोखे का यही फल हुआ कि राजा मारा गया और हकीम तथा कोकल-ताश बड़ी कठिनाई से जान बचाकर भागे और दरबार में उपस्थित हुए। कुछ दिनों तक वे दंडित रहे। ३४वें वर्ष सन् ९९७ हि० (१५८९ ई०) में जब अकबर काश्मीर से काबुल जा रहा था तब हकीम की दमतूर के पास मृत्यु हो गई। आज्ञानुसार ख्वाजा शम्सुद्दीन ख्वाफी उसका शरीर हसन-अब्दाल ले गया और उसको अपने लिए बनवाए एक गुंबद के नीचे दफना दिया। इसके कुछ ही दिन पहिले बड़ा विद्वान् अमीर अजदुद्दौला शीराजी मर गया था, जिसकी तारीख हरफी सावजी ने इस तरह निकाला था। शैर का अर्थ—

इस वर्ष दो विद्वान् संसार से गये।
एक आगे गया दूसरा बाद को॥
जब तक दोनों मिल नहीं गये।
तब तक तारीख 'दोनों साथ गए' नहीं निकला॥

अकबर इस पर बहुत कृपा रखता था, इसकी बीमारी में इसे देखने गया और इसकी मृत्यु पर हसन अब्दाल में फातिहा पढ़कर अपना शोक प्रकट किया। हकीम तीव्र, बुद्धिमान और उत्साही पुरुष था। फैजी उसके विषय में अपने मर्सिए में कहता है—

उसके लेख भाग्य के रहस्य की व्याख्या थी।
उसके कार्य भाग्य के लेख की व्याख्या थी॥

आदमियों के स्वभाव समझने और उसके अनुकूल काम करने में यह कभी कम प्रयत्न नहीं करता था। यह जो कुछ कहता उसमें बुद्धिमता का भारीपन रहता था। यह उदारता और शील तथा अपने गुणों के लिए संसार में एक था। अपने समय के कवियों के प्रशंसा का पात्र हो गया था। विशेष कर मुल्ला उर्फी शीराजी ने इसकी प्रशंसा में कई अच्छे कसीदे लिखे। उनमें से एक यह कितः है (पर इसका अनुवाद नहीं दिया गया है)।

इसका (सबसे छोटा) भाई हकीम नूरुद्दीन का उपनाम करारी था और यह अच्छा वक्ता तथा कवि था। उसका एक शैर है—

मैं मृत्यु को क्या समझता हूँ ? तेरी आँखों की एक तीर ने मुझे वेध दिया है और यद्यपि मैं एक शताब्दी और न मरूं पर वह मुझे पीड़ा देता रहे।

एक विशेष घबड़ाहट के कारण अकबर की आज्ञा से यह बंगाल भेजा गया, जहाँ बिना तरक्की पाए यह मर गया।

इसकी कुछ कहावतें इस प्रकार हैं। 'दूसरे को अपनी योग्यता दिखलाना अपना लोभ दिखलाना है।' 'उजड्ड सेवक

पर सर्वदा आँख रखना अपने को दुःशील बनाना है।' 'जिस पर विश्वास करो वही विश्वासपात्र है।' यह अबुल् फतह को इस दुनिया का और हकीम हुमाम को दूसरी दुनिया का आदमी समझता था तथा दोनों से दूर रहता था। इसका एक भाई हकीम लुत्फुल्ला भी बाद को फारस से चला आया और हकीम अबुल्फतह के कारण वह भी बादशाही सेवक हो गया और दो सदी मंसब पाया। यह शीघ्र मर गया। अबुल्फतह का लड़का फतहुल्ला योग्य तथा धनी आदमी था। जहाँगीर की उस पर कृपा नहीं थी, इसलिए दिआनत खाँ लंग ने उस पर राजद्रोह का दोष लगाया कि सुलतान खुसरो के विद्रोह के समय फतहुल्ला ने मुझसे कहा था कि उचित होगा कि पंजाब खुसरो को देकर झगड़ा खतम कर दिया जाय। फतहुल्ला ने ऐसा कहना अस्वीकार कर दिया, इस पर दोनों को शपथ खाना पड़ा। पंद्रह दिन नहीं बीते थे कि झूठी शपथ का फल मिल गया क्योंकि यह आसफखाँ के चचेरे भाई नूरुद्दीन से मिल गया, जिसने अवसर मिलते ही खुसरो को कैद से निकालने का वचन दिया था। दैवात् दूसरे वर्ष में जब जहाँगीर काबुल से लाहौर लौट रहा था तब यह षड्यंत्र उसे मालूम हुआ। जाँचने पर नूरुद्दीन आदि को प्राण दंड दिया गया और हकीम फतहुल्ला को दुम की ओर मुखकर गदहे पर बैठा बराबर मंजिल मंजिल साथ लिवा गया और अंत में वह अंधा किया गया।

---

१२. अबुल्फतह खाँ दखिनी तथा महदवी धर्म

यह मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी का वंशज था। विवाह द्वारा जमाल खाँ हब्शी से संबंध हो जाने के कारण यह दुनिया में ऊँचे पद को पहुँचा और साहस तथा उदारता के लिए प्रसिद्ध हुआ। कहते हैं कि जब मुर्तजा निज़ामशाह के राज्य-काल में सब्ज़वार के सुलतान हुसेन के पुत्र सुलतान हसन को, जो अहमदनगर में रहता था, मिर्जा खाँ की पदवी मिली और उस वंश का पेशवा हुआ तब यह दुष्टता तथा मूर्खता से दौलताबाद से मुर्तजा निजामशाह के लड़के मीरान हुसेन को अहमद नगर लाया और उसे सुलतान बनाया। इसने मुर्तजा निजाम शाह को कष्ट देकर मारडाला और पहिले से भी अधिक शक्तिमान हो उठा। कुछ समय बाद षड्चक्रियों ने मिर्जा खाँ और मीरान हुसेन में मनोमालिन्य करा दिया। हुसेन निजाम शाह अर्थात् मीरान हुसेन ने बेखबरी तथा अनुभवहीनता के कारण धमकी के शब्द कह डाले, जिससे मिर्जा खाँ ने 'किसी घटना के पहिले उसका उपाय कर देना चाहिए' के मसले के अनुसार हुसेन निज़ामशाह को दुर्ग में कैद कर दिया और बुर्हान शाह के पुत्र इस्माइल को गद्दी पर बिठाया, क्योंकि बुर्हानशाह अपने भाई मुर्तजा निजामशाह के पास से भागकर अकबर की सेवा में चला गया था।

राजगद्दी के दिन मिर्जा खाँ ने अन्य मुगल सर्दारों को

दुर्ग में बुलाया था और उत्सव मना रहा था। एकाएक जमाल खाँ ने, जो सदी मंसबदार था, अन्य दक्षिणी तथा हबशी सर्दारों के साथ अहमद नगर दुर्ग के फाटक पर हुल्लड़ मचाया। वे कहते थे कि कुछ दिनों से वे हुसेन निजामशाह को नहीं देख रहे हैं और उन्हें वे देखना चाहते हैं। मिर्जा खाँ उद्दंडता से उत्तर में युद्ध करने लगा पर जब इससे काम नहीं चला तब निरुपाय होकर उसने हुसेन निजाम का सिर भाले पर रखवा कर दुर्गपर खड़ा करा दिया और यह घोषित किया कि 'जिसके लिए तुम लोग शोर मचा रहे हो उसका सिर यह है और हमारे बादशाह इस्माइल निजाम शाह हैं।' यह देखकर कुछ तो लौटना चाहते थे पर जमालखाँ ने कहा कि अब वह उस आदमी से बदला लेगा और प्रबंध-डोर सुलतान के हाथ में देगा, नहीं तो हम लोगों का भाग्य तथा मान मिट्टी में मिल जायगा। उसके प्रयत्न से भारी विप्लव हो गया और दुर्ग के फाटक में आग लगा दी गई। मिर्जा खाँ निरुपाय होकर जुनेर भाग गया। बलवाई दुर्ग में घुस गए और विलायतियों को मारना शुरू किया। मुहम्मद तकी, नाजिरी मिर्जा, सादिक उर्दूबादी, अमीन अज़ी-जुद्दीन अस्त्राबादी, जिनमें प्रत्येक ने पद तथा पदवी प्राप्त किया था और गुणों के लिए अपने समय में सातों देश में अपना बराबर नहीं रखते थे, और बहुत से मुगल ऊँचे नीचे नौकर या व्यापारी सब मारे गए। मिर्जा खाँ भी जुनेर से पकड़ कर लाया गया और काट डाला गया। उसके शरीर के टुकड़े बाजार में लटकाए गए।

जमाल खाँ महदवी मत का अवलंबी था। जब वह सशक्त

हुआ तब इस्माइल शाह को, जो युवा था, उसी मत में दीक्षित किया और बारहो इमाम का नाम पुकारना बंद करा दिया तथा महदवी मत की उन्नति में लग गया। इसने अपने दल के दस सहस्र सवार एकत्र किए और इस समय हर ओर से इस मत-वाले अहमद नगर में एकत्र हुए। सैयद अलहदाद, जो महदवी मत के प्रवर्तक सैयद मुहम्मद जौनपुरी का वंशज था, अपने पुत्र सैयद अबुल् फतह के साथ दक्षिण आया। यह अपनी तपस्या तथा आचरण की पवित्रता के लिए प्रसिद्ध था, इसलिए जमाल खाँ ने अपनी पुत्री अबुल्फतह को ब्याह दी। इस सैयद-पुत्र का एक दम भाग्य खुल गया और यह धन ऐश्वर्य का मालिक बन गया। जब बुर्हानशाह ने दक्षिण के इस अशांति तथा अपने पुत्र की गद्दी का समाचार सुना तब अकबर से छुट्टी लेकर वह अपने देश आया। राजा अली खाँ फारूकी और इब्राहीम अली आदिलशाह की सहायता से यह जमाल खाँ से रोहन खेर के पास लड़ गया और उसपर विजय प्राप्त किया। दैवयोग से जमाल खाँ गोली लगने से मारा गया। इस्माइल निजाम शाह कैद हुआ। इस मिसरा से कि 'धर्म प्रचार ने जमाल का सिर पकड़ लिया' घटना को तारीख सन् ९९९ हि० निकलती है।

बुर्हान निजाम शाह ने फिर से इमामिया धर्म का प्रचार किया और महदवियों को मार कर उनका ऐश्वर्य छीन लिया। कुछ ही समय में उनका चिन्ह नहीं रह गया। सैयद अबुल् फतह अपने साले अर्थात् जमाल खाँ के पुत्र के साथ पकड़ा गया और बहुत दिन कैद रहा। इसके बाद वह निकल भागा और जमाल खाँ के

भागे हुए सैनिकों को एकत्र कर बीजापुर प्रांत पर अधिकार कर लिया। इब्राहीम आदिल शाह ने अली आका तुर्कमान को उस पर भेजा। ऐसा हुआ कि अली आका मारा गया और अबुल् फतह उसके घोड़े हाथी आदि का स्वामी बन बैठा।

आदिल शाह ने निरुपाय होकर इसको ऊँचा पद तथा गोकाक पर्गना की तहसील देकर शांत किया। कुछ दिन बाद आदिल शाह ने इसे धोखा देना चाहा तब यह अपनी स्त्री और माता को लेकर बुर्हानपुर भाग गया। खानखानाँ ने इसका आना प्रतिष्ठा समझा और उसके लिए पाँच हजारी मंसब तथा डंका मँगवा दिया। इसके अनंतर मानिकपुर जागीर में मिला और इलाहाबाद का शासक हुआ। यहाँ इसने साहस के लिए नाम कमाया। जहाँगीर के ८ वें वर्ष में यह सुलतान खुर्रम के साथ राणा की चढ़ाई पर नियत हुआ और सन् १०२३ हि० (सन् १६१४ ई०) में यह कुंभलमेर थाना में बीमार होकर पुर मांडल नगर में मर गया।

मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी महदवी मत का प्रवर्तक था। यह आविसी था और अत्यधिक धार्मिकता से बाह्य तथा आंतरिक विद्याओं का ज्ञाता हो गया। बहुत से लोग यह भी समझते हैं कि वह शेख दानियाल का शिष्य तथा उत्तराधिकारी था, जो काजी हामीदशाह मानिकपुरी का स्थानापन्न था। यह हनफी धर्म का था। सन् ९०६ हि० (सन् १५०१ ई०) के अंत में मस्तिष्क की गड़बड़ी तथा समय के प्रभाव से इसने अपने को महदी घोषित किया। बहुत से उसके अनुगामी हो गए और अपनी मूर्खता दिखलाने लगे। कहते हैं कि जब उसका दिमाग

ठीक हुआ तब उसने अपने उपदेश का खंडन किया पर जो लोग ठीक नहीं हुए थे वे उसे मानते रहे। कुछ लोग उसके इस कथन का कि 'मैं महदी हूँ' यह अर्थ लगाते हैं कि वह उस महदी का पेशवा है, जिसे शरअ ने होना बतलाया है। कुछ कहते हैं कि वास्तव में उसे खुदा ने गुप्त 'निदा' से बतलाया था कि 'तू महदी है' और इस कारण वह अपने को शरई मेहदी समझता था। इसका यह विश्वास बहुत दिन तक बना रहा और यह जौनपुर से गुजरात गया। बड़े सुलतान महमूद बैकरा ने इसकी बड़ी इज्जत की। द्वेषियों के मारे यह हिंदुस्तान नहीं गया बल्कि फारस को गया, जिसमें उधर से वह हिजाज को पहुँच जाय। मार्ग में उसे स्पष्ट हो गया कि उसके महदी होने का भाव भ्रांति मात्र है और उसने अपने शिष्यों से कहा कि 'शक्तिमान खुदा ने महदवीपन की शंका को मेरे हृदय से मिटा दिया है। यदि मैं सकुशल लौटा तो जो कुछ मैंने कहा है उसका खंडन कर दूँगा।' यह फराह पहुँच कर मर गया और वहीं गाड़ा गया। मूर्ख मनुष्यगण, मुख्य कर पन्नी अफगान जाति तथा कुछ अन्य जातियाँ, उसे महदी और इस झूठे मत को मानते हैं। इन पंक्तियों का लेखक एक बार इस मत के एक अनुगामी से मिला और उससे ज्ञात हुआ कि जिन बातों पर बहस है उसके सिवा भी हदीस से कुछ ऐसे नियम आदि लिखे हैं जो चारों मत के नियमों के विरुद्ध हैं।

---

१३. शेख अबुल्फ़ैज़ फैज़ी फैयाज़ी

शेख मुबारक नागौरी का बड़ा पुत्र था, जो अपने समय के विद्वानों में परिश्रम तथा धर्म-भीरुता के लिए प्रसिद्ध था। इसका एक पूर्वज यमन प्रांत के साधुओं से अलग होकर संसार भ्रमण करने लगा। ९ वीं शताब्दि में सिविस्तान के अंतर्गत एक ग्राम में आ बसा। १० वीं शताब्दि के आरंभ में शेख मुबारक का पिता हिंदुस्तान में आकर नागौर नगर में रहने लगा। उसके लड़के जीवित नहीं रहते थे इस लिये सन् ९११ हि० में शेख के पैदा होने पर इसका नाम मुबारक रखा। जब यह युवा हुआ तब गुजरात जाकर मुल्ला अबुल्फ़जल गाजरवनी और मौलाना एमाद लारी के पास पहुँच कर उनका शिष्य होकर उस प्रांत के विद्वानों तथा शेखों के सत्संग से बहुत लाभ उठाया और ९५० हि० में आगरे आकर वहीं रहने लगा। ५० वर्ष तक वहीं रहकर पठन-पाठन में लगा रहा और फ़कीरी तथा संतोष के साथ कालयापन करते हुए ईश्वर पर अपना विश्वास दिखलाया। आरंभ में निषिद्ध बातों के लिये इतना हठ रखता था कि जिस गली में गाने का शब्द सुन पड़ता उस ओर नहीं जाता था पर अंत में यहाँ तक शौकीन हो गया कि स्वयं सुनता और मस्त होता था। बहुत सी ऐसी विरोधी बातें उसके संबंध की सुनी जाती हैं। सलीमशाह के राज्य में शेख अलाई महदवी का साथ कर उसका मतावलंबी प्रसिद्ध हुआ और उस समय

के विद्वानों की क्या क्या बातें नहीं सुनीं। अकबर के राज्य के आरंभ में जब चग़ताई सरदारगण विशेष प्रभुत्व रखते थे तब अपने को इसने नक्शबंदी बतलाया। इसके अनंतर हमदानी शेखों में जा मिला। जब अंत में एराकी लोग दरबार में अधिक हो गए तब उन्हीं के रंग की बातें करने लगा और शीआ प्रसिद्ध हो गया। तफसीरे-कबीर के समान 'मंबउल् अयून' नामक कुरान की टीका चार जिल्दों में लिखी और जवामेउल् किल्म् भी उसी की रचना है। अकबर के इजतहाद की किताब, जिस पर उस समय के विद्वानों का साक्ष्य है, शेख ने स्वयं लिखकर अंत में लिखा है कि मैं कई वर्ष से इस कार्य की प्रतीक्षा कर रहा था। कहते हैं कि अंत में अपने पुत्रों के परिश्रम से इसे मनसब मिला। शेख अबुल्फजल् लिखता है कि आखिरी अवस्था में आँख की कमजोरी से कष्ट पाकर सन् १००१ हि० (१५९३ ई०) में लाहौर में मर गया। 'शेख कामिल' से इसकी मृत्यु-तारीख निकलती है।

शेख फ़ैज़ी सन् ९५४ हि० में पैदा हुआ। अपनी प्रतिभा और बुद्धिमानी से सभी विज्ञानों को झट सीख लिया। हिकमत और अरबी में विशेष पहुँच थी और वैद्यक अच्छी तरह से पढ़ कर गरीब बीमारों को मुफ्त में दवा करता था। आरंभ में धनाभाव से कष्ट पाता था। एक दिन अपने पिता के साथ अकबर के सद्र शेख अब्दुन्नबी के पास जाकर १०० बीघा जमीन मददेमआश की प्रार्थना की। शेख ने हठधर्मी से इसको तथा इसके पिता को शीआ होने के कारण घृणा कर दरबार से उठवा दिया। शेख फैजी ने इस पर बादशाह से परिचय पाने का प्रयत्न किया। कई दरबारियों ने बादशाह के दरबार में शेख

की योग्यता, विद्वत्ता तथा वाक्चातुर्य की प्रशंसा की। १२ वें वर्ष जब अकबर दुर्ग चित्तौड़ लेने के लिये जा रहा था तब उसने शेख को बुलाने के लिये कहा। इसके समय के मुल्ला लोग इन सब से बुरा मानते थे इस से यह समझ कर कि यह बुलावा दंड देने के लिये है, आगरे के शासक को यही समझा दिया तथा यह कि इसका पिता इसको कहीं छिपा न दे इस लिये कुछ मुगल भेज कर इसके घर को घेरवा ले। दैवात् शेख फैजी उस समय घर पर नहीं था, इससे बड़ी गड़बड़ी मची। जब यह आया तब सफर की तैयारी की। आय की कमी से बड़ी कठिनाई पड़ी पर शिष्यों के प्रयत्न से सब ठीक हो गया। सेवा में पहुँचने पर इस पर यहाँ तक कृपा हुई कि यह बादशाह का मुसाहिब और पार्श्ववर्ती हो गया। इसने शेख अब्दुन्नबी से ऐसा बदला लिया कि वह मनसब और पदवी से गिर कर हेजाज भेजवा दिया गया और अंत में वह जान माल से गया।

शेख उच्च कोटि का कवि था इस लिये ३० वें वर्ष उसे राजकवि की पदवी मिली। ३३ वें वर्ष में उसने विचार किया कि खमसा की चाल पर काव्य बनावें। मखजने-असरार के समान मरकजे-अदवार ३००० शैर का, खुसरु-शीरीं की जगह सुलेमान वा बिलकैस और लैलो-मजनूँ के बदले नलदमन, जो भारत के प्राचीन उपाख्यानों में से है, हर एक चार चार हजार शैर के तथा हफ्त-पैकर की चाल पर हफ्त किश्वर और सिकंदर नामा के जगह पर अकबर नामा हर एक ५००० शैर के बनावे। थोड़े ही समय में इसने इन पाँचों काव्यों का आरंभ कर दिया पर पूरा नहीं कर सका। कहता था कि यह समय

जीवन के चिन्ह को मिटाने का है, ख्याति के द्वार को सज्जित करने का नहीं है।

३९ वें वर्ष अकबर ने इस काम के लिये ताकीद की और आज्ञा दी कि पहिले नलदमन उपाख्यान को कविताबद्ध करे। उसी वर्ष पूरा करके बादशाह को नजर किया परंतु बहुत दिनों से वह एकांत-सेवन करता था और मौन रहता था इसलिये बादशाह के उद्योग पर भी खमसा पूरा नहीं हुआ। अपनी क्षय की बीमारी के आरंभ में कहा है—शैर—

देखा कि आकाश ने जादू किया कि मेरे मुर्गे दिल ने रात्रि-रूपी पिंजड़े से उड़ने को इच्छा की। जिस सीने में एक संसार समा सकता था उससे आधी साँस भी कष्ट से निकलती है।

बीमारी की हालत में दोबारा कहा है। शैर—

यदि कुल संसार एक साथ तंग आ जाय,
तब भी न हो कि चींटी का एक पैर लँगड़ा हो जाय।

४० वें वर्ष में १० सफर सन् १००४ हि० (१५९५ ई०) को मर गया। 'फैयाजे अजम' से इसकी मृत्यु की तिथि निकलती है। पहिले बहुत दिनों तक फैजी उपनाम था पर बाद को फैयाजी कर दिया। इसने स्वयं कहा है—रुबाई—

पहिले जब कविता में मेरा सिक्का था तब फैजी मेरा उपनाम था परंतु अब मैं जब प्रेम का दास हो गया तब दया के समुद्र का फैयाजी हो गया।

शेख ने १०१ पुस्तकें बनाईं। सवातेउल् इलहाम नामक टीका जो बिना नुक्ते की है उसकी प्रतिभा का प्रबल साक्षी है। मुअौवल कहने वाले मीर हैदर ने इसकी समाप्ति की तारीख

'सूरए-एखलास' में निकाली अर्थात् १००२ हि० और इसके लिये उसे दस हजार रु० पुरस्कार में मिला। उसने मवारीदुल् किल्म बिना नुक्ते के लिखा है। समकालीन विद्वानों ने विरोध किया कि अब तक किसी ने चाहे वह कितना बड़ा विद्वान या धार्मिक रहा हो, बिना नुक्ते की टीका नहीं लिखी है। शेख ने कहा कि जब कलमा तइयब, जो ईमान की नींव है बिना नुक्ते का है तब दूसरे दलील की आवश्यकता नहीं है।

कहते हैं कि शेख की ४३०० अच्छी पुस्तकें बादशाह के यहाँ जब्त हुईं। शेख दरबार में अपनी विद्वत्ता तथा प्रतिभा से अग्रणी और पार्श्ववर्ती हो गया था। शाहजादों की शिक्षा का भार इसे मिला था। दक्षिण के शासकों के पास राजदूत होकर गया था पर इसका मनसब चार सदी से अधिक नहीं हुआ। शेख अबुल्फज्ल इसका छोटा भाई था पर सरदार हो गया और फैजी के जीवन ही में ढाई हजारी मनसबदार हो गया था और अंत में मनसब और सरदारी की सीमा तक पहुँच गया था। कुछ लोग अकबर की सूर्य-पूजा का संबंध शेख के इस किता से मिलाते हैं—शैर—

हर एक को उसके उपयुक्त भेंट मिलती है जैसे सिकंदर को दर्पण और अकबर को सूर्य।

वह आइने में अपने को देखा करता और यह सूर्य में ईश्वर को देखता।

यद्यपि शंका नहीं है कि यह बड़ा नक्षत्र और संसार को प्रकाशमान करने वाला ईश्वर की शक्ति का एक सबसे बड़ा चिन्ह है और संसार के बिगड़ने बनने का प्रबंध इसी पर है पर जिस

प्रकार का पूजन, जो इसलामियों की चाल नहीं है और जिसकी शेख अबुल्फज्ल की कविता में ध्वनि निकलती है, उचित नहीं है। उसके अच्छे शैर और कसीदे प्रसिद्ध हैं। इसका एक शैर है—शैर—

ऐ प्रेम की तलवार यदि न्याय करना है तो हाथ क्यों काटता है। अच्छा होगा कि जुलेखा की भर्त्सना करने वाले की जिह्वा काट।

१४. अबुल्बक़ा अमीर खाँ, मीर

यह कासिम खाँ नमकीन का सबसे अच्छा पुत्र था। अपने भाइयों में कार्य-दक्षता तथा योग्यता में सबसे बढ़ कर था। अपने पिता के समय ही में इसने प्रसिद्धि पाई और पाँच सदी का मंसबदार हो गया। उसकी मृत्यु पर और भी ऊँचा पद पाया। जहाँगीर के समय में यह ढाई हजारी १५०० सवार के मंसब तक पहुँचा और यमीनुद्दौला का नायब हो कर मुलतान का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। शाहजहाँ के २ रे वर्ष में जब ठट्टा का प्रांताध्यक्ष मुर्तजा खाँ आँजू मर गया तब ५०० सवार इसके मंसब में बढ़ाए गए और तीन हजारी २००० सवार के मंसब के साथ यह उस प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। ९ वें वर्ष में शाहजादे के दौलताबाद से राजधानी लौटते समय यह दक्षिण में सरकार बिड़ की जागीर पर नियत हुआ और उस प्रांत के सहायकों में कुछ दिन रहा। १४ वें वर्ष में यह कज्जाक खाँ के स्थान पर सिविस्तान भेजा गया। १५ वें वर्ष में यह दूसरी बार शाह खाँ के स्थान पर ठट्टा का प्रांताध्यक्ष हुआ। यह वहीं २० वें वर्ष में सन् ११०७ हि० (सन् १६४७ ई०) में मर गया और अपने पिता के सफए-सफा नामक मकबरे में गाड़ा गया, जो भक्कर दुर्ग के सामने दक्षिण ओर पहाड़ी पर है। यह सौ वर्ष से अधिक का हो गया था पर इसकी बुद्धि या शक्ति में कमी नहीं आई थी। जहाँगीर के समय यह केवल मीर खाँ के नाम से प्रसिद्ध

था। शाहजहाँ ने एक अलिफ अक्षर जोड़कर इसे अमीर खाँ की पदवी दी और इससे एक लाख रुपये पेशकश लिया। अपने पिता के समान इसे भी बहुत से लड़के थे। इसका बड़ा लड़का अब्दुर्रज़ाक शाहजहाँ के समय नौ सदी दर्जे में था। २६ वें वर्ष में यह मर गया। दूसरा पुत्र ज़ियाउद्दीन यूसुफ था, जो शाहजहाँ के राज्य के अंत समय एक हजारी ६०० सवार का मंसबदार था और जिसे बाद को ज़ियाउद्दीन खाँ की पदवी मिली। इसका पौत्र मीर अबुल्वफा औरंगजेब के राज्य के अंत समय में अन्य पदों के साथ जानिमाज़खाना का दारोगा था और इसका गुणग्राही बादशाह इसे बुद्धिमान और ईमानदार समझता था। एक अन्य पुत्र, जो स्यात् सब पुत्रों में योग्यतम था, मीर अब्दुल्करीम मुलतफत खाँ था, जो औरंगजेब का अंतरंग साथी था तथा अपने पिता की पदवी पाई थी। उसकी जीवनी अलग दी हुई है। मृत खाँ की पुत्री शाहजादा मुरादबख्श को ब्याही थी पर यह संबंध खाँ की मृत्यु पर हुआ था। शाहनवाज खाँ सफवी की पुत्री से शाहजादे को कोई पुत्र नहीं था इसलिए ३० वें वर्ष में शाहजहाँ ने इस सती स्त्री को एक लाख रुपए का जवाहिरात आदि विवाहोपहार देकर अहमदाबाद भेजा कि शाहजादे से उसकी शादी हो जाय, जो उस समय गुजरात प्रांत का अध्यक्ष था।

१५. अबुल् मआली, मिर्जा

यह प्रसिद्ध मिर्जा वाली का पुत्र था, जिससे शाहजादा दानियाल की पुत्री बुलाकी बेगम का विवाह हुआ था। पिता की मृत्यु के अनंतर उसे एक हजारी ४०० सवार का मंसब मिला। शाहजहाँ के २६वें वर्ष में इसका मंसब दो हजारी १५०० सवार का था और यह सिविस्तान का जागीरदार तथा फौजदार था। इसके अनंतर ५०० सवार और बढ़े तथा ३१ वें वर्ष में सजावार खाँ मशहदी की मृत्यु पर यह बिहार में तिरहुत का फौजदार हुआ। इसके बाद जब भाग्य के अद्भुत कार्य्यों से शाहजहाँ का राजत्व छिन्न भिन्न हो गया और पुत्रों के षड्यंत्र से राज्य-कार्य में गड़बड़ मच गया, तब अंत में गृहयुद्ध हुआ तथा दारा शिकोह, जिसके हाथ में राज्य-प्रबंध था, औरंगजेब से हार कर भाग गया और औरंगजेब की सेना के पहुँचने से राजधानी शोभायमान हुई। उस समय औरंगजेब को यही मुख्यतम बात जँची कि शुजा के लिए पिता से मुंगेर नगर और बिहार तथा पटना प्रांत बंगाल के बड़े प्रांत में मिला देने की आज्ञा दी जाय। शाहजादा शुजा सदा यही चाहता था और अब औरंगजेब ने उसका पक्ष लिया। इस लिए सभी जागीरदारों तथा फौजदारों ने इच्छा या अनिच्छा से शुजा की अधीनता स्वीकार कर ली और अबुल् मआली को भी साथ देना पड़ा। शुजा पहिले बनारस के पास परास्त हो चुका था और उसका कार्य इस कारण बिगड़ रहा था, इससे दारा शिकोह के परा-

जय तथा बिहार के मिल जाने से प्रसन्न होकर उसने औरंगजेब को विशेष धन्यवाद दिया। पर जब औरंगजेब पंजाब की ओर दारा शिकोह का पीछा करने गया और ज्ञात हुआ कि इसमें बहुत समय लगेगा तब शुजा की इच्छा बढ़ी और इलाहाबाद प्रांत पर उसने चढ़ाई की। यह समाचार मिलने पर औरंगजेब दारा का पीछा करना छोड़ कर शुजा से युद्ध करने लौटा। युद्ध के पहिले अबुल् मआली भाग्य के मार्ग-प्रदर्शन से शुजा का साथ छोड़कर औरंगजेब से आ मिला। इसे पुरस्कार में हाथी आदि, मिर्जा खाँ की पदवी, ३०००० रु० नगद और एक हजारी ५०० सवार की बढ़ती मिली, जिससे उसका मंसब तीन हजारी २००० सवार का हो गया। शुजा के भागने पर उसका पीछा करने को सुलतान मुहम्मद नियुक्त हुआ, जिसके साथ अबुल् मआली भी था। इसके बाद इसे बिहार में दरभंगा की फौजदारी मिली। ६ ठे वर्ष से गोरखपुर के फौजदार अलीवर्दी खाँ के साथ मोरंग के जमींदार को दंड देने जाने की आज्ञा हुई। वहीं यह सन् १०७४ हि० (१६१३-१४) में मर गया। इसके पुत्र अब्दुल् वाहिद खाँ को २२ वें वर्ष में खाँ का खिताब मिला। हैदराबाद के घेरे में अच्छा कार्य किया। मालवा में अनहल पर्गना, जो मिर्जा वाली के समय से इस वंश को मिला था, इसे जागीर में दिया गया और इसके वंशजों के पास अब तक रहा। जब मराठों ने मालवा पर अधिकार कर लिया, तब ये निकाल दिए गए। इसका पौत्र ख्वाजा अब्दुल् वाहिद खाँ हिम्मत बहादुर था, जो निजामुल् मुल्क के समय दक्षिण आया। जब सलाबत जंग निजाम हुआ तब इसे दादा की पदवी मिली और क्रमशः यह

अमीनुद्दौला बहादुर सैफजंग की पदवी के साथ निजामुद्दौला आसफ जाह के उत्तराधिकारी आलीजाह के जागीर का दीवान पद प्राप्त कर सन् ११८९ हि० (१७७५ ई०) में मर गया। सच्ची मित्रता के लिए अद्वितीय था।

---

१६. अबुल् मआली, मीर शाह

यह तर्मिज का सैयद था। ख्वाजा मुहम्मद समीअ द्वारा काबुल में सन् ९५८ हि० में यह जवानी में हुमायूँ का परिचित हुआ। यह सुंदर तथा सुगठित था इसलिए यह कृपापात्र हो गया और सर्दार बन गया। इसे फर्जंद (पुत्र) की पदवी मिली। भारत के आक्रमण में इसने प्रसिद्धि पाई और विजय के बाद कुछ अन्य अमीरों के साथ पंजाब भेजा गया कि यदि भारत का शासक सिकंदर खाँ सूर, जो युद्ध से भाग कर पहाड़ों में चला गया था, बाहर आकर विप्लव मचावे तो यह उसे दंड दे। पर इसकी अन्य अमीरों के साथ की असहनशीलता तथा उद्दंड व्यवहार से इसके स्थान पर वहाँ शाहजादा अकबर अपने अभिभावक बैराम खाँ के साथ भेजा गया और यह सरकार हिसार में नियत हुआ। जब यह व्यास नदी के किनारे शाहजादे से मिलने आया तब अकबर ने इस पर हुमायूँ की कृपाओं का विचार कर अपने दरबार में बुलाया और कृपा के साथ बर्ताव किया। यह इन सब बातों को न समझ कर अपने स्थान पर गया तब शाहजादे को इस आशय का संदेशा भेजा कि 'हर एक आदमी यह अच्छी प्रकार जानते हैं कि उस पर हुमायूँ की कितनी कृपा रहती है और मुख्यतः शाहाजादा क्योंकि एक दिन उसने बादशाह के साथ एक दस्तरख्वान पर खाया था जब कि शाहजादे का खाना उसके पास भेज दिया गया था। तब क्यों, जब मैं तुम्हारे गृह पर आया, हमारे लिए अलग दीवान तथा तकिया रखा गया।'

युवा होते भी शाहजादे ने उत्तर भेजा कि 'बादशाहत के नियम एक हैं और प्रेम के दूसरे। बादशाह से तुम्हारा जो संबंध है वह हम से नहीं है। इस भिन्नता को न समझ कर तुमने व्यर्थ गड़बड़ किया।' इसके अनंतर जब अकबर गद्दी पर बैठा तब बैराम खाँ ने इसमें विद्रोह के लक्षण देख कर राजगद्दी के तीसरे दिन इसे दरबार में कैद कर लिया और लाहौर भेज दिया। यह पहलवान गुलगज असास की रक्षा में रखा गया। एक दिन रक्षकों की असावधानता से भाग कर गक्खरों के देश में चला गया। कमाल खाँ गक्खर ने इसे कैद कर लिया पर वहाँ से भी भाग कर यह काबुल जाना चाहता था पर वहाँ के प्रांताध्यक्ष मुनइम खाँ ने यह समाचार सुन कर इसके भाई मीर हाशिम को, जो ग़ोरबंद का जागीरदार था, कैद कर लिया, इस कारण अबुल् मआली वहाँ न जाकर नौशेरा में कश्मीरियों से जा मिला, जिन पर वहाँ के शासक गाजी खाँ ने अत्याचार किया था। इसने अपनी धूर्तता तथा चापलूसी से उन सब को मिला लिया और काश्मीर के शासक से लड़ गया। यह परास्त हुआ। कुछ ने लिखा है कि जब यह कमाल खाँ के यहाँ पहुँचा तब उसका चाचा आदम गक्खर उस देश का अधिकारी था। कमाल खाँ इस पर विश्वास कर तथा सेना एकत्र कर दोनों साथ काश्मीर गए। पराजय पर इसने क्षमा माँग ली। यहाँ से अबुल् मआली परगना दीपालपुर में छिप कर गया, जो बहादुर शैबानी की जागीर में था और मीरजा तोलक के घर में छिप रहा, जो पहिले इसका नौकर था पर अब बहादुर का था। ऐसा हुआ कि एक दिन तोलक अपनी स्त्री से लड़ पड़ा और उसे खूब पीटा। वह बहादुर के पास गई

और सब हाल कहा कि 'उन दोनों ने तुम्हें मार डालने का निश्चय किया है।' उसी समय बहादुर घोड़े पर सवार हो वहाँ गया और मीर तोलक को मार कर अबुल् मआली को कैद कर लिया तथा बैराम खाँ के पास भेज दिया। उसने इसे मक्का ले जाने को वलीबेग की रक्षा में रखा। यह गुजरात इस लिये गया कि वहाँ से वह मक्का जा सके पर वहाँ एक अन्याय-पूर्ण रक्तपात कर खानजमाँ के यहाँ भाग गया। उसने आज्ञानुसार इसे बैराम खाँ के पास भेज दिया। इस बार बैराम ने इसे कुछ दिन प्रतिष्ठा के साथ रोक रखा और तब बिआना दुर्ग में कैद कर दिया। अपनी अवनति-काल में उसने अलवर से अबुल् मआली को छुट्टी दी और अन्य अमीरों के साथ दरबार भेज दिया। झज्जर (रोहतक जिले) में सब अमीर सेवा में उपस्थित हुए। अबुल् मआली भी आया पर घोड़े पर चढ़े ही अभिवादन किया, जिससे बादशाह क्रुद्ध हुए। उसे फिर हथकड़ी पहिराई गई और मक्का भेज देने के लिए यह शहाबुद्दीन अहमद की रक्षा में रखा गया। दो वर्ष बाद यह ८ वें वर्ष में वहाँ से लौटा और बुरी नीयत से जालौर गया तथा शरीफुद्दीन हुसेन अहरारी से भेंट की, जो विद्रोही हो गया था। उसने इसे कुछ सेना दी जिससे यह आगरा-दिल्ली प्रांत में आकर गड़बड़ मचाने लगा। यह पहिले नारनौल गया और थोड़े बादशाही खजाने पर अधिकार कर लिया। वहाँ से झानझनून आया और यहाँ से हिसार फीरोजा गया। जब उसने देखा कि उसे सफलता नहीं मिल रही है और शाही सेना उसका सब ओर पीछा कर रही है तब वह काबुल गया। इसने मिर्जा मुहम्मद हकीम की माता माहचूक बेगम को अपना

कुल वृत्त लिखा, जिसके हाथ में काबुल का प्रबंध था। अबुल्-मआली ने यह शैर भी उसमें लिखा है—

हम इस द्वार पर प्रतिष्ठा तथा यश की खोज में नहीं आए हैं।
प्रत्युत् भाग्य के हाथों से रक्षा पाने के लिए आए हैं।

लोगों ने बेगम से कहा कि शाह अबुल्मआली उच्चपदस्थ तथा साहसी युवा पुरुष है और हुमायूँ ने तुम्हारी बड़ी पुत्री की उससे विवाह की बात की थी। जो इसे वह शरण में लेगी तो उसे लाभ ही होगा। वह धोखे में आ गई और उत्तर लिखा कि—

कृपा करो, आओ, क्योंकि यह घर तुम्हारा ही है।

वह इसे सम्मान के साथ काबुल में लाई और मुहम्मद हकीम की बहिन फखुन्निसा बेगम की शादी इससे कर दी। जब इस संबंध से यह वहाँ की स्थिति का स्वामी बन बैठा तब कुप्रकृति के कारण और कुछ लोगों की कुसम्मति पर कि बेगम के रहते इसका प्रभुत्व दृढ़ न होगा, सन् ९७१ हि० शाबान महीने (अप्रैल सन् १९६४ ई०) के मध्य में दो जल्लादों के साथ बेगम के महल में चला गया और उसको मार डाला। इसने कई प्रभावशाली मनुष्यों को मार डाला, जिनमें हैदर कासिम कोहबर भी था, जिसके पूर्वज इस वंश में अच्छे अच्छे पदों पर रहे और जो उस समय वकील था। मिर्जा सुलेमान, जो सदा काबुल लेने की इच्छा रखता था, मुहम्मद हकीम तथा काबुल के कुछ सर्दारों की प्रार्थना पर बदख्शाँ से आया। अबुल् मआली हकीम को साथ लेकर युद्ध को निकला और गोरबंद नदी के पास युद्ध हुआ। आरंभ ही में मुहम्मद हकीम के हितचिंतक इसे मिर्जा सुलेमान की ओर लिवा गए जिससे सब काबुली इधर उधर भाग गए। अबुल्

मआली घबड़ाकर भागा पर बदख्शियों ने पीछा कर चारकारां में इसे पकड़ लिया। काबुल में ईदुल्फित्र के दिन (१२ मई सन् १५६४ ई०) यह हकीम की आज्ञा से फाँसी पर चढ़ाया गया और इसने अपनी करनी का फल पाया।

अपनी आँखों से मैंने गुजरगाह में देखा।
एक पक्षी को एक चींटी का प्राण लेते।
उसकी चोंच अपने शिकार से नहीं हटी थी।
कि दूसरे पक्षी ने आकर उसे समाप्त कर दिया।
दोष करके कभी सुचित्त न हो
क्योंकि बदला प्रकृति के अनुसार है।

शाह अबुल् मआली हँसमुख था और 'शहीदी' उपनाम से कविता भी करता था।

१७. अबुल् मकारम जान निसार खाँ

इसका नाम ख्वाजा अबुल्मकारम था। पहिले यह सुलतान मुहम्मद मुअज्जम का एक विश्वस्त सेवक था। जब सुलतान मुहम्मद अकबर ने विद्रोह की कुल तैयारी कर ली और मूर्ख राजपूतों के साथ अपने पिता के विरुद्ध भारी सेना लेकर कूच करने को सन्नद्ध हुआ, उस समय उसकी सेना का पूरा विवरण नहीं ज्ञात था। इसलिए शाहजादा मुअज्जम ने अपनी ओर से अबुल्मकारम को जासूस की तौर पर भेजा और यह शाहजादा अकबर के जासूसों पर जा पड़ा। लड़ाई हो गई पर ख्वाजा घायल होकर निकल आया। इस प्रकार बादशाह को इसका परिचय हो गया और इसे नौसदी का मंसब तथा जान निसार खाँ की पदवी मिली। रामदर्रा की चढ़ाई में यह भी शाहजादा मुअज्जम के साथ नियत हुआ और सात गाँव के घेरे में इसने ख्याति पाई तथा घावों के लेखों से इसकी वीरता का मानपत्र अंकित हुआ। जब शाहजादा वहाँ से लौटा तब वह अबुल्हसन कुतुब शाह की चढ़ाई पर नियुक्त हुआ और जान निसार उसके साथ गया। शाहजादे के आज्ञानुसार यह सरम दुर्ग लेने गया और थाना स्थापित किया। अबुल्हसन की दुर्ग-सेना को परास्त किया और गोलकुंडा के घेरे में स्वयं घायल होकर ख्याति पाई। ३२ वें वर्ष में यशम की मुठिया का कटार पाकर नीच शत्रु को दंड देने भेजा गया। इसके दूसरे वर्ष इसे खिलअत और हाथी मिला। यह बराबर अच्छे कार्य के लिए प्रसिद्धि पा रहा था इससे बादशाह

इस पर कृपा करते रहते थे। इसके बाद जब संता घोरपदे और शाही सेना में कर्णाटक के एक ग्राम में युद्ध हुआ तब अंतिम दैवकोप से परास्त हुई। खाँ घायल हुआ पर निकल भागा। इसके अनंतर यह ग्वालियर का फौजदार तथा किलेदार हुआ और यहीं संतोष से रहने लगा।

जब औरंगजेब मर गया तब खाँ बहादुर शाह का पुराना सेवक होने से तरक्की की आशा में था पर मुहम्मद आजमशाह के पास होने के कारण इसने जल्दी में आजमशाह और सुल्तान मुहम्मद अजीम दोनों को प्रार्थना पत्र लिखे कि वह आने को तैयार है पर दूसरे पक्ष वाले ने उसे लाने को सेना भेजी है। वह मार्ग मिलते ही शीघ्र आ मिलेगा। इसी बीच इसने सुना कि बहादुर शाह आगरे आ गया है तब यह शीघ्रता से उससे जा मिला। बादशाह को यह पता था कि यह चार पाँच सहस्र सवारों के साथ मुहम्मद आजम से जा मिला होगा, इसलिए वह इससे अप्रसन्न था। मुहम्मद आजम शाह के मारे जाने पर जान निसार में पश्चाताप के लक्षण देखकर कुछ समय बाद अपनी सेना में ले लिया। इसे चार हजारी २००० सवार का मंसब तथा डंका मिला।

बहादुरशाह की मृत्यु पर फर्रुखसियर के साथ के युद्ध में खाँ जहाँदार शाह के बाएँ भाग में था। इसके बाद फर्रुखसियर की सेवा में रहा। जब दक्षिण का प्रांताध्यक्ष हुसेन अली खाँ सीमा पर आया और शत्रु के साथ चौथ और देशमुखी देने की प्रतिज्ञा पर संधि कर ली और बादशाह ने उसे नहीं माना तब जान निसार, जो स्वभाव को समझने वाला, अनुभवी तथा

अब्दुल्ला खाँ सैयद का माना हुआ भाई था, ६ ठे वर्ष में बुर्हानपुर का अध्यक्ष होकर हुसेन अली खाँ को समझा बुझाकर सन्मार्ग पर लाने गया। अकबरपुर उतार तक पहुँचने पर हुसेन अली खाँ ने यह समझकर कि यह उसके पक्ष में न होगा कुछ सेना भेजकर इसे औरंगाबाद बुला लिया। दिखाव में दोनों पक्ष में मेल था, प्रतिदिन खाना जाता, सम्मान होता और चाचा साहब पुकारता था पर बुर्हानपुर में जाने को वह टालता रहा। जाड़े की फसल बीतने पर इस वचन पर इसे बुर्हानपुर में जाने की आज्ञा मिली कि यह अपने बड़े पुत्र दाराब खाँ को वहाँ पर भेजे और स्वयं हुसेन अली के साथ रहे। जब हुसेन अली ने राजधानी जाने का निश्चय किया तब जान निसार पर विश्वास नहीं रखने के कारण तथा बुर्हानपुर के निवासियों के दाराब खाँ की चुगली खाने पर उसने सैफुद्दीन अली खाँ को उस पद पर नियत कर दाराब को साथ ले लिया। यह नहीं ज्ञात है कि जान निसार का अंत में क्या हुआ। इसे दो पुत्र थे। एक दाराब खाँ तथा दूसरा कामयाब खाँ था। ये दोनों निजामुल्मुल्क आसफजाह के साथ उस युद्ध में थे, जो आलम अली खाँ के साथ हुआ था। दूसरा इसमें घायल हुआ। बड़ा खानजहाँ बहादुर कोकलताश आलमगीरी का दामाद था और उसकी बहिन एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ को ब्याही हुई थी। इसे पिता की पदवी मिली और मुहम्मदशाह के समय यह कड़ा जहानाबाद सरकार का, जो इलाहाबाद प्रांत में है, फौजदार हुआ। यह सात वर्ष वहाँ रहा और १४ वें वर्ष में वहाँ के जमींदार भगवंत सिंह के हाथ मारा गया।

१८. अब्दुल् मतलब खाँ

यह शाह बिदाग खाँ का पुत्र और अकबर के ढाई हजारी मंसबदारों में से था। पहिले यह मिर्जा शरफुद्दीन के साथ मेड़ता-विजय करने पर नियत हुआ और उसमें अच्छा कार्य किया। उसके बाद यह अकबर का खास सेवक हो गया। १० वें वर्ष में यह मीर मुईजुल्मुल्क के साथ सिकंदर खाँ उजबेग तथा बहादुर खाँ शैबानी को दंड देने पर भेजा गया। जब बादशाही सेना परास्त होकर छिन्न भिन्न हो गई तब यह भी भाग गया। इसके अनंतर यह मुहम्मद कुली खाँ बर्लास के साथ सिकंदर खाँ पर नियत हुआ, जिसने अवध में बलवा मचा रखा था। इसके उपरांत यह कुछ दिन मालवा में अपनी जागीर में रहा। जब १७ वें वर्ष में मालवा के अफसरों को खानेआजम कोका की सहायता करने की आज्ञा हुई तब यह गुजरात गया और मुहम्मद हुसेन मिर्जा के साथ के युद्ध में द्वंद्वयुद्ध खूब किया। आज्ञानुसार इसने खानेआजम के साथ आकर बादशाह की सेवा की, जो सूरत घेरे हुआ था और उसके बाद आज्ञा पाकर अपनी जागीर को लौट गया। २३ वें वर्ष में जब कुतुबुद्दीन खाँ के आदमी मुजफ्फर हुसेन मिर्जा को पकड़ कर दक्षिण से दरबार में ले जा रहे थे तब यह भी माळवा की कुछ सेना लेकर रक्षार्थ साथ हो गया। २५ वें वर्ष में यह इस्माइल कुली खाँ के साथ नियाबत खाँ अरब को दंड देने पर नियत हुआ और उस कार्य

में उत्साह तथा राजभक्ति दिखलाई। २६ वें वर्ष में अली दोस्त बारबेगी के पुत्र फतह दोस्त को मार डालने का अभियोग इसे लगाया गया पर कुछ समय बाद इस पर फिर कृपा हुई। काबुल की चढ़ाई में यह बाएँ भाग का अध्यक्ष था। २७ वें वर्ष में जब अकबर पूर्वीय प्रांत की ओर काल्पी के पास पहुँचा, जहाँ अब्दुल् मतलब खाँ की जागीर थी, तब इसकी प्रार्थना पर इसके निवास-स्थान पर अकबर गया। ३० वें वर्ष में यह खाने-आजम कोका की सहायक सेना में नियत होकर दक्षिण गया और ३२ वें वर्ष में जलाल तारीकी को दंड देने सेना सहित गया था। एक दिन जलाल तारीकी ने पीछे से धावा किया पर अब्दुल् मतलब खाँ के घोड़े पर सवार होने के पहिले ही दूसरे अफसरों ने युद्ध कर बहुत से शत्रु को परास्त कर मार डाला। पर अब्दुल् मतलब मस्तिष्क के बिगड़ने तथा आशंका से पागल हो गया और बेकार होकर दरबार लौट आया। अंत में यह अपने निश्चित समय पर मर गया। उसके पुत्र शेरजाद को जहाँगीर के समय पाँच सदी २०० सवार का मंसब मिला।

१६. अबुल्मंसूर खाँ बहादुर सफ़दरजंग

इसका नाम मुहम्मद मुकीम था और यह बुर्हानुल्मुल्क का भांजा तथा दामाद था। इसके पिता की पदवी सयादत खाँ थी। अपने श्वसुर की मृत्यु पर यह मुहम्मदशाह द्वारा अवध का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और वहाँ के विद्रोहियों को दमन कर उन्हें अपने अधीन किया। सन ११५५ हि० (सन् १७४२ ई०) में बादशाह की आज्ञानुसार यह बंगाल के प्रांताध्यक्ष अलीवर्दी खाँ की सहायता करने पटना गया, जहाँ मराठे उपद्रव मचाए हुए थे। पुरस्कार में इसे रोहतास तथा चुनार दुर्गों की अध्यक्षता मिली पर अलीवर्दी को शंका हुई, जिससे उसने बादशाह से आज्ञा निकलवाई कि वह उसकी सहायता न करे। इससे यह अपने प्रांत को लौट आया। सन् ११५६ हि० में बुलाए जाने पर यह दरबार में गया और मीर आतिश नियत हुआ। सन् ११५९ हि० (१७४६ ई०) में उमदतुल्मुल्क अमीर खाँ की मृत्यु पर इलाहाबाद प्रांत इसे मिल गया। सन् ११६१ हि० में जब दुर्रानी शाह कंधार से भारत पर आक्रमण करने रवाना हुआ और लाहौर से आगे बढ़ा तब यह बादशाह की आज्ञानुसार सुलतान अहमदशाह के साथ सरहिंद गया और एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ के मारे जाने पर यह दृढ़ बना रहा तथा ऐसी वीरता दिखलाई कि दुर्रानी को लौट जाना पड़ा। इसके एक महीने बाद मुहम्मद शाह २७ रबीउस्सानी (१६ अप्रैल सन् १७४८ ई०) को मर गया और अहमदशाह गद्दी पर बैठा। इसके कुछ ही ही दिन बाद आसफजाह की मृत्यु का समाचार मिला, जिससे

यह वजीर नियत हुआ। अली मुहम्मद खाँ रुहेला से क्रुद्ध होने के कारण इसने कायम खाँ बंगश को सादुल्ला खाँ के विरुद्ध उभाड़ा, जो अली मुहम्मद का पहला पुत्र था। कायम खाँ और उसके भाइयों के मारे जाने पर, जैसा कि उसके पिता मुहम्मद खाँ बंगश की जीवनी में विस्तार से लिखा जा चुका है, सफदरजंग ने उसके भाई अहमद खाँ बंगश के विरुद्ध बादशाह को सम्मति दी कि उसकी जायदाद जब्त की जाय। बादशाह अलीगढ़ (कोल) में ठहरे और सफदरजंग गंगा नदी तक पहुँचे, जहाँ से फर्रुखाबाद बीस कोस दूर था। अहमद खाँ की माता ने आकर साठ लाख रुपये पर मामला तय किया और बादशाह लौट गए। सफदरजंग यह रुपया लेने के लिए कुछ दिन ठहरा रहा और अहमद खाँ की जायदाद जब्त करने लगा। उसने कन्नौज में नवलराय कायस्थ को नियत किया, जो पहिले साधारण कार्य पर नियत था और क्रमशः उन्नति करते हुए अवध का नायब हो गया था और स्वयं दरबार गया। अफगानों से युद्ध कर नवलराय मारा गया और सफदरजंग ने सेना एकत्र कर सूरजमल के साथ अहमद खाँ बंगश पर चढ़ाई की। सन् ११६३ हि० (१७५० ई०) में युद्ध में यह बड़े असम्मान से परास्त होकर राजधानी लौट गया। इस बीच अहमद खाँ बंगश ने इलाहाबाद और अवध में उपद्रव मचाया और सर्वत्र लूटना जलाना भी नहीं छोड़ा। दूसरे वर्ष सफदरजंग ने मल्हारराव होलकर और जयाजी सेंधिया से मिल कर, जो दो प्रभावशाली मराठा सर्दार थे, अफगानों का सामना किया, जो इस बार परास्त होकर भागे और मदारिया पहाड़ों की घाटियों में शरण ली, जो कमायूँ के पहाड़ों की शाखा है।

अंत में उन्हें प्रार्थना करने को और सफदरजंग के इच्छानुसार संधि करने को बाध्य किया गया। इसी बीच अहमद शाह दुर्रानी के लाहौर से दिल्ली के पास पहुँचने का समाचार मिला तब सफदरजंग बादशाह की आज्ञानुसार होल्कर को बड़ी रकम देने का बचन देकर सन् ११६५ ई० में दिल्ली साथ लिवा गया। ख्वाजा जावेद खाँ बहादुर ने, जो प्रबंध का केंद्र था, दुर्रानी शाह के एलची कलंदर खाँ से संधि कर उसे लौटा दिया था, जिससे सफदरजंग ने, जो उससे पहले ही से सद्भाव नहीं रखता था, उसे अपने घर निर्मंत्रित कर मार डाला और साम्राज्य का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया। इसके अनंतर बादशाह ने कमरुद्दीन खाँ के पुत्र इंतजामुद्दौला खानखानाँ के कहने से सफदर जंग को संदेश भेजा कि वह गुसलखाना तथा तोपखाना के मीर पद का त्यागपत्र दे दे। इसका यह तात्पर्य समझ गया और कुछ दिन घर पर ठहर कर त्यागपत्र भेज दिया। इसके न स्वीकार होने पर बिना आज्ञा के चल दिया और नगर के बाहर दो कोस पर ठहरा। प्रति दिन उपद्रव बढ़ने लगा, यहाँ तक कि सफदर-जंग ने एक मिथ्या शाहजादा को खड़ा किया। इस पर अहमद शाह ने इंतजामुद्दौला को वजीर नियत किया। इमादुल्मुल्क सफदर जंग से युद्ध करने लगा, जो छ महीने तक चलता रहा। अंत में इंतजामुद्दौला के मध्यस्थ होने पर इस शर्त पर संधि हो गई कि इलाहाबाद तथा अवध के प्रांत पर सफदरजंग ही बहाल रहेगा। यह अपने प्रांत को चल दिया और १७ जी हिज्जा सन् ११६७ हि० (५ अक्टूबर सन् १७५४ ई०) को मर गया। इसके पुत्र शुजाउद्दौला का वृत्तांत अलग दिया गया है।

२०. अबुलहन तुर्बती, रुक्नुस्सल्तनत ख्वाजा

खुरासान में तुर्बत एक जिला है। कुतुबुद्दीन हैदर, जिसने अद्भुत कार्य किए थे और हैदरी लोग जिससे अपने को बतलाते हैं, यहीं का था। अकबर के समय ख्वाजा शाहजादा दानियाल की सेवा में आया और उसका वजीर तथा दक्षिण का दीवान नियत हुआ। जब जहाँगीर गद्दी पर बैठा तब यह दक्षिण से बुला लिया गया। २ रे वर्ष जब आसफ खाँ महम्मद जाफर वकील हुआ तब उसने प्रार्थना की कि वह इसे अपना सहकारी अपना कार्य ठीक करने को बना ले। इसके बाद जब आसफ खाँ दक्षिण के कार्य में लगा और दीवानी एतमादुद्दौला को मिली तब ख्वाजा ने बादशाह के पास उपस्थित रहने से अपना प्रभाव तथा पहिचान बढ़ाया और ८ वें वर्ष सन् १०२२ हि० (सन् १६१३ ई०) में मीर बख्शी के उच्च पद पर पहुँच गया। एतमादुद्दौला की मृत्यु पर ख्वाजा मुख्य दीवान हुआ और इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब मिला। महाबत खाँ के विद्रोह के समय ख्वाजा आसफजाह तथा इरादत खाँ के साथ नूरजहाँ बेगम की हाथी-पालकी के आगे आगे था और थोड़ी सेना के साथ उन सबने अपने घोड़े तैराए और तर हथियार से महाबत का सामना किया। एकाएक शत्रु ने तीरों की बौछार से बेगम के मनुष्यों को भगा दिया और प्रत्येक अफसर हट गया। ऐसे समय में ख्वाजा अपने घोड़ों से अलग हो गया पर एक काश्मीरी मल्लाह को

सहायता से इसके प्राण बच गए। १९ वें वर्ष में यह काबुल का अध्यक्ष हुआ और इसका पुत्र जफर खाँ दरबार से उसका प्रतिनिधि नियत हो वहाँ भेजा गया। शाहजहाँ के राज्य-काल में इसे छ हजारी ६००० सवार का मंसब मिला। २६ सफर सन् १०३९ हि० (४ अक्टूबर सन् १६२९ ई०) को जब खानजहाँ लोदी आगरे से रात्रि में भागा तब शाहजहाँ ने ख्वाजा तथा अन्य अफसरों को पीछा करने भेजा। यद्यपि कुछ अफसर मारामार गए और उससे युद्ध किया पर खानजहाँ लोदी चंबल पार कर निकल गया। ख्वाजा दिन बीतने पर उसके तट पर पहुँचा। बिना नाव के यह पार उतर नहीं सकता था, इसलिए दूसरे दिन दोपहर तक वहीं ठहरा रहा। इससे खानेजहाँ को सात पहर का समय मिल गया और वह बुंदेलों के देश में पहुँच गया। जुझार के लड़के जुगराज ने उसे रक्षा-वचन दिया और अपने देश से निकल जाने दिया। बादशाही सेना के मार्ग-प्रदर्शकों को मिलाकर दूसरा रास्ता बतला दिया और सेना भी गलत रास्ते से चली गई। इस कारण ख्वाजा तथा अन्य सर्दारगण व्यर्थ जंगलों में टक्कर खाते रहे और सिवा थकावट के कुछ न पाया। जब शाहजहाँ खानेजहाँ को दमन करने बुर्हान-पुर आया तब ख्वाजा तथा अन्य सहायक उसके पास उपस्थित हुए और नासिक तथा त्र्यंबक के बीच के प्रांतों को साफ करने के लिए भेजे गए। उस प्रांत तथा शाहू भोंसला की जागीर में शांति स्थापित करने पर ख्वाजा बादशाह की आज्ञानुसार नासिरी खाँ की सहायता को गया, जो कंधार दुर्ग घेरे हुए था। रास्ते ही में उसके विजय का समाचार मिला, जिससे यह लौट आया।

यह पातूर शेख बाबू, जो पाईं घाट का एक परगना है और एक नदी के किनारे है, पहुँचा जहाँ बहुत कम जल था। इसने वहाँ वर्षा व्यतीत करना निश्चय किया पर एकाएक पहाड़ों से कंप पर बाढ़ आ गई। रात्रि के अंधकार तथा पानी के वेग के कारण आदमी घबड़ा गए और चारों ओर भागे। ख्वाजा तथा अन्य अफसर बिना चारजामे के घोड़ों पर चढ़ गए और उन सब ने किसी प्रकार उस भयानक स्थिति से अपने को बचाया। लगभग दो सहस्र आदमी और ख्वाजा की कुल जायदाद, जिसमें एक लाख रुपये नगद थे, बह गई। ५ वें वर्ष यह काश्मीर का अध्यक्ष नियत हुआ पर साम्राज्य का यह एक वृद्ध पुरुष था, इससे इसका पुत्र जफर खाँ वहाँ का प्रबंध ठीक रखने को इसका प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। ख्वाजा ६ ठे वर्ष सन् १०४२ हि० (सन् १६३२ ई०) में सत्तर वर्ष की अवस्था में मर गया। तालिब कलीम ने तारीख लिखा कि 'वह अमीरुल् मोमिनीन के साथ उन्नति करे।'

ख्वाजा सच्चा और योग्य पुरुष था पर कुछ चिड़चिड़ा और उजड्डचाल का था। इसके उत्तराधिकारी जफर खाँ का अलग वृत्तांत दिया है। एक और पुत्र मुहम्मद खुर्शेद-नजर था।

२१. अबू तुराब गुजराती, मीर

यह शीराज का सलामी सैयद था। इसका दादा मीर इनायतुद्दीन सरअली ने, जिसे हिब्बतउल्ला भी कहते थे, पर जो सैयद शाह मीर नाम से प्रसिद्ध था, विज्ञान में बड़ी योग्यता प्राप्त कर ली थी और यह अमीर सदरुद्दीन का गुरु भाई था। अहमदाबाद नगर के संस्थापक सुलतान अहमद के पौत्र सुलतान कुतुबुद्दीन के समय में यह गुजरात आया। कुछ दिन बाद यह देश लौट गया पर फिर शाह इस्माइल सफवी के उपद्रव के समय अपने पुत्र कमालुद्दीन के साथ सुलतान महमूद बैकरा के राज्य काल में गुजरात आया, जो अबू तुराब का पिता था। यह चंपानेर (महमूदाबाद) में रहने लगा, जो सुलतानों की पहिले राजधानी थी। यहाँ इसने पाठशाला खोली और लाभदायक पुस्तकें लिखने लगा। इसके कई अच्छे लड़के थे, जिनमें सबसे योग्य मीर कमालुद्दीन था और जो बाह्य तथा आंतरिक गुणों के लिए प्रसिद्ध था। यह जब अच्छा नाम छोड़ कर मर गया तब इसके बाद अबू तुराब ही अपने सगे तथा चचेरे भाइयों में सबसे बड़ा था। इन सैयदों के परिवार का मग्रबिह मत से संबंध था, जिसका प्रवर्तक शेख अहमद खत्तू था। ये सलामी कहलाते थे, क्योंकि ऐसा कहा जाता है कि उनमें से किसी का पूर्वज जब पैगम्बर के मकबरे में गया तब उन्हें सलाम शब्द अभिवादन के उत्तर में सुनाई दिया था।

उक्त प्रांत में मीर अबू तुराब ने अपनी सचाई तथा योग्यता से अच्छा प्रभाव प्राप्त कर लिया था। जिस वर्ष अकबर वहाँ युद्धार्थ पहुँचा तब गुजरात के अन्य सर्दारों के पहिले मीर उसके पास उपस्थित हो गया। जोताना थाने पर ख्वाजा मुहम्मद हर्वी और खाने आलम ने इसका स्वागत किया और इसे बादशाह के पास ले गए तथा सलाम करने की इज्जत मिली। अहमदाबाद जाने के पहिले जब यह आज्ञा हुई कि गुजरात के जितने अफसर आ मिले हैं, उनकी जमानत ले ली जाय, जिसमें शंका का कोई स्थान न रह जाय तब एतमाद खाँ, जो उस प्रांत में सबसे अधिक प्रभावशाली था, हब्शियों को छोड़कर सब के लिए जामिन हुआ और मीर तुराब एतमाद खाँ का जामिन हुआ। इसके अनंतर जब आधा गुजरात एतमाद खाँ तथा दूसरे गुजराती अमीरों को सौंप दिया गया और बादशाही सेना खंभात की खाड़ी की ओर समुद्र देखने चली तब इख्तियारुल् मुल्क गुजराती अदूरदर्शिता तथा उच्छृंखलता के कारण अहमदाबाद से भागा। एतमाद तथा दूसरे सर्दार, जिन्होंने शपथ लिया था, जाने ही को थे कि अबू तुराब पहुँच गया और उन्हें बातों में लगा लिया। वे इसे भी कैद कर ले जाना चाहते थे कि बादशाह की ओर से शहबाज खाँ आ पहुँचा और इस कारण उनकी बदनीयती पूरी न हो सकी। अबू तुराब की राजभक्ति प्रगट हुई और उस पर कृपाएँ हुई। तब से बराबर इस पर कृपा बनी रही।

२२ वें वर्ष सन् ९८५ हि० (सन् १५७७ ई०) में यह हज्ज के यात्रियों का मुखिया बनाया गया और पाँच लाख रुपये तथा दस हजार खिलअत इसे मक्का के भिखमंगों को बाँटने के

लिए दिया गया। २४ वें वर्ष में समाचार मिला कि इसने यात्रा समाप्त कर ली है और पैगंबर के पैर का निशान लेकर आ रहा है। इसका कथन था कि फीरोज शाह के समय सैयद जलाल बोखारी जो निशान लाया था उसी का यह जोड़ा है। अकबर ने आज्ञा दी कि मीर आगरे से चार कोस पर कारवाँ सहित ठहरे। आज्ञानुसार वहाँ अफसरों ने एक आनंद-भवन बनाया और बादशाह उच्चपदस्थ सर्दारों तथा विद्वानों के साथ वहाँ आया तथा उस पत्थर को, जो जीवन से अधिक प्रिय है, अपने कंधे पर रखकर कुछ कदम चला। तब अमीर पारी-पारी करके उसे आगरा लाए और बादशाह के आज्ञानुसार वह मीर के गृह पर रखा गया। "खैर कदम" से तारीख (९८७) निकलती है।

अन्वेषकों ने बतलाया है कि उस समय यह खबर उड़ रही थी कि बादशाह स्वयं अपने को पैगम्बर प्रकट कर रहा है, इस्लाम धर्म के विषय में ओछी सम्मति रखता है, जो संसार के अंत तक रहेगा, और उसे हटा देना चाहता है, खुदा हम लोगों को बचावे। इस कारण लोगों का मुख बंद करने को यह ऊपरी आदर और प्रतिष्ठा दिखलाई गई थी। अबुल्फजल इसका समर्थन करता है, क्योंकि वह कहता है कि बादशाह जानते थे कि यह चिन्ह सच्चा नहीं है और जाननेवालों ने उसे झूठ बतलाया है पर परदा रहने देने के लिए, पैगम्बर की इज्जत करने को तथा सीधे सैयद की मानहानि न करने को और व्यंग्य बोलने वालों को कुछ कहने से रोकने को यह सम्मान दिखलाया था। इस कार्य से उन लोगों को लज्जित होना पड़ा, जो दुष्टता से अनर्गल बका करते थे।

२९ वें वर्ष में जब गुजरात का शासन एतमाद खाँ को मिला, जिसने कई वर्ष वहाँ प्रबंध किया था, तब मीर अबू तुराब अमीन हुआ और अपने दो भतीजों मीर मुहीबुल्ला और मीर शरफुद्दीन को साथ लेकर वहाँ चला गया। सन् १००५ हि० (सन् १५९५–७) तक यह जीवित रहा। अहमदाबाद में यह गाड़ा गया। इसका पुत्र मीर गदाई अकबर के अफसरों में भरती था और नौकरी रहते भी उसने सैयदपन तथा शेखपन नहीं छोड़ा।

२२. अबूनसर खाँ

यह शायस्ता खाँ का पुत्र था। औरंगजेब के २३ वें वर्ष में लुत्फुल्ला खाँ के स्थान पर यह अर्ज मुकर्रर पद पर नियत हुआ। २४ वें वर्ष में सुलतान मुहम्मद अकबर के विद्रोह के लक्षण दिखाई दिए। बादशाह के पास उस समय बहुत थोड़ी सेना थी पर उसने असद खाँ को आगे पुष्कर तालाब पर भेजा, जिसके साथ अबूनसर भी नियत हुआ। इसके बाद यह कोरबेगी नियुक्त हुआ पर २५ वें वर्ष में उस पद से हटाया गया। इसके अनंतर यह काश्मीर का अध्यक्ष हुआ। ४१ वें वर्ष में वहाँ से हटाया जाकर मुकर्रम खाँ के स्थान पर लाहौर का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। कुछ कारण से इसका मंसब छिन गया पर ४५ वें वर्ष में इस पर फिर कृपा हुई और मुख्तार खाँ के स्थान पर मालवा का प्रांताध्यक्ष हुआ। इस समय इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। इसके बाद यह कुछ दिन बंगाल में नियत रहा। ४९ वें वर्ष में यह अवध का शासक हुआ और तीन हजारी २५०० सवार का मंसबदार था। इसके बाद का कुछ पता नहीं।

२३. अबू सईद, मिर्जा

यह एतमादुद्दौला का पौत्र और नूरजहाँ बेगम का भतीजा था। अपने सौंदर्य तथा शाहजादापन के लिए प्रसिद्ध था और खाने पहिरने दोनों का विशेष ध्यान रखता था। यह गलीचे आदि बिछावन को स्वयं देखता और आभूषण, चाल तथा सभी सांसारिक बातों के लिए विख्यात था और इसमें इसके बराबर वाले क्या बड़े भी इसकी बराबरी नहीं कर पाते थे। इसकी आडंबर-प्रियता और उच्च विचार ऐसे थे कि कभी २ वह पगड़ी सँभालता ही रह जाता था कि दरबार के उठ जाने का समाचार आ पहुँचता और कभी २ पगड़ी ठीक न होने से वह सवारी करना रोक देता था। अपने दादा की कृपा से वह ऊँचे पद पर पहुँचा और ऊँचा सिर रख सका। वह ऐसा उद्दंड और घमंडी था कि देश तथा आकाश को कुछ नहीं समझता था।

इसका हस्ताक्षर एतमादुद्दौला से बहुत मिलता था इसलिए उसके मंत्रित्व-काल में यही दरख्वास्त, रसीद आदि पर दस्तखत करता था। एतमादुद्दौला की मृत्यु पर यह अननुभव तथा यौवन के कारण अपने चाचा आसफजाही से लड़ गया और महाबत खाँ से मिल गया। शाहजादा सुलतान पर्वेज से मित्रता हो गई और उच्च पद पर पहुँच गया। शाहजादे के साथ दक्षिण गया और उसकी मृत्यु पर दरबार लौट आया। जहाँगीर के २२ वें वर्ष में यह ठट्टा का प्रांताध्यक्ष हुआ। शाहजहाँ की राजगद्दी होने पर

आसफजाह से मनोमालिन्य के कारण यह अपने पद तथा प्रभाव से गिर गया और इसे तीस सहस्र रुपये वार्षिक पेंशन मिलने लगा। बहुत दिनों तक यह आराम तथा शांति से एकांत वास करता रहा। २३ वें वर्ष में बेगम साहिबा की प्रार्थना पर यह अजमेर का फौजदार हुआ और इसे दो हजारी ८०० सवार का मंसब मिला। इसे बाल गिरने की बीमारी थी इससे यह कार्य देख नहीं सकता था। २६ वें वर्ष में इसे चालीस सहस्र वार्षिक मिलने लगा और आगरे ही में यह एकांत वास करने लगा। इसी प्रकार सुख से इसने अंत समय तक व्यतीत कर दिया। औरंगजेब के राज्यारंभ काल में यह मर गया। कविता करने का शौक था और ओजपूर्ण दीवान संकलन करना चाहता था। इसने अपने शैरों का संकलन करके "खुलासए कौनन" नाम रखा। इसका पुत्र हमीदुद्दीन खाँ शाहजादा औरंगजेब का मित्र होने के कारण सफल हुआ। राजा यशवंत सिंह के युद्ध के बाद, जिसमें प्रथम विजय मिली थी, इसे खानाजादखाँ की पदवी मिली। इसके बाद इसका नाम खानी हो गया। २६ वें वर्ष में करमुल्ला की मृत्यु पर यह मूँगी पत्तन का फौजदार हुआ, जो औरंगाबाद से बीस कोस पर गोदावरी के तट पर स्थित है। २९ वें वर्ष में यह दक्षिण के कंधार का अध्यक्ष हुआ।

---

२४. शेख अब्दुन्नबी सद्र

यह गंगोह के शेख अब्दुल् कुद्दूस का पौत्र था, जो कूफा के इमाम अबू हनीफा का वंशधर था और जिसने बाद को भारत में ख्याति प्राप्ति की थी। यह सन् ९४४ हि० (सन् १५३७–३८६०) में मरा था। शेख अब्दुन्नबी साहित्यिक विषयों के विद्वानों में अपने समय में अग्रणी था और हदीस के जानने में भी प्रसिद्ध था। इतना विद्वान होने पर यह चिश्तिया मत का प्रतिपादक था। यह इतनी देर तक स्वाँस रोक सकता था कि एक पहर तक बिना प्रश्वास लिये मानसिक ध्यान कर सकता था। अकबर के जलूस के १० वें वर्ष में मुजफ्फर खाँ दीवान आला के कहने से यह भारत का सदरुस्सुदूर नियत हुआ। कुछ समय में साम्राज्य के काम भी इसकी सम्मति से होने लगे। बादशाह से इतनी मित्रता हो गई कि वह हदीस सुनने इसके घर जाते थे। उस समय शेख के बहकाने पर अकबर धर्मानुसार कार्य करने में तथा मना किए हुए कार्यों के न करने में विशेष उत्साह दिखलाता था यहाँ तक कि स्वयं अजाँ पुकारता, इमाम का कार्य करता और कभी कभी पुण्य कमाने को मस्जिद भी झाड़ता था। एक दिन वर्ष-गाँठ के अवसर पर बादशाह के वस्त्र में केशर का रंग लगा हुआ था, जिसपर शेख खफा हो गए और दीवाने आम में अपनी छड़ी इस प्रकार उठाई कि बादशाह का कपड़ा फट गया। अकबर क्रुद्ध हो गया और अपनी माता को जाकर कुल वृत्तांत से अवगत

कर कहा कि शेख को एकांत में कहना चाहता था। हमीदाबानू बेगम ने कहा कि पुत्र दुखित मत हो। प्रलय के दिन यह तुम्हारी मुक्ति का कारण होगा। उस दिन लोग कहेंगे कि किस तरह एक दरिद्र मुल्ला ने अपने समय के बादशाह से बर्ताव किया था और उस बादशाह ने उसे कैसे सहन कर लिया था।

शेख तथा मखदूमुल्मुल्क प्रति दिन अपनी कट्टरता तथा उलाहने से उसे अप्रसन्न करते रहे, यहाँ तक कि वह इनसे खफा हो गया। शेख फैजी तथा शेख अबुल् फजल ने यह देखकर अकबर से कहा कि इन धर्मांधों से हमारा विज्ञान बहुत बढ़कर है, क्योंकि वे दीन की आड़ में दुनियावी वस्तु संचित करते हैं। 'यदि आप बादशाह सहायता करें, तो हम लोग उन्हें तर्क से चुप कर देंगे।' एक दिन दस्तरख्वान पर केशर मिला भोजन लाया गया। जब अब्दुन्नबी ने उसे खा लिया तब अबुल्फजल ने कहा कि 'शेख तुम्हें धिक्कार है। यदि केसर हलाल है तो तुमने बादशाह पर, जो खुदा का इमाम है, क्यों आक्षेप किया और यदि हराम है तो तुमने क्यों खाया, जिसका तीन दिन तक असर रहता है।' इस प्रकार बराबर झगड़ा होता रहा। २२ वें वर्ष में सयूरगाल तथा अन्य मद्देमआश की जाँच हुई, जिससे ज्ञात हुआ कि शेख ने इतनी धार्मिक कट्टरता तथा तपस्या पर भी सबसे गुणों के अनुसार निष्पक्ष व्यवहार नहीं किया था। हर प्रांत में अलग अलग सद्र नियत थे। २४ वें वर्ष में अकबर ने आलिमों और फकीरों का जलसा किया, जिसमें निश्चय किया गया कि अपने समय का बादशाह ही इमाम और संसार का मुजतहीद है। पहिले के जिस किसी विद्वान का तर्क, जिस

विषय पर एकमत नहीं है, बादशाह सकारें वही संसार को मानना पड़ेगा। तात्पर्य यह कि धार्मिक विषय पर, जिसमें मुजतहीद-गण भिन्न मत हों, जो मत बादशाह संसार की शांति तथा मुसल्मानों के संतोष के लिए उचित समझें वही सबको मान्य होगा और कुरान तथा सुन्नत का विरोधी न होते हुए धार्मिक विषय पर मनुष्य के लाभार्थ जो आज्ञा बादशाह दें उसका विरोध करने से दोनों दुनिया में उसे हानि पहुँचेगी। न्यायशील बादशाह मुजतहीद से बढ़कर है। इसी प्रकार का एक विज्ञापन लिखा गया, जिस पर अब्दुन्नबी, मखदूमुल्मुल्क सुल्तानपुरी, गाजी खाँ बदख्शी, हकीमुल्मुल्क तथा अन्य विद्वानों के हस्ताक्षर थे। यह कार्य सन् ९८७ हि० के रज्जब महीने (अगस्त सन् १५७९ ई०) में हुआ था।

जब अब्दुन्नबी तथा मखदूमुल्मुल्क कई तरह की बातें इस विषय में कहने लगे और यह मालूम हुआ कि वे कह रहे हैं कि उस विज्ञप्ति-पत्र पर उनसे बलात् तथा उनके विचार के विपरीत हस्ताक्षर करा लिया गया है, अकबर ने उसी वर्ष शेख को मक्का जाने वाले कारवाँ का मुखिया बनाकर कुछ धन दे बिदा किया और वहीं के लिए मखदूमुल्मुल्क को नौकरी से छुड़ा दिया। इस प्रकार उन दोनों को अपने राज्य के बाहर कर दिया और आज्ञा दी कि वे दोनों वहीं खुदा का ध्यान करते रहें और बिना बुलाए कभी न लौटें। जब मुहम्मद हकीम की चढ़ाई तथा बिहार-बंगाल के अफसरों के बलवे से भारत में गड़बड़ मचा, उस समय अब्दुन्नबी और मखदूमुल्मुल्क ने, जो ऐसा ही अवसर देख रहे थे, बढ़ाया हुआ वृत्तांत सुनकर लौटने

का निश्चय किया। मक्का के शरीफ के मना करने और बादशाही आज्ञा के विरुद्ध वे दोनों लौटे और २७ वें वर्ष में अहमदाबाद गुजरात पहुँच कर रहने लगे। बेगमों की प्रार्थना पर क्षमा करने का विचार था पर फिर से उन विद्रोहियों के कुवाच्य कहने पर, शेख वहाँ से बुलाया गया और हिसाब देने के बहाने कड़े कैद में डाल दिया गया। यह शेख अबुल्फजल की निरीक्षण में रखा गया, जिसने यह समझ कर कि इसे मार डालने से बादशाह उससे कुछ न पूछेगा, सन् ९९२ हि० (सन् १५८४ ई०) में इसे पुरानी शत्रुता के कारण गला घोंट कर मरवा डाला या स्यात् यह अपनी मृत्यु से मरा।

२५. अब्दुल् अजीज खाँ

यह संसार-प्रिय शेख शेख फरीदुद्दीन गंजशकर का वंशज था। इसके पूर्वजों का निवास-स्थान बिलग्राम के पास असीग्राम था। इसके दादा का नाम शेख अलाउद्दीन था पर वह शेख अलहदिया नाम से अधिक प्रसिद्ध था। कहते हैं कि भट्टः के सैयद महमूद के पुत्र सैयद खान महम्मद का पुत्र सैयद अबुल् कासिम को तीन लड़के थे। इनमें सैयद अब्दुल् हकीम और सैयद अब्दुल् कादिर एक स्त्री के पुत्र थे, जो इसके संबंध ही की थी। दूसरी स्त्री से सैयद बदरुद्दीन था, जिसका असी ग्राम में विवाह हुआ था। इसको कोई पुत्र नहीं था, इसलिए इसकी स्त्री ने अपने भाई के या बहिन के लड़के को गोद ले लिया, जिसका नाम शेख अलहदिया पड़ा। जब सैयद अब्दुल् हकीम का पुत्र सैयद फाजिल दौलताबाद में एक सर्दार का दीवान था तब अलहदिया भी उसके साथ था। अमीर ने उसकी योग्यता देखकर उसे शाही पड़ाव में अपना वकील बनाकर भेज दिया। कार्य को सुचारु रूप से करने के कारण शेख अलहदिया उन्नति करता रहा। इसे तीन लड़के थे और तीसरा पुत्र अब्दुर्रसूल खाँ इस चरित्र-नायक का पिता था।

गाजीउद्दीन फीरोज जंग बहादुर ने औरंगजेब के समय में अब्दुल् अजीज को शाही नौकरी दिलाई। बाद को यह योग्य पद तथा खिद्मत-तलब खाँ पदवी पाकर बीजापुर प्रांत में

नलदुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। मुहम्मदाबाद बीदर प्रांत के ओसा का भी यही अध्यक्ष बनाया गया। निजामुल्मुल्क आसफजाह के समय में यह जुनेर का अध्यक्ष हुआ और उसका कृपापात्र भी हो गया। जब निजामुल्मुल्क दक्षिण में नासिरजंग शहीद को छोड़कर मुहम्मदशाह के पास चले गए और बाजीराव ने युद्ध की तैयारी की तब नासिरजंग ने भी सेना एकत्र करना आरंभ किया और जुनार से अब्दुल् अजीज खाँ को भी मंत्रणा के लिये बुलाया क्योंकि यह साहस के लिए प्रसिद्ध था और मराठों के युद्ध-कौशल को जानता था। मराठों से युद्ध समाप्त होने पर इसे औरंगाबाद का नाएब-सूबेदार नियत किया। निजामुल्मुल्क आसफजाह के उत्तरापथ से लौटने पर जब पिता-पुत्र में वैमनस्य हो गया और नासिरजंग खुल्दाबाद रौजा को चला गया, जो दौलताबाद दुर्ग से दो कोस पर है, तब अब्दुल् अजीज भी छुट्टी लेकर आसफजाह के पास चला आया। यहाँ कृपा कम देखकर यह बहाने से औरंगाबाद से चला गया और पत्र तथा संदेश से नासिर जंग को रौजा से बाहर निकलने को बाध्य किया। अंत में वह मुल्हेर आया तथा सेना एकत्र कर औरंगाबाद के सामने पिता से युद्ध करने पहुँचा। जो होना था वही हुआ। इस कार्य में यह असफल होकर जुनेर चला गया। इसने आसफजाह की दया तथा नीति-प्रियता से अपने दोष क्षमा कराने के लिए बहुत उपाय किए और साथ ही गुप्त रूप से मुहम्मद शाह को पत्र तथा संदेश भेजकर अपने नाम गुजरात की सनद की प्रार्थना की, जो उस समय मराठों के अधिकार में था। जब आसफजाह का पड़ाव त्रिचिनापल्ली में था, उस

समय यह बहुत सी सेना एकत्र कर उस प्रांत को चला। मार्ग में मराठों ने इसको रोका और युद्ध में सन् ११५६ हि० (सन् १७४३ ई०) में अब्दुल् अजीज मारा गया। यह साहसी पुरुष था और तहसील के कार्य में कुशल था। अकारण या सकारण धन वसूल करने में यह कुछ विचार नहीं करता था। इसका एक लड़का महमूद आलम खाँ अपने पिता के बाद जुनेर दुर्ग का शासक हुआ और वहाँ बहुत दिनों तक रहा। जब मराठों की शक्ति बहुत बढ़ गई और सहायता की कोई आशा नहीं रह गई तब इसने दुर्ग उन्हें दे दिया और उनसे जागीर पाया। लिखते समय वह जीवित था। दूसरा पुत्र खिदमत तलब खाँ अंत में नलदुर्ग का अध्यक्ष हुआ और वहीं मर गया।

२६. अब्दुल् अजीज खाँ, शेख

यह बुर्हानपुर के शेख अब्दुल्लतीफ का संबंधी था। औरंगजेब ने शेख का काफी सत्संग किया था और उसे उसके गुण तथा पवित्रता के कारण बहुत मानता था, इसलिए शेख के कहने पर अब्दुल् अजीज खाँ को अपने यहाँ नौकर रख लिया। महाराज जसवंत सिंह के साथ के युद्ध में इसने बहुत प्रयत्न किया, जिसमें इसे इक्कीस घाव लगे थे और इस कारण खिलअत तथा घोड़ा उपहार में पाया। जब औरंगजेब दाराशिकोह का पीछा करता हुआ आगरे से दिल्ली गया तब अब्दुल् अजीज को डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब और खाँ की पदवी मिली तथा वह मालवा के रायसेन दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ। ७ वें वर्ष में यह दरबार बुलाया गया और उसी वर्ष मीर बाकर खाँ की मृत्यु पर सरहिंद चकला का फौजदार नियुक्त हुआ। इसके बाद यह औरंगाबाद-प्रांत के आसीरगढ़ का अध्यक्ष हुआ और २० वें वर्ष में जब शिवाजी भोंसला ने दुर्ग के ऊपर रस्से से सैनिक चढ़ाए तब इसने फुर्ती दिखलाई और उन्हें मारा। बहुत दिनों तक यह वहाँ दृढ़ता से डटा रहा। यह २९ वें वर्ष में सन् १०९६ हि० (सन् १६८५ ई०) में मरा। इसका पुत्र अबुल् खैर इसका उत्तराधिकारी हुआ और ३२ वें वर्ष में राजगढ़ का अध्यक्ष नियत हुआ। जब मराठा सेना ने दुर्ग खाली कर देने को इससे कहलाया, तब भय से रक्षा-वचन लेकर अपने परिवार

तथा सामान सहित यह बाहर निकल आया। मराठों ने वचन तोड़ कर इसका सारा सामान लूट लिया। जब यह बात बादशाह को मालूम हुई तब उसने अबुल् खैर को नौकरी से छुड़ा दिया और एक सजावल नियत किया कि वह देखे कि यह मक्का चला गया। इसकी माता ने बहुत प्रयत्न कर इस आज्ञा को रद्द कराया पर इस दूसरी आज्ञा के पहिले ही यह सूरत से मक्का को रवाना हो चुका था। वहाँ से लौटने पर इस पर फिर कृपा हुई और अपने पिता की पदवी पाई। बुर्हानपुर में शाह अब्दुल् लतीफ के मकबरे का यह अध्यक्ष हुआ। इसका पुत्र मुहम्मद नासिर खाँ उपनाम मियाँ मस्ती दूसरों की नौकरी करता है। यह भी अंत में मर गया।

२७. मज्दुद्दौला अब्दुल्अहद् खाँ

इसके पूर्वज काश्मीर के रहने वाले थे। इसका पिता अब्दुल् मजीद् खाँ अपने देश से आकर पहिले इनायतुल्ला खाँ के साथ रहता था। उसकी मृत्यु पर एतमादुद्दौला क़मरुद्दीन खाँ का मित्र हो कर बादशाही सेवा में भर्ती हो गया। योग्य मुतसद्दी होने से नादिरशाह की चढ़ाई के बाद मुहम्मदशाह के समय में खालसा और तन का दीवान हो गया। इसका मनसब बढ़कर छ हजारी ६००० सवार का हो गया और झंडा, डंका, झालरदार पालकी तथा मज्दुद्दौला बहादुर की पदवी पाई। इसे दो पुत्र थे, जिनमें एक मुहम्मद परस्त खाँ जल्दी मर गया और दूसरा अब्दुल् अहद् खाँ अपने समय के बादशाह शाहआलम को प्रसन्न कर बादशाही सर्कार के कुल मुकद्मों का निरीक्षक हो गया तथा सम्राज्य का कुल काम उसकी राय पर होने लगा। इसे इसके पिता की पदवी और अच्छा मनसब मिला। सन् ११९३ हि० में एक शाहज़ादे को नियमानुसार नियत कर उसके साथ सेना सहित सरहिंद गया। जब वहाँ का काम इच्छानुसार नहीं हुआ और सिक्खों के सिवा पटियाला का जमींदार भी अमर सिंह की सहायता को आ गया तब यह शाहजादा के साथ लौट आया। इस कारण बादशाह इससे क्रुद्ध हो गया। इसके और जुल्फिकारुद्दौला नजफ़ खाँ के बीच पहिले से वैमनस्य चला आ रहा था, इस लिए बादशाह ने इसे उसीसे कैद करा दिया। लिखते समय यह कैद ही में था। इसकी जागीर के बहाल रहते हुए इसका घर और सामान जब्त हो गया था।

२८. अब्दुल्‌कवी एतमाद खाँ, शेख

यह अपनी उदारता, गुण और हठधर्म के लिए प्रसिद्ध था। यह बहुत दिनों से शाहजादा औरंगजेब की सेवा में रहता था और अपने सत्य बोलने और ठीक काम करने से विश्वास तथा प्रतिष्ठा का पात्र बन गया। जिस समय औरंगजेब बादशाहत के लिए दक्षिण से आगरा को चला तब इसका मनसब नौ सदी से डेढ़हजारी हो गया तथा सभी युद्धों में यह साथ रहा। राजगद्दी के बाद इसको अच्छा मनसब मिला। ४ थे वर्ष एतमाद खाँ की पदवी पाई। यह सेवा और विश्वास में बढ़ा हुआ था तथा अनुभव और मामिला समझने में प्रसिद्ध था, इस लिए सब सरदारों से उसका सनमान और सामीप्य बढ़ गया था। कहते हैं कि वह एकांत में बादशाह के पास बैठता था और बहुधा बादशाह उसकी बात को सुनते और उसकी प्रार्थना स्वीकार करते थे। पर इसने कभी किसी के लिए अच्छी बात नहीं कही और दान तथा भलाई करने का मार्ग बंद रखा। बादशाह के सामीप्य और उस्ताद होने पर भी किसी की सहायता नहीं किया। इसमें अहंकार तथा ऐंठ बहुत थी और अत्यंत धर्मांध और कठोर था।

सईदाई सरमद, जो असल में अपने कथनानुसार यहूदी और दूसरों से सुनने से अरमनी था, तथा इसलाम के मानने पर मीर अबुल्‌कासिम कंदजी की सेवा में रह कर व्यापार के कारण

काशान से ठट्टा आकर किसी हिंदू के फेर में पड़ गया और जो कुछ उसके पास था सब लुटा कर नंगा बाबा हो गया। जब वह दिल्ली आया तब उसका दाराशिकोह का सत्संग हुआ क्योंकि वह सौंदर्य के पागलों पर विश्वास रखता था। इसके अनंतर आलमगीर बादशाह हुआ और वह धर्मभीरु बादशाह अपने शरीयत की आज्ञा का पाबंद था इसलिए मुल्ला अब्दुल्क़वी को आज्ञा मिली कि उसको बुलाकर कपड़ा पहिरावे। जब समद को लिवा लाए तब मुल्ला ने उससे कहा कि तुम क्यों नंगे रहते हो। कहा कि शैतान क़वी है और यह रुबाई (उर्दू अनुवाद) पढ़ा—

उच्चता रहते हुए मुझको बनाया नीचा।
रहते चश्मे के मिला मुझको न दो जाम भरा॥
वह बगल में मेरे मैं करता फिरूँ खोज उसकी।
इस अजब दर्द ने है मुझको बनाया नंगा॥

मुल्ला ने दूसरे मुल्लाओं की राय से उसे प्राण दंड दिया और यह रुबाई (उर्दू अनुवाद) उस पर लिख दिया—

भेद को उनकी हकीकत के कोई क्या जाने।
है वह चर्ख बरीं से भी बलंद क्या माने॥
'मुल्ला' कहता है कि फलक तक अहमद जावे।
कहता सरमद है कि फलक नीचे आवे॥

वास्तव में उसके मारे जाने का सबब उसका दारा शिकोह का साथ था, नहीं तो वैसे नंगे साधु हर कूचे और गली में घूमते रहते हैं।

इसके साथ साथ मुल्ला अब्दुल्क़वी व्याकरण अच्छी तरह

जानता था। ९ वें वर्ष सन् १०७७ हि० में एक तुर्कमान कलंदर ने इसे मार डाला और यह घटना विचित्र है। इसका विवरण इस प्रकार है कि जब तरबियत खाँ ईरान के शाह अब्बास द्वितीय के यहाँ राजदूत होकर गया तो अपनी उच्छृंखलता तथा दुःशीलता से राजदूत के नियम न बजा लाकर उस उन्माद-प्रकृति शाह को क्रुद्ध करके पुरानी मित्रता में मैल डाल दी और दोनों तरफ से आक्रमण होने लगे। इसी समय काबुल के सूबेदार सैयद अमीर खाँ ने कुछ मुगल तुर्कमानों को जासूसी करते हुए पकड़ कर दरबार भेजा। एतमाद खाँ उनकी जाँच करने को नियत हुआ। उक्त खाँ इनमें से एक को, जो तुर्कमान सिपाही था, बिना बेड़ी हथकड़ी के एकांत में बुलाकर उससे हाल पूछने लगा। उसी समय वह मूर्ख अपनी जगह से आगे बढ़कर उस नौकर के पास पहुँचा, जो उसका हथियार रखे हुए था, और उसके हाथ से तलवार छीनकर उसको लिए चालाकी से लौट कर उक्त खाँ पर एक हाथ ऐसा मारा कि वह मर गया। पास वालों ने भी उसको मार डाला। खाफी खाँ ने यह घटना दूसरी चाल पर अपने इतिहास में लिखा है। यद्यपि उक्त खाँ का अन्वेषण, क्योंकि लेखक और उस मृत के बीच परिचय काफी था, मीरातुल् आलम और आलमगीर नामा से भी मालूम था पर जो कुछ लिखा गया है वह उस कलंदर के मित्रों से सुना गया है तथा अजीब है इसलिए वह यहाँ लिखा जाता है। वह कलंदर ईरान का एक चालाक पहलवान था और यह झुंड अपने उपद्रव तथा उद्दंडता से सरदारों से रुपये ऐंठ लेता था और अपना काम चलाता था। इन आदमियों में से सूरत और बुर्हानपुर में दो

बार काम हो चुके थे। जब यह दिल्ली आया तब ईरानी सरदारों से उत्साह पाकर इसने कुछ कलंदर इकट्ठे कर लिए और सब बाग में प्रति दिन एकत्र होकर गाना, बजाना करने लगे। इस हाल के प्रसिद्ध होने पर इन पर कुछ लोग कीमियागरी, डाँका और चोरी का शक करने लगे। अंत में समाचार मिला कि वह शाह का जासूस है। उसकी बहादुरी और साहस सबको मालूम था इसलिए कोतवाल अवसर के अनुसार जिस समय वह सोया था उस समय उसको कैद कर हथकड़ी बेड़ी पहिराकर बादशाह के सामने ले गया। एतमाद खाँ पता लगाने के लिए नियत हुआ। पूछने पर उसने बार बार कहा कि मैं यात्री हूँ लेकिन कुछ लाभ नहीं हुआ और उसे मौखिक धमकी दी गई। उस मृत्यु-संकट में पड़े हुए ने देखा कि अब छुटकारा नहीं है तब कहा कि यदि क्षमा मिले तो जो बात है नवाब के कान में कह दूँ। पास पहुँचकर वह इस प्रकार झुका कि मानों वह कुछ कहना ही चाहता है, पर इस कारण कि उसके दोनों हाथ बँधे हुए थे उसने अँगुलियों के सिरे से नीमचे को, जो एतमाद खाँ की मसनद पर रखा हुआ था, फुर्ती और चालाकी से उठाकर म्यान सहित उसके सिर पर ऐसा मारा कि सिर खीरे की तरह फट गया। बादशाह ने उसके मारे जाने का हाल सुनकर बहुत शोक किया और उसके लड़कों और संबंधियों को मनसब आदि दिया।

२६. अब्दुल्मजीद् हरवी, ख्वाजा आसफ खाँ

यह शेख अबूबक्र तायबादी का वंशधर था, जो अपने समय का एक सिद्ध साधु था। जब सन् ७८२ हि० (सन् १३८०–१ ई०) में तैमूर हेरात विजय को चला, जिसका शासक मलिक गियासुद्दीन था, तब वह तायबाद आया। उसने शेख को कहला भेजा कि वह उससे मिलने क्यों नहीं आया। शेख ने कहा कि मुझे उससे क्या मतलब है। तब तैमूर स्वयं उसके पास गया और उससे पूछा कि आपने मलिक गियासुद्दीन को क्यों नहीं ठीक सम्मति दी। उसने उत्तर दिया कि मैंने अवश्य उपदेश दिए पर उसने ध्यान नहीं दिया। खुदा ने तुम्हें उसके विरुद्ध भेजा है, अब मैं तुम्हे उपदेश करता हूँ कि न्याय करो। यदि तुम भी ध्यान न दोगे तो खुदा दूसरे को तुम पर भेजेगा। अमीर तैमूर कहा करता था कि हमने अपने राज्य काल में जिस दर्वेश से बातचीत की, उसमें प्रत्येक अपने हृदय में अपना ही ध्यान रखता था, केवल इसी शेख को हमने अहमत्व से अलग पाया।

ख्वाजा अब्दुल्मजीद् हुमायूँ का सेवक था और भारत के अधिकार के समय यह अपनी सचाई तथा कौशल के कारण दीवान नियत हुआ था। जब अकबर बादशाह हुआ तब ख्वाजा दीवानी से सर्दारी में आ गया और खड्ग तथा लेखनी का मिलन हुआ। जब अकबर बैराम खाँ के सिलसिले में पंजाब गया तब ख्वाजा को आसफ खाँ की पदवी मिली और दिल्ली का अध्यक्ष

हुआ। इसे डंका, झंडा तथा तीन हजारी मंसब मिला। जब अदली के गुलाम फत्तू, जिसने चुनार पर अधिकार कर लिया था, दुर्ग देने को तैयार हुआ तब आसफ खाँ बादशाही आज्ञानुसार शेख मुहम्मद गौस के साथ वहाँ गया और उस पर अधिकार कर लिया। सरकार कड़ा मानिकपुर भी इसे जागीर में मिला। इसी समय गाजी खाँ तनवरी, जो एक मुख्य अफगान अफसर था तथा अकबर के यहाँ कुछ दिन से सेवक था, भागा और भट्टा प्रांत में चला गया, जो स्वतंत्र राज्य था। यहाँ सुरक्षित रहकर षड्यंत्र करने लगा। ७ वें वर्ष में आसफ खाँ ने वहाँ के राजा रामचंद्र को संदेश भेजा कि वह अधीनता स्वीकार कर ले और विद्रोहियों को सौंप दे। राजा ने अहंकार के कारण विद्रोहियों से मिलकर युद्ध की तैयारी की। आसफ खाँ ने वीरता दिखलाई और भगैलों को मारा। राजा परास्त हो कर बांधवगढ़ में जा बैठा, जो उस प्रांत का दृढ़तम दुर्ग है। अंत में उसने अधीनता स्वीकार कर लिया और अकबर के पास के राजाओं के मध्यस्थ होने पर आसफ खाँ को आज्ञा मिली कि राजा पर अब चढ़ाई न करे। इस पर आसफ खाँ हट आया पर इस विजय से उसकी शक्ति बढ़ गई थी, इसलिए गढ़ा विजय करने का उसने विचार किया। भट्टा के दक्षिण में गोंडवाना नामक एक विस्तृत प्रांत है, जो डेढ़ सौ कोस लंबा और अस्सी कोस चौड़ा है। कहते हैं कि पहिले इसमें अस्सी सहस्र ग्राम थे।

यहाँ के निवासी अधिकतर नीच जाति के गोंड हैं, जो हिंदुओं से घृणा की दृष्टि से देखे जाते हैं। पहिले बहुत से राजों ने राज्य किया था पर इस समय शासन रानी दुर्गावती के

हाथ में था। उसने अपने साहस, राज्य-कौशल तथा न्याय से कुल प्रांत को एक कर रखा था। उस प्रांत में गढ़ा एक भारी नगर था और कंटक एक गाँव का नाम है। दूतों से उस प्रांत के मार्गों का कुल हाल जानकर ९ वें वर्ष में दस सहस्र सवारों के साथ उस पर चढ़ाई की। रानी उस समय तक अपनी सेना एकत्र नहीं कर सकी थी इसलिए थोड़ी ही सेना के साथ युद्ध करने को तैयार हुई। उसने कहा कि 'हमने इस देश का बहुत दिनों तक राज्य किया है अब किस प्रकार भाग सकती हूँ ? ससंमान मृत्यु अप्रतिष्ठित जीवन से उत्तम है।' उसके अफसरों ने कहा कि युद्ध करने का विचार बहुत ठीक है पर उपाय के सुमार्ग को छोड़ देना साहस की नीति नहीं है। उन्हें कोई स्थान तब तक के लिए दृढ़ कर लेना चाहिए, जब तक कुल सेना तैयार न हो जाय। यही किया गया। जब आसफ खाँ गढ़ा ले लेने पर भी नहीं लौटा, तब रानी ने अपने अफसरों को बुलाकर कहा कि 'मैं युद्ध ही चाहती हूँ। जो यही चाहता हो वह हमारा साथ दे। तीसरा मार्ग नहीं है। विजय या मृत्यु ये ही दो मार्ग हैं।' युद्ध आरंभ कर दिया। जब उसे समाचार मिला कि उसका पुत्र वीरशाह घायल हो गया तब उसने आज्ञा दी कि उसको युद्ध-क्षेत्र से हटाकर सुरक्षित स्थान में ले जाँय पर जब स्वयं घायल हुई तब अपने एक विश्वासपात्र से कहा कि 'युद्ध में तो मैं हार गई पर ईश्वर न करे कि मैं नाम तथा ख्याति में पराजित हो जाऊँ। इसलिए तुम अपना कार्य पूरा करो और मुझे छुरे से मार डालो।' पर उसका साहस नहीं पड़ा तब उसने स्वयं अपने हाथ से जान दे दी। अब आसफ खाँ चौरागढ़ विजय करने गया,

जिसे वीर शाह ने दृढ़ कर रक्खा था और जो दुर्ग तथा राजधानी होते अपने कोषागारों के लिए प्रसिद्ध था। युद्ध में वीर शाह ने वीर गति पाई और दुर्ग विजय हो गया। आसफ खाँ अपनी इस विजय पर, जो इसके जीवन का सबसे बड़ा कार्य था, बहुत कोष पाने से बड़ा घमंडी हो गया। उसने कुमार्ग ग्रहण किया और एक सहस्र हाथियों में से केवल दो सौ हाथी बादशाह के पास भेजे। १० वें वर्ष में जब खानेजमाँ शैबानी ने पूर्व में नियुक्त उजबेग अफसरों से मिलकर विद्रोह किया और मानिकपुर दुर्ग में मजनूँ खाँ काकशाल को घेर लिया तब आसफ खाँ पाँच सहस्र सवारों सहित उसकी सहायता को आया। जब अकबर विद्रोह-दमन के लिए उस प्रांत में आया तब आसफ खाँ ने हाजिर होकर गढ़ा की बहुमूल्य वस्तुएँ भेंट दीं और अपनी सेना दिखलाई। इस पर फिर कृपा हुई और यह शत्रु का पीछा करने भेजा गया। बादशाही मुंशियों ने, जो इसके घूस के इच्छुक हो चुके थे, लोभ तथा द्वेष से इसके धन एकत्र करने तथा गबन करने का आक्षेप किया। चुगलखोरों ने यह बात बढ़ा कर आसफ खाँ से कहा, जो भय से २० सफर सन् ९७३ हि० (१६ सितंबर सन् १५६५ ई०) को झूठी शंका करके भागा। ११ वें वर्ष में महदी कासिम खाँ गढ़े का अध्यक्ष नियुक्त हुआ और आसफ खाँ बहुत पश्चाताप् करता हुआ उस प्रांत को छोड़कर अपने भाई वजीर खाँ के साथ खानेजमाँ का निमंत्रण स्वीकार कर जौनपुर में उससे जा मिला। पहिली ही भेंट में इसे खानेजमाँ के अत्याचार तथा घमंड का परिचय मिला, जिससे इसे वहाँ आने का पछतावा हुआ और जब इसने देखा कि इसकी संपत्ति का लोभ खान-

जमाँ के हृदय में समा गया है तब भागने का अवसर देखने लगा। इसी समय खानजमाँ ने इसको अपने भाई बहादुर खाँ के साथ अफगानों पर भेजा पर इसके भाई वजीर खाँ को अपने पास रख लिया। तब दोनों भाई ने भागना निश्चय कर मानिकपुर से अपना अपना रास्ता लिया। बहादुर खाँ ने पीछा किया और युद्ध हुआ। आसफ खाँ हार गया और पकड़ा गया। उसी समय वजीर खाँ वहाँ पहुँच गया और कुल वृत्तांत से अवगत हुआ। बहादुर खाँ के सैनिक लूटने में लगे थे इसलिए वजीर खाँ के धावा करने पर बहादुर खाँ भागा। भागते समय उसने आसफ खाँ को मार डालने का इशारा किया, जो हाथी पर बँधा हुआ था। उस पर दो एक चोट हुए और उसकी उँगलियाँ कट गई तथा नाक पर घाव हो गया पर वजीर खाँ के पहुँचने से वह बच गया। सन् ९७३ हि० (सन् १५६५–६६ ई०) में दोनों भाई कड़ा पहुँचे। आसफ खाँ ने वजीर खाँ को मुजफ्फर खाँ तुरबती के पास आगरे भेजा कि वह मध्यस्थ होकर क्षमा पत्र दिला दे। मुजफ्फर खाँ आज्ञानुसार सन् ९७४ हि० में पंजाब जाता था और वजीर खाँ को साथ लिवा जाकर शिकारखाने में अकबर के सामने हाजिर कर क्षमा करने की प्रार्थना की। आज्ञा हुई कि आसफ खाँ मजनू खाँ के साथ कड़ा मानिकपुर की सीमा की रक्षा करे। उसी वर्ष अकबर ने फुर्ती से कूच कर खानजमाँ और बहादुर खाँ को मार डाला। इस युद्ध में आसफ खाँ ने उत्साह तथा राजभक्ति दिखलाई। सन् ९७५ हि० (सन् १५६८ ई०) में इसे हाजी मुहम्मद खाँ सीस्तानी के बदले बीआना

जागीर में मिला, कि यह वहाँ जाकर राणा उदयसिंह के विरुद्ध तैयारी करे। जब उस वर्ष में रबीउल् औव्वल महीने के मध्य (सितं० १५६७ ई०) में अकबर राणा को दंड देने के लिए आगरे से रवाना हुआ तब उसने जयमल को, जो पहिले मेड़ता में था, चित्तौड़ में छोड़ा और स्वयं जंगलों में चला गया। आसफ खाँ ने इस घेरे में बहुत काम किया। चित्तौड़ एक पहाड़ी पर है, जो एक कोस ऊँचा है और यह एक ऐसे मैदान में है, जिसमें और कोई ऊँचा टीला आसपास नहीं है। इसका घेरा नीचे छ कोस है और ऊपर जहाँ दीवाल है तीन कोस है। पत्थर के बड़े तालाबों के सिवा, जिसमें वर्षा का जल रहता है, ऊँचे पर सोते भी हैं। चार महीने सात दिन पर १२ वें वर्ष में २५ शाबान (२४ फरवरी सन् १५६८ ई०) को दुर्ग टूटा और चित्तौड़ का कुल सरकार आसफ खाँ को जागीर में मिला।

---

३०. अब्दुल् वहाब, काजीउल् कुजात

यह गुजरात-पत्तन-निवासी शेख मुहम्मद ताहिर बोहरा का पौत्र था। मुहम्मद ताहिर में अनेक गुण थे और वह हज्ज कर आया था, जहाँ उस से शेख अली मुत्ताकी से भेंट हुई थी। यह उसका शिष्य हो गया और अपने समय का पवित्रता, सिद्धाई तथा शरअ के ज्ञान में अद्वितीय हुआ। जब यह अपने देश को लौटा तब अपनी जाति में प्रचलित विश्वास तथा व्यवहार को छोड़कर जौनपुर के सैयद मुहम्मद के महदवी मतानुलंबियों को दमन करने में प्रयत्न किया। धर्म-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिए अपने गुरु शेख के अंतिम उपदेशों के अनुसार नियम बनाए तथा उसपर उपदेश दिए। वह बहुधा कहता कि क्यों न एक मनुष्य दूसरे के ज्ञान से लाभ उठाए। मजमउल् बहार ग़रीबुल्लु-ग़ातुलहदीस नामक इसकी एक रचना प्रसिद्ध है। सन् ९८६ हि० (सन् १५७८ ई०) में उज्जैन और सारङ्गपुर के बीच के सड़क पर कुछ मनुष्यों ने इस पर आक्रमण कर इसे मार डाला। कहते हैं कि उसने शपथ खाई थी कि जब तक उसकी जाति के हृदय से शिआपन का अंधकार तथा अन्य कुफ्र निकल न जायगा, तब तक वह पगड़ी नहीं बाँधेगा। जब सन् ९८० हि० (सन् १५७२ ई०) में अकबर गुजरात आया तब शेख से भेंट की और उसके सिरपर पगड़ी बाँधी तथा कहा कि आपके शपथ को पूरा करना हमारा काम है। उसने मिर्जा कोका को गुजरात में

नियत किया और शेख ने उसकी सहायता से अपनी जाति की बहुत सी चाल बंद करा दी। कुछ समय बाद जब वहाँ का शासन एक पारसीय सर्दार को मिला, तब उसकी सहायता से उसकी जाति वाले फिर अपनी रिवाज चलाने लगे। शेख ने अपनी पगड़ी फिर उतार पटकी और आगरे को चला। सैयद वजीउद्दीन गुजराती के मना करने पर भी उसने नहीं माना और जो होना था वही हुआ। उसका शव मालवा से नहरवाला, जो पत्तन का दूसरा नाम है, लाया गया और अपने पूर्वजों के मकबरे में गाड़ा गया।

काजी अब्दुल वहाब धर्मशास्त्र का अच्छा ज्ञाता था और शाहजहाँ के समय में अपने जन्मस्थान पत्तन का बहुत दिनों तक काजी रहा। जब शाहजादा औरंगजेब दक्षिण का शासक हुआ तब यह उसकी सेवा में उपस्थित हुआ और सम्मान पाया। औरंगजेब के गद्दी पर बैठने के समय से अब्दुल् वहाब सेना का काज़ी नियत हुआ और अच्छी प्रतिष्ठा पाई। इसके पूर्वजों में से किसी ने इतना ऊँचा पद नहीं पाया था, क्योंकि बादशाह कट्टर धार्मिक था जो इतने बड़े देश का साम्राज्य कुफ्र मिटाने के नियमों पर कायम रखना चाहता था। नगरों तथा कस्बों के काजी वहाँ के शासकों से मिलकर दंड का स्वत्व सोने के बदले बेंचते थे। बादशाह का क़ाज़ी, जो अपने को फकीर तथा धार्मिक प्रकट करता था, हरएक कार्य में हस्तक्षेप करता था और 'केवल मैं दूसरा नहीं' का झंडा ऊँचा किए था। उच्च पदस्थ अफसर उससे डरते तथा डाह करते थे। इन सब ढोंग के होते रुपये का ढेर बटोरने तथा जमा करने में ये काज़ी बहुत बढ़े हुए थे। महाबत लहरास्प अपने साहस के लिए प्रसिद्ध था। एकबार

जब वह दक्षिण की चढ़ाई पर भेजा गया और राजधानी के पास कुछ दिन तक सेना को अग्रिम वेतन दिलाने के लिए रुका रहा तब उसे ज्ञात हुआ कि तीन चार लाख रुपयों के मूल्य का काश्मीर तथा आगरा का माल, जिसे काजी ने खरीदा था, अहमदाबाद के अन्य सौदागरों के माल के साथ भेजा जा रहा है। यह काजी से वैमनस्य रखता था, इसलिए इन सबको छीन लिया और सेना में वेतन रूप में वितरित कर दिया। जब बादशाह को यह सूचित किया गया तब महाबत ने उत्तर लिखा कि आवश्यकता पड़ने से सौदागरों से ये सामान उधार लिए गए थे, जो मुनाफे सहित लौटा दिए जायँगे। क़ाज़ी ने समझ लिया कि वह कुछ नहीं कर सकता, केवल मौन धारण कर सकता है। १७ वें वर्ष में बराबर बीमार रहने से वह हसन अब्दाल से राजधानी आया। लाहौर का क़ाज़ी अली अकबर उसका स्थानापन्न काजी नियत हुआ। यह १९ वें वर्ष के आरंभ में १८ रमजान सन् १०८६ हि० (२६ नवंबर १६७५ ई०) को दिल्ली में मर गया।

इसके चार लड़के थे। बड़ा शेखुल् इसलाम राजधानी का क़ाज़ी हुआ। यह अपने पिता की मृत्यु पर बादशाह के बुलाने पर आया और कंप का क़ाज़ी हुआ। इसमें बनावट नहीं थी। इसने अपने पिता के छोड़े धन में से एक दाम तक नहीं लिया, जो सब मिलाकर एक लाख अशर्फी, पाँच लाख रुपये, जवाहिरात आदि था, और सब अन्य हिस्सेदारों में बाँट दिया। इसने उचित जीवन व्यतीत किया। समय के प्रभाव को समझ कर, जब मनुष्य झूठ तथा अत्याचार के आदी हो गए थे, यह साक्षी तथा साक्ष्य पर

भरोसा न कर वादी तथा प्रतिवादी में सुलह कराने पर विशेष प्रयत्न करता।

कहते हैं कि बादशाह ने बीजापुर तथा हैदराबाद की चढ़ाइयों के धर्म पूर्ण होनेपर इससे पूछा था पर इसने उसके विचार के विरुद्ध अपनी सम्मति दी थी। २७ वें वर्ष में खुदाई आज्ञा से नौकरी छोड़ कर अन्य सांसारिक बंधनों को भी तोड़ डाला। बादशाही कृपाओं और बुलाने पर भी इसने नौकरी की ओर रुचि नहीं की। इसके कहने पर काजी अब्दुल् वहाब के दामाद सैयद अबू सईद को कंप का काजी नियत किया, जो राजधानी में था। २८ वें वर्ष में मक्का जाने की छुट्टी ली और इसके सूरत लौटने पर औरंगजेब ने इसे बुला भेजा और इसपर कृपाएँ की। जैसे कई बार उसने अपने हाथ से इसके कपड़े में इत्र लगाए और काजी तथा सद्र पद स्वीकार करने को स्वयं कहा। इसने अस्वीकार कर दिया और अपने देश जाकर अपने पूर्वजों के मकबरों को देखने तथा अपने परिवार से मिलने के बाद लौट आने के लिए छुट्टी की प्रार्थना की। इसके बाद यह खुदा से दुआ करता कि बादशाही काम से पुनः अपवित्र न होने पावे। ४२ वें वर्ष में एक प्रेम-पूर्ण फर्मान इसके भाई नूरुलूहक के हाथ भेजा गया कि यदि वह बादशाह के पास उपस्थित होकर सद्र की पदवी स्वीकार करें तो वह उसे मिल जाएगी। इसने लाचार होकर इच्छा न रहते हुए भी अहमदाबाद से यात्रा आरंभ कर दी क्योंकि यह संसार से अलग रहकर सच्चे ईश्वर से मिलना चाहता था। उसी समय यह बहुत बीमार हो गया और सन् ११०९ हि० (सन् १६९८ ई०) में जहाँ जाना चाहता था वहाँ

चला गया। बादशाह ने दुःखित होकर कहा कि 'वही सुखी है जो हज्ज करने के बाद दुनिया के फंदे में नहीं पड़ा।' दो सौ वर्ष के तैमूरी राज्य में कोई काजी पवित्रता तथा सचाई के लिए इसके समान नहीं हुआ। जब तक यह काजी रहा बराबर उस पद से हटने का प्रयत्न करता रहा। बादशाह इसे नहीं जाने देता था पर बीजापुर चढ़ाई में, जब मुसल्मानों के विरुद्ध लड़ाई थी, यह हट गया।

जो लोग धर्म को संसार के बदले बेंचते हैं, वे इस पद को बहुत चाहते हैं और इसे पाने के लिए घूस में बहुत व्यय करते हैं, जिससे उसके मिलने पर बहुतों का हक मार कर उसका सैकड़ों गुणा कमा लें। वे निकाह और महर की फीस पर अपनो माता के दूध से बढ़कर स्वत्व समझते हैं। कस्बों के वंश परंपरा के काजियों को क्या कहा जाय, क्योंकि उनके लिए शरअ का जानना शत्रु का काम है और देशपांडे के रजिष्टर तथा जमींदारों का कथन उनके लिए शरअ और पवित्र पुस्तक है। काजियों के ज्ञान तथा व्यवहार के विषय में यह कहा जाता है कि प्रत्येक तीन में एक स्वर्ग का है। ख्वाजा मुहम्मद पारसा ने फस्लुलखिताब में लिखा है कि 'हाँ वह काजी वहाँ है पर वह स्वर्ग का काजी है। इस जाति के कुकर्मों तथा मूर्खताओं का कौन वर्णन कर सकता है, जो गँवारों से भी बुरे हैं।'

मृत शेखुल् इसलाम को चार संतानें थीं। इन्हीं में एक शेख सिराजुद्दीन बरार का दीवान हुआ। इसने भी शाही नौकरी छोड़ी और दर्वेश का बाना बनाया। ख्वाजा अब्दुर्रहमान का यह शिष्य हुआ, जिसने बहुत दिनों से पदवी तथा धन को त्याग पत्र दे

दिया था और खुदा पर श्रद्धा के द्वार को खटखटाता रहा था तथा जो खुदा की याद और ध्यान का गुरु हो गया था। औरंगजेब की मृत्यु पर यह शेख के साथ राजधानी आया और अपने समय पर मर गया। दूसरा पुत्र मुहम्मद इकराम था, जो बहुत समय तक अहमदाबाद का सदर रहा। इसे शेखुल-इसलाम की पदवी मिली। अंत में अंधा होकर सूरत में रहने लगा, जहाँ वर्तमान राजा के समय मर गया। काजी अब्दुल् वहाब के पुत्रों में नूरुलहक भी था, जो दोनों एक दूसरे से बहुत मिलते थे। एक दिन बादशाह को शक हो गया कि इनमें कौन-कौन है। बड़ा सेना का हिसाब रखने वाला था और दूसरा दारोगा-खास था। अब्दुल् हक मुहम्मद का पुत्र मुहम्मद मआली खाँ शराबी तथा संगीत-प्रेमी था। स्वयं बिना लज्जा के गाता बजाता। शिकार का भी शौकीन था। वर्तमान राज्यकाल में यह बरार के अंतर्गत मलकापुर का बहुत दिनों तक फौजदार रहा, जो बुर्हानपुर से १८ कोस पर है। अट्ठारह वर्ष के लगभग हुए कि वह मर गया।

भारतीय भाषा में बोहरा का अर्थ व्यापारी है और इस जाति के बहुत आदमी व्यापारी हैं, इसलिए ये बोहरा कहलाए। कहते हैं कि इसके साढ़े चार सौ वर्ष पहिले मुल्ला अली नामक विद्वान् के प्रोत्साहन से, जिसका मकबरा खंभात में है, गुजरात के कुछ मनुष्य, जो उस समय मूर्ति-पूजक थे, मुसलमान हो गए। वह इमामिया था, इसलिए यह सब वही हुए। उसके बाद जब सुलतान अहमद, जो दिल्ली के सुलतान फीरोजशाह का एक विश्वस्त अफसर था, यहाँ आया और इसलाम धर्म फैलाने

लगा तब इनमें से कुछ लोग उस समय के मुल्लाओं के उपदेश पर सुन्नी हो गए, जो सभी सुन्नी थे। इन दोनों में आरंभ ही से झगड़ा तथा वैमनस्य चला आ रहा था, इसलिए अब भी वह झगड़ा उठता है। जो शीआ बचे हैं, वे सर्वदा अपनी जाति के पवित्र तथा विद्वान् मनुष्य को मानते हैं और उन्हीं से धार्मिक बातें पूछते हैं। वे अपने धन का पाँचवा हिस्सा मदीना के सैयदों को भेजते हैं और जो कुछ दान करते हैं वह सब पूर्वोक्त विद्वान् को देते हैं, जो उसी जाति के गरीबों में बाँटता है।

---

३१. अबुल हादी, ख्वाजा

यह सफदर खाँ ख्वाजा कासिम का बड़ा पुत्र था। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में यह सिरौंज में था, जहाँ इसके पिता की जागीर थी। ४ थे वर्ष में जब खानजहाँ लोदी दरियाखाँ रुहेला के साथ दक्षिण से मालवा के इस ग्राम में आया तब इसने उसकी रक्षा का भार लिया। २० वें वर्ष में इसका मंसब नौ सदी ६०० सवार का था पर २१ वें में बढ़कर डेढ़ हजारी ८०० सवार का हो गया, जिसमें २३ वें वर्ष में २०० सवार बढ़ाए गए। २६ वें वर्ष में यह दारा शिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया। बिदाई के समय इसे दो हजारी १००० सवार का मंसब, खिलअत तथा चाँदी के साज सहित घोड़ा मिला। २७ वें वर्ष में इसे झंडा भी मिला। ३० वें वर्ष सन् १०६६ हि० (सन् १६५६ ई०) में यह मर गया। इसके लड़के ख्वाजा जाह का ३० वें वर्ष तक एक हजारी ४०० सवार का मंसब था।

३२. अब्दुल्ला अनसारी मखदूमुल मुल्क, मुल्ला

यह शेख शम्सुद्दीन सुलतानपुरी का पुत्र था। इसके पूर्वजों ने मुलतान से सुलतानपुर आकर इसे अपना निवासस्थान बनाया। मौलाना अब्दुल्कादिर सरहिंदी से अब्दुल्ला ने पढ़ा और न्याय तथा धर्म शास्त्र का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया। इसकी विद्वत्ता की प्रसिद्धि संसार में फैली। इसने मुल्ला की टीका पर हाशिया लिखा और पैगम्बर की जीवनी पर मिनहाजुद्दीन लिखा। खुदा उसपर तथा उसके परिवार पर शांति भेजे। तत्कालीन शाहगण उसका सम्मान करते थे और हुमायूँ उस पर श्रद्धा रखता था। शेरशाह ने अपने समय उसे सदरुल् इसलाम की पदवी दी। एक दिन सलीम शाह ने दूर पर इसे देख कर कहा कि 'बाबर बादशाह को पाँच लड़के थे, चार चले गए और एक रह गया।' सरमस्त खाँ ने कहा कि 'ऐसे षड्यन्त्री को क्यों रहने देते हैं?' उसने उत्तर दिया कि 'इससे उत्तम आदमी नहीं मिलता।' जब मुल्ला पास आया तब सलीम शाह ने उसे तख्त पर बिठाया और बीस सहस्र रुपये मूल्य की मोती की माला दी, जिसे उसने उसी समय भेंट में पाया था। मुल्ला कट्टर था, जिसे लोग धर्म-रक्षक समझते थे और धर्म की ओट में वह बहुत वैमनस्य दिखलाता था। जैसे मुल्ला ही के प्रयत्न से शेख अलाई मारा गया था। शेख अलाई शेख हसन का लड़का था, जो बंगाल का एक बड़ा शेख था। उसने अपने पिता से वाह्य तथा आभ्यंतर ज्ञान प्राप्त

किया था और हज्ज से लौटने पर बियाना में ठहरा। यहीं सत्य के पालन तथा असत्य के निराकरण में लग गया। इसी समय शेख अब्दुल्ला नियाजी भी बियाना में आकर बस गया। यह शेख सलीम चिश्ती का अनुगामी था और मक्का से लौटने पर सैयद मुहम्मद जौनपुरी का साथी हुआ, जो अपने को महदी कहता था। शेख अलाई ने उसकी प्रथा का समर्थन किया और उससे स्वाँस रोकना सीखा, जो महदवियों में एक चाल है और आश्चर्यजनक काम दिखलाने की ख्याति प्राप्त की। बहुत से अनुयायियों के साथ खुदा में विश्वास रख दिन व्यतीत किए। रात्रि के समय कुल घरेलू बर्तन, यहाँ तक कि पानी के पात्र भी खाली छोड़ दिए जाने पर सुबह सब भरे मिलते थे। मुल्ला अब्दुल्ला ने उस पर धर्म में जादू का तथा कुफ्र का दोष लगाया और सलीम शाह को उसे बियाना मे बुलाकर मुल्लाओं से तर्क करने पर बाध्य किया। शेख अलाई विजयी हुआ। उस बहस में शेख मुबारक ने उसका पक्ष लिया, इसलिए उस पर भी महदवी होने का दोष लगाया गया।

सलीम शाह पर अलाई का प्रभाव पड़ा और उसने उससे कहा कि महदवीपन छोड़ने पर उसे वह साम्राज्य का धार्मिक हिसाबी बना देगा और यदि वह ऐसा न करेगा तो उसे तुरंत देश त्याग देना चाहिए क्योंकि उलमा ने उसे मार डालने का फतवा दिया है। शेख दक्षिण चला गया। जब सलीम शाह पंजाब के नियाजियों को दमन करने गया तब मुल्ला अब्दुल्ला ने बतलाया कि शेख अब्दुल्ला नियाजियों का पीर है। सलीम शाह ने सन् ९५५ हि० (१५४८ ई०) में उसे बुला

भेजा और इतने लात मुक्के कोड़े उस पर बरसे कि वह बेहोश हो गया। जब तक उसे होश था वह बराबर कहता रहा 'या खुदा हमारे दोषों को क्षमा कर।' जब वह होश में आया तब महदवीपन छोड़ दिया और सन् ९९३ हि० (१५८५ ई०) में अकबर के अटक की ओर जाते समय उसकी सेवा कर ली। इसे सरहिंद में कुछ भूमि इसके पुत्रों के नाम मददे मआश में मिल गई और यह नब्बे वर्ष की अवस्था में सन् १००० हि० (१५९२ ई०) में मर गया।

नियाजी कार्य समाप्त होने पर मुल्ला अब्दुल्ला ने सलीमशाह को फिर उभाड़ा और उसने शेख अलाई को हिंडिया से बुलाया। सलीमशाह ने फिर अपना प्रस्ताव किया और शेख ने उसे स्वीकार नहीं किया। सलीमशाह ने मुल्ला से कहा कि अब तुम और यह जानो। मुल्ला ने उसे कोड़े मारने को कहा और तीसरे कोड़े में वह मर गया। उसका शव हाथी के पाँव में बाँध कर जनता को दिखलाया गया। कहते हैं कि उस दिन ऐसी तेज हवा बही कि मनुष्यों ने महशर (प्रलय) आया समझा। इतने फूल शेख के शव पर बरसे कि वह उसी में गड़ सा गया। इसके बाद सलीम शाह ने दो वर्ष भी राज्य नहीं किया। जब हुमायूँ भारत आया और कंधार विजय किया तब उसने मुल्ला को शेखुल् इसलाम की पदवी दी। इसके बाद अकबर ने बादशाह होने पर मुल्ला को मखदूमुल्मुल्क की पदवी दी और बैराम खाँ ने परगना तानग्वाल: दिया, जिसकी एक लाख तहसील थी तथा उसे सब सर्दार के ऊपर कर दिया। यह साम्राज्य का एक स्तंभ हो गया। कुछ महानों और सालों के बीतने पर जब

बादशाह का विचार तत्कालीन इन सब मुल्लाओं से छोटी छोटी बातों पर बिगड़ गया तब २४ वें वर्ष सन् ९८७ हि० में उसने इसको तथा अब्दुन्नबी सदर को, जिन दोनों में बराबर शत्रुता और झगड़ा चलता आ रहा था, एक साथ हिजाज जाने की आज्ञा दे दी। इस पर भी इन दोनों में कभी मेल नहीं हुआ, न यात्रा में और न मक्का में। यहाँ तक कि एक दूसरे के प्रति वैमनस्य भी कम न हुआ।

मखदूमुल्मुल्क की प्रतिष्ठा अफगानों के समय से अकबर के समय तक होती आई थी और वह अपने न्याय तथा कार्यों के अनुभव के लिए प्रसिद्ध था और उसकी बुद्धिमत्ता का वृत्तांत चारो ओर फैल गया था, इससे मक्का के मुफ्ती शेख इब्नहजर ने आगे बढ़कर इनका स्वागत किया, बहुत सम्मान दिखलाया तथा असमय में उसके लिए काबा का द्वार खुलवा दिया। अकबर के भाई मिर्जा मुहम्मद हकीम की गड़बड़ी जब सुनी गई तब उसके झूठे वृत्तांत को सत्य मानकर इसने उन्नति की इच्छा की तथा समृद्धि के प्रेम से अब्दुन्नबी सदर के साथ अहमदाबाद लौट आया। जब बादशाह को ज्ञात हुआ कि उन दोनों ने मजलिसों में ईर्ष्या के मारे उसके विरुद्ध अनुचित बातें कही हैं तब उसने गुप्त रूप से कुछ मनुष्यों को उन्हें कैद करने को नियत किया, क्योंकि बेगमें उनका पक्ष ले रही थीं। मखदूमुल्मुल्क भय से सन् ९९१ हि० में मर गया। कहते हैं कि उसे अकबर के इशारे से विष दे दिया गया था। उसका शव गुप्तरूप से जालंधर लाया जाकर गाड़ दिया गया। काजी अली उसकी संपत्ति जब्त करने पर नियत हुआ। लाहौर में गड़ा हुआ बहुत धन मिला। कुछ

संदूकों में सोने की ईंटें भरी थीं, जो मकबरे से निकाली गईं। ये शवों के बहाने गाड़े गए थे। इस कारण उसके लड़कों पर बहुत दिनों तक धन खोजने के लिए ज्यादती होती रही। तीन करोड़ रुपये मिले।

अब्दुल् कादिर बदाऊनी अपने इतिहास में लिखता है कि मखदूमुल् मुल्क ने फतवा दिया था कि इस समय हिंदुस्तानी मुसलमानों के लिए हज्ज करना ज्यादा संगत नहीं है क्योंकि यात्रा समुद्र से करनी पड़ती है और स्वरत्ता की आवश्यकता से बिना फिरंगी पासपोर्ट के काम नहीं चलता, जिस पर मरियम और ईसा का चित्र रहता है। इससे नियम टूटता है और यह एक प्रकार का मूर्ति-पूजन है। दूसरा मार्ग फारस से है, जहाँ अयोग्य लोग (शीआ लोग) रहते हैं। अपनी कट्टरता में मखदूमुल्मुल्क ने रौजतुल्अहबाब की तीसरी जिल्द जलवा दी, जिसमें पूर्व काल के वृत्तांत में कमी तथा अशुद्धि है। इससे वह जिल्द कम मिलती है।

३३. अब्दुल्ला खाँ उजबेग

यह हुमायूँ का एक अफसर था और उच्चाशय सर्दारों में से था, जो समय पर अपनी जान लड़ा देते थे। अकबर के समय हेमू पर विजय प्राप्त करने के बाद इसे शुजाअत खाँ की पदवी मिली और यह काल्पी का जागीरदार नियत हुआ। मालवा-विजय में इसने अदहम खाँ की सहायता की थी और उस प्रांत से यह परिचित था, इसलिये सातवें वर्ष में जब वहाँ का प्रांताध्यक्ष पीर मुहम्मद खाँ शेरवानी नर्मदा में डूब मरा और बाजबहादुर ने मालवा पर अपनी पैतृक संपत्ति समझकर अधिकार कर लिया तब अकबर ने अब्दुल्ला खाँ उजबेग को पाँच हजारी मंसब देकर बाज बहादुर को दंड देने और उस प्रांत में शांति स्थापित करने भेजा। इसे पूरी शक्ति प्रदान की गई थी। जब अब्दुल्ला पूरी तौर सुसज्जित होकर मालवा विजय करने गया तब बाज-बहादुर उसका सामना न कर सका और भागा तथा वह प्रांत बादशाही अधिकार में चला आया। अब्दुल्ला खाँ मांडू आया, जो मालवा के शासकों की राजधानी थी और अमीरों में उस प्रांत के नगर कस्बे बाँट दिए।

जिनमें राजभक्ति की कमी रहती है वे शक्ति मिलते ही बिगड़ जाते हैं, उसी प्रकार अब्दुल्ला खाँ भी घमंडी तथा राजद्रोही हो गया। ९ वें वर्ष सन् ९७१ हि० (१५६३–६४ ई०) में पूर्ण वर्षा काल में अकबर नरवर तथा सिप्री हाथी का शिकार खेलने

के बहाने आया, जो उस समय वहाँ बहुत हो गए थे और फुर्ती से वहाँ से मांडू गया। बादल की गरज, बिजली, वर्षा, बाढ़ तथा कीच और बिल तथा खड्ड के कारण, जो मालवा में बहुत होते हैं, कूच में बड़ी कठिनाई हो गई थी। घोड़ों को दरियाई घोड़ों के समान पैरना पड़ा और ऊँटों को जहाजों के समान तूफानी समुद्र पार करना पड़ा। पशुओं के पैर उनके छाती तक कीचड़ में धँस गए और कितने मजदूरे कीचड़ में रह गए। पर अकबर गागरून से आगे बढ़ा क्योंकि इस भयंकर यात्रा का तात्पर्य एकाएक अब्दुल्ला खाँ पर पहुँच जाना था, जो ऐसे समय में सेना का माळवा आना संभव नहीं समझता था। अशरफ खाँ और एतमाद खाँ उसे यह शुभ सूचना देने के लिये आगे भेजे गए, जो अपने कर्मों के कारण डर रहा था, कि उसपर बादशाह की बहुत कृपा है। साथ ही इसके वे उसे सेवा में ले आवें, जिसमें वह भगोड़ न हो जाय। अकबर ने एक दिन की कूच में पानी कीचड़ होते हुए मालवा का पचीस कोस तै किया, जो दिल्ली के चालीस कोस के बराबर है और सारंगपुर पहुँचा। जब वह धार आया तब उसे अपने दूतों से ज्ञात हुआ कि बहुत प्रयत्न करनेपर भी वे उसके अधिक भय के कारण सफळ नहीं हो सके। उसने कुछ बेढब प्रस्ताव किए और तब अपने परिवार और संपत्ति के साथ भाग गया। अकबर मांडू से घूमा और अपने कुछ अफसरों को अब्दुल्ला का रास्ता रोकने के लिए हरावल बनाकर भेजा तथा स्वयं भी पीछा किया। जब हरावल अब्दुल्ला पर पहुँच गया तब यह विचार कर कि बहुत दूर से आने के कारण इस समय युद्ध-योग्य कम आदमी पहुँचे होंगे वह घूमा और युद्ध किया। जब लड़ाई जोरों पर

थी और शत्रु के तीर बादशाह के सिर पर से जाने लगे तब अकबर ने दैवी इच्छा से विजय का डंका पीटने की आज्ञा दी और मुनइम खाँ खानखानाँ से कहा कि 'अब देर करना ठीक नहीं है, शत्रु पर धावा करना चाहिए।' खानखानाँ ने कहा कि 'ठीक है, पर अभी द्वंद्व युद्ध का अवसर नहीं है, सैनिकों को इकट्ठा कर धावा करेंगे।' अकबर क्रुद्ध हो गया और आगे बढ़ने ही को था कि एतमाद खाँ ने उत्साह के मारे उसके घोड़े की बाग पकड़ ली। बादशाह ने और भी क्रुद्ध होकर धावा कर दिया। दैव साहसी की रक्षा करता है, इससे शत्रु बादशाह के प्रताप से भाग गए। अब्दुल्ला खाँ के पास एक सहस्र से अधिक सवार थे और अकबर के साथ तीन सौ से अधिक नहीं थे, तिस पर भी वह अपने सर्दारों को कटा कर युद्ध-स्थल से भागा तथा आवे (नदी) मोहान होकर गुजरात चला गया। अकबर ने कासिम खाँ नैशापुरी के अधीन सेना उसके पीछे भेजी। अड़ोस पड़ोस के जमींदारों ने राजभक्ति के कारण इस सेना से मिलकर अब्दुल्ला पर चंपानेर दर्रे में धावा किया। वह घबड़ा कर अपनी स्त्रियों को रेगिस्तान की ओर भेजकर अपने पुत्र के साथ भाग गया। शाही सर्दार गण उसके कुल सामान, स्त्रियों, हाथी आदि पर अधिकार कर वहीं ठहर गए। अकबर भी नदी पार कर वहीं आया और खुदा को धन्यवाद देकर बहुत लूट के साथ लौटा। युद्धस्थल से अर्द्ध-जीवित बचा हुआ अब्दुल्ला खाँ गुजरात गया और चंगेज खाँ से, जो वहाँ शक्तिमान था, जा मिला। अकबर ने चंगेज खाँ के पास हकीम ऐनुल्मुल्क को भेजा कि या तो वह उस दुष्ट को हमारे पास भेज दे या अपने राज्य से निकाल दे। उसने प्रार्थना

की कि शाही हुक्म मानने को वह तैयार है और उसे वह दरबार में भेज देगा यदि वह क्षमा कर दिया जाय। यदि बादशाह यह स्वीकार न करें तो उसे वह राज्य से निकाल देगा। जब दोबारा वही संदेश गया तब उसने उसे निकाल बाहर किया। वह मालवा आया और गड़बड़ मचाने लगा। शहाबुद्दीन अहमद खाँ, जो मालवा का प्रबंध करने भेजा गया था, ससैन्य ११ वें वर्ष में उसको दमन करने आया और अब्दुल्ला पकड़ा ही जा चुका था पर निकल गया। बहुत कठिनाई उठाकर यह अली कुली खाँ खानेजमाँ तथा सिकंदर खाँ उजबेग से जा मिला और वहीं बंगाल या बिहार में मर गया।

३४. अब्दुल्लाखाँ, ख्वाजा

यह तूरान का था। पहिले यह और इसका भाई ख्वाजा रहमतुल्ला खाँ दोनों एमादुल्मुल्क मुबारिज खाँ के अनुयायी हुए और दोनों को सिकाकोल तथा राजेन्द्री की फौजदारी मिली। मुबारिज खाँ के मारे जाने पर जब निजामुल्मुल्क आसफ जाह हैदराबाद आया तब दोनों भाई उसके सामने उपस्थित हुए। अब्दुल्ला राजेन्द्री की फौजदारी के साथ खानसामाँ नियुक्त हुआ और उसका भाई आसफ जाह के सरकार का दीवान हुआ। रहमतुल्ला खाँ शीघ्र मर गया। उसकी मृत्यु पर ख्वाजा अब्दुल्ला दीवान हुआ और जब आसफजाह दूसरी बार राजधानी गया तब वह अब्दुल्ला को दक्षिण में शहीद नासिर जंग का अभिभावक नियत कर छोड़ गया। आसफजाह के दक्षिण लौटने पर यह उसका विश्वासपात्र दरबारी रहा। जब कर्णाटक हैदराबाद का ताल्लुकादार सआदतुल्ला खाँ मर गया और उसका भतीजा दोस्त अलीखाँ तथा दोस्त अली का लड़का सफदर अली खाँ दोनों उस तरह समाप्त हुए, जिसका विवरण सआदतुल्ला खाँ की जीवनी में आ चुका है और उस प्रांत का प्रसिद्ध दुर्ग त्रिचिनापल्ली मुरारीराव घोरपुरे के अधिकार में चला गया तब आसफजाह ने अब्दुल्ला को उस कर्णाटक ताल्लुके पर नियत किया और स्वयं त्रिचिनापल्ली दुर्ग लेने का प्रयत्न करने लगा। जब वह उसे लेने के बाद लौटा तब अब्दुल्ला खाँ को डंका प्रदान कर उसे ताल्लुके पर भेज दिया। उसी रात्रि

सन् ११५७ हि० (सन् १७४४) में यह मर गया। 'नकारए आखिर' इसकी मृत्यु तिथि है। यह विलायती था और सौम्य प्रकृति तथा उदार होते हुए चिड़चिड़े स्वभाव का था। यदि किसी पर वह खफा होता और दूसरा सामने आ जाता तो वह उसी से कड़ा व्यवहार कर बैठता था। इसका सबसे योग्य पुत्र ख्वाजा नेअमतुल्ला खाँ था, जो पिता की मृत्यु पर कुछ दिन राजबंदरी का आमिल रहा। सलाबत जंग के समय यह बीजापुर का नाएब सूबेदार नियत हुआ और तहव्वर जंग बहादुर की पदवी पाई। कुछ दिन बाद यह पागल होकर मर गया। दूसरे लड़के ख्वाजा अब्दुल्ला खाँ और ख्वाजा सादुल्ला खाँ थे, जो शुजा-उल्मुल्क अमीरुलउमरा की नौकरी में थे। दूसरा कुरान पढ़ा हुआ था।

---

३५. अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग

इसका नाम ख्वाजा अब्दुल्ला था और यह ख्वाजा उबेदुल्ला नासिरुद्दीन अहरार का वंशधर तथा ख्वाजा हसन नक्शबंदी का भांजा था। अकबर के राज्य के उत्तरार्द्ध में यह विलायत से भारत आया और कुछ समय तक अपने एक संबंधी शेर ख्वाजा के यहाँ दक्षिण में नौकर रहा। युद्ध में सर्वत्र प्रसिद्धि पाई। बाद को यह ख्वाजा को छोड़कर लाहौर में सुलतान सलीम से मिला और एक अहदी नियत हुआ। जब शाहजादा इलाहाबाद में था और स्वतंत्रता तथा अहंता से मंसब और पदवी वितरण करने लगा तथा जागीरें बाँटने लगा तब इसे डेढ़ हजारी मंसब और खाँ की पदवी मिली। पर शाहजादे के प्रबंधकर्ता शरीफ खाँ से इसकी नहीं बनी तब यह ४८ वें वर्ष में दरबार चला आया और बादशाह ने इसकी योग्यता देखकर इसे एक हजारी मंसब और सफदर जंग को पदवी दी। इसके भाई ख्वाजा यादगार और ख्वाजा बरखुरदार को भी योग्य पद मिला। जहाँगीर की राजगद्दी पर इसे डंका निशान मिला।

महाराणा उदयपुर की चढ़ाई महाबत खाँ की अधीनता में सफल नहीं हो रही थी, इस पर ४ थे वर्ष में सेना की अध्यक्षता अब्दुल्ला को मिली और उस कार्य में इसने ख्याति पाई। इसने मेहपुर पर धावा किया, जहाँ राणा अमरसिंह छिपकर रहते थे और अद्वितीय हाथी आलम-गुमान ले लिया। कुंभलमेर में थाना स्थापित कर राजपूतों के एक सर्दार बीरम देव सोलंकी को

परास्त कर लूट लिया। ६ ठे वर्ष सन् १०२० हि० (१६११ ई०) में यह गुजरात का प्रांताध्यक्ष बनाया गया और दरबार से एक सहायक सेना भी दी गई। प्रबंध यह हुआ था कि गुजरात की सेना के साथ नासिक और त्र्यंबक होते हुए यह दक्षिण जाय और खानेजहाँ राजा मानसिंह, अमीरुलउमरा तथा मिर्जा रुस्तम के साथ बरार का मार्ग ग्रहण करे। दोनों सेनाएँ एक दूसरे से मिली रहें, जिससे एक निश्चित दिन शत्रु को घेर लें। ऐसा होने से स्यात् शत्रु नष्ट हो सके।

अब्दुल्ला के साथ दस सहस्र सवार सेना थी, इससे यह घमंड के मारे दूसरी सेना की कुछ भी खबर न लेकर शत्रु के देश में चला गया। मलिक अंबर इससे बहुत दुःखी था, इसलिए चुने हुए आदमियों को इसे नष्ट करने भेजा। प्रतिदिन इसके पड़ाव के चारों ओर युद्ध होता और संध्या से सुबह तक मारकाट होती। यह ज्यों ज्यों दौलताबाद के पास पहुँचता गया, त्यों त्यों शत्रु बढ़ते गए। जब यह वहाँ पहुँच गया तब तक दूसरी सेना का कोई चिन्ह नहीं मिला। अब इसने लौटना उचित समझा और बगलाना होता अहमदाबाद की ओर चला। कूच के समय भी शत्रु बराबर घेरे रहते और प्रतिदिन युद्ध होता रहता। अलीमर्दान बहादुर ने भागना ठीक नहीं समझा और लड़ गया तथा कैद हो गया। यह सूचना कि मलिक अंबर ने खानखानाँ को मिलाकर बहाने से खानेजहाँ को रोक लिया है, असत्य है क्योंकि उसी समय खानखानाँ दक्षिण से दरबार चला आया था। जब खानजहाँ को यह दुखद समाचार बरार में मिला तब वह लौटा और आदिलाबाद में शाहजादा पर्वेज से जा मिला।

कहते हैं कि जहाँगीर ने अब्दुल्ला खाँ तथा अन्य अफसरों के चित्र तैयार कराए थे और उनको एक एक देखते हुए उन पर टीका करता जाता था। अब्दुल्ला के चित्र पर कहा कि 'इस समय कोई योग्यता तथा वंश में तुम्हारे बराबर नहीं है और इस स्वरूप, योग्यता, वंश, पद, खजाना और सेना के रहते तुम्हें भागना नहीं चाहता था। तुम्हारा खिताब गुरेजजंग है।' ११ वें वर्ष में अब्दुल्ला ने आबिद खाँ को, जो ख्वाजा निजामुद्दीन अहमद बख्शी का पुत्र तथा अहमदाबाद का वाकेआनवीस था, पैदल बुलाकर उसकी सच्ची रिपोर्ट के कारण उसकी अप्रतिष्ठा की। इस पर दरबार से दियानत खाँ भेजा गया कि अब्दुल्ला को पैदल दरबार लावे। यह आज्ञा पहुँचने के पहिले ही पैदल रवाना हो गया और सुलतान खुर्रम की प्रार्थना पर क्षमा कर दिया गया। जब युवराज शाहजहाँ दूसरी बार दक्षिण गया तब अब्दुल्ला भी उसके साथ भेजा गया पर यह दक्षिण छोड़कर बिना आज्ञा के अपनी जागीर पर चला गया। इस पर इसकी जागीर छिन गई तथा एतमादराय उसे शाहजादे के पास लिवा जाने को सजावल नियत हुआ। जब शाहजादा कंधार की चढ़ाई के लिए दक्षिण से बुलाया गया और वर्षा के कारण वह मांडू में रुक गया तथा बादशाह कुछ झगड़ा के बहाने से ऐसे लड़के से क्रुद्ध हो गया तब युद्ध का प्रबंध हुआ और अब्दुल्ला खाँ अपनी जागीर से लाहौर आकर बादशाह से मिला। जब शाहजादा ने पिता का सामना करना छोड़ दिया और बादशाही सेना के सामने पड़ी हुई अपनी सेना को राजा विक्रमाजीत के अधीन कर दिया कि यदि उसके पीछे सेना भेजी जाय तो वह उसे रोक सके तब ख्वाजा अबुल्हसन ने

वैमनस्य से ऐसा उपाय किया कि अब्दुल्ला खाँ शाही सेना के हरावल में नियत हो गया। युद्ध आरंभ होते ही अब्दुल्ला खाँ शाहजादे की ओर चला आया। दैवात् एक गोली लगने से राजा विक्रमाजीत मर गया। दोनों सेनाओं में गड़बड़ मच गया और वे अपने अपने स्थानों को लौट गईं। राजा गुजरात का शासक था इसलिए अब्दुल्ला खाँ को शाहजादे ने वहाँ नियत किया और थोड़ी सेना के साथ वफा नामक ख्वाजे को उसका नायब बनाकर वहाँ भेजा। मिर्जा सफी सैफ खाँ ने बादशाह की स्वामिभक्ति उचित समझ कर उस प्रांत के नियुक्त मनुष्यों की सहायता से ख्वाजे को पकड़ लिया और नगर पर अधिकार कर लिया। मांडू में शाहजादे से छुट्टी लेकर अब्दुल्ला खाँ शीघ्रता से सहायता की अपेक्षा न कर वहाँ जा पहुँचा। दोनों पक्ष में युद्ध होने पर अब्दुल्ला खाँ परास्त हुआ और उसे बड़ौदा होते सूरत जाना पड़ा। वहाँ कुछ सेना एकत्र कर यह शाहजादे से बुर्हानपुर में जा मिला। इसके बाद युद्धों में बराबर यह हरावल में रहता था।

२० वें वर्ष में जब शाहजादा बंगाल से दक्षिण आया और याकूत खाँ हब्शी तथा अन्य निजामशाही नौकरों को साथ लेकर बुर्हानपुर पर चढ़ाई की तब अब्दुल्ला खाँ ने शपथ खाई कि जब उस नगर पर अधिकार होगा तब वह कत्ले आम करेगा। जब शाहजादा ने सफल न हो सकने पर घेरा उठा दिया तब अब्दुल्ला खाँ ने यह जानकर कि शाहजादा उस पर कृपा नहीं रखता, कुल कृपाओं का विचार न कर, जो उसे मिल चुकी थीं, वह भागा और मलिक अंबर से जा मिला। जैसी इसे आशा थी वैसा इसको वहाँ आश्रय नहीं मिला, तब यह खानजहाँ की

सहायता से बादशाह की सेवा में आया। कहते हैं कि जब यह बुर्हानपुर पहुँचा तब खानजहाँ जैनाबाद बाग तक इसके स्वागत को आया और इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इसने चापलूसी तथा नम्रता का भाव रखा. उजबेग दर्वेश सा कपड़ा पहिरा, नाभि तक लंबी डाढ़ी रखी और बिना हथियार लिए एक घंटे रात रहे खान-जहाँ के दीवानखाने में आकर बैठता। जब आज्ञानुसार खानजहाँ जुनेर गया तब यह भी साथ था। इसने मलिक अंबर को लिखा कि यदि इस समय वह खानजहाँ पर टूट पड़े तो वह सफल होगा। दैवात् वह पत्र पकड़ा गया और जब खानजहाँ ने उसे अब्दुल्ला खाँ के हाथ में दिया तब इसने सब हाल ठीक बतला दिया। आज्ञानुसार वह असीरगढ़ में कैद किया गया। दुर्गाध्यक्ष इकराम खाँ फतहपुरी उसके साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता था और महाबत खाँ के इशारे पर, जो उस समय शक्तिमान था, कई बार इसे अंधा करने की आज्ञा आई पर खानेजहाँ ने स्वीकार नहीं किया। उसने उत्तर में लिखा कि उसके वचन पर यह आया है और वह इसे दरबार ले आवेगा।

जब शाहजहाँ बादशाह हुआ तब नक्शबंदी मत के प्रसिद्ध अनुगामी अब्दुरहीम ख्वाजा के मध्यस्थ होने पर अब्दुल्ला खाँ क्षमा कर दिया गया। यह ख्वाजा कलाँ ख्वाजा जूयबारी का वंशज था, जो स्वयं इमाम हुमाम जाफर सादिक के पुत्र सैयद अली अरीज से तीस पीढ़ी हटकर था और तूरान के विख्यात सैयदों में से एक था तथा जिस पर उजबेग खानों की बड़ी श्रद्धा और विश्वास था, जो सब उस वंश के भक्त थे। वहाँ का शासक अब्दुल्ला खाँ ख्वाजा

फ़ों का शिष्य हो गया था। जहाँगीर के समय ख्वाजा अब्दुर्रहीम तूरान के शासक इमाम्र कुली खाँ का राजदूत होकर आया और इसका बड़े आदर से स्वागत हुआ। इसे तख्त के पास बैठने की आज्ञा मिलने से फारस, तूरान तथा भारत के सर्दारों में इसकी बहुत प्रतिष्ठा बढ़ी। शाहजहाँ के राज्यारंभ में यह लाहौर से आगरे आया और पहिले से अधिक सम्मान हुआ। अब्दुल्ला खाँ का नक्शबंदी मत से संबंध था, इसीसे वह क्षमा किया गया और उसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब, डंका निशान तथा कन्नौज सरकार जागीर में मिला।

उसी प्रथम वर्ष जब जुझारसिंह बुंदेला दरबार से ओड़छा अपने घर भागा तब महाबत खाँ के अधीन उसपर सेना नियत हुई। खानजहाँ लोदी मालवा से और अब्दुल्ला खाँ अपनी जागीर से चारों ओर के अन्य अफसरों के साथ उसके राज्य में आ घुसे और लूटपाट मचाने लगे। जब जुझार पीड़ित हुआ तब उसने महाबत खाँ को मध्यस्थ कर अधीनता स्वीकार कर ली। अब्दुल्ला खाँ और बहादुर खाँ कुछ अफसरों तथा ९००० सवार के साथ एरिज दुर्ग आए, जो ओड़छा से तेरह कोस पर जुझार सिंह के राज्य के पूर्व ओर तथा उसके अधिकार में था और बड़ी फुर्ती तथा उत्साह से उस पर अधिकार कर लिया। जब शाहजहाँ खानजहाँ लोदी को दमन करने बुर्हानपुर आया तब अब्दुल्ला खाँ अपनी जागीर काल्पी से दक्षिण आया और शायस्ता खाँ के अधीनस्थ सेना में नियत हुआ। पेट फूलने के रोग से जब यह आराम हुआ तब दरबार आया और दरिया खाँ रुहेला को दमन करने भेजा गया, जो चालीस गाँव के पास उपद्रव मचा रहा था। यह आज्ञा भी हुई कि

वह खानदेश में ठहरे और खानेजहाँ तथा दरिया खाँ का पीछा करे, चाहे वे कहीं जाय।

४ थे वर्ष में खानजहाँ और दरिया खाँ दौलताबाद से खानदेश की राह से मालवा आए तब यह भी उनका पीछा करता रहा और उन्हें कहीं आराम लेने नहीं दिया। अंत में सेहोंडा ताल के किनारे खानेजहाँ डट गया और मारा गया। इसके पुरस्कार में इसे छ हजारी ६००० सवार का मंसब और फीरोज जंग पदवी मिली। ५ वें वर्ष में यह बिहार का प्रांताध्यक्ष हुआ। अब्दुल्ला खाँ ने रतनपुर के जमींदार को दंड देना निश्चित किया और उधर गया। वहाँ का जमींदार बाबू लक्ष्मी डर गया और बाँधो के शासक अमर सिंह के मध्यस्थ होने पर उसे अमान मिली। ८ वें वर्ष अब्दुल्ला के साथ कर लेकर दरबार में उपस्थित हुआ। जब अब्दुल्ला अपनी जागीर पर चला गया तब जुझार सिंह बुंदेला ने फिर विद्रोह किया। आज्ञानुसार अब्दुल्ला मार्ग ही से लौटा और इसे दंड देने चला। मालवा से खानेदौराँ और सैयद खानेजहाँ बारहा इससे आ मिले। जब ओड़छा से एक कोस पर इन सबने पड़ाव डाला तब वह नीच दुष्ट डर गया और अपने परिवार, नौकर, सोना, चाँदी आदि लेकर दुर्ग से निकल धामुनी दुर्ग चला गया, जिसे उसके पिता ने बहुत दृढ़ किया था। शाही सेना ओड़छा विजय कर उसका पीछा करती हुई धामुनी से तीन कोस पर पहुँची तब ज्ञात हुआ कि वह वहाँ से भी अपना सामान आदि लेकर चौरागढ़ चला गया है और वहाँ देवगढ़ के जमींदार के पत्र का मार्ग देख रहा है। यदि वह अपने राज्य में से जाने का मार्ग दे देगा तो वह दक्षिण चला जायगा। शाही सेना ने धामुनी पर अधिकार

कर लिया और सैयद खानेजहाँ बारहा ने वहीं विजित प्रांत को शांत करने के लिए ठहरना निश्चित किया। अब्दुल्ला खानेदौराँ बहादुर के हरावल के साथ आगे बढ़ा। जुझार लांजी होता भागा, जो देवगढ़ राज्य के अंतर्गत है। अब्दुल्ला दस गोंड कोस प्रतिदिन और कभी-कभी बीस कोस चलता था, जो कोस साधारण कोस से दूने होते हैं और चाँदा की सीमा पर उसपर पहुँच कर युद्ध किया। वह दुष्ट गोलकुंडा की ओर भागा। कई कूचों के बाद अब्दुल्ला फिर उस पर पहुँच गया तब वे पिता-पुत्र प्राण भय से जंगलों में भागे। वहाँ गोंडों के हाथ वे मारे गए। फीरोज जंग ने उनका सिर काट लिया और दरबार भेज दिया।

१० वें वर्ष में राजा प्रताप उज्जैनिया ने, जिसे डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब मिला था, अपने देश जाने की छुट्टी पाई, जैसी कि उसकी इच्छा थी और वहाँ जाकर उसने विद्रोह कर दिया। अब्दुल्ला खाँ आज्ञानुसार विहार से उसे दंड देने गया। इसने पहिले भोजपुर घेर लिया, जो राजा की राजधानी थी और जहाँ प्रताप ने शरण लिया था। युद्ध के बाद डर कर उसने संधि की प्रार्थना की। वह लुंगी पहिन कर और अपनी स्त्री का हाथ पकड़ कर फीरोज जंग के एक हींजड़े के द्वारा उसके पास हाजिर हुआ। खाँ ने उन दोनों को कैद कर दरबार को सूचना भेज दी। वहाँ से आज्ञा आई कि उस दुष्ट को मार डालो और उसकी स्त्री तथा सामान को अपने लिए रख लो। फीरोज जंग ने लूट का कुछ भाग सिपाहियों में बाँट दिया और उसकी स्त्री को मुसलमान बनाकर अपने पौत्र से विवाह कर दिया। १३ वें वर्ष में यह जुझार सिंह के पुत्र पृथ्वीराज तथा चंपत बुंदेला को दंड

देने पर नियत हुआ, जो ओड़छा में उपद्रव मचा रहे थे। बाकी खाँ के प्रयत्न से, जिसे अब्दुल्ला ने भेजा था, पृथ्वीराज पकड़ा गया पर चंपत, जो इसका जड़ था, भाग गया। यह अब्दुल्ला की असावधानी तथा सुखेच्छा के कारण हुआ माना गया और इससे इसकी इस्लामाबाद की जागीर छिन गई और उसकी भर्त्सना की गई। १६ वें वर्ष में यह सैयद शुजाअत खाँ के स्थान पर इलाहाबाद का प्रांताध्यक्ष हुआ। कुछ समय बाद शाहजहाँ ने इसे इसके पद से हटा दिया और एक लाख रुपये उसको काल-यापन के लिए दिए। उसी समय फिर इस पर उसकी कृपा हो गई और मंसब बहाल कर दिया। यह प्रायः सत्तर वर्ष की अवस्था में १८ वें वर्ष के १७ शव्वाल सन् १०५४ हि० (७ दिसं० १६४४ ई०) को मर गया।

इसकी ऐसी कठोरता और अत्याचार पर भी मनुष्यगण विश्वास करते थे कि वह आश्चर्य कार्य दिखला सकता था और उसको भेंट देते थे। यह पचास वर्ष तक सर्दार रहा। यह कई बार अपने पद से हटाया गया और बहाल किया गया तथा पहिले ही के समान इसका ऐश्वर्य और शक्ति हो जाती थी। इसकी सेवा करना भाग्य को सत्ता समझो जाती थी। इसी के जीवन में इसके कितने सेवक पाँच हजारी और चार हजारी हो गए। यह अपने सिपाहियों की अच्छी रखवाली करता था पर साल में तीन चार महीने से अधिक का वेतन कभी नहीं देता था। पर अन्य स्थानों के मुकाबिले इसका तीन महीने का वेतन सालभर के बराबर होता था। कोई इससे स्वयं अपना वृत्तांत नहीं कह सकता था। उसे इसके दीवान या बख्शी से पहिले कहना पड़ता

था। यदि इनमें से कोई हाल कहने में देर करता तो उसकी यह डाढ़ी मुँड़वा लेता था। इसका यह नियम सा था कि जब वह कठिन चढ़ाइयों पर जाता तो साठ सत्तर कोस प्रतिदिन चलता। यह विश्वसनीय चंदावल साथ रखता। यदि कोई पीछे रह जाता तो उसका सिर काट लिया जाता और इसके पास लाया जाता। पचास मुगल, जो मीर तुजुक के यसावल थे, वरदी पहिरे तथा छड़ी लिए प्रबंध देखते। कहते हैं कि राणा की चढ़ाई के समय तीन सौ सवार कारचोबी कपड़े और अच्छे कवच पहिरे तथा दो सौ पैदल खिदमतगार, जिलौदार, चोबदार आदि उसी प्रकार सुसज्जित साथ थे। यह किसीका उदास मुख देखकर बड़ा प्रसन्न होता। इसकी चाल बड़ी शानदार थी। जीवन के अंतिम काल में अपना दीवान रात्रि के अंतिम पहर में शुरू करता। इस समय तक कठोरता भी कम कर दी थी।

जखीरतुलखवानीन में शेख फरीद भक्करी कहता है कि "जब खानेजहाँ लोदी ने अब्दुल्ला को अपनी रक्षा में रखा था, उस समय उसने हमारे हाथ से दस सहस्र रुपये उसके पास व्यय के लिए भेजे थे। मैंने अब्दुल्ला से कहा कि 'नवाब ने गाजी की तौर पर खुदा का बहुत काम किया है। आपने कितने काफिरों के सिर कटवाए हैं।' उसने कहा कि 'दो लाख सिर होंगे, जिसमें आगरे से पटने तक मीनारों के दो कतार बन जाँय।' मैंने कहा कि 'अवश्य ही इनमें एकाध निर्दोष मुसलमान भी रहा होगा।' वह क्रुद्ध हो गया और कहा कि 'मैंने पाँच लाख स्त्री पुरुष कैद किए और बेंच दिए। वे सब मुसलमान हो गए। उनसे प्रलय के दिन करोड़ों पैदा होंगे। खुदा के रसूल

धुनिया के यहाँ जाकर उससे मुसलमान होने को कहते थे और मैंने एक दम पाँच लाख मुसलमान बना दिए। यदि ठीक हिसाब किया जाय तो इस्लाम के अनुयायी और अधिक होंगे।' जब मैंने यह हाल खानेजहाँ से कहा तब उसने कहा कि 'आश्चर्य है कि यह मनुष्य अपने कुकर्मों का तथा पश्चाताप न करने का घमंड करता है।' इसके पुत्र फले फूले नहीं। मुहम्मद अब्दुल् रसूल दक्षिण में नियत हुआ।"

---

३६. अब्दुल्ला खाँ बारहा, सैयद

इसे सैयद मियाँ भी कहते थे। पहिले यह शाहआलम बहादुर का नौकर था। यह रूहुल्ला खाँ के साथ कोंकण के कार्य पर नियत हुआ। २६ वें वर्ष औरंगजेबी में इसे एक हजारी ६०० सवार का मंसब मिला और यह बादशाही सेना में भरती हो गया। २८ वें वर्ष में उक्त शाहजादे के साथ हैदराबाद के शासक अबुलहसन को दंड देने पर नियत होकर चढ़ाई में अच्छा कार्य किया और घायल हो गया। एक दिन जब यह सेना के चंदावल का रक्षक था तब शत्रुओं से घोर युद्ध कर उसे परास्त किया और अपने दाएँ बाएँ भागों की सहायता को आया। जब उसी दिन शत्रु शाहजादे के दीवान वृंदावन को घायल कर उसके हाथी को हाँकते हुए ले जा रहे थे तब अब्दुल्ला ने उन पर धावा किया और उन्हें परास्त कर वृंदावन को छुड़ा लिया। बीजापुर के घेरे में शाहजादा पर उसके पिता की शंका हुई और उसके बहुत से साथी हटा दिए गए। उसी साथ अब्दुल्ला के लिए फर्मान निकला, जिससे वह कैद कर दिया गया। बाद को रूहुल्ला खाँ के कहने पर यह उसीको सौंप दिया गया कि अपनी रक्षा में रखे। क्रमशः इसके दोष क्षमा किए गए। गोलकुंडा के घेरे के समय जब रूहुल्ला खाँ बुलाए जाने पर बीजापुर से दरबार आया तब अब्दुल्ला खाँ वहाँ उसका नाएब होकर रहा। कुछ दिन बाद वह स्वयं वहाँ का अध्यक्ष बनाया गया। ३२ वें वर्ष में जब

समाचार मिला कि शंभा भोसला का भाई रामा राहिरीगढ़ से भाग गया, जिसे जुलफिकार खाँ घेरे हुए था और जिसने पूर्वोक्त शासक अबुल्हसन के राज्य में शरण लिया है तब अब्दुल्ला को हुक्म मिला कि उसे खोज कर कैद कर ले। तीन दिन तीन रात कूच कर यह उसपर जा पहुँचा और कई सर्दारों के पकड़ जाने पर भी रामा निकल गया। इस कारण इतनी सेवा करते हुए भी बादशाह इससे प्रसन्न नहीं हुए। इसके सिवा बीजापुर के दुर्ग में बहुत से कैदी रखने की आज्ञा हुई थी पर वैसे स्थान से भी कुछ निकल भागे, तब उसी वर्ष अब्दुल्ला बीजापुर से हटा दिया गया। ३३ वें वर्ष में यह सर्दार खाँ के बदले नानदेर का फौजदार नियत हुआ। यह अपने समय पर मरा। इसके कई लड़के थे, जिनमें दो बहुत प्रसिद्ध हुए—कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्ला खाँ और अमीरुलउमरा हुसेन अली खाँ। इनके सिवा दूसरों में एक नज्मुद्दीन अली खाँ था। इन सब का विवरण अलग दिया गया है।

३७. अब्दुल्ला खाँ, शेख

यह ग्वालियर के शत्तारी शाखा के बड़े शेख शेख मुहम्मद गौस का योग्य पुत्र था। उस फकीर के लड़कों में अब्दुल्ला और जियाउल्ला अति प्रसिद्ध हुए। पहिला शेख बदरी के नाम से मशहूर हुआ। दावत और तकसीर की विद्या में यह अपने पिता का शिष्य था तथा उपदेश देने और मार्ग-प्रदर्शन में पिता का स्थानापन्न हुआ। भाग्य से फकीर और दर्वेश होते हुए यह शाही नौकरी में घुसा और एक बड़ा सर्दार हो गया। चढ़ाइयों में इसने बराबर अच्छी सेवा की और युद्ध में प्राण को भी कुछ न समझता। अकबरी राज्य के ४० वें वर्ष में यह एक हजारी मंसब तक पहुँचा। कहते हैं कि वह तीन हजारी मंसब तक पहुँच कर युवावस्था में मर गया।

दूसरे पुत्र जियाउल्ला ने सेवा नहीं की और दर्वेश ही बना रहा। पिता के समय ही यह गुजरात गया और वजीहुद्दीन अलवी की सेवा में पहुँचा, जो विज्ञानों का विद्वान् था, कई पुस्तकों पर अच्छी टीकाएँ लिखी थीं और इसके पिता का शिष्य था। उसके यहाँ इसने विज्ञान सीखा और पत्तन में शेख मुहम्मद ताहिर मुहद्दिस बोहरा से हदीस सीखा। उसी समय इसने अपने पिता से सार्टिफिकेट और स्थानापन्न होने का खिरका पाया। सन् ९७० हि० (सन् १५६२—३ ई०) में पिता की मृत्यु पर आगरे में रहने लगा और वहाँ गृह तथा

खानकाह बनवाया। बहुत दिनों तक अंतिम पुरस्कार प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता रहा और सूफीमत अच्छी प्रकार मानता रहा। ३ रमजान सन् १००५ हि० (१० अप्रैल सन् १५९७ ई०) को मर गया।

कहते हैं कि जिस वर्ष में लाहौर में हरिणों का युद्ध देखते समय उनकी सींघ से अंडकोश में चोट लग जाने से अकबर बड़ी पीड़ा में था, उस समय बहुत से बड़े अग्रगण्य मनुष्यगण उसे देखने आए थे। एक दिन बादशाह ने कहा कि शेख जिया-उल्ला ने मुझे नहीं याद किया। शेख अबुल्फजल ने इसकी सूचना भेज दी और यह लाहौर गया। दैवात् कुछ दिन बाद शाहजादा दानियाल की एक स्त्री गर्भवती हुई, जिस पर बाद-शाह ने आज्ञा दी कि वह प्रसूति के लिये शेख के गृह पर भेजी जाय। शेख ने इसके विरुद्ध कहा पर कुछ फल न हुआ और वह बेगम वहाँ लाई गई। शेख को जीवन से घृणा हो गई और वह एक सप्ताह बाद मर गया।

अवसर मिल गया है, इसलिये इन दोनों भाइयों के पिता का कुछ हाल दिया जाता है। शेख मुहम्मद गौस और उसके बड़े भाई शेख (बहलोल) फूल शेख फरीद अत्तार के वंशज थे और वह अपने समय का प्रसिद्ध फकीर था। दोनों ही खुदा के नाम जपने तथा समाधि लगाने में एक थे। शेख बहलोल शाह कमीस का शिष्य था, जो (सरकार सरहिंद के अंतर्गत) साधौरा में गड़ा हुआ है। हुमायूँ उसका अनुयायी हुआ और यद्यपि वह ख्वाजा नासिरुद्दीन अहरार के पौत्र ख्वाजा खावंद महमूद का शिष्य था पर उस संबंध को तोड़कर शेख का शिष्य हो गया।

इस पर ख्वाजा अत्यंत कुपित हुआ और हुमायूँ का साथ छोड़कर भारत से अपने देश चला गया। उसने एक शैर पढ़ा, जिसका तात्पर्य है कि—

कहा कि ए हुमा, अपनी छाया कभी न छोड़।
उस भूमि पर जहाँ चील से तोते की कम प्रतिष्ठा होती है।

जब सन् ९४५ हि० (सन् १५३८—९ ई०) में बंगाल विजय हुआ तब वहाँ की जल वायु के हुमायूँ के अनुकूल होने से उसने वहीं आराम करना निश्चित किया और विषयोपभोग में निरत हो गया। छोटे भाई मिर्जा हिंदाल ने तिरहुत जागीर में पाया था पर कुछ षड्चक्रियों से मिलकर बुरे विचार से ठीक वर्षाऋतु में वह बिना आज्ञा लिये राजधानी चला गया। दिल्ली का अध्यक्ष मीर फकीर अली, जो साम्राज्य का एक स्तंभ था, आगरे आया और अपने सदुपदेश से मिर्जा को राज-भक्ति के मार्ग पर लाया, जिससे वह अफगानों को दंड देने के लिए जौनपुर गया। इसी बीच कुछ अफसर बंगाल से भागकर मिर्जा से जौनपुर में आ मिले। उन सबने राय दी कि अपने नाम खुतबा पढ़वाकर गद्दीपर बैठ जाओ। मिर्जा भी पुनः यह सब विचार करने लगा। हुमायूँ ने जब यह वृत्तांत सुना तब शेख बहलोल को उसे सलाह देने भेजा। मिर्जा आगे बढ़कर उसका स्वागत कर अपने निवासस्थान पर लाया और उसकी बड़ी प्रतिष्ठा की। शेख के आने से अफसरों को बहुत कष्ट हुआ पर अंत में सबने मिलकर निश्चय किया कि उसे मार डालना चाहिए क्योंकि जब तक उन सबके कार्यों पर पड़ा हुआ परदा न उठेगा कुछ न हो सकेगा। मिर्जा नूरुद्दीन मुहम्मद ने शेख को उसी के

खेमे में अफगानों का साथ देने के दोष के बहाने पकड़ कर बादशाही बाग के पास रेती में मार डाला। शेख मुहम्मद गौस ने मृत्यु तारीख 'फकदमात शहीद:' (वास्तव में वह शहीद किया गया, सन् ९४५ हि०) निकाला। दुर्ग बियाना के पास पहाड़ी पर उसका मकबरा है।

हुमायूँ को शेख के मारे जाने पर बड़ा दुःख हुआ और वह उसके भाई मुहम्मद गौस के यहाँ शोक मनाने गया। वह शेख अब्दुल्ला शत्तारी के शिष्य शेख काजन बंगाली के शिष्य हाजी हमीद ग्वालिअरी गजनवी का शिष्य था। इसका ठीक नाम अब्दुल् मुवीद मुहम्मद था और गुरु की ओर से इसे गौस की पदवी मिली थी। यह बिहार के अंतर्गत चुनार की पहाड़ियों में पीर की तौर पर रहता था और उसी एकांत बास में सन् ९२९ हि० (सन् १५२३ ई०) में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक जवाहिर खमसा लिखा। उस समय वह २२ वर्ष का था। जब सन् ९४७ हि० में शेरशाह ने उत्तरी भारत विजय कर लिया तब हुमायूँ से अपने संबंध के कारण यह भय से गुजरात भाग गया। वहाँ एक ऊँची खानकाह बनवाकर उस देश के निवासियों को मुसलमान बनाने का प्रयत्न करने लगा। जब सन् ९६१ हि० (सन् १५५४ ई०) में हुमायू का झंडा फिर भारत में फहराया तब शेख ने वहाँ से लौटने का निश्चय किया और सन् ९६३ हि० में, जो अकबर के राज्य के आरंभ का वर्ष था, ग्वालियर होता आगरे आया। बादशाह ने इसका स्वागत तथा सम्मान किया। शेख गदाई कंबो सद्रुस्सदूर ने, शेख से अपनी पुरानी शत्रुता के विचार से, फिर वैमनस्य ठाना और बैरामखाँ को गुजरात में

शेख की लिखी एक पुस्तिका मोराजिया दिखलाया। इसने उसमें अपनी वंशपरंपरा दी थी, जिसकी गुजरात के विद्वानों ने कठोर आलोचना की थी। इस प्रकार गदाई ने खाँ को शेख के विरुद्ध कर दिया, जिससे उसने शेख का शाही सम्मान नहीं किया, जैसी कि उसने आशा की थी। तब इसने छुट्टी ली और अप्रसन्न होकर अपने स्थान ग्वालियर चला गया। सोमवार १७ रमजान सन् ९७० हि० (१० मई सन् १५६३ ई०) को यह मर गया और इसकी तारीख 'बंदएखुदाशुद' हुई। कहते हैं कि अकबर से इसे एक करोड़ दाम वृत्ति मिलती थी। जखीरतुल् खवानीन में लिखा है कि शेख को नौ लाख की जागीर मिली थी और उसके पास चालीस हाथी थे। अकबरनामे से ज्ञात होता है कि यह कथन कि अकबर उसका शिष्य था, सच है और शेख अबुल्फ़ज़्ल ने शेखों की प्रतिद्वंद्विता, ईर्ष्या या बादशाह की प्रकृति के विचार से इसका उलटा दिखलाया है। उसने लिखा है कि चौथे वर्ष सन् ९६६ हि० में, जिसमें कुछ के अनुसार शेख गुजरात से लौटकर आया था, अकबर आगरे से अहेर खेलने ग्वालियर पहुँचा। उसे यहाँ मालूम हुआ कि किब-चाक के बैल मुहम्मद गौस के साथ गुजरात से आए हैं तब उन्हें व्यापारियों से उचित मूल्य पर खरीद लेने के लिये आज्ञा हुई। इसपर उससे कहा गया कि शेख और उसके मनुष्यों के पास इनसे अच्छे पशु हैं और यदि अकबर शिकार से लौटते समय शेख के निवासस्थान से होता चले तो वह अवश्य भेंट में उन्हें दे देगा। जब अकबर उसके यहाँ गया तब शेख ने उसके आने को अपना बड़ा सम्मान समझा और बैराम खाँ के

कुव्यवहार की इसे सफाई माना। इसके मनुष्यों के पास जितने पशु थे वे सब तथा गुजरात की अन्य अलभ्य वस्तुओं को भेंट दिया। इसने मिष्टान्न तथा इत्र भी निकाले। मुलाकात के बाद इसने बादशाह से पूछा कि उसने किसी को अनुगमन का हाथ दिया है। बादशाह ने कहा नहीं। शेख ने आगे हाथ बढ़ाकर बादशाह का हाथ पकड़ लिया और कहा कि 'हमने आपका हाथ पकड़ा।' बादशाह मुस्किराकर बिदा हुए। सुना जाता है कि बादशाह ने कहा था कि 'उसी रात्रि को हम लोग अपने खेमे में लौटे, मदिरापान हुआ और सुख उठाया गया तथा बैलों के पकड़ने और शेख के हाथ पकड़ने की चालाकी पर खूब हँसी हुई।'

शैर

रंग विरंगे कबाओं नीचे वे फंदे लिए रहते हैं।
छोटी आस्तीन वाले इनके बड़े हाथ (लूट) को देखो ॥

इसके अनंतर वह स्वयं प्रसन्न होनेवाला मूर्ख अपने कार्य की प्रशंसा जनसाधारण में करने लगा। उसने (अबुल्फ़ज़ल) इस वर्णन के सिवा और भी बहुत कुछ लिखा है, पर उसका यहाँ देना ठीक नहीं है।

अबुल् फजल ने शेख बहलोल के बारे में और भी विचित्र बातें लिखी हैं, जैसे हुमायूँ का शेख के शोबदेबाजी में मन लगता था, इसलिए उसे शेख की प्रतिष्ठा करना पड़ता था। कभी वह हुमायूँ को अपना शिष्य बतलाता और कभी अपने को उसका राजभक्त नौकर कहता। वास्तव में वे दोनों भाई गुण या

विद्वत्ता से विहीन थे पर वे पहाड़ों पर आश्रम में बैठकर खुदा का नाम जप करते थे और उसे अपने नाम तथा प्रभाव का द्वार बनाया था। शाहजादों और अमीरों के सत्संग में रहने से मूर्खों के कारण यह बराबर अपने पेशे में सफल होते गए और फकीरी की वस्तु बेंचकर बहानों से ग्राम और बस्ती कमाते गए। वास्तव में यह सब विवरण अबुल् फज़्ल की गाली है, जैसा वह अपने समय के बड़े शेखों के प्रति देने का आदी था। इसका कारण उसकी गुप्त ईर्ष्या थी कि कोई उसका प्रतिद्वंद्वी न खड़ा हो जाय क्योंकि उसका पिता भी धार्मिक नेता था और गौस के बराबर अपने को समझता था पर उसे लोग वैसा नहीं मानते थे। यह उसकी अहम्मन्यता और बकवाद का फल हो सकता है, जो अनुदार होकर जनसाधारण की राय नहीं मानता। उन लोगों की फकीरी तथा सिद्धाई, जिससे गुप्त बातें ज्ञात हो जाती हैं, जो कुछ रही हो पर यह ठीक है कि हुमायूँ उन दोनों भाइयों पर बहुत श्रद्धा रखता था। शेरशाह के विजयोपरांत हुमायूँ ने जो पत्र शेख मुहम्मद गौस को लिखा था वह शेख के उत्तर सहित गुलजारुल्-अबयार में दिया है, जिससे यह स्पष्ट हो जाता है। इसलिए वे दोनों यहाँ दे दिए जाते हैं।

हुमायूँ का पत्र

आदाब और हाथ चूमने के बाद प्रार्थना है कि सर्व शक्तिमान की कृपा ने आप और सभी दर्वेशों के मार्ग-प्रदर्शन द्वारा हमें दुःखों के दर्रे से निकाल कर आराम में पहुँचाया। षड्चक्री भाग्य के कारण जो हुआ है उससे हमको इससे

अधिक कष्ट नहीं मिला है कि हम आपकी सेवा से वंचित हुए। हर स्वाँस और हर पग पर हमें ख्याल होता है कि वे राक्षस-प्रकृति मनुष्य (शेरशाह तथा अफगानगण) उस दैवी पुरुष से कैसा वर्ताव करेंगे। जब हमने सुना कि आप उसी समय वहाँ से गुजरात को रवाना हुए तब हमारी आशंका कम हो गई। हमें आशा है कि जैसे खुदा ने आपको उस अयोग्य के कष्ट से छुटकारा दिया है उसी प्रकार वह हम लोगों की प्रकट जुदाई को दूर कर देगा। ए खुदा, हम किस प्रकार उस सिद्ध पुरुष को मार्ग प्रदर्शन के लिए धन्यवाद दें। इन सब कष्टों के रहते, जो प्रकट में मुझे घेरे हुए हैं, हमारे हृदय के कोष में, ऐक्य-पूजन के निवास में, तनिक भी चोट या असफलता नहीं है। आने जाने का मार्ग सदा जारी रहे और हमारी शुभेच्छाओं के कारवाँ के पहुँचने को खुला रहे।

उत्तर

"बादशाह के सुप्रसिद्ध पत्र की पहुँच से और हुमायूँ के सम्मान्य लेख के पढ़ने से इस देश के ईमानदारों को बड़ा आराम पहुँचा तथा उससे साथ के सेवकों के स्वास्थ्य तथा ऐश्वर्य की सूचना भी मिल गई। जो कुछ लिखा गया है वह कुल बातों का सार है। जो हो चुका है उसके लिए रंज नहीं है।

मिसरा

जो शब्द हृदय से निकलता है वह हृदय तक पहुँचता है।

मेरी प्रार्थना है कि मेरे ताज-सुशोभित स्वामी का सिर दुखद घटनाओं से विचलित न हो।

मिसरा

सुमार्ग के यात्री के लिए, जो घटना घटती है
वह अच्छे ही के लिए होती है ॥

जब खुदा अपने सेवक को पूर्ण करने के मार्ग पर ले चलता है तब उस पर वह अपने सुंदर तथा भयानक दोनों गुणों का प्रयोग करता है। उसकी सुहृद कृपा का समय बीत गया है और कुछ दिन के लिए दुख आ गया है। जैसा कहा गया है 'सुख के साथ दुःख आता है और दुःख के साथ सुख।' सुखद समय पुनः शीघ्र आवेगा क्योंकि अरब कानून के अनुसार 'एक दुःख दो सुखों के बीच रहता है।' इस कारण कि आधेय का घेरा आधार से कम होता है, सफलता-बधू शीघ्र विवाह मंच पर आ बैठेगी। खुदा ऐसा करे और खुदा को अब तथा बाद दोनों जगह स्तुति है।

संक्षेपतः शेख मुहम्मद गौस भारत के शत्तारी नेताओं में से एक था। इसके कई प्रसिद्ध शिष्य तथा उत्तराधिकारी हुए। सैयद वजीहुद्दीन गुजराती इसका शिष्य था, जिसने पुस्तकों पर टीकाएँ लिखीं और जो विज्ञान का विद्वान था। एक ने सैयद से कहा कि 'आपने इतनी विद्वत्ता और बुद्धि के रहते शेख को क्यों गुरु बनाया।' उसने उत्तर दिया कि 'यह धन्यवाद की बात है कि मेरे रसूल उम्मी थे तथा पीर निरक्षर हैं।' शत्तारी मत सुलतानुल्आ-रिफीन बायजीद बिस्तामी से शुरू होता है, जिससे तुर्की में यह मत बिस्तामिया कहलाता है। इस मत के बीच की एक कड़ी शेख अबुल्हसन इश्की था, जिससे फारस और तूरान में यह इश्किया कहलाता है। इस मत के पीरों को शत्तारी इसलिए

कहते हैं कि वे अन्य मतवाले पीरों से अधिक तेज तथा उत्साही होते हैं। इस मत के बड़े आदमी अरबी तथा पारसी इराकों में बराबर यात्रियों के लिए मार्ग-प्रदर्शन का दीपक जलाते हैं। पहिला आदमी जो फारस से भारत आया वह शेख अब्दुल्ला शत्तारी था, जो शेखों के शेख शहाबुद्दीन सहर-वर्दी से पाँच पीढ़ी और बायजीद बिस्तामी से सात पीढ़ी बाद हुआ। अखबारुल् अखियार में लिखा है कि शेख अब्दुल्ला शेख नज्मुद्दीन किबरी से पाँच पीढ़ी पर हुआ। इसने मालवा में मांडू में निवास किया और वहीं सन् ८९७ हि० (१४८५ ई०) में मर कर गाड़ा गया। उसके चेले भारत में शिष्य करते फिरते हैं।

---

३८. अब्दुल्ला खाँ सईद खाँ

यह सईद खाँ बहादुर जफरजंग का चौथा लड़का था। सौभाग्य तथा अच्छे कार्य से इसका पिता बराबर उन्नति कर रहा था, इसलिये इसे योग्य मंसब मिला। १३ वें वर्ष शाहजहाँनी में यह पाई बंगश का रक्षक नियत हुआ। १७ वें वर्ष में इसका मंसब एक हजारी ४०० सवार का हो गया और यह कंधार में अपने पिता के साथ नियत हुआ। जब २५ वें वर्ष में इसका पिता मर गया तब इसका मंसब दो हजारी १५०० सवार का हुआ और उसी वर्ष के अंत में इसे खाँ की पदवी तथा चाँदी के साज सहित घोड़ा मिला। यह औरंगजेब के साथ कंधार की दूसरी चढ़ाई पर भेजा गया। इसके बाद बहुत दिनों तक यह काबुल नगर का कोतवाल रहा। ३१ वें वर्ष में इसका मंसब दो हजारी २००० सवार का हो गया और इसे डंका निशान मिला। इसके बाद ५०० सवार और बढ़े। यह सुलेमान शिकोह के साथ नियत किया गया, जो सुलतान शुजाअ के विरुद्ध भेजा गया था। बाद को जब आकाश ने नया रंग दिखलाया और दाराशिकोह सामूगढ़ युद्ध के बाद लाहौर भागा तब यह उक्त शाहजादे का साथ छोड़कर औरंगजेब की सेवा में चला गया। इसे खिलअत, सईदखाँ पदवी और तीन हजारी २५०० सवार का मंसब मिला। इसका आगे का विवरण नहीं प्राप्त हुआ।

३६. अब्दुल्ला खाँ सैयद

यह मीर ख्वानिन्दा का पुत्र था। छोटी अवस्था ही से यह अकबर द्वारा पालित हुआ, उसकी सेवा में रहा तथा सात सदी मंसब तक पहुँचा। ९ वें वर्ष में यह अन्य सर्दारों के साथ अब्दुल्ला खाँ उजबेग का पीछा करने पर नियत हुआ, जो मालवा से गुजरात भाग गया था। १७ वें वर्ष में जब बादशाह ने गुजरात-विजय की इच्छा की और खानेकलाँ आगे भेजा गया तब यह भी उसके साथ नियत हुआ। १८ वें वर्ष में यह मुजफ्फर खाँ के साथ भेजा गया, जो मालवा का अध्यक्ष नियत हुआ था। १९ वें वर्ष में जब बादशाह स्वयं पूर्वीय प्रांतों की ओर गए तब यह भी उनका एक अनुयायी था। इसके बाद जब खान-खानाँ बंगाल विजय करने पर नियत हुआ तब यह भी साथ गया। सुलेमान किर्रानी के पुत्र दाऊद के साथ के युद्ध में यह खाने-आलम के हरावल में था। वहाँ से किसी कारण-वश यह दरबार चला आया। २१ वें वर्ष में घोड़ों की डाक से पूर्वीय प्रांतों में यह संदेश लेकर भेजा गया कि बादशाह स्वयं वहाँ पधार रहे हैं। उसी वर्ष के मध्य में यह विजय का समाचार लाया और उस बड़ी दूरी को केवल ११ दिन में पूरी कर दरबार पहुँचा। इस कार्य के लिये कृपापूर्वक इसका आदर हुआ। इतना सोना चाँदी इसके दामन में छोड़ा गया कि यह उसे ले न जा सका। कहते हैं कि जब बादशाह ने इसे भेजा

था तभी इससे कहा था कि 'तुम विजय का समाचार लाओगे।' २५ वें वर्ष में जब खाने आजम कोका बंगाल में विद्रोह-दमन करने को नियत हुआ तब पूर्वोक्त खाँ भी उसके साथ भेजा गया। शहबाज खाँ और मासूम खाँ फरन्खुदी के बीच के युद्ध में यह बाएँ भाग में था। उस प्रांत का कार्य ठीक तौर पर नहीं चल रहा था, इसलिये ३१ वें वर्ष के अंत में (सन् ९९५ हि०) यह कासिम खाँ के पास भेजा गया, जो काश्मीर का शासक नियत हुआ था। एक दिन जब इसकी पारी थी तब इसने एक पहाड़ी कश्मीरियों के युद्ध में शत्रुओं से खाली करा ली पर बिना ठीक प्रबंध के लौटते समय जब यह दर्रे में पहुँचा तब विद्रोहियों ने हर ओर से तीर गोली से आक्रमण किया, जिससे लगभग तीन सौ सैनिक मारे गए। खाँ भी वहीं ज्वर से ३४ वें वर्ष सन् ९९७ हि० (सन् १५८९ ई०) में मर गया।



सैयद कुतुबुल्मुल्क अब्दुल्ला खाँ हसनअली

(पेज १६५)

४०. कुतुबुल्मुल्क सैयद अब्दुल्ला खाँ

इसका नाम हसन अली था। यह मुहम्मद फर्रुखसियर बादशाह का प्रधान मंत्री था। इसका भाई सैयद हुसेन अली अमीरुल् उमरा था, जिसका वृत्तांत अलग लिखा जा चुका है। औरंगजेब के समय में कुतुबुल्मुल्क को खाँ की पदवी और बगलाना के अंतर्गत नदरबार और सुलतानपुर की फौजदारी मिली थी। इसके अनंतर यह औरंगाबाद का अध्यक्ष हुआ।

जब शाहआलम का पुत्र शाहजादा मुहम्मद मुइज्जुद्दीन को औरंगजेब ने मुलतान का सूबेदार नियत किया तब हसन अली खाँ भी उसके साथ भेजा गया। इसका साथ शाहजादे को पसंद नहीं हुआ इसलिए यह दुखी होकर लाहौर चला आया। औरंगजेब की मृत्यु पर और शाह आलम के बादशाह होने पर हुसेन अली खाँ को तीन हजारी मंसब, डंका और नई सेना की बख्शीगिरी मिली। मुहम्मद आजमशाह के युद्ध में मुहम्मद मुइज्जुद्दीन की सेना का हरावल नियत हुआ, जो शाहआलम की कुल सेना का हरावल था। जिस समय युद्ध बराबर चल रहा था उस समय हसन अली खाँ, हुसेन अली खाँ और इसका तीसरा भाई नूरुद्दीन अली खाँ बहादुरी से हाथी से उतर पड़े और बारहा के सैयदों के साथ वीरता से धावा किया। नूरुद्दीन अली खाँ मारा गया और दोनों भाई घायल हुए। विजय की प्रशंसा इन्हें मिली। हसन अली खाँ का मनसब बढ़कर चार हजारी हो गया

और अजमेर का सूबेदार नियत हुआ। इसके अनंतर यह इलाहाबाद का सूबेदार हुआ।

जब मुहम्मद मुइज्जुद्दीन बादशाह हुआ तब इलाहाबाद का शासन इसे हटाकर राजेखाँ को मिला। सैयद सदरजहाँ सदरुस्सुदूर पिहानवी का वंशज सैयद अब्दुल् गफ्फार उसका नायब होकर इलाहाबाद गया। सैयद हसन अली खाँ सेना लेकर युद्ध के लिए निकला और इलाहाबाद के पास युद्ध हुआ, जिसमें सैयद अब्दुल् गफ्फार विजयी होने के बाद फिर हारकर लौट गया। मुहम्मद मुइज्जुद्दीन आलस्य और आराम के कारण कुछ व्यवस्था न कर सैयद हसन अली खाँ को प्रसन्न करने के लिए इलाहाबाद की बहाली का फरमान मनसब की तरक्की के साथ भेजा परंतु उसके भाई सैयद हुसेन अली खाँ ने, जो अजीमाबाद पटने का नाजिम और वीरता, बुद्धिमानी तथा प्रतिष्ठा में प्रसिद्ध था, मुहम्मद फर्रुखसियर से मित्रता कर ली। यह उसके वृत्तांत में लिखा जा चुका है। बड़े भाई हसन अली खाँ ने भी उस मित्रता को मान लिया। हसन अलीखाँ मुहम्मद मुइज्जुद्दीन की चापलूसी पर, जिसकी कृपा के अभाव को मुलतान की सूबेदारी के समय से वह जानता था, विश्वास न कर सच्चे दिल से मुहम्मद फर्रुखसियर का साथी हो गया और उसे इलाहाबाद आने को लिखा। मुहम्मद फर्रुखसियर इन दो बहादुर भाइयों के ससैन्य मिल जाने से अपने को भाग्यवान समझकर पटने से इलाहाबाद पहुँचा और हसन अली खाँ से नए सिरे से प्रतिज्ञा कराकर उसपर कृपा किया तथा उसे हरावल नियत कर फिर आगे बढ़ा।

मुहम्मद मुइज्जुद्दीन का बड़ा पुत्र इज्जुद्दीन ख्वाजा हुसेन

खानदौरॉं की अभिभावकता में दिल्ली से मुहम्मद फर्रुखसियर का सामना करने आया और इलाहाबाद के अंतर्गत खजवा में पहुँचकर शत्रु की प्रतीक्षा करने लगा। मुहम्मद फर्रुखसियर की सेना के पहुँचते ही इज्जुद्दीन युद्ध न कर अर्द्धरात्रि को भाग गया। मुहम्मद फर्रुखसियर की सेना बड़ी कठिनाई और बे सामानी में थी पर इज्जुद्दीन के पड़ाव की लूट से उसमें कुछ सामान हो गया और आगे बढ़कर वे आगरे के पास पहुँचे। मुहम्मद मुइज्जुद्दीन भी राजधानी से कूच कर आगरे आया और यमुना नदी पार करने का विचार कर रहा था कि हसन अली खॉं दूरदर्शिता से रोजबहानी सराय के पास से, जो आगरे से चार कोस पर है, यमुना नदी पार कर लिया। उसके पीछे पीछे फर्रुखसियर भी पार हो गया। उसके बहुत से आदमी तंगी और सामान की कमी से बड़ी खराब हालत में थे। बहुत थोड़े साथ पहुँचे। १३ जीहिज्जा सन् ११३३ हि० (१७१२ ई०) को दोनों पक्ष में युद्ध हुआ। मुहम्मद फर्रुखसियर की विजय हुई और मुइज्जुद्दीन दिल्ली लौट गया। इस युद्ध में दोनों भाइयों ने बहुत प्रयत्न किया था। छोटा भाई हुसेन अली खॉं बहुत घायल होकर मैदान में गिर गया था। विजय के बाद बड़ा भाई हसन अली खॉं सेना के साथ दिल्ली रवाना हुआ और बादशाह भी एक सप्ताह ठहर कर दिल्ली को चले। हसन अली खॉं को सात हजारी ७००० सवार का मनसब, सैयद अब्दुल्ला खॉं कुतुबुल्मुल्क बहादुर यार बफादार जफरजंग की पदवी और प्रधान मंत्रित्व का पद मिला।

इन दोनों भाइयों की प्रतिष्ठा सीमा पार कर चुकी थी

इसलिए कुछ अदूरदर्शी पुरुष इन्हें गिराने की चेष्टा करने लगे और वाहियात बातों से बादशाह के कान भरे। यहाँ तक हुआ कि दोनों भाई घर बैठ गए और मोरचे बाँध कर लड़ाई का प्रबंध करने लगे। बादशाह की माँ ने, जो दोनों से मित्रता रखती थी और पुराना संबंध था, कुतुबुल्मुल्क के घर आकर नई प्रतिज्ञा कर मित्रता दृढ़ की। दोनों भाइओं ने सेवा में उपस्थित होकर प्रेम भरे उलाहने दिए और कुछ दिन आराम से बीते। स्वार्थियों ने बादशाह के मिजाज को फिरा दिया और प्रतिदिन वैमनस्य बढ़ता गया। यह झगड़ा, जो पुरानी रियासतों को बिगाड़ने वाली होती है, बढ़ता गया। यहाँ तक कि अमीरुल् उमरा दक्षिण का सूबेदार नियत किया गया और कुतुबुल्मुल्क ने ऐश आराम में लिप्त रहकर मंत्रित्व का कुल भार राजा रतनचंद को सौंप दिया। एतकाद खाँ काश्मीरी बादशाह का मित्र बन गया और उसने सैयदों को नष्ट करने की राय दी। कुतुबुल्मुल्क ने अमीरुल्उमरा को लिखा कि काम हाथ के बाहर चला गया इसलिए दक्षिण से शीघ्र आ जाना चाहिए, जिसमें प्रतिष्ठा न बिगड़ने पावे। अमीरुल्उमरा शीघ्रता से तैयार होकर दक्षिण से कूच कर दिल्ली के पास ससैन्य आ पहुँचा और बादशाह को संदेश भेजा कि जब तक दुर्ग का प्रबंध उसके हाथ में न दिया जायगा तब तक वह सेवा में उपस्थित होने में हिचकता रहेगा। बादशाह ने दुर्ग के सब काम अमीरुल्उमरा के आदमियों को सौंप दिए। यह प्रबंध हो जाने पर अमीरुल् उमरा बादशाह की सेवा में पहुँचा। ८ रबीउल् आखीर को दूसरी बार मुलाकात की इच्छा से सेना सुसज्जित कर शहर में

गया और शाइस्ता खाँ की हवेली में उतरा। कुतबुल्मुल्क और महाराजा अजीत सिंह ने पहिले दिन की तरह दुर्ग में जाकर वहाँ का प्रबंध अपने हाथ में ले लिया और फाटक की कुंजी भी अपने हाथ में कर ली। वह दिन और रात्रि इसी प्रकार बीत गई और नगरवालों को यह भी नहीं मालूम हुआ कि दुर्ग में रात्रि के समय क्या हुआ। जब सुबह हुआ तब कुतुबुल् मुल्क के मारे जाने का समाचार फैला, जिससे बादशाही सेना हर ओर से अमीरुल्उमरा पर धावा करने को तैयार हुई। अमीरुल्उमरा ने कुतुबुल्मुल्क से कहला भेजा कि अब किस बात की प्रतीक्षा करते हैं, जल्दी उसे बीच से उठा दो। निरुपाय होकर कुतुबुल्मुल्क ने ९ रबीउल् आखिर सन् ११३१ हि० (१७ फरवरी सन् १७१९ ई०) को बादशाह को कैद कर दिया और शाहआलम के पौत्र तथा रफीउश्शान के पुत्र रफीउद्दर्जात को कैदखाने से निकाल कर गद्दी पर बैठाया। उसकी राजगद्दी का डंका बजने पर शहर में जो उपद्रव मचा था, वह शांत हो गया। रफीउद्दर्जात कैदखाने में तपेदिक से बीमार था और जब बादशाह हुआ तब उसने परहेज छोड़ दिया, जिससे तीन महीने कुछ दिन बाद मर गया। उसके वसीयत के अनुसार उसके बड़े भाई रफीउद्दौला को गद्दी पर बैठाया और द्वितीय शाहजहाँ की पदवी दी। कुछ समय बाद निकोसियर ने आगरे में उपद्रव मचाया। अमीरुल् उमरा ने बादशाह के साथ शीघ्र वहाँ पहुँच कर उस दुर्ग को विजय किया। एकाएक दूसरा फसाद खड़ा हुआ और जयसिंह सवाई ने विद्रोह किया। कुतुबुल्मुल्क बादशाह के साथ जयसिंह को दमन करने के लिए फतहपुर

सीकरी गया और जयसिंह से संधि हो गई। द्वितीय शाहजहाँ भी तीन महीने कुछ दिन बाद उसी रोग से मर गया तब शाह-आलम के पौत्र और जहाँशाह के पुत्र रौशन अख्तर को दिल्ली से बुलाकर १५ जिकदः सन् ११३१ हि० (१९ सितं० सन् १७१९ ई०) को गद्दी दी और मुहम्मद शाह पदवी की घोषणा की।

यद्यपि सैयदों ने स्वयं बादशाहत का दावा नहीं किया और तैमूर के वंशजों ही को गद्दी पर बैठाया पर मुहम्मद फर्रुखसियर के साथ जो बर्ताव इन लोनों ने किया था वह नहीं फला और आराम से एक पल भी नहीं बिता सके। फिसाद रूपी नदियाँ चारों ओर से उमड़ आईं और प्रभुत्व के नाश का सामान तैयार हो गया। समाचार मिला कि १ रज्जब सन् ११३२ हि० को मालवा के प्रांताध्यक्ष नवाब निजामुल्मुल्क ने नर्मदा नदी पार कर आसीरगढ़ और बुरहानपुर पर अधिकार कर लिया है। अमीरुल् उमरा ने अपने बख्शी दिलावर अलीखाँ को भारी सेना के साथ निजामुल्मुल्क पर भेजा पर वह युद्ध में मारा गया। दक्षिण का नायब सूबेदार सैयद आलम अली खाँ, जो वीर नवयुवक था, युद्ध कर मारा गया। अमीरुल् उमरा ने बादशाह के साथ दक्षिण जाने का विचार किया। कुतबुल्मुल्क कुछ सरदारों के साथ १९ जीकदः को आगरा से चार कोस फतहपुर से दिल्ली को रवाना हुआ। अभी वह पहुँचा नहीं था कि ७ जीहिज्जः को अमीरुल् उमरा के मारे जाने का समाचार मिला। कुतुबुल्मुल्क ने अपने छोटे भाई सैयद नज्मुद्दीन अलीखाँ को, जो दिल्ली का शासक था, लिखा कि एक शाहजादे को कैदखाने

से निकाल कर गद्दी पर बैठावे। १५ जीहिज्जा सन् ११३२ हि० सन् १६२० ई० को शाह आलम के पौत्र और रफीउश्शान के पुत्र सुलतान इब्राहीम को दिल्ली में गद्दी पर बैठा दिया। दो दिन बाद कुतुबुल्-मुल्क भी पहुँचा और पुराने तथा नए सरदारों को मिलाने लगा तथा सेना भी एकत्र करने लगा। मंत्रित्व-काल में जो कुछ नकद और सामान एकट्ठा किया था और जिसके द्वारा किसी मनुष्य की शक्ति नहीं है कि अपने को बचा सके, वह सब सिपाहियों और मित्रों में बाँट दिया। कहता था कि यदि रहूँगा तो सब इकट्ठा कर लूँगा और यदि दैव की इच्छा दूसरी है तो क्या हुआ जो दूसरों के हाथ चला गया। १७ जीहिज्जा को युद्ध के लिए दिल्ली से निकला। १३ मुहर्रम सन् ११३३ हि० को हसनपुर पहुँचा। १४ को युद्ध हुआ। बादशाह का तोपखाना हैदर कुली खाँ मीर आतिश की अधीनता में बराबर आग बरसाता रहा। बारहा के सिपाही छाती को ढाल बनाकर बराबर तोपखाने पर धावा करते रहे पर समय के फेर से कोई लाभ नहीं हुआ। रात्रि होनेपर भी तोप, जम्बूरक और सुतुरनाल से बराबर गोला बरसाते रहे और फ़ुर्सत न मिलने से कुतुबुल्मुल्क की सेना भाग चली और सुबह होते-होते बहुत थोड़े आदमी रह गए। सबेरे ही बादशाह की सेना ने धावा किया और खूब युद्ध हुआ। बहुत से सैयद घायल हुए और नज्मुद्दीन अली खाँ को घातक चोट लगी। कुतुबुल् मुल्क स्वयं हाथी से गिर पड़ा क्योंकि सिर में तीर का और हाथ में तलवार की चोट लगी थी। हैदरकुली खाँ ने वहाँ पहुँच कर उसे अपने हाथी पर ले लिया और बादशाह के पास ले गया। बादशाह ने प्राण रक्षा कर उसे हैदर कुली खाँ को

सौंप दिया। कुतुबुल् मुल्क दिन रात कैद में सिआह होता जाता था। अंत में जहर दे दिया। पहिली बार इसके खिदमतगार ने इसको जहर मोहरा पीसकर पिला दिया और बहुत कै करने पर जहर शांत हुआ। दूसरे दिन बादशाही ख्वाजासरा हलाहल विष ले आया। कुतुबुल् मुल्क स्नान कर पूर्व की ओर मुँह करके बैठा और कहा कि ऐ खुदा तू जानता है कि यह हराम वस्तु मैं अपनी खुशी से नहीं खा रहा हूँ।' इसके गले से उतरते ही इसका रंग बदलने लगा और यह मर गया। यह घटना १ जीहिज्जा सन् ११३५ हि० (१७२३ ई०) को हुई। इसकी कब्र दिल्ली में है। इसका स्मारक पटपर गंज की नहर दिल्ली में है, जहाँ बिल्कुल पानी नहीं था। कुतुबुल मुल्क सन् ११२८ हि० में शाहजहाँ की नहर से काटकर इसे लाया था और उस टुकड़े को पानी पहुँचाया था। मीर अब्दुल् जलील बिलग्रामी अल्लामः ने एक किता कहा है कि

कुतुबुल् मुल्क अब्दुल्ला खाँ के दान और औदार्य का समुद्र। उस वैभवशाली मंत्रीने भलाई की नहर जारी की॥

उसके लिए अब्दुल् जलील वासिती ने तारीख कहा है 'नहरे कुतुबुल् मुल्क मद बहरे एहसानो करम।

मृत अल्लामः ने उसकी प्रशंसा में मसनवी कही है—

शैर

वह बुद्धिमानी में अरस्तू और सुलेमान बादशाह के मंत्री का चिन्ह है। अब्दुल्ला खाँ राज्य का दाहिना हाथ है। जब दीवान में बैठा तो नव बहार है और जब मैदान में आया तो अली की तलवार है।

४१. अब्दुर्रज्जाक खाँ लारी

यह पहिले हैदराबाद के शासक अबुल् हसन का सेवक था और इसकी पदवी मुस्तफा खाँ थी। जब २९ वें वर्ष में औरंगजेब ने गोलकुंडा दुर्ग घेर लिया, जिसमें अबुलूहसन था, तब उसके बहुत से अफसर समय के कारण औरंगजेब के पास चले आए और ऊँचे पद तथा पदवी पाई। पर अब्दुर्रज्जाक स्वामिभक्त बना रहा और बराबर दुर्ग से निकलकर खाइयों पर धावा करता रहा तथा कभी प्रयत्न करने से नहीं हटा। इसने शाही फर्मान, जिसमें इसे आशा दिलाई गई थी और जो इसे शांत करने को भेजा गया था, अस्वीकार कर दिया और घृणा के साथ फाड़ डाला। एक रात्रि जब शाही अफसर दुर्ग-सेना से मिलकर दुर्ग में घुस गए और बड़ा शोर मचा, उस समय यह बिना तैयारी किए ही एक घोड़े पर चारजामा डालकर दस बारह सैनिकों के साथ तलवार ढाल लेकर फाटक की ओर दौड़ा। शाही सेना फाटक पर अधिकार कर जब दुर्ग में प्रवाह धारा के समान चली आ रही थी, तब अब्दुर्रज्जाक का उसका सामना हुआ और यह तलवार चलाने लगा। शाही सेना से यह घायल हो गया और इसे बारह चोट लगे। अंत में आँख पर कटी हुई झिल्ली के आ जाने से इसका घोड़ा इसे दुर्ग के पास एक नारियल वृक्ष के नीचे ले गया। किसीने इसे पहिचान कर इसे आश्रय दिया। जब यह घटना अफसरों को मालूम हुई और उनके

द्वारा बादशाह से कही गई तब उसने इसकी स्वामिभक्ति की प्रशंसा कर शस्त्रवैद्यों को इसे देखने भेजा।

कहते हैं कि जब इसके अच्छे हो जाने की आशा हुई और इसकी सूचना औरंगजेब को मिली तब उसने इसके पास सूचना भेजी कि वह अपने लड़कों को सेवा के लिए भेजे और उसे भी स्वस्थ होने पर काम मिल जायगा। इसने धन्यवाद देने के बाद कहलाया कि उसके कठोर जीवन का यद्यपि अंत नहीं हुआ पर उसके हाथ पैर घायल होकर बेकार हो चुके इसलिए वह सेवा नहीं कर सकता। यदि वह सेवा करने योग्य भी होता तो अबुल्-हसन के निमक से पला हुआ यह शरीर बादशाह आलमगीर की सेवा नहीं कर सकता। बादशाह के मुख पर क्रोध की झलक आ गई पर न्याय की दृष्टि से कहा कि उसके अच्छे होने पर सूचना दी जाय। इसके अच्छे होने पर हैदराबाद के अध्यक्ष को आज्ञा दी गई कि उसे समझाकर भेज दे। पर इसके अस्वीकार करने पर इसे कैद कर भेजने की आज्ञा दी गई। खाँ फीरोज जंग ने इसके लिए प्रार्थना कर इसे अपने पास बुला लिया और कुछ दिन अपने पास रखकर इसे ठीक कर लिया। ३८ वें वर्ष में इसे चारहजारी ३००० सवार का मंसब मिला और नौकरों में भर्त्ती हो गया। इसे खाँ की पदवी, घोड़ा और हाथी मिला तथा राहिरा का फौजदार नियत हुआ। ४० वें वर्ष में आदिलशाही कोंकण का फौजदार हुआ, जो समुद्र तट पर गोआ के पास है। इसके अनंतर आवश्यकता पड़ने से मक्का जाने की छुट्टी मिली। वहाँ से लौटने पर अपने घर लार (फारस) पहुँचकर वहीं एकांतवास करने लगा। बादशाह ने यह सुनकर इसके पुत्र

अब्दुल् करीम को एक फर्मान के साथ भेजा कि वह वहाँ के एक सहस्र नवयुवकों के साथ आवे। इसी बीच खबर मिली कि शाह फारस के बुलाने पर जाते समय रास्ते में वह मर गया। रज्जाक कुली खाँ और मुहम्मद खलील दो पुत्र औरंगाबाद में रहे और वहीं जागीर पर मरे। ग्रंथकर्त्ता द्वितीय से परिचित था।

---

४२. अब्दुर्रहमान, अफजल खाँ

यह अल्लामी फहामी शेख अबुल्फजल का लड़का था। पिता की सेवा के समय इसका पालन हुआ था। अकबरी जलूस के ३५ वें वर्ष में सआदत यार कोका की भतीजी से इसका विवाह हुआ। इसको जब पुत्र हुआ तब बादशाह ने इसका बिशीतन नाम रखा, जो अजम के वीर असफंदियार के भाई का नाम था। जब शेख अबुल् फजल दक्षिण में सेनापति था तब अब्दुर्रहमान उसके तूणीर के मुख पर का तीर था। जब कोई काम आ पड़ता या किसी काम की आवश्यकता होती तो शेख अब्दुर्रहमान को वहाँ भेजता और यह अपने साहस तथा फुर्ती से उस काम को पूरा कर आता। ४६ वें वर्ष में जब मलिक अंबर हबशी ने तेलिंगाना के अध्यक्ष अली मर्दान बहादुर को कैद कर उस प्रांत पर अधिकार कर लिया तब शेख ने इसको गोदावरी के किनारे से चुनी हुई सेना देकर वहाँ भेजा। इसने शेर ख्वाजा को, जो पाथरी में था, उसके सहायतार्थ भेजा। अब्दुर्रहमान ने शेर ख्वाजा के साथ नानदेर के पास गोदावरी उतर कर मनजारा नदी के पास मलिक अंबर से युद्ध कर उसे परास्त किया। सत्य ही अब्दुर्रहमान अपनी वीरता तथा साहस के कारण शेख का भाग्य था। अपने पिता के विचार से जहांगीर के प्रति इसका जो भाव था, उसके रहते भी इसने उसकी खूब सेवा की और उसका कृपापात्र भी रहा। इसको अफजल खाँ की पदवी

और दो हजारी मंसब मिला। ३ रे वर्ष में इसका मंसब बढ़ाया जाकर यह इसलाम खाँ (अबुल्फजल का साला) के स्थान पर बिहार-पटना का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। जब गोरखपुर, जो पटना से ६० कोस पर है, इसे जागीर में मिला तब शेख हुसेन बनारसी और गियास बेग को, जो उस प्रांत के बख्शी और दीवान थे, वहाँ अन्य अफसरों के साथ छोड़कर गोरखपुर गया। दैवात् इसी समय कुतुब नामी एक अज्ञात मनुष्य उच्छ से उजैन (भोजपुर), जो पटना के पास है, फकीर के वेष में आया और अपने को सुलतान खुसरो घोषित कर अनेक बहानों से वहाँ के बलवाइयों का मिला लिया। थोड़े ही समय में कुछ सेना एकत्र कर फुर्ती से पटने पहुँच कर दुर्ग में घुस गया। घबड़ाहट में शेख बनारसी दुर्ग की रक्षा न कर सका और गियास बेग के साथ एक खिड़की से निकल कर नाव से भाग गया। बलवाई गण ने अफजल खाँ का सामान तथा राजकोष लूटकर अपने शासन का घोषणा पत्र निकाला और सेना एकत्र करने लगे। ज्यों ही अफजल खाँ ने यह समाचार सुना उसने त्योंही विद्रोहियों को दंड देने के लिए फुर्ती की। झूठे खुसरो ने दुर्ग दृढ़कर पुनपुना के किनारे युद्ध की तैयारी की। थोड़े युद्ध के बाद हार कर वह दूसरी बार दुर्ग में आया पर अफजल खाँ भी पीछा करता दुर्ग में जा पहुँचा। कुछ आदमियों को मार कर अंत में वह पकड़ा गया और मार डाला गया। जब जहाँगीर ने यह समाचार सुना, तब उसने हुक्म भेजा कि बख्शी, दीवान तथा अन्य अफसर, जिन्होंने नगर की रक्षा में कमी की थी, उन सब की दाढ़ी मोछ मुड़वाकर, स्त्रियों के कपड़े पहिराकर तथा

गधों पर दुम की ओर मुख करके बैठाकर दरबार भेजे जायँ तथा मार्ग के शहरों में उन्हें शूली दी जाय, जिसमें अन्य कादरों तथा अदूरदर्शकों को चेतावनी हो। उसी समय एकाएक बीमार हो जाने से अफजल खाँ भी दरबार बुला लिया गया। कोर्निश करने के बाद बहुत दिनों तक वह फोड़े से कष्ट पाकर ८ वें वर्ष में मर गया।

४३. अब्दुर्रहमान सुलतान

यह नज्र मुहम्मद खाँ का छठा पुत्र था। शाहजहाँ के १९ वें वर्ष में शाहजादा मुराद बख्श बड़ी सेना लेकर गया और नज्र मुहम्मदखाँ के अपने दो पुत्रों सुभान कुली और कतलक मुहम्मद के साथ भागने पर बलख पर अधिकार कर लिया। उसने नज्र मुहम्मद के अन्य पुत्रों बहराम और अब्दुर्रहमान तथा पौत्र रुस्तम को, जो खुसरो का लड़का था, बुलवाकर लहरास्प खाँ की रक्षा में सौंप दिया। २० वें वर्ष में सादुल्ला खाँ शाहजादे के उक्त पद त्याग देने पर वहाँ का प्रबंध करने पर नियत हुआ। उसने आज्ञानुसार उन तीनों को राजा विट्ठलदास आदि के साथ दरबार भेज दिया। इनके पहुँचने पर सदरुस्सदूर सैयद जलाल खियाबाँ तक स्वागत कर बादशाह के पास लिवा लाया। बादशाह ने बहराम को खिलअत, कारचोबो चारकब, जीगापगड़ी, जड़ाऊ जमधर फूल कटार सहित, पाँच हजारी १००० सवार का मंसब, सुनहले साज के दो घोड़े, ९० थान कपड़े और एक लाख शाही, जो २५००० रु० होता है, दिया। अब्दुर्रहमान को खिलअत, जीगा, जड़ाऊ कटार, सोने के साज सहित घोड़ा और पैंतालीस थान कपड़े मिले। रुस्तम को खिलअत और एक घोड़ा मिला। अब्दुर्रहमान सबसे छोटा भाई था, जिसे सौ रुपये रोज की वृत्ति देकर दारा शिकोह को सौंप दिया।

बेगम साहबा (शाहजहाँ की बड़ी पुत्री जहाँआरा बेगम ने

खाँ की स्त्रियों को बुलवाकर उन्हें संतोष दिलाया और कई प्रकार से उनपर कृपा की। इसके बाद कई बार घोड़े, हाथी तथा नगद भेंट में पाया। जब बलख नज्र मुहम्मद खाँ को लौटा दिया गया तथा उजबेगों और अलअमानों से बहुत लड़ भिड़कर जब उसने उन्हें दमन किया और राज्य दृढ़ कर लिया तब उसने अपने लड़कों और परिवार को लौटाने के लिए दरबार को लिखा। बलख और बदख्शाँ लेने के पहिले ही से खुसरू का अपने पिता से मनमुटाव हो गया था और वह दरबार में उपस्थित था इसलिए न उसके पिता ने उसे बुलाया और न वही वहाँ जाना चाहता था। बहराम भी भारत के आराम को छोड़कर नहीं जाना चाहता था। २३ वें वर्ष में अब्दुर्रहमान खिलअत, कारचोबी जीगा, तलवार, कटार, ढाल तथा कवच, सुनहले साज सहित दो घोड़े और तीस हजार रुपया पाकर अपने पिता के दूत यादगार जौलाक के साथ चला गया। जब यह अपने पिता के पास पहुँचा तब उसने इसे गोरी प्रांत दिया पर चौथा पुत्र सुभान कुली इस पर क्रुद्ध होकर एक सहस्र सवार के साथ बलख आया और खाँ को दिक करने लगा, जिससे उसे अंत में अब्दुर्रहमान को बुलाना पड़ा। अब्दुर्रहमान लौटा आ रहा था कि कलमाकों ने, जो सुभान कुली के मित्र थे, मार्ग रोक कर इसे कैद कर दिया पर अपने रक्षकों को मिलाकर अब्दुर्रहमान २४ वें वर्ष में दरबार चला आया। यहाँ इसे खिलअत, कारचोबी जीगा, फूलकटार, चार हजारी ५०० सवार का मंसब, सुनहले साज का घोड़ा, हाथी और बीस हजार रुपये नगद मिला। २५ वें वर्ष में नज्र मुहम्मद खाँ की मृत्यु पर खुसरो, बहराम और अब्दुर्रहमान को शोक

वस्त्र मिले। २६ वें वर्ष में जब इसने कुचाल दिखलाई तब बादशाह ने क्रुद्ध होकर इसे बंगाल भेज दिया। औरंगजेब के गद्दी पर बैठने के बाद यह शुजाअ के साथ के युद्ध में सेना के मध्य भाग में था। शुजा के भागने पर यह बादशाह के पास आया। १३ वें वर्ष तक यह और बहराम जीवित थे और बहुधा नगद, घोड़े और हाथी भेंट में पाते रहते थे।

---

४४. अब्दुर्रहीम, खानखानाँ

यह बैराम खाँ का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। इसकी माता मेवात के खाँ वंश की थी। जब सन् ९६१ हि० (सन् १५५४ ई०) में हुमायूँ दूसरी बार भारत की राजगद्दी पर बैठा और दिल्ली में राज्य दृढ़ किया तब यहाँ के जमींदारों को मिलाने और उनका उत्साह बढ़ाने के लिए उनकी पुत्रियों से विवाह-संबंध किया। जब भारत के एक प्रमुख जमींदार हुसेन खाँ मेवाती का चचेरा भाई जमाल खाँ हुमायूँ के पास आया तब उसे दो पुत्रियाँ थीं। उसने उनमें से बड़ी से स्वयं विवाह किया और दूसरी का बैराम खाँ से कर दिया। १४ सफर सन् ९६४ हि० (१७ दि० सन् १५५६ ई०) को अकबर की राजगद्दी के प्रथम वर्ष के अंत में अब्दुर्रहीम का लाहौर में जन्म हुआ। जब इसका पिता गुजरात के पत्तन नगर में अफगानों के हाथ मारा गया, उस समय यह चार वर्ष का था। बलवाइयों ने कंप लूटा। मुहम्मद अमीन दीवाना, बाबा जंबूर और इसकी माता ने मिर्जा की बलवे से रक्षा की और अहमदाबाद को रवानः हुए। पीछा करनेवाले अफगानों से लड़ते हुए वे वहाँ पहुँचे। चार महीने बाद मुहम्मद अमीन दीवाना तथा दूसरे सेवक मिर्जा के साथ दरबार को चले। लड़के को बुलाने का आज्ञापत्र इन्हें लाहौर में मिला। ६ ठे वर्ष के आरंभ में सन् ९६९ हि० (सन् १५६२ ई०) में इसने सेवा की और अकबर ने इसके बुरा चाहने वालों



नवाब अब्दुर्रहीम खाँ खानखानाँ

(पेज १८२)

तथा द्वेषियों के रहने पर भी इसमें उच्चता के चिह्न देखकर इसका लालन पालन का प्रबंध किया।

जब यह समझदार हुआ तब इसे मिर्जा खाँ की पदवी मिली और खाने-आजम की बहिन माहबानू बेगम से इसका विवाह हुआ। २१ वें वर्ष में यह नाम के लिए गुजरात का शासक नियत हुआ पर कुल प्रबंध वजीर खाँ के हाथ में था। २५ वें वर्ष में यह मीर अर्ज हुआ। २८ वें वर्ष में सुलतान सलीम का अभिभावक नियत हुआ और इसी वर्ष सुल्तान मुजफ्फर गुजराती पर विजय प्राप्त की। विवरण यों है कि गुजरात की पहिली चढ़ाई में सुलतान मुजफ्फर पकड़ा गया और कैद किया गया। वह मुनइम खाँ खानखानाँ के पास भेजा गया। जब मुनइम खाँ मरा, मुजफ्फर दरबार भेजा गया और शाह मंसूर को सौंपा गया। ३२ वें वर्ष में भागकर यह गुजरात पहुँचा। कुछ दिन तक जूनागढ़ के पास काठियों की रक्षा में रहा। मुगल अफसरों ने उसे कुछ महत्व न देकर उसका कुछ ध्यान नहीं किया। जब शहाबुद्दीन अहमद के स्थान पर एतमाद खाँ गुजरात का शासक नियत होकर आया तब पहिले शासक के नौकर विद्रोही हो गए और उपद्रव मचाया। मुजफ्फर उनसे जा मिला और उनका नेता होकर उसने अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया। अकबर ने सेना सहित खानखानाँ को उस पर नियुक्त किया। मुजफ्फर की सेना में चालीस सहस्र सवार थे और बादशाही सेना कुल दस सहस्र थी, इसलिए अफसरों की युद्ध की राय नहीं हुई और बादशाह ने भी लिख भेजा कि मालवा से कुलीज खाँ आदि सहायक अफसरों के पहुँचने तक

युद्ध न किया जाय। इसके साथी तथा मीर शमशेर दौलत खाँ लोदी ने कहा कि 'उस समय विजय में अनेक साझी हो जायँगे। यदि खानखानाँ होना चाहते हैं तो अकेले विजय प्राप्त कीजिए। अज्ञात नाम सहित जीने से मृत्यु भली है।' मिर्जा खाँ ने अपने साथियों को उत्साह दिलाया और सबको लड़ने के लिए तैयार किया। अहमदाबाद से तीन कोस पर सरखेज में घोर युद्ध हुआ और दोनों पक्ष के वीरों ने द्वंद्वयुद्ध किए। मिर्जा खाँ स्वयं तीन सौ बहादुरों और सौ हाथियों के साथ मध्य में डटा था कि मुजफ्फर ने छ सात हजार सवार से उस पर धावा किया। इसके कुछ हितेच्छुओं ने चाहा कि बाग पकड़ कर इसे हटा ले जायँ पर इसने दृढ़ता धारण की। कुछ शत्रु मारे गए तथा बहुत से भागे। मुजफ्फर जो अब तक घमंड में फूला हुआ था घबड़ा कर भागा। वह यहाँ से खंभात गया और वहाँ के व्यापारियों से धन लेकर फिर युद्ध की तैयारी की। मिर्जा खाँ ने मालवा से आए हुए अफसरों के साथ कूचकर कई बार मुजफ्फर को दंड दिया। मुजफ्फर ने यहाँ से नादौत पहुँचकर बलवा मचाया। दोनों पक्ष के लोगों ने पैदल होकर युद्ध के अच्छे करश्मे दिखलाए। अंत में मुजफ्फर भागकर राजपीपला चला गया। मिर्जा खाँ को पाँच हजारी मंसब और खानखानाँ की पदवी मिली।

कहते हैं कि गुजरात-विजय के दिन इनके पास जो कुछ था सब दान कर दिया था। अंत में एक मनुष्य आया और कहा कि मुझे कुछ नहीं मिला है। एक कलमदान बच गया था, उसे भी उठा कर इन्होंने दे दिया। गुजरात प्रांत में शांति स्थापित कर वहाँ कुलीज खाँ को छोड़ कर दरबार लौट आए। ३४ वें वर्ष

में बाबर का आत्मचरित्र, जिसे इन्होंने तुर्की से फारसी में अनूदित किया था, अकबर को भेंट किया, जिसकी बड़ी प्रशंसा हुई। उसी वर्ष सन् ९९८ हि० (सन् १५९० ई०) में यह वकील नियत हुआ और जौनपुर जागीर में मिला। ३६ वें वर्ष में इसे मुलतान जागीर में मिला और ठट्टा तथा सिंध प्रांत विजय करने का इसने निश्चय किया। शेख फैजी ने 'क़स्दे ठट्टा' में इसकी तारीख निकाली। जब खानखानाँ अपनी फुर्ती तथा कौशल से दुर्ग सेहवन के नीचे से, जिसे सिविस्तान भी कहते हैं, आगे बढ़े और लक्खी पर अधिकार कर लिया, जो उस प्रांत का द्वार है, जैसे गढ़ी बंगाल का और बारहमूला काश्मीर का है, तब ठट्टा का शासक मिर्जा जानी, जो युद्ध को आया था, घोर युद्ध के अनंतर परास्त हो गया। ३७ वें वर्ष में उसने संधि प्रस्ताव किया। शर्तें यह थीं कि वह दुर्ग सेहवन दे देगा, जो सिंध नदी पर है और खानखानाँ के लड़के मिर्जा एरिज को अपना दामाद बनाकर वर्षा बाद दरबार जायगा। खानपान के सामान की कमी से शाही सेना कष्ट में थी, इससे खानखानाँ ने यह संधि स्वीकार कर लिया और दुर्ग सेहवन में हसन अली अरब को नियत कर उससे बीस कोस हट कर अपना पड़ाव डाला। वर्षा बीतने पर मिर्जा जानी दरबार जाने में बहाना करने लगा तब खानखानाँ को फिर ठट्टा जाना पड़ा। मिर्जा ठट्टा से बाहर तीन कोस आगे जा कर सैन्य सज्जित करने लगा पर बादशाही सेना आक्रमण कर विजयी हो गई। मिर्जा जानी ने कुल प्रांत बादशाही अफसरों को सौंप दिया और खानखानाँ के साथ सपरिवार दरबार गया। इसका अच्छा स्वागत हुआ। इस विजय पर मुल्ला शिकेबी ने

एक मनसवी लिखी, जो खानखानाँ का आश्रित था। एक शैर उसका इस प्रकार है—

हुमाए कि बर चर्ख कर दी खिराम।
गिरफ्ती वो आजाद कर दी मुदाम॥

खानखानाँ ने एक सहस्र अशर्फी पुरस्कार दिया और मिर्जा जानी ने भी एक सहस्र अशर्फी यह कहकर पुरस्कार दिया कि 'खुदा का शुक्र है कि तुमने हुमा बनाया। यदि गीदड़ कहते तो कौन तुम्हारी जीभ रोकता।'

जब बादशाह की आज्ञा से सुलतान मुराद गुजरात से दक्षिण विजय को चला, तब वह भड़ोच में सहायक सेना के आसरे में रुक गया। खानखानाँ भी इस कार्य पर नियुक्त हुए थे पर यह अपनी जागीर भिलसा में कुछ समय के लिए रुक गए और तब उज्जैन को चले। शाहजादा इस पर क्रुद्ध हो गया और इन्हें कड़ा पत्र लिखा। इन्होंने उत्तर भेजा कि वह खानदेश के शासक राजा अली खाँ को शांत कर अपने साथ लिवा ला रहा है। शाहजादा और भी असंतुष्ट हो कर जो कुछ सेना उसके पास थी उसी को लेकर दक्षिण चल दिया। खानखानाँ ने पड़ाव तथा तोपखाना का भार मिर्जा शाहरुख पर छोड़ कर राजा अली खाँ को साथ लेकर फुर्ती से आगे बढ़ा और चाँदौर में अहमदाबाद से तीस कोस पर शाहजादे से जा मिला। यह कुछ समय के बाद शाहजादे से मिल सका और इस पर कुछ कृपा नहीं दिखलाई गई, जिससे खानखानाँ का चित्त उस कार्य से उदासीन हो गया। सन् १००४ हि० रबीउल् आखिर (सन्

१५९५ ई० के दिसम्बर) के अंत में अहमदनगर घेर लिया गया और तोप लगाने तथा खान उड़ाने के प्रबंध हुए पर चांद बीबी सुलताना साहस से, जो बुर्हान निजामशाह की बहिन और अली आदिलशाह बीजापुर की स्त्री थी तथा अभंग खाँ हबशी के साथ दुर्ग की रक्षा कर रही थी और इधर अफसरों के आपस के वैमनस्य तथा एक दूसरे के कार्य बिगाड़ने से उस दुर्ग का लेना सुगम नहीं रह गया।

अफसरों के आपस के मनोमालिन्य का पता पाकर दुर्ग-वासियों ने संधि प्रस्ताव किया कि बुर्हान निजामशाह का पौत्र बहादुर कैद से निकाल कर निजामुलमुल्क बनाया जाय और वह साम्राज्य के आधीन होकर रहे। अहमद नगर का उपजाऊ प्रांत उसे जागीर में दिया जाय और बरार प्रांत साम्राज्य में मिला लिया जाय। यद्यपि अनुभवी लोगों ने घिरे हुओं के अन्न-कष्ट, दुःख और चालाकी का हाल कहा पर आपस के वैमनस्य से किसी ने कुछ नहीं ध्यान दिया। इसी समय यह भी ज्ञात हो चला था कि बीजापुर का खोजा मोतमिदुद्दौला सुहेल खाँ निजाम शाह की सेना की सहायता को आ रहा है पर अंत में मीर मुर्तजा के मध्यस्थ होने पर संधि हो गई और सेना बरार में बालापुर लौट गई। जब सुहेल खाँ ने बीजापुर की सेना दाईं ओर, कुतुबशाही सेना बाईं ओर और मध्य में निजामशाही सेना रखकर युद्ध की तैयारी की तब शाहजादा युद्ध करने को तैयार हुआ पर उसके अफसरों ने इनकार कर दिया। खानखानाँ, मिर्जा शाहरुख और राजा अली खाँ शाहपुर से शत्रु पर चले। सन् १००० हि० के जमादिउल आखीर के अंत में (फरवरी

सन् १५९७ ई०) आष्टी के पास, जो पाथरी से बारह कोस पर है, युद्ध हुआ। घोर लड़ाई के अनंतर खानदेश का शासक पाँच सर्दार तथा ५०० सैनिकों सहित वीरतापूर्वक मारा गया, जो आदिल शाहियों से सामना कर रहा था। शत्रु यह समझकर कि मिर्जा शाहरुख या खानखानाँ मारे गए हैं, लूट पाट में लग गया। खानखानाँ ने अपने सामने के शत्रु को परास्त कर दिया पर अंधकार में दोनों विपक्षी सेनाएँ अलग हो गईं और ठहर गईं। प्रत्येक यही समझते रहे कि वे विजयी हैं और घोड़े पर सवार रहकर रात्रि व्यतीत कर दिया। सुबह के समय बादशाही सेना, जो सात सहस्र थी और प्यासे ही रात बिता दिया था, फुर्ती से नदी की ओर चली। शत्रु २५००० सवार के साथ युद्ध को आगे बढ़ा। शत्रु की तीन सेनाओं के बहुत से अफसर मारे गए थे। कहा जाता है कि दौलत खाँ लोदी ने, जो हरावल में था, सुहेल खाँ के हाथियों तथा तोपखाने सहित आगे बढ़ने के समय खानखानाँ से कहा कि 'हम लोग कुल छ सौ सवार हैं। सामने से ऐसी सेना पर धावा करना अपने को खोना है, इसलिए पीछे से धावा करूँगा।' खानखानाँ ने कहा कि 'तब दिल्ली खो बैठोगे।' उसने उत्तर दिया कि 'यदि शत्रु को परास्त कर दिया तो सौ दिल्ली बना लेंगे और मारे गए तो खुदा जाने।' जब उसने घोड़े को बढ़ाना चाहा तब कासिम बारहा सैयदों सहित उसके साथ था। उसने कहा कि 'हम तुम हिंदुस्तानी हैं और हमलोगों के लिए सिवा मरने के दूसरा कोई उपाय नहीं है पर खाँ साहब से उनकी इच्छा पूछ लो।' तब दौलत खाँ ने घूमकर खानखानाँ से पूछा कि 'हमारे सामने भारी सेना है और

विजय ईश्वर के हाथ में है। बतलाइये कि आपको पराजय के बाद कहाँ खोजेंगे।' खानखानाँ ने उत्तर दिया कि 'शवों के नीचे।' दौलत खाँ और सैयद सेना के मध्य में घुस पड़े और शत्रु को भगा दिया। कुछ ही देर में सुहेल खाँ भी भागा। कहते हैं कि उस समय खानखानाँ के पास पचहत्तर लाख रुपये थे। उसने सब लुटा दिया, केवल दो ऊँट बोझ बच गया। इतनी भारी विजय पाने पर भी जब दक्षिण का काम नहीं ठीक हुआ तब खानखानाँ दरबार बुला लिया गया। वह ४३ वें वर्ष में सेवा में उपस्थित हुआ। उसकी स्त्री माहबानू बेगम इसी वर्ष में मर गई।

जब अकबर ने खानखानाँ से दक्षिण के विषय में राय पूछी तब उसने शाहजादे को बुला लेने और उसे कुल अधिकार देने की राय दी। बादशाह ने इसे स्वीकार नहीं किया और उससे रुष्ट हो गया। शाहजादा मुराद के मरने पर जब सुलतान दानियाल ४४ वें वर्ष में दक्षिण भेजा गया और अकबर स्वयं वहाँ जाने को तैयार हुआ तब खानखानाँ पर फिर कृपा हुई और वह शाहजादे के पास भेजा गया। ४५ वें वर्ष में सन् १००८ हि० के शव्वाल महीने के अंत (मई सन् १६०० ई०) में शाहजादा ने खानखानाँ के साथ अहमद नगर दुर्ग को घेर लिया। दोनों ओर से खूब प्रयत्न होते रहे। चाँदबीबी ने संधि का प्रस्ताव किया पर चीता खाँ हबशी ने उसके विरुद्ध बलवा कर अन्य बलवाइयों के साथ उक्त बीबी को मार डाला। दुर्ग से तोप छोड़ी जाने लगी और लड़ाई फिर शुरू हो गई। खान में आग लगाने से तीस गज दीवाल के उड़ जाने पर घेरने वालों ने

लैली बुर्ज में घुसकर बहुतों को मार डाला। इब्राहीम का लड़का बहादुर, जिसे सभों ने निजाम शाह बनाया था, कैद कर लिया गया। चार महीने चार दिन के घेरे पर दुर्ग विजय हुआ। खानखानाँ निजाम शाह को लेकर बुर्हानपुर में अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ। राजधानी लौटते समय बादशाह ने खानदेश का नाम दानदेश रखकर उसे सुलतान दानियाल को दे दिया और उसकी शादी खानखानाँ की लड़की जाना बेगम से कर दिया। उसने खानखानाँ को राजूमना को दंड देने भेजा, जो मुर्तजा निजाम शाह के चाचा शाह अली के पुत्र को गद्दी पर बिठाकर युद्ध की तैयारी कर रहा था। अकबर की मृत्यु के बाद दक्षिण में बहुत बड़ा विप्लव हुआ। जहाँगीर के तीसरे वर्ष सन् १०१७ हि० (सन् १६०९ ई०) में खानखानाँ दरबार आया और यह बीड़ा उठाया कि जितनी सेना उसके पास इस समय है उसके सिवा बारह सहस्र सवार सेना उसे और मिले तो वह दक्षिण का कार्य दो वर्ष में निपटा दे। इस पर उसे तुरंत दक्षिण जाने की आज्ञा मिली। आसफ खाँ जाफर की अभिभावकता में शाहजादा पर्वेज, अमीरुल् उमरा शरीफ खाँ, राजा मानसिंह कछवाहा और खानेजहाँ लोदी एक के बाद दूसरे खानखानाँ की सहायता करने को नियत हुए। जब यह ज्ञात हुआ कि खानखानाँ वर्षा के मध्यमें शाहजादे को बुर्हानपुर से बाला घाट लिवा गया और सर्दारों के आपस के मनोमालिन्य से कोई निश्चित कार्यक्रम से काम नहीं हो रहा है तथा सेना अन्न कष्ट और पशुओं की मृत्यु से बड़ी कठिनाई में पड़ गई है तथा इन कारणों से खानखानाँ शत्रु से ऐसी अयोग्य संधि कर, जो

साम्राज्य के लिए कलंक है, लौट आए तब दक्षिण का कार्य खानेजहाँ को सौंपा गया और महाबत खाँ उस वृद्ध सेनापति को लिवालाने भेजा गया।

जब ५ वें वर्ष में वह दरबार आया और अपनी जागीर काल्पी तथा कन्नौज जाने की छुट्टी पाई कि वहाँ की अशांति का दमन करे। ७ वें वर्ष में जब दक्षिण में अब्दुल्ला खाँ फीरोज-जंग को कड़ी पराजय मिली और खानेजहाँ की अधीनता में वहाँ का कार्य ठीक रूप से नहीं चला तब खानखानाँ को पुनः दक्षिण भेजना निश्चित हुआ और वह ख्वाजा अबुल् हसन के साथ वहाँ भेजा गया। पहिली ही चाल पर इस बार भी शाहजादा पर्वेज तथा अन्य अमीरों के रहने से जब कार्य ठीक नहीं चला तब जहाँगीर ने ११ वें वर्ष में सन् १०२५ हि० (सन् १६१६ ई०) में सुलतान खुर्रम (शाहजहाँ) को दक्षिण भेजा, जिसे शाह की पदवी दी गई। तैमूर के समय से अब तक किसी शाहजादे को ऐसी पदवी नहीं मिली थी। जहाँगीर स्वयं सन् १०२६ हि० के मुहर्रम (जनवरी १६१७) में मालवा आया और मांडू में ठहरा। शाहजहाँ ने बुर्हानपुर में स्थान जमाया और वहीं से योग्य मनुष्यों को दक्षिण के शासकों के पास भेजा। उसी समय शाहजहाँ ने जहाँगीर की आज्ञा से खानखानाँ के पुत्र शाहनेवाज खाँ की पुत्री से अपनी शादी कर ली। शाहजहाँ के राजदूत के पहुँचने पर आदिलशाह ने ५० हाथी, १५ लाख रुपये मूल्य की वस्तु, जवाहिरात आदि भेजकर अधीनता स्वीकार कर ली। इस पर शाहजादा की प्रार्थना पर जहाँगीर ने उसे फर्जंद की पदवी दी और अपने हाथ से फर्मान

के ऊपर एक शैर लिखा कि 'शाहखुर्रम के कहने पर तुम दुनिया में हमारे फर्ज़ंद कहलाकर प्रसिद्ध हुए।'

कुतुबुल्मुल्क ने भी उसी मूल्य के भेंट भेजे और उस पर भी कृपा हुई। मलिक अंबर ने भी अधीनता स्वीकार कर ली और अहमदनगर तथा अन्य दुर्गों की कुंजियाँ सौंप दीं तथा बालाघाट के उन पर्गनों को दे दिया, जिन पर उसने अधिकार कर लिया था। जब शाहज़ादा दक्षिण के पूर्वोक्त प्रबंध से संतुष्ट हो गया तब खानदेश, बरार और अहमदनगर के प्रबंध पर खानखानाँ सिपहसालार को तथा बालाघाट के विजित प्रांत पर उन्हीं के बड़े पुत्र शाहनवाज खाँ को नियत किया। तीन सहस्र सवार और सात सहस्र बंदूकची सेना वहाँ छोड़ी और सहायक सेनाओं के अफसरों को वहीं जागीरें दीं। इसके अनंतर १२ वें वर्ष में मांडू में पिता के पास पहुँचा। मिलने के समय जहाँगीर ने आप से आप उठ कर दो तीन कदम आगे बढ़ कर स्वागत किया। उसे तीस हजारी २०००० सवार का मंसब, शाहजहाँ की पदवी तथा तख्त के पास कुर्सी पर बैठने का स्वत्व प्रदान किया। यह अंतिम खास कृपा थी, जो तैमूर के समय से कभी किसी को नहीं प्राप्त हुई थी। जहाँगीर ने झरोखे से उतरकर जवाहिरात, सोने आदि से भरी थालियाँ इस पर से निछावर कीं। जब १५ वें वर्ष में मलिक अंबर ने संधि तोड़ी और मराठा बर्गियों के मारे शाही थानेदार अपने थाने छोड़ छोड़कर भागे, यहाँ तक कि दाराब खाँ बालाघाट से बालापुर लौट आया और वहाँ भी न टिक सकने पर बुर्हानपुर आकर अपने पिता के साथ वहीं घिर गया तब शाहजहाँ को एक करोड़ रुपया सैनिक व्यय

के लिए देकर और चौदह करोड़ दाम विजित देशों पर देकर द्वितीय बार दक्षिण भेजा।

कहा जाता है कि जब खानखानाँ के पत्र पर पत्र बादशाह के सामने पेश हुए कि उसकी स्थिति कठिन हो गई है और उसने जौहर करना निश्चय कर लिया है अर्थात् अपने को सपरिवार जला देना तै किया है तब जहाँगीर ने शाहजहाँ से कहा कि जिस प्रकार अकबर ने फ़ुर्ती से कूचकर खाने आजम की गुजरातियों से रक्षा की थी उसी प्रकार तुम खानखानाँ की रक्षा करो। जब दक्षिणियों ने शाहजहाँ के आने की खबर सुनी तभी वे इधर उधर हो गए। शाहजादा बुर्हानपुर पहुँचा और नए सिरे से वहाँ का प्रबंध करने लगा।

१७ वें वर्ष में शाह अब्बास सफवी कंधार घेरने आया तब शाहजादा को शीघ्रातिशीघ्र आने को लिखा गया। वह खानखानाँ को भी साथ लाया। इसी बीच कुछ ऐसी बातें हुईं और मूर्खों के षड्यंत्र से ऐसा घरेलू झगड़ा उठा कि उसमें बाहरी शत्रुओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया। शाहजादा खानखानाँ के साथ लौट कर मांडू में ठहर गया। जहाँगीर ने नूरजहाँ बेगम के कहने से सुलतान पर्वेज और महाबत खाँ को सेनाध्यक्ष नियत किया। रुस्तम खाँ के धोखा देने के बाद, जिसे शाहजादे ने बादशाही सेना का सामना करने भेजा था, शाहजहाँ खानखानाँ के साथ नर्मदा पार कर बुर्हानपुर गया और बैरामबेग बख्शी को मार्ग रोकने के लिए वहीं तट पर छोड़ा। इसी समय खान-खानाँ का एक पत्र, जो उसने महाबत खाँ को लिखा था और जिसके हाशिए पर नीचे लिखा शैर था, शाहजादे को मिला। शैर—

सैकड़ों मनुष्य निगाह रखते हैं,
नहीं तो इस कष्ट से मैं भाग आता ।

शाहजहाँ ने खानखानाँ को बुलाकर वह पत्र दिखलाया। उसके पास कोई सुनने योग्य उज्र न था। इस पर वह और उसका पुत्र दाराब खाँ कैद किए गए। जब शाहजादा आसीर दुर्ग से आगे बढ़ा तब इन दोनों को उसी दुर्ग में सैयद मुजफ्फर खाँ बारहा के पास कैद करने को भेज दिया। पर निर्दोष दाराब खाँ को कैद करना अन्याय था और उसे छोड़कर पिता को कैद रखना उचित नहीं समझा गया, इसलिए दोनों को बुलाकर तथा वचन लेकर छोड़ दिया। जब महाबत खाँ सुलतान पर्वेज के साथ नर्मदा के किनारे पहुँचा और देखा कि बैरामबेग कुल नावों को नदी के उस पार ले गया है और उतारों की तोप बंदूक से रक्षा कर रहा है, तब उसने दगाबाजो खेली और गुप्त रूप से खानखानाँ को पत्र लिखकर उस अनुभवी वृद्ध पुरुष को अपनी ओर मिला लिया। खानखानाँ ने शाहजादे को लिखा कि इस समय आसमान विरुद्ध है। यदि वह कुछ दिन के लिए अस्थायी संधि कर ले तो दोनों पक्ष के सैनिकों को जरा आराम मिले। शाहजादा सर्वदा आपस में सुलह कर लेना चाहता था, इसलिए इस घटना को अपना फायदा ही समझा और खानखानाँ को सलाह करने के लिए बुलाया। खानखानाँ से पवित्र पुस्तक पर शपथ लेकर और इससे संतुष्ट होकर इसे बिदा किया कि नर्मदा के किनारे रहकर दोनों पक्ष के लिए जो लाभदायक हो, वही करे। खानखानाँ के वहाँ आने तथा संधि की बातचीत की खबर से उतारों की रक्षा में सतर्कता कम हो गई और महाबत खाँ, जो

ऐसे ही अवसर की ताक में था, रात्रि में कुछ युवकों को नदी के उस पार भेज दिया। खानखानाँ सुलतान पर्वेज और महाबत खाँ के झूठे पत्रों के धोखे में आ गया और अपना शपथ तोड़कर दुनियादारी के विचार से महाबत खाँ के पास चला गया। शाहजादा अब बुर्हानपुर में रहना उचित न समझकर तेलिंगाने की राह से बंगाल गया। महाबत खाँ बुर्हानपुर आया और खानखानाँ से मिलकर ताप्ती उतर शाहजहाँ का कुछ दूर तक पीछा किया। खानखानाँ ने उदयपुर के राणा के पुत्र राजा भीम को लिखा, जो शाहजहाँ का एक अफसर था, कि यदि शाहजादा उसके लड़कों को छोड़ दे तो वह शाही सेना को लौटा देने का प्रबंध करे, नहीं तो ठीक नहीं होगा। उत्तर में राजा भीम ने लिखा कि उनके पास अभी पाँच छः हजार विश्वस्त सवार हैं और यदि वह उन पर आवेगा तो पहिले उनके लड़के ही मारे जावेंगे और फिर उस पर धावा किया जायगा।

बंगाल का कार्य निपटाकर बिहार जाते समय शाहजादे ने दाराब खाँ को छुट्टी देकर बंगाल का अध्यक्ष नियत किया। जब महाबत खाँ शाहजादे को रोकने के लिए इलाहाबाद गया तब वह खानखानाँ पर, उनकी नीति-कौशल तथा असत्यता के कारण, बराबर दृष्टि रखता। २० वें वर्ष में जहाँगीर ने उसे दरबार बुला लिया, जिससे महाबत खाँ से उसे छुट्टी मिल गई और उसे क्षमा कर दिया। उसने स्वयं यह कहते क्षमा माँगी कि 'यह सब भाग्य का खेल है। यह न तुम्हारे और न हमारे वश में है और हम तुमसे अधिक लज्जित हैं।' उसने इन्हें एक लाख रुपये दिए, पुरानी पदवी तथा मंसब बहाल रखा और मलकुसा जागीर में

दिया। वृद्ध पुरुष ने सांसारिक प्रेम में फँस कर नाम और ख्याति का कुछ विचार न किया और यह शैर अपनी अँगूठी पर खुदवाया—

मरा लुत्फे जहाँगीरी जे ताईदाते रब्बानी।
दो बार: जिंदगी दाद: दो बार: खानखानानी॥

जब महाबत खाँ दरबार बुलाया गया तब उसने खानखानाँ से क्षमा माँगी और उनके लिए वाहनादि का प्रबंध कर यथाशक्ति उसके दिमाग से अपनी ओर से जो मालिन्य आ गया था, उसे मिटाने का प्रयत्न किया। ऐसा हुआ कि खानखानाँ ने अपनी जागीर पर जाने की छुट्टी ली थी और लाहौर में ठहरा हुआ था। जब महाबत खाँ ने विद्रोह किया और बादशाह से मिलने लाहौर आया तब खानखानाँ ने उसकी मिजाज पुर्सी नहीं की, जिससे महाबत खाँ को उससे इस कारण घृणा सी हो गई। जब वह झेलम के किनारे प्रधान बन बैठा तब उसने इन्हें लाहौर से लौट जाने को बाध्य किया। खानखानाँ दिल्ली लौट आए। इसी समय आकाश ने दूसरा रंग बदला। काबुल से लौटते समय महाबत खाँ भगैल हो गया। नूरजहाँ बेगम ने खानखानाँ को बुलाया और सेना सहित महाबत खाँ का पीछा करने पर नियत किया। उसने बारह लाख रुपये अपने खजाने से दिए और हाथी, घोड़े तथा ऊँट भी दिए। महाबत खाँ की जागीर भी इसे मिली पर समय ने साथ नहीं दिया। यह लाहौर में बीमार होकर दिल्ली आया और यहीं ७२ वर्ष की अवस्था में सन् १०२७ हि० (सन् १६२७ ई०) में जहाँगीर के २१ वें

वर्ष में मर गया। 'खाने सिपहसालार को' से मृत्यु की तारीख निकलती है। यह हुमायूँ के मकबरे के पास गाड़ा गया।

खानखानाँ योग्यता में अपने समय में अद्वितीय था। यह अरबी, फारसी, तुर्की और हिंदी अच्छी तरह जानता था। यह काव्य मर्मज्ञ तथा कवि था। इसका उपनाम रहीम था। कहते हैं कि संसार की अधिकांश भाषाओं में यह बातचीत कर सकता था। इसकी उदारता तथा दानशीलता भारत में दृष्टांत हो गई है। इसकी बहुत सी कहानियाँ प्रचलित हैं। कहते हैं कि एक दिन वह परतों पर हस्ताक्षर कर रहा था। एक पियादे की परत पर भूल से एक हजार दाम के स्थान पर एक हजार तनका (रुपया) लिख दिया पर बाद को उसे बदला नहीं। इसने कई बार कवियों को सोना उनके बराबर तौल कर दिया। एक दिन मुल्ला नजीरी ने कहा कि 'एक लाख रुपये का कितना बड़ा ढेर होता है, मैंने नहीं देखा है।' खानखानाँ ने खजाने से उतना रुपया लाने को कहा। जब वह लाकर ढेर कर दिया गया तब नजीरी ने कहा कि 'खुदा को शुक्र है कि अपने नबाब के कारण मैंने इतना धन इकट्ठा देख लिया।' नबाब ने वह सब रुपया मुल्ला को देने को कहा, जिसमें वह फिर से खुदा को धन्यवाद दे।

यह बराबर प्रगट या गुप्त रूप से दरवेशों तथा विद्वानों को धन दिया करता था और दूर दूर तक लोगों को वार्षिकवृत्ति देता था। सुलतान हुसेन खाँ और मीरअली शेर के समय के समान इसके यहाँ भी अनेक विषयों के विद्वानों का जमाव हुआ करता था।

वास्तव में यह साहस, उदारता तथा राजनीति-कौशल में

अपने समय का अग्रणी था। पर यह ईर्ष्यालु, सांसारिक तथा अवसर देखकर काम करने वाला था। इसका सखुन तकिया था कि शत्रु के साथ शत्रुता भी मित्रता के रूप में निभाना चाहिए। यह शेर इसी के बारे में कहा गया है—

एक बित्ते का कद और दिल में सौ गाँठ,
एक मुट्ठी हड्डी और सौ शकलें।

दक्षिण में यह सब मिलाकर तीस वर्ष तक रहे। जब कभी कोई शाहजादा या अफसर इसका सहायक हो कर आया तभी उसने दक्षिणी सुलतानों की इसके प्रति अधीनता और मित्रता देखी। यह यहाँ तक स्पष्ट था कि अबुल्फज्ल ने कई बार इस पर विद्रोह का फतवा दे डाला। जहाँगीर के समय मलिक अंबर से इसकी मित्रता की शंका हुई और यह वहाँ से हटाए गए। खानखानाँ के एक विश्वस्त नौकर मुहम्मद मासूम ने स्वामिद्रोह कर बादशाह को सूचित किया कि मलिक अंबर के पत्र लखनऊ के शेख अब्दुस्सलाम के पास हैं, जो खानखानाँ का नौकर है। महाबत खाँ इस कार्य पर नियत हुआ और उसने उस बेचारे की इतनी दुर्दशा की कि वह बिना मुख खोले मर गया।

खानखानाँ साम्राज्य का एक उच्च पदस्थ अफसर था। इसका नाम उस समय की रचनाओं में सुरक्षित है। अकबर के समय इसने कई अच्छे कार्य किए, जिनमें तीन विशेष प्रसिद्ध हैं—*गुजरात* की विजय, सिंध पर अधिकार तथा सुहेल खाँ की पराजय। इन सब का वर्णन विस्तार से दिया जा चुका है। विद्वत्ता तथा योग्यता के होते भी इसे कष्ट उठाना पड़ा। बाह्याडंबर का प्रेम बराबर बना रहा। दरबारी खबर की इसको

ऐसी चाट पड़ गई थी कि प्रति दूसरे तीसरे दिन डाक से इसके पास खबर आती थी । इसके दूत अदालतों, आफिसों, चबूतरों, बाजारों तथा गलियों में रहते थे और समाचार संग्रह करते थे। संध्या के समय यह सब पढ़कर जला डालता था। कितनी बातें इसके वंश में चालू थी जो और किसी में नहीं थीं, जैसे हुमा का पर, जिसे सिवा शाहजादों के कोई नहीं लगा सकता था।

इसका पिता यद्यपि इमामिया था पर यह अपने को सुन्नी कहता था। लोग कहते कि यह इस बात को छिपाते थे। इसके पुत्र वास्तव में कट्टर सुन्नी थे। शाहनवाज खाँ और दाराब खाँ के सिवा भी अन्य पुत्र थे। एक रहमानदाद था, जिसकी माता अमरकोट के सोढ़ा जाति की थी। युवावस्था ही में इसने बहुत से गुण प्राप्त कर लिए थे, जिससे इस पर इसके पिता का बहुत स्नेह था। इसकी मेहकर में प्रायः शाहनवाज खाँ के साथ साथ मृत्यु हुई। यह समाचार देने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी। बेगमों के कहने पर हजरत शाह ईसा सिंधी ने खानखानाँ के पास जा कर उससे हाल कहा और संतोष दिलाया। दूसरा पुत्र मिर्जा अमरुल्ला दासी से था। इसने शिक्षा नहीं पई और युवा ही मर गया।

खानखानाँ के नौकरों में सब से अच्छा मियाँ फहीम था। यह दास कहा जाता था पर राजपूत था। इसको लड़के के समान पाला था और इसमें योग्यता तथा दृढ़ता खूब थी। यह त्रिकाल की निमाज मरने तक बराबर करता रहा। इसे दर्वेशों से प्रेम था। सिपाहियों के साथ भाई की तरह खाता पीता पर तीव्र स्वभाव का था। कोड़े की आवाज तेज होती है।

कहते हैं कि एक दिन इसने राजा विक्रमाजीत शाहजहानी को दाराब खाँ के साथ उसी सोफा पर लेटे हुए देखा तब कहा कि 'तुम्हारा सा ब्राह्मण बैराम खाँ के पौत्र के साथ बराबर बैठे। मिर्जा एरिज के बदले यही मर जाता तो अच्छा होता।' दोनों ने क्षमा याचना की। जब खानखानाँ उसकी ओर से खफा हो गया, तब विजयगढ़ सरकार की फौजदारी का हिसाब उस से माँगा गया। उसने नवाब से ठीक बर्ताव नहीं किया और उसके दीवान हाफिज नसरुल्ला को थप्पड़ जड़ कर शहर से चंपत हो गया। कहते हैं कि अर्द्धरात्रि को जाकर खानखानाँ उसे लिवा लाया। वह अपने साहस तथा बहादुरी के लिए प्रसिद्ध था। जब महाबत खाँ खानखानाँ को कैद करने का उपाय कर रहा था तब पहिले फहीम को उसने ऊँचा मंसब आदि दिलाने की आशा देकर मिलाना चाहा पर उसने स्वीकार नहीं किया। महाबत खाँ ने कहा कि कब तक तुम सिपाही बने रहोगे ? फहीम ने खानखानाँ से कहा कि 'धोखाधड़ी चल रही है और उसे अप्रतिष्ठा तथा मान हानि से बचे रहने का प्रबंध रखना चाहिए। खानखानाँ को हथियार सहित बादशाह के सामने जाना चाहिए।' पर इसने यह स्वीकार नहीं किया। जब यह पकड़े गए तब महाबत खाँ ने उसके पहिले ही बादशाही मनुष्य फहीम को कैद करने भेज दिया था। फहीम ने अपने पुत्र फीरोज खाँ से कहा कि 'आदमियों को कुछ देर तक देखते रहो, जिसमें वजू कर दो निमाज पढ़ लूँ।' इसे पूरा कर अपने पुत्र तथा चालीस नौकरों के साथ मान के लिए जान दे दिया।

४५. अब्दुर्रहीम खाँ

इस्लाम खाँ मशहदी का पाँचवाँ पुत्र था। पिता की मृत्यु के बाद इसे योग्य मंसब मिला और शाहजहाँ के ३० वें वर्ष में दारोगा खवास नियत हुआ। औरंगजेब के दूसरे वर्ष में इसे खाँ की पदवी मिली और हिम्मत खाँ बदख्शी के स्थान पर गुसलखाना का दारोगा हुआ। २३ वें वर्ष में यह बहरमंद खाँ के बदले घुड़साल का दारोगा हुआ और २४ वें वर्ष में उस पद से हटाया जा कर तीसरा बख्शी नियत हुआ तथा एक कलमदान पाया। २५ वें वर्ष में सन् १०९२ हि० (१६८१ ई०) में मर गया।

४६. अब्दुर्रहीम खाँ, ख्वाजा

इसके पूर्वज फर्गाना (खोखंद) के अंतर्गत अंदोजान के निवासी थे। इसका पिता अबुल्क़ासिम वहाँ का एक प्रधान शेख था और शाहजहाँ के समय भारत आया। अब्दुर्रहीम अपने यौवनकाल में दाराशिकोह का कृपापात्र था। औरंगजेब की राजगद्दी पर इसे भी नौकरी मिली। यह शस्त्र जानता था, इससे इसे योग्य मंसब और खाँ की पदवी मिली। २६ वें वर्ष में यह बीजापुर का नायब नियुक्त हुआ, जहाँ से लौटने पर इसे एक हाथी मिला। ३२ वें वर्ष में यह मुहसिन खाँ के स्थान पर बयूतात का निरीक्षक नियत हुआ। ३३ वें वर्ष में जब राहिरी का दुर्ग लिया गया तब यह उसके सामान पर अधिकार करने भेजा गया। इसके अनंतर मोतमिद खाँ की मृत्यु पर यह दाग और तसहीह का दारोगा नियत हुआ। ३६ वें वर्ष में सन् ११०३ हि० (१६९२ ई०) में यह मर गया। इसे कई लड़के थे। दूसरा पुत्र मीर नोमान खाँ था, जिसका पुत्र मीर अबुल् मन्नान दक्षिण आकर कुछ दिन तक निजामुल्मुल्क आसफजाह के यहाँ नौकर रहा। अंत में यह घर ही बैठ रहा। यह कविता करता था और उपनाम 'इतरत' (सुगंध का गेंद) रखा था। इसके एक शैर का अर्थ यों है—

किस प्रकार हम तुम्हारे
जंगली हरिण सी आँखों को पालतू बना सकेंगे।

अपने हृदय की गाँठों से
उसके लिए एक जाल बनावेंगे ॥

अब्दुल् मन्नान का बड़ा पुत्र मोतमिदुद्दौला बहादुर सर्दार जंग था। यह सलाबत जंग का दीवान था और सन् ११८८ हि० (१७७४ ई०–१७७५ ई०) में मरा। द्वितीय पुत्र मीर नोमान खाँ मराठों के साथ के युद्ध में सलाबत जंग के समय मारा गया। तीसरा मीर अब्दुल्कादिर यौवन ही में रोग से मर गया। चौथा अहसनुद्दौला बहादुर शरजा जंग और पाँचवा मफवजुल्ला खाँ बहादुर जंग एकताज अभी जीवित है और लेखक का मित्र है।

४७. अब्दुर्रहीम बेग उजबेग

बलख के शासक नजर मुहम्मद खाँ के बड़े पुत्र अब्दुल् अजीज खाँ के अभिभावक अब्दुर्रहमान बेग का यह भाई था। ११ वें वर्ष में शाहजहाँ के समय बलख से आकर सेवामें उपस्थित हुआ। बादशाह ने इसे खिलअत, जड़ाऊ खंजर, सोने पर मीना किए सामान सहित तलवार, एक हजारी ६०० सवार का मंसब और पच्चीस सहस्र नकद दिया। इसके अनंतर पाँच सदी २०० सवार बढ़ाया गया और बिहार में जागीर पाकर वहाँ चला गया। यहाँ आने पर उस प्रांत के शासक अब्दुल्ला खाँ बहादुर की कड़ाई के कारण दोनों में मनोमालिन्य हो गया और यह इससे अपनी मानहानि समझ कर कुछ दिन बीमारी का बहाना कर गूँगा हो जाना प्रदर्शित किया। एक वर्ष तक यह मौन रहा, यहाँ तक कि इसकी स्त्रियाँ भी न जान सकीं कि क्या रहस्य है। जब बादशाह को यह ज्ञात हुआ तब इसे दरबार में आने की आज्ञा हुई। १३ वें वर्ष यह दरबार में आया और बोलने लगा। जब इसने अपने गूँगेपन का कारण बतलाया, तब सुननेवाले चकित हो गए। बादशाह काश्मीर जा रहे थे, इसलिए इसे दो हजारी १००० सवार का मंसब देकर राजधानी में छोड़ा। २२ वें वर्ष में यह औरंगजेब के साथ कंधार पर नियत हुआ। वहाँ से कुलीज खाँ के साथ बुस्त गया और ईरानियों के साथ के युद्ध में अच्छा कार्य किया। इस पर २३ वें वर्ष में ढाई हजारी १०००

सवार का मंसब मिला। २४ वें वर्ष में यह उस प्रांत के अध्यक्ष जाफर खाँ के साथ बिहार गया। २६ वें वर्ष में यह दारा शिकोह के साथ कंधार गया और वहाँ से रुस्तम खाँ के साथ बुस्त लेने गया।

४८. अब्दुर्रहीम लखनवी, शेख

यह लखनऊ का एक उच्च वंशीय शेखजादा था। यह अवध प्रांत में गोमती नदी के किनारे पर एक बड़ा नगर है। यह वैसवाड़ा भी कहलाता है। सौभाग्य से यह शेख अकबर की सेवा में पहुँचा और अपनी अच्छी चाल से सात सदी का मंसब पाया, जो उस समय एक उच्च पद था। यह जमाल बख्तियार का घनिष्ट मित्र था, जिसकी बहिन अकबर की प्रेम पात्री बेगम थी और इस मित्रता के कारण यह शराब अधिक पीने लगा। यह शराब में पागल हो चला और नशा आत्मा तथा विवेक दोनों को कुचल डालती है, इससे इसका दिमाग खराब हो गया और मूर्खता का काम करने लगा।

३० वें वर्ष में काबुल से लौटते समय, जब पड़ाव स्यालकोट में पड़ा हुआ था, तब यह हकीम अबुल् फतह के खेमों में पागल हो गया और हकीम के छुरे से अपने को घायल कर लिया। लोगों ने इसके हाथ से छुरा छीन लिया और इसके घाव में अकबर के सामने टाँका लगाया गया। कुछ लोग कहते हैं कि बादशाह ने अपने हाथ से टाँका लगाया था।

यद्यपि अनुभवी हकीमों ने घाव को असाध्य बतलाया और वह इतना खराब भी हो गया कि दो महीने बाद इसको बिल्कुल आशा नहीं रही पर बादशाह इसे उम्मेद दिलाते रहे। मृत्यु के

मुख में जाते जाते यह बच कर कुछ दिन में अच्छा हो गया। बाद को समय आने पर यह अपने देश में मरा।

कहते हैं कि कृष्णा नाम की एक ब्राह्मणी उसकी स्त्री थी। उस होशियार स्त्री ने शेख की मृत्यु पर मकान, बाग, सराय और तालाब बनवाए। उसने खेत भी लिए और उस बाग की तैयारी में दत्तचित्त रही, जिसमें शेख गाड़ा गया था। साधारण सैनिक से पाँच हजारी मंसबदार तक जो कोई उधर से जाता, उसका उसके योग्य सत्कार होता। वह वृद्धा और अंधी हो गई पर उसने यह पुण्य कार्य नहीं छोड़ा और साठ वर्ष तक अपने पति का नाम जीवित रखा। मिसरा—

प्रत्येक स्त्री स्त्री नहीं है और न हर एक पुरुष पुरुष है।

---

४६. अब्दुस्समद खाँ बहादुर दिलेर जंग, सैफुद्दौला

यह ख्वाजा अहरार का वंशज था। इसके चाचा ख्वाजा जिकरिया को दो पुत्रियाँ थीं, जिनमें से एक का विवाह इससे हुआ था और दूसरी का एतमादुद्दौला मुहम्मद अमीन खाँ बहादुर से हुआ था। सैफुद्दौला औरंगजेब के समय में पहिले पहिल भारत आया और चार सदी मंसब पाया। बहादुरशाह के समय सात सदी हो गया। बहादुर शाह के चारो लड़कों के बीच में जो युद्ध हुए, उनमें यह जुल्फिकार खाँ के साथ बराबर रहा और सुलतान जहाँ शाह के मारने में वीरता दिखलाई थी। पुरस्कार में इसे ऊँचा मंसब मिला। फर्रुखसियर के समय इसका मंसब पाँच हजारी ५००० सवार का था और दिलेर खाँ की पदवी सहित लाहौर का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ था। सिख गुरु के विरुद्ध युद्ध समाप्त करने के लिए यह भेजा गया था, जिसने बहादुर शाह के समय से हर प्रकार का अत्याचार मुसल्मानों तथा हिंदुओं पर कर रखा था। खानखानाँ मुनइम खाँ तीस सहस्र सवारों के साथ उसे सजा देने को नियुक्त हुआ था और उसे लोहगढ़ में घेर लिया था तथा बादशाह स्वयं उस ओर गए थे पर गुरु दुर्ग से निकल भागे। इसके बाद मुहम्मद अमीन खाँ भारी सेना के साथ उसका पीछा करने को भेजा गया पर सफल नहीं हुआ।

सिखों का इतिहास इस प्रकार है। पहिले पहिल नानक

राम नामक फकीर उस प्रांत में सुप्रसिद्ध हुआ। उसने बहुतों को अपने मत में दीक्षित किया, जिनमें विशेषकर पंजाब के खत्री थे। उसके अवलम्बी सिख कहलाए। उनमें से बहुतेरे इकट्ठे हो कर गाँवों में लूट मार मचाने लगे। दिल्ली से लाहौर तक वे जिसे या जो पाते लूट लेते थे। कितने फौजदार थाने छोड़ दरबार चले आए और जो वहीं ठहर गए उन सब ने अपना प्राण तथा सम्मान दोनों खो दिया। यह लिखते समय लाहौर का पूरा तथा मुलतान का आंशिक प्रांत इस जाति के अधीन हो गया था। दुर्रानी शाहों की सेनाएँ, जिसका काबुल तक अधिकार है, दो एक बार इनसे परास्त हो चुकी थीं और अब इन पर आक्रमण करना छोड़ दिया था।

दिलेर जंग ने इस कार्य में साहस तथा योग्यता दिखलाई और भारी सेना के साथ गढ़ी (गुर्दासपुर) के पास डट गया, जो गुरु का निवास स्थान था। कई बार सिख बाहर लड़ने आए और द्वंद्व युद्ध हुआ। उक्त खाँ ने दृढ़ता से घेरा कड़ा कर रसद जाना बंद कर दिया। बहुत दिनों के बाद अन्न कष्ट होने से जब बहुत से अत्यंत दुखित हुए तब प्राण रक्षा के लिए संदेश भेजा और अपने सर्दार (बांदा), उसके युवा पुत्र, दीवान तथा अन्य सभी को, जो युद्ध से बच गए थे, लिवा लाए। इसने बहुतों को मार डाला और गुरु तथा अन्य लोगों को दरबार ले गया। इस सेवा के लिए इसे सात हजारी ७००० सवार का मंसब तथा सैफुद्दौला की पदवी मिली। राजधानी पहुँचने पर आज्ञानुसार यह कुछ कैदियों को तख्ता और टोपी पहिरा कर शहर में लाया था। यह घटना सन् ११२७ हि० (१७१५ ई०)

में घटी थी। फर्रुखसियर के ५ वें वर्ष में जब सैफुद्दौला पंजाब का प्रांताध्यक्ष था तब ईसा खाँ मुईं मारा गया, जिसने क्रमशः जमींदार से शाही नौकरी में उन्नति की और सर्दार हुआ पर घमंड अधिक बढ़ गया। उसका विवरण उसकी जीवनी में अलग दिया हुआ है। जब हुसेन खाँ खेशगी ने, जो लाहौर से बारह कोस दूर मुलतान के मार्ग पर स्थित कसूर का तल्लुकेदार था, विद्रोह किया और रफीउद्दौला के समय स्वतंत्र होना चाहा तब सैफुद्दौला ने उसके विरुद्ध रणयात्रा की और बहुत युद्ध के बाद उसे दमन किया। मुहम्मद शाह के ३ रे वर्ष में यह दरबार आया और इसका अच्छा स्वागत हुआ। ७ वें वर्ष में जब लाहौर प्रांत इसके लड़के जिकरिया खाँ को दिया गया, जो एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ का साढू था, तब यह मुलतान का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। यह सन् ११५० हि० (१७३७–३८ ई०) में मर गया। यह बहादुर सेनापति था और अपने देश के आदमियों को आश्रय देता था।

५०. अमानत खाँ द्वितीय

इसका नाम मीर हुसेन था और अमानत खाँ खवाफी का तृतीय पुत्र था। अपनी सत्य-निष्ठा तथा योग्यता के कारण अपने पिता का मित्र था। पिता की मृत्यु पर यह अपने अन्य भाइयों के साथ औरंगजेब का कृपापात्र हो गया और छोटे छोटे पदों पर नियुक्त होकर भी उसका विश्वास-पात्र रहा। यह बरमकस की बरकत के समान पिता के सम्मान का भी उत्तराधिकारी हो गया। उस वंश के छोटे बड़ों के साथ खानः-जादों के समान बर्ताव होता था। कहते हैं कि एक दिन गुण-ग्राहक बादशाह दरबार आम में थे कि अमानत खाँ द्वितीय अपने पुत्र के साथ सरापर्दा में जाने लगा। एक चोबदार ने, मनुष्यों का एक दल जो अपनी शरारत तथा दुष्टता के लिए डंडे का पात्र और सूली देने योग्य होता है, लड़के का हाथ पकड़ लिया तथा उसे रोक रखा। खाँ ने आवेश में दर-बार के उपयुक्त सम्मान का ध्यान न कर घूम के उस दुष्ट को पकड़ लिया और सामने लाकर बादशाह से कहा कि 'यदि घर के लड़के ऐसे दुष्टों से तिरस्कृत होंगे तो वे बादशाह की सेवा में प्रसिद्धि तथा सम्मान पाने की क्या आशा रखेंगे?' बादशाह ने उसका सम्मान करने को उस दिन के कुल चोबदारों को निकाल दिया।

बादशाह पर खाँ की योग्यता प्रकट हो चुकी थी इसलिए

३१ वें वर्ष के अंत में जब वह बीजापुर में था तब ३२ वें वर्ष के आरंभ में इसको पिता की पदवी देकर बीजापुर का दीवान नियत कर दिया। ३३ वें वर्ष के अंत में (जून सन् ११६९ ई०) जब बादशाह ने बद्री शहर छोड़ा, जो बीजापुर से १७ कोस उत्तर है, और तुरगल के अंतर्गत कुतबाबाद गलगला आया, जो बीजापुर से १२ कोस उत्तर कृष्णानदी के तट पर है तब खाँ को बीजापुर की दीवानी के पद से तरक्की मिली और हाजी शफी खाँ के स्थान पर दफ्तरदार तन नियत हुआ। ३६ वें वर्ष में मामूर खाँ के स्थान पर औरंगाबाद का दुर्गाध्यक्ष हुआ और डेढ़ हजारी ९०० सवार का मंसब मिला। उसी वर्ष ख्वाजा अब्दुर्रहीम खाँ के स्थान पर दरबार बुलाया जाकर बयूताते रिकाब के पद पर नियत हुआ। इसी समय यह फिर औरंगाबाद का दुर्गाध्यक्ष बनाया गया। अंत में यह सूरत बंदर का मुत्सद्दी नियुक्त हुआ। इसने ऐसा प्रबंध किया कि बादशाह की आय बढ़ी और प्रजा को भी आराम मिला, जिससे इसको मंसब में उन्नति मिली। ४३ वें वर्ष सन् ११११ हि० (१६९९-०१ ई०) में यह मर गया। यह नगर के बाहर चहार दीवारी के पास गाड़ा गया। इसके चार पुत्र के। प्रथम मीर हसन की मुहम्मद मुराद खाँ उजबेग की पुत्री से शादी हुई थी। यह लेखक के माता का पिता था। यह यौवन में गलगला में महामारी से मर गया। इसका पुत्र कमालुद्दीन अली खाँ था, जो अपने समसामयिकों में प्रशंसनीय चरित्र तथा सचाई के लिए अत्यंत प्रिय था। लिखते समय आसफजाह की जागीर औरंगाबाद का प्रबंध करता था। द्वितीय मीर सैयद मुहम्मद इरादत मंद खाँ अपने चाचा दिया-

नत खाँ मीर अब्दुल् कादिर का दामाद था। औरंगजेब के समय यह औरंगाबाद की बयूतातो पर और बहादुरशाह के समय बुर्हानपुर की दीवानी पर नियुक्त हुआ। तृतीय मीर सैयद अहमद नियाजमंद खाँ था। यह बहुत दिनों तक बरार का दीवान रहा और वर्त्तमान बादशाहत (मुहम्मदशाह) के आरंभ में बंगाल गया। वहाँ के नाजिम जाफरखाँ (मुर्शिद कुली) ने इसके पिता के प्रेम के कारण इसका स्वागत किया और नौ-बेड़ा का इसे अध्यक्ष बना दिया, जो उस प्रांत में उच्चतम पद था तथा इसके लिए दरबार से अमानत खाँ की पदवी और मंसब में तरक्की दिलवाया। जाफर खाँ की मृत्यु पर उस प्रांत के महालों का यह फौजदार नियत हुआ और सन् ११५७ हि० (१७४४ ई०) में मर गया। चतुर्थ मीर मुहम्मद तकी फिदवियत खाँ था, जो लेखक की सगी बूआ को ब्याहा था। बहादुरशाह के समय वह बुर्हानपुर का बख्शी नियुक्त हुआ। मराठों की लड़ाई में जब वहाँ का अध्यक्ष मीर अहमद खाँ मारा गया तब बहुत से मुत्सद्दी कैद हुए। सभी धूर्त्तता और चालाकी से निकल भागना चाहते थे। इसने अपनी सिधाई से अपनी अच्छी हालत बतला दी और इससे इसे बड़ी रकम देना पड़ा। अपनी स्थिति को कमकर बतलाना इसने ठीक नहीं समझा। इसके सब वंशज जीवित हैं।

---

५१. अमानत खाँ मीरक मुईनुद्दीन अहमद

क्षमा किया हुआ खाँ का नाम मीरक मुईनुद्दीन अहमद अमानत खाँ खवाफी था। यह सच्चा तथा सच्चरित्र पुरुष था, सचाई को खूब समझता था, स्वभाव का नम्र था और स्वतंत्र प्रकृति का था। स्वर्गीय प्रकृति तथा पवित्र विचार का था। अच्छे चालचलन तथा प्रशंसनीय गुणों से युक्त था। विनयशील होते भी अपने पदानुकूल उच्चता भी रखता था। मुख भी सुंदर था और प्रतिभावान भी था। स्वच्छ हृदय तथा बड़प्पनयुक्त था। विश्वास तथा भरोसा का स्तंभ और उदारता तथा दान का ठोस नींव था। इसका विचार पुष्ट तथा ठीक सोचा हुआ होता था और यह घृणा कम और स्नेह अधिक करता था।

इसके सम्मानित पूर्वजों का निवासस्थान खुरासान की राजधानी हेरात था। इसका दादा मीर हसन किसी कारणवश दुःखित हो अपने पिता मीर हुसेन से अलग हो गया, जो उस नगर के प्रधान पुरुषों में से एक था, और खवाफ चला आया, जो उस राज्य का एक छोटा स्थान है और जहाँ के निवासी प्राचीन समय से विद्या बुद्धि के लिए प्रसिद्ध हैं। ख्वाजा अलाउद्दीन मुहम्मद ने, जो खवाफ का एक मुखिया था, इसके पूर्वजों के पुराने परिचय के नाते इस पर बड़ी दया कर प्रसन्नता से इसे अपने घर में रख लिया। इसके चरित्र रूपी कपाल पर बड़प्पन तथा उच्चता का प्रकाश था, इसलिए उसने अपनी पुत्री

का ब्याह इससे कर दिया। इस पर मीर हसन ने वहीं अपना निवास-स्थान बनाया और एक परिवार का पिता बन गया। इसके बाद जब प्रसिद्ध ख्वाजा शम्सुद्दीन मुहम्मद ख़वाफ़ी, जो उक्त ख्वाजा का पुत्र तथा उत्तराधिकारी था, अकबर की सेवा में भर्त्ती हुआ और ऊँचा पद तथा सम्मान पाया तब मीर हसन का पुत्र मीरक कमाल भी अपने मामा के पास अपने पुत्र मीरक हुसेन के साथ भारत चला आया और अपना दिन आराम तथा वैभव में व्यतीत करने लगा। यहाँ इसने भी अपने देश के एक सैयद की लड़की से शादी की, जिससे मीरक अताउल्ला पैदा हुआ। बलख की चढ़ाई पर यह शाहज़ादा औरंगजेब का बख्शी होकर गया और सम्मान तथा पुरस्कार पाया। किसी कारणवश यह औरंगजेब से अलग होकर बादशाही सेवक हो गया और सात सदी मंसब पाया। यह पहिले काबुल के अहदियों का बख्शी हुआ और बाद को पटना का दीवान नियत हुआ। यहीं शाहजहाँ के राज्य के अंत समय इसकी मृत्यु हुई। मीरक हुसेन (पहिले विवाह का पुत्र) जहाँगीर के समय ही अपने कौशल तथा ज्ञान के लिए ख्याति पा चुका था और ऊँचे पद पर था। ८ वें वर्ष सुलतान खुर्रम के साथ राणा की चढ़ाई पर गया और उदयपुर लिए जाने पर जब राणा के राज्य में थाने बिठाए गए तब मीरक हुसेन कुंभलमेर का बख्शी और वाकेआनवीस बनाया गया। इसके बाद वह दक्षिण का बख्शी नियत हुआ और शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने पर यह दक्षिण का दीवान हुआ। उस दिन से अब तक अर्थात् एक शताब्दी से अधिक यह पद इस वंश में बराबर रहा। ८ वें वर्ष इसे दस सहस्र रुपये,

खिलअत और घोड़ा मिला तथा यह बलख के शासक नज्र मुहम्मद खाँ के यहाँ उक्त खाँ के दूत पायंदाबे के साथ सवा लाख का भेंट लेकर भेजा गया। शाही पत्र में इसका उल्लेख जोरदार भाषा में इस प्रकार किया गया था कि यह सच्चे वंश का सैयद है तथा इसकी योग्यता ज्ञात हो चुकी है। तूरान से लौटने पर कुछ कारण से इसकी भर्त्सना की गई थी। जब यह मरा तब इसके उत्तराधिकारी शाही रुपए के लिए उत्तरदायी थे। खानदौराँ नसरत जंग ने प्राचीन मित्रता का विचार कर उनको छुट्टी दिलाई। मृत का योग्य पुत्र मीरक मुईनुद्दीन अहमद पूर्ण युवा था। चलती विद्या का अर्जन कर यह शाही सेना में भर्त्ती हो गया और सन् १०५० हि० (सन् १६४० ई०) में यह अजमेर का बख्शी और घटना-लेखक नियत हुआ। इसके बाद स्यात् यह सेवा कार्य से दक्षिण गया। इसी पर शेख मारूफ भकरी अपने जखीरतुल्खवानीन में, जो सन् १०६० हि० (सन् १६५० ई०) में तैयार हुआ था, लिखता है कि 'मीरक हुसेन खवाफी का पुत्र मीरक मुईनुद्दीन, जिसके पिता और पितामह बड़प्पन तथा वंश में सूर्य से बढ़कर थे, वंश के विचार से, बुद्धि, विद्या, योग्यता तथा लिपि लेखन में बढ़कर है और दक्षिण में प्रतिष्ठा के साथ कार्य्य कर रहा है।' शाहजहाँ के २८ वें वर्ष में यह कंधार की चढ़ाई में शाहजादा दारा शिकोह के साथ गया था और वहाँ से लौटने पर उसी वर्ष सन् १०६४ हि० (१६५४ ई०) में यह मुलतान प्रांत का दीवान, बख्शी और घटना-लेखक नियत किया गया। उस ओर यह बहुत दिनों तक रहा। बड़े-छोटे, ऊँचे-नीचे सभी ने इसकी सत्यप्रियता,

ईमानदारी, दृढ़ता और सम्मति देने में इसकी कुशलता देखी तथा इसके भक्त होकर शिष्य के समान इससे बर्ताव किया। आज तक मीरकजी का नाम वहाँ सबके मुख पर है। नगर से दो कोस पर इसने बाग और गृह बनवाया, जो मीरक जी का कोठिला के नाम से प्रसिद्ध है। आलमगीर के समय यह काबुल का सूबेदार नियत हुआ और अमानत खाँ की पदवी पाई।

यद्यपि शाही सेवा का पदवी-वितरण पात्र की योग्यता पर निर्भर है, और पात्र को उस पदवी के अनुकूल रहना चाहिए पर इसके बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि इसका नाम व्यक्तित्व के अनुकूल ही था। या यों कहिए कि व्यक्ति नाम से सहस्र गुणा उच्च तथा मूल्यवान है। इस सृष्टि में गुण सत्यता तथा ईमानदारी से बढ़कर नहीं है। ये मूल्यवान तथा कष्ट प्राप्य हैं। जहाँ ये खिलते हैं वहाँ सदा बसंत है। ये उच्च पदवियों के स्रोत और सौभाग्य तथा सुख की सुधा हैं। संसार के हाट में सत्यता की दलाली से माल बिकता है और जीवन के बाग में सफलता का फल विश्वास के वृक्ष से मिलता है।

आलमगीर के १४ वें वर्ष में इसका एक हजारी २०० सवार का मंसब हो गया और इनायत खाँ के स्थान पर इसे खालसा की दीवानी मिली तथा स्फटिक की दावात पाई। १६ वें वर्ष में जब असद खाँ, जो जाफर की मृत्यु पर वज़ीर का कार्य प्रतिनिधि रूप में कर रहा था, उससे हटा तब अमानत खाँ और दीवानेतन दोनों आज्ञानुसार अपने आफिस के कागजों पर अपने हस्ताक्षर तथा मुहर करते थे।

प्रतिष्ठित पुरुषों का विचार, जिनमें धोखाधड़ी या स्वार्थ नहीं होता, ईश्वर की ओर तथा स्वामी की भलाई में रहता है और वे आलोचकों के छिद्रान्वेषण की परवाह नहीं करते। इसी समय महल की बेगमों तथा विश्वासी खोजों ने, जो बादशाह के पार्श्ववर्त्ती होने से घमंडी हो रहे थे, नीच लोभ के कारण अनुचित कार्य करते थे और बराबर अनुचित प्रस्ताव भी करते थे। अब उन लोगों को ऐसा करने का स्थान नहीं था और जो कुछ सम्राज्य या खुदा की प्रजा के लाभ का था वही बिना किसी की राय के होता था, इस लिए उनके शान की तलवार नहीं चलती थी। अतः वे इसे दिक करने को तैयार हुए और जब उनका षड्यंत्र नहीं चला तब अब्दुल हकीम को इसका सहकारी नियत कराया। अमानत खाँ बराबर की सिफारिश से घबड़ा उठा था और त्याग-पत्र देने के लिए बहाना खोज रहा था इस लिए इसने इस बात का उपयोग कर १८ वें वर्ष में हसन अब्दाल में त्यागपत्र दे दिया। यद्यपि बादशाह ने कहा भी कि सहकारी की नियुक्ति तो त्याग का कारण नहीं है पर अमानत ने नहीं स्वीकार किया। इसकी सचाई और योग्यता की बादशाह के हृदय पर छाप थी इस लिए इसे तुरंत लाहौर नगर और दुर्ग की अध्यक्षता पर नियत कर दिया। यह उस प्रांत का दीवान भी नियत हुआ। यद्यपि इसने कोष का कार्य अपने ऊपर नहीं लिया पर बादशाह ने वह इसके बड़े पुत्र अब्दुल्कादिर को सौंपा। चौक के पास ख्वाफी पुरा की इमारतों के पास इसने बड़ा गृह तथा हम्माम बनवाया, जो संसार-प्रसिद्ध है। २२ वें वर्ष में जब बादशाह अजमेर में थे, अमानत खाँ ने दक्षिण के प्रांतों का दीवान नियुक्त हो

कर खिलअत पाया। उस समय से अब तक यह पद अधिकतर इसी वंश में रहा।

जब २५ वें वर्ष में औरंगाबाद में बादशाह आए तब निजाम शाह के सब्ज बँगला में, जो अब सूबेदार का निवासस्थान है, ठहरे। यह शाहजादा मुहम्मद आजम का था। अमानत खाँ हरसल की गढ़ी, जो नगर से दो कोस पर है, खरीद कर मुलतान की चाल पर अपना वासस्थान बनाना चाहता था। बादशाह ने मलिक अंबर का स्थान पसंद किया, जो शाहगंज के पास है पर अमानत खाँ उसे किराये पर लेकर संतुष्ट नहीं था इस लिए उसे सरकार से खरीद लिया। यह भी अमानत के कोटिला के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

२७ वें वर्ष के आरंभ में जब बादशाह अहमदनगर गए, क्योंकि बीजापुर और हैदराबाद विजय करने का उसका विचार था, तब अमानत खाँ ने मुसलमानों के विरुद्ध युद्ध न करना उचित समझ कर त्यागपत्र दे दिया, जो वह बराबर तैयार रखता था। तीव्र बुद्धि बादशाह ने इसके विचार समझ कर इसे साथ नहीं लिया और औरंगाबाद का अध्यक्ष बनाकर छोड़ गया। इसके कुछ महीने बीतने पर सन् १०९५ हि० (सन् १६८४ ई०) में यह मर गया। शाह नूर हमामी के मकबरे के पास नगर के दक्षिण में गाड़ा गया। 'सैयद बिहिश्ती शुद' (सैयद स्वर्गीय हुआ, १०९५ हि०) से तारीख निकलती है। वास्तव में मृत्यु शब्द ऐसे सदा जागृत आत्माओं के लिए, जो बाह्य गुणों को इकट्ठा करते, आध्यात्मिक पुरस्कार संचित करते और सदा जीवित रहते हैं, केवल व्यावहारिक मात्र है।

आत्मायुक्त मनुष्य न मरे और न मरेंगे।
मृत्यु ऐसे लोगों के लिए केवल एक नाम है॥

सत्य ज्ञानी मियाँ शाहनूर हमामी दर्वेश, जो पूर्णता का मालिक था, बहुधा कहता 'जो मनुष्य हमसे चाहते हैं वह इस युवा पीर में हैं' और यह कहकर इस हृदय-ज्ञानी अमानत की ओर इंगित करता।

लुब्बेलुबाब इतिहास का लेखक खफीखाँ, जो सत्यवक्ता और न्यायान्वेषक था, लिखता है कि वास्तव में ईमानदार मनुष्य, जो अपनी उन्नति न चाहे और प्रजा की भलाई को सरकारी लाभ से विशेष महत्त्व दे तथा जिसके शासन में किसी एक भी मनुष्य के जान और जायदाद को हानि न पहुँचा हो, अमानत खाँ को छोड़ कर बिरले ही देखने और सुनने में आते हैं। गबन किए हुए करोड़ी तथा दरिद्र जमींदारों का प्राय: कैद में जान देने का मिसाल मिलता रहता है, जिससे अत्याचार बढ़ता है और जो राज्य शासन को बदनाम करता है। यह उनसे जितना माँगा जाता था उससे कम लेता और हर एक के लिए किस्त कर छोड़ देता था। इसी तरह लाहौर में एक बार वाकियानवीसों ने रिपोर्ट की कि इस कारण दो लाख रुपयों की हानि हुई। बादशाह पहिले क्रुद्ध हुए पर जब ठीक विवरण से ज्ञात हुए तब अमानत की प्रशंसा की। दक्षिण में लगभग दस बारह लाख रुपये पुराने हिसाब के अज्ञात रैयत के नाम पड़े हुए थे। प्रति वर्ष अहदी और मंसबदार नियत होते थे पर एक दाम भी न उगाहते थे, केवल बहुत सा बकाया हिसाब दिखला देते थे। इसने उसी तरह लेखनी के एक परिचालन से एक बड़ी रकम, जो इच्छुक

जमींदारों से भेंट के रूप में मिलने को थी, बट्टे खाते लिख दिया।

एक दिन बादशाह संयोग से इसकी सत्यता की प्रशंसा कर रहे थे कि अमानत ने कहा कि 'हमारे ऐसा बेईमान कोई नहीं है क्योंकि प्रति वर्ष हम कुछ न कुछ अपने मालिक के धन को छोड़ देते हैं।' बादशाह ने कहा कि 'हाँ हम जानते हैं कि तुम अनंत कोष में हमारे लिए धन जमा कर रहे हो।'

संक्षेप में इस महान पुरुष की राज्य सेवा, जो इसने छोटे पद पर रह कर किया था क्योंकि यह केवल दो हजारी था, विचित्र थी। बहुत से ऐसे कार्य, जो मनुष्यत्व से दूर थे पर सब शाही आज्ञाएँ थीं, इसने अपने हृदय की पवित्रता तथा कोमलता से नहीं किया। स्वामी की इच्छा के विरुद्ध काम करने से इसने कई बार त्यागपत्र दिए पर सहृदय बादशाह ने इसकी निस्वार्थता तथा सत्यता को समझ कर इन पर ध्यान नहीं दिया।

कहते हैं कि मुखलिस खाँ बख्शी बयान करता था कि अमानत खाँ के संबंध में बादशाह के दिमाग में विचित्र भाव था। जब बादशाह औरंगाबाद में थे तब शाहजादा मुइज्जुद्दीन ने प्रार्थना की कि 'स्थान की कमी के कारण हमारा कारखाना नगर के बाहर पड़ा है और इस वर्षा में सब सड़ रहा है। मृत संजर बेग के महल, जिसका हम्माम नगर में प्रसिद्ध है और जो अभी जब्त हुआ है, पर जिसे उसके उत्तराधिकारी ने खाली नहीं किया है, उसे दिया जाय।' बादशाह ने मृत के संबंधियों को आज्ञापत्र भेज दिया पर उस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। शाहजादे का प्रार्थनापत्र फिर बादशाह के सामने रखा गया तब मुहम्मद अली खानसामाँ को, जो अपने प्रभाव तथा मुँह लगा होने में सबसे

बढ़कर था, आज्ञा मिली कि वह किसी को अमानत खाँ पर सजावल नियत कर दे, जो उक्त इमारत को शाहज़ादे के मनुष्यों को दिलवा दे। अमानत न्याय के पुजारी ने इस पर भी ध्यान नहीं दिया। अंत में एक दिन जलूस में जब दोनों उपस्थित थे तब मुहम्मद अली खाँ ने कहा कि यद्यपि मकान दिलवा देने के लिए एक सजावल नियुक्त हुआ था पर कुछ हुआ नहीं। बादशाह ने अमानत खाँ की ओर दृष्टि फेरी तब उसने स्पष्ट ही कहा कि 'इस वर्षा तथा बिजली के दिनों में संजर बेग के आदमी कहाँ शरण और छाया पावेंगे जब शाहज़ादे को नहीं मिल रहा है। मैं तो अपने ही लिए डर रहा हूँ क्योंकि हमें भी पुत्र कलत्र हैं, कल यही हालत उन सबकी होगी।' उसी समय इसने अपना त्यागपत्र दिया कि ऐसा कार्य किसी दूसरे को सौंपा जाय। बादशाह ने सिर नीचा कर लिया और चुप हो रहे।

अपनी जीवन चर्या में यह धनाढ्यों की किसी बात से समानता नहीं रखता था और सांसारिक कार्यों में लिप्त भी नहीं रहता था। वह विद्या प्रेमी था तथा प्रचलित गुणों का ज्ञाता था। इस्लाम धर्म पर एक पुस्तक लिखी थी, जिसमें सब नियम संगृहीत थे। शिकस्त तथा नस्तालीक लिपियों के लेखन में दक्ष था। इसे सात पुत्र और आठ पुत्रियाँ थीं तथा उन सबको भी बहुत परिवार था। द्वितीय पुत्र वजारत खाँ, जिसका उपनाम गिरामी था, योग्यता में सबसे बढ़कर था। वह कवि था और उसने एक दीवान लिखा है। उसका यह शैर प्रसिद्ध है।

(गुलाम अली की भूमिका भाग १ पृ० २२ पर शैर का अर्थ दिया है)

इसका एक पुत्र मीरक मुईन खाँ था, जो पिता के सामने ही निस्संतान मर गया। दूसरे पुत्रों का वृत्तांत जैसे मीर अब्दुल् कादिर दियानत खाँ, मीर हुसेन अमानत खाँ द्वितीय और काजिम खाँ का, जो इन पत्रों के लेखक का सगा पितामह था, अलग दिया गया है। इस बड़े आदमी के अच्छे गुणों के कारण इस परिवर्त्तनशील संसार में, जहाँ एक क्षण में बड़े २ वंश निर्बल और उपेक्षणीय हो जाते हैं, इसके वंशधर चार पीढ़ी तक लिखते समय सन् ११५९ हि० (सन् १७४६ ई०) तक दक्षिण के दीवान रहे तथा अन्य पद योग्यता तथा प्रतिष्ठा के साथ शोभित करते रहे। अन्य परिवारों में दुर्भाग्यों का ऐसा अभाव कम देखा जाता है।

५२. अमानुल्लाह खाँ

यह अलीवर्दी खाँ आलमगीरी का पौत्र था। इसका पिता ख्यात् अलीवर्दी का पुत्र अमानुल्लाह खाँ था, जो पिता की मृत्यु पर आगरा का फौजदार हुआ तथा खाँ की पदवी पाई। २२ वें वर्ष वह ग्वालियर का फौजदार हुआ और बीजापुर की खाइयों की लड़ाई में वीरता से लड़ कर मारा गया। इस जीवनी के नायक ने अपने पिता की पदवी पाई और एक हजारी ५०० सवार का मंसब पाकर खानजादों में प्रसिद्ध हुआ। औरंगजेब के राज्य के अंत में यह साहस तथा स्वामी भक्ति के लिए प्रसिद्ध हो गया और अमीर बन गया। ४८ वें वर्ष के आरंभ में बादशाह गाजी ने डाँकुओं के दुर्ग लेने का प्रयत्न आरंभ किया और राज गढ़ दुर्ग लेने के बाद तोरण दुर्ग की ओर गया, जो वहाँ से चार कोस पर है।

यह प्रसिद्ध है कि औरंगजेब के राज्य के अंत में बहुत से दुर्ग, जो शिवाजी के थे, उसके अध्यक्षों से लिए गए थे। शाही अफसरों द्वारा दुर्गाध्यक्षों को रुपये भेज कर ही वे लिए गए थे, जिससे वे उस कार्य से मुक्त हो जायँ। अध्यक्षों ने इस कारण उन्हें दे दिया था। बादशाह यह जानते थे और ऐसा बार बार हुआ कि जो धन दुर्ग दे देने के लिए दिया गया था उतना ही उसे ले लेने के बाद विजेता को पुरस्कार में दे दिया गया। पर इस दुर्ग पर शाही नौकरों का अधिकार उनके साहस तथा तलवार के जोर से हुआ था। इसका संक्षिप्त वृत्तांत यों है कि तरबियत खाँ ने फाटक की ओर से मोर्चा खोदवाया और

मुहम्मद अमीन खाँ बहादुर ने दुर्गवालों के आने जाने का दूसरी ओर का मार्ग रोका। सुलतान हुसेन, प्रसिद्ध नाम मीर मलंग, ने एक ओर और मीर अमानुल्लाह ने दूसरी ओर प्रयत्न की तैयारी की। अंत में १५ जुलकदा सन् १११५ हि० (११ मार्च सन् १७०४ ई०) को रात्रि के समय अमानुल्लाह ने कुछ मावली पैदलों को दुर्ग पर चढ़ने के लिए बाध्य किया, जिनमें से जो पहिले ऊपर गया वह मानों अपनी जान से गया पर उसने ऊपर दुर्ग पर पहुँच कर रस्सा एक पत्थर से बाँध दिया। इसके बाद पचीस आदमी पहाड़ी पर रस्से से चढ़ गए और दुर्ग में पहुँच कर उन्होंने विजय का शोर मचाया। खाँ और उसका भाई अताउल्लाह खाँ तथा अन्य लोग उनके पीछे पीछे पहुँचे। हमीदुद्दीन खाँ, जो अवसर देख रहा था, यह समाचार सुन कर रस्सा अपने कमर में बाँध कर उन्हीं लोगों के समान ऊपर चढ़ गया। जिन काफिरों ने सामना किया वे मारे गए। दूसरे ऊपरी किले में चले गए और अमान माँगने लगे। दुर्ग को फतूहुल्गैब नाम दिया और अमानुल्लाह खाँ का मंसब पाँच सदी बढ़ा, जिसके २०० घोड़े दो अस्पा थे।

इसके अनंतर इस पर शाही कृपा हुई और इसने बहुत से अच्छे कार्य किए। इसको बराबर तरक्की मिली और वाकिनकेरा के विजय के बाद इसको कार्य्य के पुरस्कार में डंका मिला। औरंगजेब की मृत्यु के बाद यह दक्षिण से उत्तरी भारत मुहम्मद आजम शाह के साथ चला आया और बहादुर शाह के साथ युद्ध में बड़ी वीरता से लड़ कर ऐसा घायल हुआ कि मर गया।

---

५३. अमानुल्लाह खानजमाँ बहादुर

महाबत खाँ जमाना बेग का यह पुत्र तथा उत्तराधिकारी था। इसकी माता मेवात की खानजादा वंश की थी। अपने पिता के विरुद्ध यह प्रशंसनीय गुणों से युक्त था और अपने समकालीन व्यक्तियों से गुणों में बढ़कर था। लोग आश्चर्य करते थे कि ऐसे पिता को ऐसा पुत्र हुआ। जब जहाँगीर के १७ वें वर्ष में शाहजहाँ के भाग्य को उलटने का पासा महाबत खाँ के नाम पड़ा तब वह काबुल से बुला लिया गया और वहाँ का प्रबंध मिर्जा अमानुल्लाह को अपने पिता के प्रतिनिधि रूप में मिला। इसे तीन हजारी मंसब और खानजाद खाँ की पदवी मिली। जती नाम का उजबेग, जो अलमान खेल का था और बलख के शासक नज्र मुहम्मद खाँ का एक सेवक था, साधारणतया यलंगतोश कहलाया क्योंकि युद्ध में वह अपनी छाती नंगी रखता था। तुर्की में यलंग का अर्थ नग्न और तोश का अर्थ छाती है। वह खुरासान की सीमा तथा कंधार और गजनी के बीच प्रभावशाली हो रहा था तथा डाकू प्रसिद्ध हो गया था। उसने कई बार खुरासान पर आक्रमण किया, जिससे फारस के शाह डर गए थे। उसने हजारा जात में एक दुर्ग बनवाया, जिससे हजारा जाति को रोक सके, जिनका निवास गजनी की सीमा पर था और जो काबुल के शासक को पहिले से कर देते आते थे। उसने उन्हें धमकाने को अपने भांजे के अधीन सेना भेजा। इस

पर हजारा जाति के मुखिया ने खानजाद खाँ से सहायता की प्रार्थना की। यह सुसज्जित सेना के साथ उजबेगों पर चढ़ दौड़ा और युद्ध में उनका सर्दार बहुत से सैनिकों के साथ मारा गया। खानजाद खाँ ने दुर्ग तुड़वा दिया। यलंगतोश ने हठ करके नज्र मुहम्मद खाँ से छुट्टी ले ली, जो शाही भूमि पर आक्रमण नहीं करना चाहता था। १९ वें वर्ष में यलंगतोश ने गजनी से दो कोस पर युद्ध की तैयारी की, जिसके साथ बहुत से उजबेग तथा अलमानची थे। खानजाद खाँ ने प्रांत की सहायक सेना के साथ इस युद्ध में प्रसिद्धि प्राप्त की तथा बहुत से शत्रुओं को मार कर और कैद कर राजभक्ति दिखलाई। कहते हैं कि इस युद्ध में हाथियों ने बहुत कार्य किया। जब-जब उजबेग सर्दार धावे करते थे हाथी उन पर रेल दिये जाते थे, जिससे घोड़े डर जाते थे। संक्षेप में उजबेग बढ़ न सके और यलंगतोश भागा। कहते हैं कि इस युद्ध में एक सवार पकड़ा गया, जिसे लोग मारना चाहते थे कि उसी ने कहा कि वह औरत है। उसने कहा कि लगभग एक सहस्र स्त्रियाँ उसी के समान सेना में थीं तथा मर्दों के समान तलवार चलाती थीं। खानजाद खाँ ने छ कोस पीछा किया और तब विजयी होकर लौटा।

जब बंगाल का शासन महाबत खाँ को मिला तब उसके कहने पर खानजाद खाँ काबुल से बुला लिया गया। २० वें वर्ष में जब महाबत खाँ की भर्त्सना की गई और दरबार बुलाया गया तब बंगाल का प्रबंध खानजाद को दिया गया। जब बाद को महाबत खाँ अपने कार्य के बदले में झेलम के किनारे से भागा तब खानजाद खाँ बंगाल के शासन से हटाया गया और

दरबार आया। अपने सुव्यवहार से इसने अपना सम्मान स्थापित रखा और आसफ खाँ की अधीनता मानने में तनिक भी कमी नहीं की। जहाँगीर की मृत्यु पर जो कार्य हुआ था उसमें यह बराबर आसफ खाँ के साथ था। शाहजहाँ के राज्यारंभ में इसने लाहौर से आकर सेवा की और इसको पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब, खानजमाँ की पदवी तथा मुजफ्फर खाँ मामूरी के स्थान पर मालवा की प्रांताध्यक्षता मिली। उसी वर्ष जब इसका पिता दक्षिण का सूबेदार नियत हुआ तब यह अपने पिता का प्रतिनिधि होकर वहाँ गया। इसके बाद जब २ रे वर्ष दक्षिण का शासन इरादत खाँ को दिया गया, जिसका नाम आजम खाँ था, तब खानजमाँ ने चौखट चूमी और अपनी जागीर संभल गया। जब खानजहाँ लोदी को दमन करने के लिए शाहजहाँ दक्षिण चला तब खानजमाँ ने उसका अनुगमन किया और आसफ खाँ यमीनुद्दौला से जा मिला, जो बीजापुर के सुलतान मुहम्मद आदिलशाह को दंड देने पर नियत हुआ था। ५ वें वर्ष जब बादशाह बुरहानपुर से उत्तरी भारत को लौटे तब दक्षिण तथा खानदेश का शासन आजम खाँ से ले लिया गया और महाबत खाँ को दिया गया, जो उस समय दिल्ली का अध्यक्ष था। यमीनुद्दौला को आज्ञा मिली कि खानजमाँ और उसकी अधीनस्थ सेना को बुरहानपुर में छोड़कर वह आजम खाँ तथा अन्य अफसरों के साथ दरबार लौट आवे। इसी समय खानजमाँ का गालना दुर्ग पर अधिकार हो गया। उस दुर्ग का अध्यक्ष महमूद खाँ मलिक अंबर के पुत्र फतह खाँ से विरुद्ध हो गया क्योंकि उसने निजाम शाह को मार डाला था और वह दुर्ग को

साहू भोंसला को दे देना चाहता था। जब ६ ठे वर्ष खानजमाँ का पिता दौलताबाद के उच्छ दुर्ग को लेने का प्रयत्न करने लगा तब खानजमाँ ने पाँच सहस्र सवारों के साथ युद्ध को तैयारी की और जिस मोर्चे को सहायता की जरूरत होती वहाँ पहुँचता। उस समय बीस हजार पशु, अनाज तथा कुछ सहायक सेना जफर नगर में थी पर डाँकुओं के कारण सम्मिलित नहीं हो सकी थी। खानजमाँ वहाँ गया और साहू जी भोंसला तथा बहलोल खाँ ने उसे खिरकी से तीन कोस पर चकलथाना में घेर लिया। खानजमाँ अपनी जगह पर डट गया और आतिश-बाजी, गजनाल तथा बंदूक छोड़ने लगा। जिस किसी ओर से शत्रु आगे बढ़ते, वे हटा दिए जाते थे। रात्रि होने पर दोनों सेनाएँ युद्ध से हट गईं। खानजमाँ अपने स्थान ही पर रहा और बुद्धिमानी से सुबह तक सतर्क रहा। शत्रु, यह देखकर कि वे सफल न होंगे, निराश हो लौट गए। यह सामान अपने पिता के पास ले गया और बराबर मोर्चाबंदी तथा सामान लाने में बहा-दुरी दिखलाता रहा। दूसरी बार यह अन्न, धन और बारूद लाने गया, जो रोहनखेरा आ पहुँचा था पर आगे नहीं बढ़ सका था। रनदौला, साहू और याकूत हब्शी ने इसका पीछा किया कि स्यात् साथ का सामान लूटने का अवसर मिल जाय। खानखानाँ ने यह सुनकर नासिरी खाँ खानदौराँ को सहायता के लिए भेजा। खानजमाँ अपने उत्साह तथा साहस के कारण सब सामान लेकर लौट रहा था और जब हरावल तथा चंदावल मध्य से एक एक कोस आगे और पीछे थे तथा खिरकी में पहुँचे थे कि शत्रु ने एकाएक आक्रमण किया। खूब युद्ध हुआ और शत्रु परास्त

हो कर भागे। दुर्गविजय के उपरांत यह शुजाअ के कहने पर परेंदा के दृढ़ दुर्ग के घेरे में भी नियुक्त हुआ। खानजमाँ आगे गया और खान खुदवाने तथा तोपखाने लगवाने में कम प्रयत्न नहीं किया पर अफसरों की दुरंगी चाल तथा वर्षा के कारण दुर्गविजय रुक गया। शाहजादा, महाबत खाँ आदि कार्य न पूरा कर सकने पर लौट गए।

यद्यपि महाबत खाँ का अन्य पुत्रों से इस पर अधिक प्रेम था और जब कभी वह सुनता कि अमानुल्लाह ने ऐसा किया है, तो लाखों रुपये का मामला होने पर भी वह कुछ नहीं बोलता था पर उजड्डता तथा कठोरता के कारण आम दीवान में उसे गाली देता था। यद्यपि खानजमाँ ने खुले शब्दों में और इशारे से उसके पास संदेश भेजा कि उसे उसकी उम्र का अब ध्यान रखना चाहिए तथा उसकी प्रतिष्ठा बनाए रखना चाहिए पर महाबत इस पर इसकी और भी अप्रतिष्ठा करता। खानजमाँ ने कई बार कहा कि मृत्यु हमारी शक्ति के बाहर है और चले जाने में क्या कठिनता है पर तब हम दोनों प्रकार धार्मिक तथा नैतिक दृष्टि से गिर जाँयगे। जब इसकी आत्मा को विशेष कष्ट पहुँचा तब यह बिना आज्ञा लिए दरबार जाने की इच्छा से रोहिनखेरा घाट से चल दिया। पहिले दिन यह बुर्हानपुर पहुँच गया और रात्रि बीतने पर हांडिया उतार से नदी उतरा। महाबत खाँ तब दुखी होकर कहने लगा कि यदि हमारे विरोधी दरबारीगण बादशाह से हमारी बुराई करते तो वह शत्रुता तथा द्वेष समझा जाता पर जब ऐसा पुत्र, जो संसार में भलप्पन के लिए प्रसिद्ध है, इस प्रकार चला जाय तब अवश्य ही हम पर लांछन लगेगा। उसने

मेरी बुढ़ापे में अप्रतिष्ठा की। तब वह ठंढी साँस लेकर और हाथ घुटनेपर रखकर कहता कि 'आह अमानुल्लाह तुम जवान ही मरोगे।' कहते हैं कि खानजमाँ के पहुँचने पर बादशाह ने यह शैर पढ़ा था—

जब प्रिय के साथ ऐसा व्यवहार है तब दूसरों के लिए शोक ही है।

दैवात् जिस दिन खानजमाँ सेवा में उपस्थित होने को था, उसी दिन महाबत खाँ की मृत्यु का समाचार आया। शाहजहाँ ने यमीनुद्दौला तथा अन्य अफसरों को शोक मनाने के लिए भेजा और खानजमाँ को बुलाकर उस पर कई प्रकार से कृपा की। अब तक खानदेश तथा बरार का एक प्रांताध्यक्ष रहता था पर उसके बाद उसी के दो विभाग कर दिए गए। बालाघाट के अंतर्गत दौलताबाद, अहमदनगर, संगमनेर, जुनेर, पत्तन, जालनापुर, बीड, धारवार और बरार का कुछ भाग तथा पूरा तेलिंगाना जिसकी तहसील इक्कीस करोड़ दाम थी इस पर खानजमाँ नियत किया जाकर वहाँ भेजा गया। जुझारसिंह बुंदेला को दंड देने में मालवा का शासन खानदौराँ को सौंपा गया था इसलिए खानदेश पर अलीवर्दी नियत हुआ और बरार को बालाघाट में मिलाकर वह प्रांत खानजमाँ को सौंपा गया।

९ वें वर्ष जब बादशाह दौलताबाद दुर्ग देखने दक्षिण चले तब राव शत्रुसाल तथा अन्य राजपूतों को हरावल और बहादुर खाँ रुहेला तथा अफगानों को चंदावल नियत कर उनके साथ खानजमाँ को चमारगोंडा प्रांत, जो साहू का निवासस्थान है, और कोंकण, जो उसके अधिकार में है, विजय करने तथा बीजापुर राज्य लूटने के लिए, जो उस ओर था, भेजा। इसने साहू

को कई बार हराया और चमारगोंडा तथा अहमदनगर के अन्य स्थानों में थाने बैठाए। जब आदिल शाह ने अधीनता स्वीकार कर ली तब यह लौटा और बहादुर की पदवी पाई। इसके बाद यह जूनेर लेने भेजा गया, जो निजामशाही के बड़े दुर्गों में से एक है। खानजमाँ ने साहू को दंड देना और पीछा करना अधिक महत्व का कार्य समझ कर कोंकण तक पीछा किया। जहाँ वह जाता यह उसका पीछा करना नहीं छोड़ता था। साहू ने अपना घर और सामान लुट जाने दिया तथा माहुली दुर्ग में शरण ली। आदिल शाह की ओर से रनदौला खाँ को आज्ञा मिली थी कि खानजमाँ बहादुर का सहयोग करे और जिन दुर्गों पर साहू अधिकृत है, उसे विजय कर शाही साम्राज्य में मिलाए, इसलिए उसने माहुली को एक ओर से और खानजमाँ ने दूसरी ओर से घेर लिया। साहू ने ऊबकर १० वें वर्ष सन् १०४६ हि० (सन् १६३६-३७ ई०) में जुनेर, त्रिंगलवाड़ी, त्र्यंबक, हरीस, जोधन और हरसल दुर्ग तथा निजाम शाह के संबंधी को, जो उसके साथ था, खानजमाँ को सौंप दिया। जब दक्षिण के चारों प्रांतों की सूबेदारी शाहजादा औरंगजेब को मिली तब खानजमाँ दौलताबाद लौट आया और शाहजादे की सेवा में उपस्थित हुआ। यह बहुत दिनों से कई रोगों से पीड़ित था, कभी अच्छा हो जाता था और कभी रोग दुहरा जाता था। अंत में वर्ष बीतते-बीतते यह मर गया। तारीख निकली कि 'रुस्तमे जमाँ मुर्द' (अपने समय का रुस्तम मर गया, १०४७ हि०)। कहते हैं कि मृत्यु के समय जब इसे चेतना हुई तब उसने यह प्रसिद्ध शैर पढ़ा—

शैर

अमानी, जीवन ओंठ पर, सुबह के दीपक के समान, आ लगा है।
मैं वह इशारा चाहता हूँ कि जिससे सब समाप्त हो जाय॥

साहस तथा युद्धीय योग्यता में यह अपने समय में अद्वितीय था। यह क्रोधी तथा ईर्ष्यालु था पर इसपर भी नम्र तथा शीलवान था, जिससे इसके पिता के घोर शत्रुओं ने भी इससे प्रेम पूर्वक व्यवहार किया। यद्यपि महाबत खाँ कहता था कि 'उनका प्रेम मुझसे शत्रुता मात्र है और यदि हमारे मरने पर भी यही मेल तथा मित्रता रहे तब तुम लोग हमें गाली दे सकते हो'। यह बुद्धि तथा अनुभव में भी एक ही था। संसार के सभी राजाओं का इसने एक इतिहास लिखा था। 'गंजेबादावर्द' संग्रह भी इसी का बनाया है। 'अमानी' उपनाम से इसने एक दीवान तैयार किया था। ये शैर उसके हैं—

प्याले के किनारे पर हमारा नाम लिखो।
जिसमें दौर के समय वह भी साथ रहे॥
जैसा हम चाहते हैं यदि गोला न फिरे तो कहो 'न फिरे'।
यदि हमारे इच्छानुसार प्याला फिरे तो काफी है॥

इसे एक लड़का था। उसका नाम शुक्रुल्ला था। वह योग्य तथा बादशाह का परिचित था। जब उसका पिता जुनेर की सहायता को गया तब वह उसका प्रतिनिधि होकर बुर्हानपुर की रक्षा को गया।

---

५४. अमीन खाँ दक्खिनी

खानजमाँ शेख नीजाम का यह पुत्र था। मुहम्मद आजमशाह के साथ जो युद्ध हुआ था उसमें यह और इसका सौतेला भाई फरीद अग्गल में और इसके सगे भाई खानआलम और मुनौअर हरावल में थे। इसने उसमें बड़ी वीरता दिखलाई, जो इसके नाम तथा जाति के उपयुक्त थी। इसका अभी जीवन कुछ बाकी था, इसलिए यह घावरहित बच गया। कहते हैं कि जब खान-आलम और मुनौअर खाँ ने अजीमुश्शान पर आक्रमण किया तब वे उक्त शाहजादे के बाएँ भाग पर जा टूटे, अपने सामने की सेना को भगा दिया और चंदावल तक जा पहुँचे। जब उक्त लोगों ने अपने बाएँ देखा तब शाहजादे का हौदा दिखलाई पड़ा। वे घूमकर केवल तीस सवारों के साथ फतिंगों के समान उस ओर जा टूटे। बहादुरशाह ने विजयोपरांत अमीन खाँ पर कृपा की और यद्यपि यह शत्रु पक्ष में था पर एक वीर वंश का बचा हुआ बहादुर समझकर इस पर दया दिखलाई। इसके बाद इसे सरा का फौजदार बनाया, जो बीजापुरी कर्णाटक का पर्याय था। यह विस्तृत तथा उपजाऊ प्रांत था। इसके आसपास बहुत से जमींदारों की जमीन थी, जो अपने अधिकार के अनुसार कर दिया करते थे। इन्हीं में सेरिंगापत्तन का जमींदार मैसूरिया था, जो चार करोड़ रुपये कर देता था। दक्षिण में इसके समान कोई दूसरा जमींदार ऐश्वर्य, राज्य-विस्तार और कोष में नहीं था या

यों कहिए कि कोई उसके शतांश को नहीं पहुँचता था। इसका कर निश्चित था। सरा का फौजदार अपनी शक्ति के अनुसार कम या अधिक कर उगाहता था और अधिक माँगने में युद्ध छिड़ जाता। इसी प्रकार अमीन खाँ के समय दलवा अर्थात् प्रधान सेनापति के अधीन बड़ी सेना नियत हुई, जिससे खूब युद्ध करने के बाद शत्रु की सैन्य-शक्ति के अधिक होने से खाँ की सेना भागी। यह स्वयं ३०० सैनिकों के साथ डटा रहा और मरने ही को था कि इसके हाथ की गोली से दूसरे पत्त का सर्दार मारा गया तथा पराजय विजय में परिणत हो गई। इसका शासन प्रबल हो गया। हर ओर के आदमी आतंक में आ गए और दूर तक के लोगों ने इसकी शक्ति तथा प्रभाव को मान लिया। इसके बाद कर्नोल की फौजदारी इसे मिली और फर्रुखसियर के समय दक्षिण के मुख्य दीवान हैदर कुली खाँ ने इसको बरार की सूबेदारी दिला दी। इसके नायब ने अधिकार ले लिया था और वह बालकंदा ही में था, जो उसकी पुरानी जागीर थी, कि अमीरुल् उमरा हुसेन अली खाँ के आने का समाचार मिला। अदूरदर्शिता तथा घमंड के कारण खाँ ने जाकर उसका स्वागत करने में देर की। दाऊद खाँ पर विजय प्राप्त करने के बाद अमीरुल् उमरा ने अपने एक साथी असद अली खाँ जौलाक को, जिसका दादा अलीमर्दान के तुर्कों में से था, बरार पर अधिकार करने भेजा पर जब अमीन खाँ ने अधीनता मान ली तब उसी को फेर दिया। जब एवज खाँ बहादुर दरबार से वहाँ के शासन पर भेजा गया तब खाँ नानदेर का प्रबंधक हो वहाँ गया। लालच तथा अन्याय के कारण और

नानदेर के अंतर्गत बोधन परगना के जमीदारों के बहकाने पर मांधाता नाम के जागीरदार से, जिसका पिता कान्हो जी सरकिया पाँच हजारी मराठा था और औरंगजेब के समय बहुत कार्य कर चुका था, अन्यायपूर्ण युद्ध छिड़ गया। अमीन खाँ ने उसको प्रतिज्ञा तथा प्रण करके अपने अधिकार में लाया और उसे नष्ट कर डाला। इसके बाद पुराने झगड़े के कारण उसने जगपत यलमा को भी नष्ट करना चाहा, जिसने निर्मल पर अधिकार कर लिया था। इसने राजा साहू के दत्तक पुत्र फतह सिंह से सहायता माँगी, जो उस जिले का मकासदार था। दैवात् एक अन्य घटना ने उस दुष्ट के औद्धत्य को और भी बढ़ाया। इसका विवरण यों है कि इस समय मराठों से संधि हो चुकी थी, जिससे अमीरुल् उमरा के नाम पर ऐसा धब्बा पड़ा जो प्रलय तक न मिटेगा। शर्त यह थी कि जिन जिन राज्यों में उनकी स्थिति के प्राबल्य तथा जमीदारों के युद्ध को सन्नद्ध रहने से चौथ नहीं मिलती वहाँ अमीरुल् उमरा मराठों की सहायता करेगा। उक्त खाँ के शासन के अंतर्गत ताल्लुकों में मराठों के उन्नततम काल में कहीं कहीं एक दम भी चौथ नहीं वसूल हुआ था और अमीरुल् उमरा के पत्रों के मिलने पर भी खाँ ने ऐसी अप्रतिष्ठा में मदद करना उचित न समझा और चौथ एकत्र नहीं की। वह प्रांत इससे ले लिया गया और मिर्जा अली यूसुफ खाँ को दिया गया, जो अपने समय का एक वीर पुरुष था। यह खाँ, जिसका प्रभाव इस सूचना से कि वह उतार दिया गया घट गया था, अपनी पुत्री की शादी पर बालकंदा चला गया। एकाएक फतह सिंह और जगपत ने इस पर धावा किया। इसने अपने वंश तथा कीर्ति का

विचार कर और शत्रु की संख्या का ध्यान न कर थोड़े आदमियों के साथ उनसे युद्ध करने गया। इस परिवर्तनशील संसार में विजय-पराजय होता रहा है और सौभाग्य तथा दुर्भाग्य साथी हैं। खाँ इन अयोग्य मनुष्यों के विरुद्ध लड़ कर अपनी अमीरी तथा वर्षों की अर्जित कीर्ति खोते हुए प्राण बचा कर बालकंदा भाग गया। इसके बाद जब सैयद आलम अली खाँ बहादुर दक्षिण का शासक था तब उसने इसे नानदेर प्रांत में फिर नियत किया तथा उस युद्ध में, जो नवाब फतहजंग आसफजाह से हुआ था, बाएँ भाग का अध्यक्ष बनाया। इस अयोग्य पुरुष ने कादर सा कार्य किया और युद्ध में योग न देकर दर्शक की तरह खड़ा रह कर अपने पूर्वजों के कार्यों पर हरताल फेर दी। विजयोपरांत फतह-जंग ने इसको ताल्लुकों पर भेज दिया पर इसका प्रभाव तथा प्रसिद्धि नष्ट हो चुकी थी। इसी समय एवज खाँ बहादुर ने लोभ से इसका बरार लौटना ठीक न समझकर इसके स्थान पर मुहव्वर खाँ खेशगी को नियुक्त करा दिया। यह सुनते ही नवाब फतह जंग के पास, जो अदोनी की ओर गया था, गया पर उसे कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। यह लौट कर परबनी ग्राम में जा बसा, जो उसकी जागीर में था और पाथरी से बारह कोस पर था। नानदेर के मिले हुए महालों में इसने करोड़ी का सामना किया। यद्यपि उक्त खाँ ने इसे उचित मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया पर इसने अपनी मूर्खता नहीं छोड़ी। अंत में यह पकड़ा गया और बहुत दिन तक कारागार में रहा। जब इसके पुत्र मुकर्रब खाँ ने, जिसकी जीवनी में इस सबका उल्लेख है, सेवा में तरक्की पाई, यह उसकी प्रार्थना पर मुक्त हुआ। बालकंदा में पचास सहस्र

वार्षिक की जागीर इसके व्यय के लिए दी गई और यह बहुत दिनों तक पुत्र की रक्षा में रहा। उसके अधिकार से दुःखित होकर यह मुहम्मदशाह के ६ ठे वर्ष में औरंगाबाद चला आया और एवजखाँ बहादुर की सहायता से अपनी जागीर आदि लौटाने की आशा में रहा। इसी समय आसफजाह उत्तरी भारत से आया और मुबारिज खाँ से युद्ध हुआ। समय की आवश्यकता के कारण इसे नया प्रोत्साहन मिला और प्रयत्न करने के लिए कमर बाँध कर औरंगाबाद ही में कुछ दिन ठहरकर तैयारी कर यह बाहर निकला। कुछ पराजयों तथा दोषों से जब इसकी बुद्धि फिर गई और नीचता पर उतारू हो गया तब यह नए सिरे से काम करने के लिए मुबारिज खाँ से रात्रि में जा मिला, जिससे गुप्तरूप से प्रतिज्ञा की जा चुकी थी। युद्ध के दिन बिना कुछ किए ही यह शत्रु की तलवार से मारा गया। ऐसा सन् ११३७ हि० (१७२४ ई०) में हुआ।

५५. अमीन खाँ मीर मुहम्मद अमीन

यह मुअज्जम खाँ मीर जुमला अर्दिस्तानी का पुत्र था। तैलंग के शासक कुतुबशाह का इसके पिता पर अत्याचार जब शाहजादा औरंगजेब के प्रयास से रुक गया तब यह कारागार से छूट कर सुलतान मुहम्मद के यहाँ उपस्थित हुआ, जो उस प्रांत पर आगे भेजा गया था। यह सुलतान मुहम्मद से हैदराबाद से बारह कोस पर मिला और इसका भय छूट गया। शाहजहाँ के ३० वें वर्ष में यह अपने पिता के साथ शाही सेवा में भर्ती हो गया। जब यह बुर्हानपुर आया तब वर्षा और बीमारी से यह पीछे रह गया। इसके अनंतर यह दरबार आया और खिलअत तथा खाँ की पदवी पाई। उसी वर्ष मुअज्जम खाँ मीर जुमला को शाहजादा औरंगजेब के पास जाकर आदिलशाही राज्य नष्ट करने की आज्ञा मिली और मुहम्मद अमीन को एक हजार जात उन्नति मिली तथा इसका पद तीन हजारी १००० सवार का हो गया। इसे इसके पिता के लौटने तक नाएब वजीर का कार्य करने की आज्ञा मिली। ३१ वें वर्ष में कुछ ऐसे कार्यों से, जो पसंद नहीं किए गए, मुअज्जम खाँ दीवानी से उतार दिया गया तो मुहम्मद अमीन खाँ भी अपने पद से हटाया गया। पर इसकी सत्यता तथा योग्यता शाहजहाँ समझ गया था इस लिए ५०० सवार की तरक्की और जड़ाऊ कलमदान देकर उसे दानिशमंद खाँ के स्थान पर, जिसने त्यागपत्र दे दिया था, मीरबख्शी नियत कर दिया।

जब शाहजादा औरंगजेब ने मुअज्जम खाँ को कैद कर लिया, जो आज्ञानुसार अपनी सेना के साथ दरबार जा रहा था और किसी तरह वहीं रुक रहा था, और दक्षिण में अपनी नजर कैद में रोक रखा तब दाराशिकोह ने यह सुन कर निश्चयतः समझ लिया कि यह कार्य खाँ तथा औरंगजेब की राय से हुआ है और यही शाहजहाँ को समझा दिया। मुहम्मद अमीन पर अकारण शंका की गई और दारा ने कैद करने की आज्ञा बादशाह से लेकर उसे घर से बुला कैद कर दिया। तीन चार दिन बाद उसकी निर्दोषता साबित होने पर बादशाह ने दारा की कैद से उसको छुट्टी दिला दी। दारा के पराजय के बाद विजय का झंडा फहराने के दूसरे दिन मुहम्मद अमीन अभिवादन करने पहुँचा, जब औरंगजेब की उपस्थिति से सामूगढ़ का शिकारगाह चमक उठा था। इसका अच्छा स्वागत हुआ और इसे चार हजारी ३००० सवार का मंसब मिला। उसी महीने में यह मीरबख्शी नियत हुआ। शुजाअ के साथ के युद्ध में जब राजा जसवंत सिंह ने कपटाचरण किया और औरंगजेब की सेना से हट कर दारा से मिलने के लिए जल्दी से स्वदेश चला गया तब युद्ध के अनंतर वहाँ से लौटने पर मुहम्मद अमीन उसे दंड देने के लिए सुसज्जित सेना के साथ भेजा गया। पर दारा, जो अहमदाबाद से अजमेर आ रहा था, पास आ पहुँचा तब मुहम्मद अमीन पुष्कर से लौट कर बादशाही सेना से आ मिला। २ रे वर्ष इसका मंसब पाँच हजारी ४००० सवार का हो गया और ५ वें वर्ष १००० सवार और बढ़े।

जब ६ ठे वर्ष के आरंभ में मीर जुमला बंगाल में मर गया

तब शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम शोक मनाने तथा सांत्वना देने मुहम्मद अमीन के घर गया और इसे बादशाह के पास लिवा लाया। इसे खिलअत दी गई। १० वें वर्ष में यूसुफजई खेल की सेना ओहिंद में जमा हुई, जो उस पार्वत्य देश का मुख है, और गड़बड़ मचाई तब मुहम्मद अमीन योग्य सेना के साथ उन्हें दंड देने भेजा गया। खाँ के पहुँचने के पहिले यद्यपि शमशेर खाँ तरीं उस जाति को परास्त कर दंड दे चुका था पर तब भी खाँ उस प्रांत में गया और उसे लूट पाट कर बादशाही आज्ञानुसार लौट आया। इस पर यह इब्राहीम खाँ के स्थान पर लाहौर का सूबेदार नियत हुआ। १३ वें वर्ष में यह महाबत खाँ द्वितीय के स्थान पर नियुक्त हुआ। इसी वर्ष प्रधान मंत्री जाफर खाँ मरा और असद खाँ उसका नाएब होकर काम करता रहा। बादशाह ने यह समझ कर कि केवल प्रथम कोटि का अफसर ही यह काम कर सकता है, मुहम्मद अमीन को दरबार बुलाया। १४ वें वर्ष यह आया और इसका शाहजादों के समान स्वागत हुआ। यद्यपि यह अपनी कार्य-क्षमता तथा अनुभव के लिए प्रसिद्ध था पर इसमें कुछ दोष भी थे और इसने मंत्रित्व कुछ शर्तों पर स्वीकार किया जो बादशाह के स्वभाव के विरुद्ध थीं तथा इसके विरोध और कथन से उसको कष्ट पहुँचता था।

भाग्य के लेखानुसार कि इस पर बुरे दिन आवें इसने काबुल जाने तथा वहाँ शांति स्थापित करने की छुट्टी ले ली। इसे शाही उपहार मिले, जिसमें चाँदी के साज सहित आलम गुमान नामक हाथी भी था। घमंड का रंग कुछ न कर केवल मुख को पीला कर देता है, अहंता के मोछ की हवा भाग्य पर पराजय की धूल

डालती है और अहम्मन्यता से शत्रु प्रसन्न होता है तथा उसका फल पराजय होता है एवं औद्धत्य घृणोत्पादक होकर अंत बुरा कर देता है। खाँ ने हठ पूर्वक ऐश्वर्य तथा वैभव का कुल सामान लेकर पेशावर से अफगानिस्तान की राजधानी काबुल जाने और उपद्रवी अफगानों को दमन करने का निश्चय किया।

१५ वें वर्ष ३ मुहर्रम सन् १०८३ हि० (२१ अप्रैल १६७२ ई०) को खैबर पार करने के पहिले समाचार मिला कि अफगानों ने इसका विचार जान कर रास्ते बंद कर दिए हैं और चींटी तथा टिड्डी से संख्या में बढ़ गए हैं। खाँ ने अपने घमंड में उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और आगे बढ़ा। कूच में सतर्कता की कमी तथा कपट के कारण वही घटना घटी, जो अकबर के समय जैन खाँ कोका, हकीम अबुल् फतह और राजा बीरबल पर घटी थी। अफगानों ने चारों ओर से आक्रमण किया और तीर तथा पत्थर की बौछार करने लगे। सेनाएँ गड़बड़ा गईं और मनुष्य, घोड़े तथा हाथी एक दूसरे पर दौड़ पड़े। कई सहस्र ऊँचे से गड्ढों में गिर कर मर गए। मुहम्मद अमीन अहंकार से मरना चाहता था पर इसके सेवक इसकी लगाम पकड़कर उसे लौटा लाए। अपने सम्मान का कुछ विचार न कर यह उसी बुरी हालत में पेशावर फुर्ती से चला गया। इसका योग्य पुत्र अब्दुल्ला खाँ उसी गड़बड़ में मारा गया। इसका सामान लुट गया और बहुत से आदमियों की स्त्रियाँ कैद हो गईं। मुहम्मद अमीन की युवा लड़की और इसकी कई स्त्रियाँ भारी रकम देने पर छूटीं।

कहते हैं कि इस घटना के बाद खाँ ने बादशाह को लिखा

कि जो भाग्य में लिखा था वह हुआ पर यदि वह कार्य इसे फिर सौंपा जाय तो यह उस कार्य को ठीक कर लेगा। बादशाह ने राय को तब अमीर खाँ ने कहा कि 'चौटैल सूअर की तरह मुहम्मद अमीन शत्रु पर जा टूटेगा, चाहे अवसर उपयुक्त हो या न हो।' इस पर इसका मंसब, जो छः हजारी ५००० सवार का था, एक हजार जात से घटाया गया और यह गुजरात का शासक नियत हुआ। इसे आज्ञा हुई कि वह दरबार में न उपस्थित होकर सीधा वहाँ चला जाय। वहाँ यह बहुत दिनों तक रहा और २३ वें वर्ष में जब औरंगजेब अजमेर में था तब यह बुलाया गया और सेवा की। यह राणा के साथ उदयपुर गया और शाही कृपाएँ पाकर चित्तौड़ से छुट्टी पाई। यह २५ वें वर्ष ८ जमादिउल् आखिर सन् १०९३ हि० (४ जून १६८२ ई०) को अहमदाबाद में मर गया। सत्तर लाख रुपये, एक लाख पैंतीस हजार अशर्फी और इब्राहीमी तथा ७६ हाथी और दूसरे सामान जब्त हुए। इसके आगे कोई लड़का नहीं था। सैयद मुहम्मद इसका भाँजा था और इसका दामाद सैयद सुलतान कर्बलाई उस पवित्र स्थान का एक प्रमुख सैयद था। वह पहिले हैदराबाद आया। वहाँ के शासक अब्दुल्ला कुतुब शाह ने उसे अपना दामाद चुना। जिस दिन निकाह होने को था उस दिन बड़ा दामाद मीर अहमद अरब, जिसके हाथ में कुल प्रबंध था और जो इस कार्य का मध्यस्थ था, सैयद से कहा सुनी करने लगा और यह बात यहाँ तक बढ़ी कि उस बेचारे सैयद ने कुल सामान में आग लगा दी और चला आया।

यद्यपि मुहम्मद अमीन घमंडी और आत्मश्लाघापूर्ण था

पर सचाई और ईमानदारी में अपने समय का एक ही था। इसने बराबर न्याय करने का प्रयास किया। इसकी स्मरण-शक्ति तीव्र थी। जीवन के अंतिम अंश में, जब यह गुजरात का शासक था, यह बहुत ही थोड़े समय में पवित्र ग्रंथ का हाफिज हो गया। यह कट्टर इमामिया था। यह हिंदुओं को अपने अंतःपुर में नहीं आने देता था। यदि कोई बड़ा राजा इसे देखने आता, जिसे भीतर आने से नहीं रोक सकता था, तो यह घर धुलवाता, शतरंजी हटवा देता और अपने कपड़े बदलता।

५६. अमीनुद्दौला अमीनुद्दीन खाँ बहादुर संभली

यह संभल का एक शेखजादा था, जो राजधानी के उत्तर-पूर्व है। इसका वंश तमीम अनसारी तक पहुँचता था। इसने जहाँदार शाह की सेवा आरंभ की और फर्रुखसियर के समय यह एक यसावल नियत हुआ। मुहम्मद शाह के समय में यह मीर-तुजुक के पद तक पहुँच गया। क्रमशः यह चार हजारी और बाद को छः हजारी ६००० सवार के मंसब तक पहुँच गया तथा इसको अमीनुद्दौला की पदवी और संभल की जागीर मिली, जिसकी आय तीन लाख थी। उसी राज्य-काल में नादिर शाह के भारत से चले जाने पर यह मर गया। इसने कई मकान, बाग और सराय अपने देश में बनवाए। इसके पुत्रों में अमीनुद्दीन खाँ और अर्शद खाँ प्रसिद्ध हुए।

५७. अमीर खाँ खवाफी

इसका नाम सैयद मीर था और यह शेख मीर का छोटा भाई था। जब औरंगजेब दारा के प्रथम युद्ध के बाद आगरे से दिल्ली जा रहा था और मार्ग में मुरादबख्श को कैद कर, जिसने घमंड दिखलाया था, दिल्ली दुर्ग में भेज दिया, तब उसने अमोर खाँ को दुर्गाध्यक्ष नियत कर खिलअत, घोड़ा, अमीर खाँ की पदवी, सात सहस्र रुपये और दो हजारी ५०० सवार का मंसब दिया। १ म वर्ष में यह मुरादबख्श को ग्वालियर दुर्ग में पहुँचा कर शाही सेना में लौट आया। अजमेर के पास के युद्ध में जब शेख मीर शाही सेवा में मारा गया तब अमीर खाँ को चार हजारी ३००० सवार का मंसब मिला। ३ रे वर्ष यह योग्य सेना के साथ बीकानेर के भूम्याधिकारी राव कर्ण को दंड देने पर नियत हुआ, जो शाहजहाँ के समय दक्षिण की सेना में नियत था पर औरंगजेब तथा दारा शिकोह के युद्ध में वहाँ से बिना आज्ञा के अपने देश चला गया था। जब यह बीकानेर की सीमा पर पहुँचा तब राव कर्ण को, जो सम्मानपूर्वक आकर उपस्थित हो गया था, दरबार लिवा लाया। ४ थे वर्ष यह महाबत खाँ के स्थान पर काबुल का शासक नियत हुआ और इसे खिलअत, खास तलवार और मोती जड़ी कटार, एक फारसी घोड़ा, खास हाथी और पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब, जिसमें एक सहस्र दो अस्पः सेह

अस्प: थे, मिला। ६ ठे वर्ष में बादशाही लवाजिमे के काश्मीर से लाहौर आने पर यह दरबार बुलाया गया और कुछ दिन बाद इसे उक्त प्रांत पर जाने की छुट्टी मिली। ८ वें वर्ष यह दूसरी बार दरबार आज्ञानुसार आया, इस पर कृपा हुई और काबुल लौट गया। ११ वें वर्ष यह वहाँ से हटाया गया तथा दरबार आया। इसने त्यागपत्र दे दिया था, इसलिए राजधानी में रहने लगा। १३ वें वर्ष सन् १०८० हि० (१६६९–७० ई०) में यह मर गया। इसे कोई लड़का न था इसलिए शोक के खिलअत इसके भाई शेख मीर खवाफी के लड़कों को दी गई।

५८. अमीर खाँ मीर इसहाक, उमदतुल् मुल्क

यह अमीर खाँ मीरमीरान का लड़का था। आरंभ में इसकी पदवी अजीजुल्ला खाँ थी। महम्मद फर्रुखसियर के साथ जहाँदार शाह के युद्ध में अच्छी सेवा की, जिससे विजय के बाद शस्त्राध्यक्ष और शिकारी चिड़िया घर का दारोगा नियत हुआ। महम्मद शाह के दूसरे वर्ष जब हुसेन अली खाँ बादशाह के साथ दक्षिण को रवाना हुआ तब यह कुतुबुल्मुल्क के साथ दिल्ली चला आया। इसके अनंतर जब कुतुबुल्मुल्क सुलतान इब्राहीम को साथ लेकर बादशाह का सामना करने पहुँचा तब उक्त खाँ हरावल में नियत था। कुतुबुल्मुल्क के पकड़े जाने पर यह एक बाग में जा छिपा। इसी समय यह सुन कर कि सुलतान इब्राहीम बड़ी दुर्दशा में उसी घाटी में घूम रहा है तब इसने उसको बाग में लाकर बादशाह को प्रार्थना पत्र लिखा और उक्त सुलतान को अपने साथ ले जाकर कृपापात्र बन गया।' उक्त राज्य में बहुत दिनों तक तीसरा बख्शी रहा। बादशाह विषय वासना में मस्त था इसलिए इसकी रंगीन बातें बादशाह को बहुत पसंद आईं और इस कारण बादशाही मजलिस का एक सभ्य हो गया। क्रमशः इसको अच्छा मंसब और उमदतुल् मुल्क की पदवी मिल गई। बादशाह स्वयं कुछ काम नहीं देखते थे इसलिए दूसरे सरदारों ने इससे ईर्ष्या करके बादशाह से बहुत सी चुगली खाई, जिससे यह सन् ११५२ हि० में इलाहाबाद का शासक

नियत हो गया। सन् ११५६ हि० (१७४३ ई०) में बुलाए जाने पर वहाँ से लौटा और इस पर शाही कृपा अधिक हुई। इसकी प्रार्थना पर अवध का सूबेदार सफदर जंग, जिन दोनों में बड़ी मित्रता थी, दरबार बुलाया जाकर तोपखाने का दारोगा नियत हुआ। ये दोनों एक मत होकर मुहम्मद शाह को अली मुहम्मद खाँ रुहेला पर चढ़ा ले गए, जिसका वृत्तांत अलग दिया गया है, परंतु एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ के वैमनस्य के कारण कुछ न कर सके। उस समय सबके मुख पर यही था कि यह वजीर हो। २३ जीहिज्जा सन् ११५९ हि० को यह बुलाए जाने पर दरबार गया। जब दीवान खास के दरवाजे पर पहुँचा तब इसके एक नए नौकर ने इसको जमधर से मार डाला। यह हाजिर जवाबी और विनोद में एक था। बादशाह की मुसाहिबत किसी को भी काम नहीं आती। बहुत से गुणों में यह कुशल था। शैर भी कहता था और अपना उपनाम 'अंजाम' रखा था। उसका एक शैर यों है—

सुखी लोगों के समूह के विषय में मैं खाक जानता हूँ।
कि आराम से सोने के लिए ईंट के सिवा दूसरा तकिया नहीं है॥

५६. अमीर खाँ मीर मीरान

यह खलीलुल्ला खाँ यज्दी का लड़का था। इसकी माता हमीदा बानू बेगम सैफ खाँ की पुत्री और यमीनुद्दौला आसफ खाँ की दौहित्री थी। शाहजहाँ के १९ वें वर्ष में पाँच सदी १०० सवार की तरक्की होकर इसका मंसब डेढ़ हजारी ५०० सवार का हो गया और यह मीर-तुजुक नियत हुआ। ३१ वें वर्ष में खलीलुल्ला खाँ जब दिल्ली का अध्यक्ष नियत हुआ तब इसे मीर खाँ की पदवी और पिता के साथ जाने की आज्ञा मिली। औरंगजेब के राज्यकाल में यह अपने पिता की मृत्यु पर मंसब में तरक्की पाकर जम्मू के पार्वत्य प्रांत का फौजदार नियत हुआ। १० वें वर्ष में यह मुहम्मद अमीन खाँ मीर बख्शी के साथ नियत हुआ, जो यूसुफ जई की चढ़ाई पर जा रहा था। सेनापति ने इसे एक टुकड़ी के साथ लंगर कोट के पास शहबाज गढ़ के प्रांत में भेजा और इसने यूसुफजइओं के गाँवों को लूट लिया और तब कड़ामार पहाड़ के मैदान में आकर अन्य कई ग्रामों में आग लगा दी। यह बहुत से पशुओं के साथ पड़ाव पर लौटा। १२ वें वर्ष में यह हसन अली खाँ के स्थान पर मंसबदारों का दारोगा नियत हुआ। इसी वर्ष अलीवर्दी खाँ आलमगीरी की मृत्यु पर यह इलाहाबाद का अध्यक्ष नियत हुआ और इसको चार हजारी ३००० सवार का मंसब मिला, जिसमें सवार दो अस्पा थे। १४ वें वर्ष में यह अपने पद से हटाया जाने पर दरबार आया और उसी कारण-

वश यह कुछ दिन के लिए मंसब से भी हटाया गया। उसी वर्ष यह फिर बहाल हुआ और इस पर फिर कृपा हुई। १७ वें वर्ष में इसे एरिज के फौजदारी की नियुक्ति मिली पर इसने अस्वीकार कर दिया, जिससे इसका मंसब छिन गया और यह एकांतवास करने लगा। १८ वें वर्ष में यह फिर कृपा में लिया गया, अमीर खाँ की पदवी पाई और मंसब बढ़ा। इसे बिहार का शासन मिला। वहाँ इसने शाहजहाँपुर और कांतगोला के आलम, इस्माइल और अन्य अफगानों को दंड देने में प्रयत्न किया और जब वे एक दुर्ग में छिपे हुए थे तब उनको पकड़ लिया। १९ वें वर्ष यह दरबार आया और शाह आलम बहादुर की काबुल पर चढ़ाई में साथ गया।

बहुत दिनों से यह प्रांत अफगानों के बस जाने के कारण उपद्रवों का स्थल बन गया था। अकबर के समय यह ऐसा विशेष रूप से हो गया था। प्रत्येक अवसर पर यहाँ विद्रोह हो जाता। इन विद्रोहात्मक जीवों को नष्ट करने के लिए कई बार शाही सेनाओं ने अपने घोड़ों के खुरों से इसे कुचला। जब बदला और रक्तपात से यह भर उठता तब यद्यपि इनमें से बहुत से दूर चले जाते पर चिनगारी नहीं बुझती थी और पुरानी बातें फिर उठ जाती थीं। सईद खाँ बहादुर जफर जंग ने बहुतसे कांटे जड़ से निकाल दिये और बाद को शाहजहाँ की सेना राजधानी काबुल आई तथा बलख बदख्शाँ को विजय करने को बराबर सेनाएँ यहीं से होकर जाती आती रहीं। यहीं से कंधार की चढ़ाई पर की सेनाएँ गईं। इन अवसरों पर बहुत से अफगानों ने उपद्रव करना छोड़ कर अधीनता के अंचल के नीचे सम्मान का पैर रखा। बहुत से

उपद्रवियों ने, जो अपनी भूमि में रहते थे और जिन्होंने कभी कर देना स्वीकार नहीं किया था, अधीनता स्वीकार कर ली। संक्षेप में यह हुआ कि उस प्रांत का कार्य शांत रूप से चलने लगा और प्रकट रूप में वहाँ शांति रहने लगी। इसके बाद औरंगजेब के समय में जब प्रांताध्यक्षगण आलसी तथा आराम-पसंद होने लगे तब अफगानों ने फिर सिर उठाया और बर्रे के खोते बन बैठे। वे चींटियों तथा टिड्डियों से संख्या में बढ़ कर थे और कौवों तथा चीलों के समान उस प्रांत पर टूट पड़े क्योंकि शाही सेनाओं ने इन बलवाइयों से लुट जाना स्वीकार कर लिया और उच्च अफसरगण इनसे सामना होने पर अपने को लुट जाने या मरने देते थे पर सामना नहीं करते थे। अंत में शाही सेना का झंडा हसन अब्दाल पहुँचा और बहुत से उपाय सोचे गए पर वैमनस्य का सूत्र नहीं निकल सका। लाहौर लौटने पर शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम शाह आलम बहादुर इस कार्य के लिए चुने गए। शाहजादे ने अपनी दूरदर्शिता से या गुप्त ज्ञान से, जैसा कि भाग्यवानों को बहुधा होता है, यह निश्चय कर कि उस प्रांत की शांति-स्थापन अमीर खाँ की नियुक्ति से संबद्ध है, इस बात को दरबार को लिखा। २० वें वर्ष में ४ मुहर्रम सन् १०८८ हि० (२१ फरवरी सन् १६७७ ई०) को आजम खाँ कोका के स्थान पर उक्त खाँ प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। अगर खाँ हरावल में था और पेशावर के पास ही से अफगानों को दंड देना आरंभ किया गया। इसके बाद सेना लमगानात पहुँची। अगर खाँ ने उस स्थान के आसपास अफगानों को मारने के बड़ी क्षमता दिखलाई और एमल खाँ से द्वंद्व युद्ध किया, जिसने शाह की पदवी

धारण कर पहाड़ों में अपने नाम का सिक्का ढाला था। इसने अपना साहस दृढ़ता से डँटे रहने में दिखलाया, जब कि उसके साथी भाग गए थे। करीब था कि वह मारा जाता पर उसके कुछ हितैषियों ने उसका हित साधन कर उसकी बाग पकड़ ली और उस भयानक स्थान से उसे निकाल ले गए। अमीर खाँ ने अपनी सेना की शक्ति दिखला कर क्रमशः उन सभ्यता के राज्य के अजनबियों के प्रति ऐसी शांति-पूर्ण तथा सदय कार्यवाही की कि उन जातियों के मुखियों ने अपना वहशीपन तथा जंगलीपन छोड़ दिया और बिना भय के इससे आकर मिलने लगे। उन सबका हिसाब ठीक कर लिया और अपने बाईस वर्ष के शासन में वह कभी किसी घटना में नहीं पड़ा और न कभी नीचा देखा। ४२ वें वर्ष के १७ शव्वाल सन् ११०९ हि० (२७ अप्रैल सन् १६९८ ई०) को यह मर गया। यह इमामिया धर्म का था और ईरान के विद्वानों तथा साधुओं के लिए बहुत धन भेजता था। यह राजधानी में अपने पिता के मकबरे में गाड़ा गया। यह बुद्धि तथा दूरदर्शिता से पूर्ण अफसर था। अच्छा होता यदि इसके समय के मुंशी और विचारवान लोग इसके हृदय के हाशिए से उपायों के चित्र, पूरे या अधूरे ले सकते। उसकी विचार-शक्ति राज्य के हृदय से उपद्रव का ओछापन हटा देती और उसकी अनुक्रम-उँगली समय की नाड़ी पहचान लेती तथा नस को पकड़ लेती, जिससे विद्रोह सो जाता। उसके योग्य हाथों ने अत्याचारियों के हाथों को अधीनता स्वीकार करायी और उसके कम रूपी पैरों ने डाकेजनी के पैरों को दबा दिया। उसने शक्ति की नीवें गिरा दीं। उसने अत्याचार के डैनों को काट डाला। ऊँचा भाग्य

भी सुप्राप्ति है। अपने विचारों के बाग में उसने जो कलम लगाए सभी फल देने वाले पेड़ हो गए। उसकी कार्य-पट्टी पर ऐसा कुछ न लिखा, जो सफल न हुआ हो। उसकी आशाओं के पृष्ठ पर ऐसा कुछ नहीं दिखलाया, जो पूरा न हुआ हो। इसने कृपा की डोरी से अफगान मुखियों को, जो अपने गर्दन तथा शिर आकाश से भी ऊँचा रखते थे, ऐसा खींचा कि वे आज्ञाकारी हो गए और सचाई तथा मित्रता से उन जंगलियों को ऐसा वश किया कि वे उसके शासन के शिकारबंद के स्वतः अनुगामी हो गए। अपने सत्य विचार के जादू से उस जाति के मुखियों में आपसकी लड़ाई की शतरंज बिछ गई और वे एक दूसरे पर टूट पड़े। आश्चर्य तो यह था कि ये सभी अपना कार्य ठीक करने में अमीर खाँ से राय लेते थे।

कहते हैं कि एक बार कुछ अफगान जाति एमल खाँ के झंडे के नीचे नहीं आई। उस पार्वत्य प्रांत के हर एक आदमी कई दिन का खाना लेकर उपस्थित हो गए। बड़ा शोरगुल मचा और बहुत लोग जमा हो गए। काबुल के सूबेदार की सेना को इसका सामना करना असंभव था। अमीर खाँ कष्ट में पड़ गया और अब्दुल्ला खाँ खेशगी से, जो मंसबदारों तथा सहायकों का एक मुखिया था और चालाकी तथा धूर्तता में प्रसिद्ध था, प्रत्येक जाति के मुखियों को झूठे पत्र इस आशय के लिखवाए कि 'हमलोग बहुत दिनों से किसी गुप्त भलाई के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे कि साम्राज्य अफगानों को मिल जाय। ईश्वर की प्रशंसा करनी चाहिए कि वह आशा पूरी हो रही है। परंतु जिस मनुष्य को गद्दी पर बैठाना चाहते हो उसके स्वभाव

से हम लोग परिचित नहीं है। यदि वह साम्राज्य के योग्य हो तो हमें लिखिए, हम भी उसके पास चलें क्योंकि मुगलों की सेवा लाभ-रहित है।' उत्तर में उन सब ने एमल खाँ की प्रशंसा लिख कर इसे आने को बहुत तरह से लिखा। अब्दुल्ला खाँ ने प्रत्युत्तर में फिर लिखा कि 'ये गुण उत्तम हैं पर राज्य-कार्य में सर्वोत्तम गुण हर जाति की प्रजा के लिए समान न्याय तथा विचार है। इसकी जाँच के लिए कृपा कर पूछिए कि यह प्रांत विजय करने पर वह उसे किस प्रकार सब जातियों में वितरित करेगा। यदि ऐसा करने में वह हिचके या पक्षपात करे तो वह बात प्रत्यक्ष हो जायगी।' जातियों के मुखियों ने इस राय पर कार्य करना आरंभ किया और एमल खाँ को समाचार भेजा। वह एक छोटे से प्रांत को इतने आदमियों में किस प्रकार बाँटे, इसी विचार में पड़ गया, जिससे उससे झगड़ा हो गया। बहुत सी मूर्ख तथा साधारण प्रजा चल दी। अंत में उसे बाध्य होकर बँटवारा आरंभ करना पड़ा। इसमें भी प्रकृत्या अपने दलवालों का उसने पक्ष लिया तथा संबंधियों पर कृपा की, जिससे झगड़ा बढ़ गया। हर एक मुखिया अपने देश को चला गया और अब्दुल्ला खाँ को न मिलने के लिए लिखता गया।

अमीर खाँ की स्त्री का नाम साहिब जी था, जो अलीमर्दान खाँ अमीरुल् उमरा की पुत्री थी। वह अपनी बुद्धिमत्ता तथा कार्यज्ञान के लिए अजीब स्त्री थी। राजनीति तथा कोष-कार्य में भाग लेती और काम करने में अच्छी योग्यता दिखलाती। कहते हैं कि जिस रात्रि को अमीर खाँ की मृत्यु का समाचार औरंगजेब को मिला, उसने तत्काल अर्शद खाँ को बुलाया, जो

बहुत दिन काबुल में दीवान रह चुका था और अब खालसा का दीवान था, और कहा कि बड़ी दुःखप्रद घटना अर्थात् अमीर खाँ की मृत्यु हो गई है। वह प्रांत जो किसी भी सीमा तक विद्रोह तथा उपद्रव के लिए तैयार रहता है, अरक्षित पड़ा है और यह भय है कि दूसरे शासक के पहुँचने तक वहाँ बलवा हो जाय। अर्शद खाँ ने हठ किया कि अमीर खाँ जीवित है, तब बादशाह ने शाही रिपोर्ट उसके हाथ में दे दिया तब उसने कहा कि 'मैं यह स्वीकार करता हूँ पर उस प्रांत का शासन साहिब जी ही का है। जब तक यह जीवित है तब तक उपद्रव की आशंका नहीं।' औरंगजेब ने तुरंत उस योग्य प्रबंधकर्त्ता को लिखा कि शाहजादा शाह आलम के पहुँचने तक वह प्रबंधकार्य देखे।

कहते हैं कि उस अशांत प्रांत में शासकों का आना जाना खतरे से खाली नहीं था, तब एक मृत प्रांताध्यक्ष के पड़ाव का सुरक्षित निकल जाना असंभव था। इस कारण साहिब जी ने अमीर खाँ की मृत्यु इस प्रकार छिपा ली कि उसकी कुछ भी खबर न उड़ी। उसने अमीर खाँ से मिलते जुलते एक आदमी को ऐनादार पालकी में बैठा दिया और मंजिल मंजिल कूच आरंभ कर दिया। प्रतिदिन सैनिकगण उसे सलाम करते और छुट्टी लेते। जब पार्वत्य प्रांत से बाहर आ गए तब शोक कार्य पूरा किया गया।

कहते हैं कि बहादुर शाह के पहुँचने तक, और इसमें बहुत समय लग भी गया था, साहिब जी ने उस प्रांत के शासन का बहुत अच्छा प्रबंध कर रखा था। अमीर खाँ का शोक मनाने के लिए बहुत से मुखिये आए थे। उसने उन

सबको बड़े सम्मान से अपने पास ठहरा रखा था और अफगानों के पास समाचार भेजा कि 'वे अपनी प्रथा के अनुसार कार्य करें और उपद्रव तथा डाँकूपन से दूर रहें और अपने स्थान से न बढ़े। नहीं तो गेंद तथा मैदान प्रस्तुत है। यदि मैं जीती तो मेरा नाम प्रलय तक बना रहेगा।' उन सबने इसका औचित्य समझ लिया और अपनी प्रतिज्ञा तथा शपथ दुहराया और अधीनता से अलग नहीं हुए।

विश्वासपात्र आदमियों की रिपोर्ट से ज्ञात हुआ है कि यह पवित्र स्त्री अपने यौवन में एक तंग गली में पालकी पर जा रही थी कि एक शाही हाथी, जो सबमें मुखिया था, अपने पूर्ण घमंड में उसके सामने आ पहुँचा। शांति रक्षकों ने उसे लौटाना चाहा पर महावत ने नहीं रोका, क्योंकि उसकी जाति घंमड से खाली नहीं और उसपर हाथी के बादशाही होने से उसका घंमड और भी बढ़ गया था। उसने हाथी को आगे बढ़ाया और यद्यपि इधर के मनुष्यों ने अपने हाथ तूणीरों पर रक्खे पर हाथी ने अपनी सूंड़ पालकी पर रख दिया और उसे मरोड़ कर कुचल डालना चाहा। वाहकगण पालकी भूमि पर रख कर भाग गए। वह बहादुर स्त्री पास के एक सर्राफ की दूकान पर चढ़ गई और उसे बंद कर लिया। अमीर खाँ कई दिनों तक भारतीय लज्जा के कारण क्रुद्ध रहा और उससे अलग होना चाहा पर शाहजहाँ ने उसकी भर्त्सना की और कहा कि 'उसने मर्दाना काम किया और अपनी तथा तुम्हारी प्रतिष्ठा बचाई। यदि हाथी उसको अपने सूंड़ में लपेट कर तमाम संसार को दिखाता तो कैसे उसकी प्रतिष्ठा बच रहती।'

अमीर खाँ को साहिब जी से कोई संतान नहीं थी और

उसकी इसपर पूरी हुकूमत थी इसलिए यह बहुत छिपा कर रखेली रखे था, जिनसे बहुत संतान थी। अंत में साहिबजी को यह मालूम हुआ और उसने उनपर दया कर उनका पालन किया। अमीर खाँ की मृत्यु के दो वर्ष बाद काबुल का कार्य संपादित कर वह बुर्हानपुर आई। उसे मक्का जाने की आज्ञा मिल चुकी थी इस लिए वह अमीर खाँ के पुत्रों को दरबार भेज कर सूरत बंदर की ओर चल दी। इसके बाद जब अमीर खाँ की संपत्ति जाँची गई तब साहिब जी को दरबार आने की आज्ञा भेजी गई पर आज्ञा पहुँचने के पहिले उसका जहाज छूट चुका था। उसने मक्का में बहुत धन बाँटा था इसलिए वहाँ के शासक तथा अन्य लोग इसकी बड़ी प्रतिष्ठा करते। अमीर खाँ के बड़े पुत्र को मीर खाँ की पदवी और एक हजारी ६०० सवार का मंसब मिला तथा उसका विवाह बहरमंद खाँ मीर बख्शी की पुत्री के साथ हुआ। बहादुर शाह के समय में यह आसफुद्दौला का नायब होकर लाहौर का शासक नियत हुआ। उसका एक दूसरा पुत्र मिरजा जाफर अकीदत खाँ था, जो बहादुर शाह के समय में पटना का शासक और बाद को शाहजादा अजीमुश्शान का बख्शी नियत हुआ था। मिरजा इब्राहीम, मरहमत खाँ और मिरजा इसहाक अमीर खाँ की जीवनी, जो अपने अन्य भाइयों से विशेष प्रसिद्ध हुए और ये दोनों तथा रुहुल्ला खाँ द्वितीय की स्त्री खदीजा बेगम एक माता से थे, अलग दी गई है। अन्य पुत्रों ने इतनी भी प्रसिद्धि नहीं प्राप्त की। जैसे हादी खाँ मरहमत खाँ की नायबी में पटने गया, सैफ खाँ पुर्निया का फौजदार हुआ और असदुल्ला खाँ निजामुल्मुल्क आसफजाह की प्रार्थना पर दक्षिण का बख्शी बनाया गया।

६०. अमीर खाँ सिंधी

इसका नाम अब्दुल् करीम था और यह अमीर अबुल्कासिम नमकीन के पुत्र अमीर खाँ का लड़का था। जब इसका पितामह भक्कर में शासन करते समय वहीं रह गया तब अपना समाधि स्थल वहीं बनवाया। इसका पिता भी ठट्टा प्रांत में मरा और अपने पिता के पास गाड़ा गया। इस कारण इस वंश के बहुत से आदमियों का वह प्रांत जन्मस्थान तथा शिक्षालय रहा। इसी लिए इसने नाम में सिंधी अल्ल लगाया। ये वास्तव में हिरात के सैयद थे, जैसा कि इसके पूर्वजों के वृत्तांत में लिखा जा चुका है। अमीर खाँ की जीवनी में भी यह लिखा जा चुका है कि उसे भी अपने पिता के समान बहुत सी संतान थी। सौ वर्ष की अवस्था में भी वह लड़के पैदा करने में न चूका। मीर अब्दुल् करीम भाइयों में सबसे छोटा था। केवल अमीरों के लड़के या खानःजाद ही बादशाहों की खास सेवा में रह सकते थे और इसी लिए खवास कहलाते थे। अमीर खाँ पहिले एक खवास हुआ और बाद को खवासों का दारोगा हुआ। इसकी जन्म पत्री में उन्नति तथा सम्मान लिखा था, इससे यह २६ वें वर्ष में जब बादशाह के आने से औरंगाबाद खुजिस्ता-बुनियाद कहलाया, तब यह निमाज के स्थान का दारोगा नियत हुआ। इसके बाद इस कार्य के साथ सात चौकी का रक्षक नियत हुआ। बादशाह ने इसको और तरक्की देने के विचार से इसे नक्काश-

खाने का दारोगा नियुक्त कर दिया। २८ वें वर्ष के अंत में इसका दोष पाया गया और यह निमाज स्थान की दारोगा-गिरी से हटाया गया। २९ वें वर्ष में जब शाहजादा शाहआलम बहादुर और खानजहाँ ने तैलंग के सुलतान अबुल्हसन की सेना को परास्त कर हैदराबाद नगर पर अधिकार कर लिया तब अमीर खाँ शाहजादे तथा सर्दारों के लिए खिलअत और रत्न आदि लेकर भेजा गया। कुछ और खास लोग भी मार्ग में साथ हो गए। जब वे हैदराबाद से चार कोस पर पहुँचे तब शेख निजाम हैदराबादी उन पर ससैन्य टूट पड़ा। नजाबत खाँ और असालत खाँ, जिन्हें जफ़राबाद के अध्यक्ष कुलीज खाँ ने मार्ग प्रदर्शक के रूप में दिया था, शत्रु से पहिचान रहने के कारण उनसे जा मिले। रत्न, खिलअत और दूसरी वस्तु तथा व्यापार का सामान और साथ के आदमियों का कुल असबाब कारवाँ के सामान सहित लुट गया। मीर अब्दुल्करीम घायल होकर मैदान में गिरा और कैद होकर अबुल्हसन के सामने लाया गया। चार दिन बाद इसे गोलकुंडा से शाहजादे के पड़ाव तक, जो हैदराबाद के पास था, पहुँचा कर लानेवाले लौट गए। मुहम्मद मुराद खाँ हाजिब यह सुन कर इसे अपने घर लाया और उससे अच्छा बर्ताव किया। जब इसके घाव अच्छे हुए तब यह शाहजादे के पास उपस्थित हुआ और जो जबानी समाचार इससे कहे गए थे उसे कहा। यहाँ से छुट्टी लेने पर यह खानजहाँ बहादुर के साथ गया, जो दरबार बुलाया गया था और साम्राज्य की चौखट पर सिर रगड़ा। गोलकुंडा के घेरे में कंप-कोष का करोड़ी शरीफ खाँ दक्षिण के चारो प्रांतों का कर उगाहने पर नियत हुआ तब

अमीर खाँ उसका नायब नियुक्त हुआ। उसी समय यह दंड का अध्यक्ष भी नियत हुआ। ३३ वें वर्ष में दरबार आने पर कोष करोड़ी के कार्य के पुरस्कार में, जिसमें इसने कमी तथा मँहगी के स्थान पर आधिक्य और सस्ती दिखलाई थी, इसे मुलतफत खाँ की पदवी मिली। इसके बाद ख्वाजा हयात खाँ के स्थान पर यह आबदार-खाना का अध्यक्ष हुआ। ३६ वें वर्ष में यह वजीर खाँ शाहजहानी के पुत्र अनवर खाँ के स्थान पर खवासों का दारोगा नियत हुआ और एक हजारी मंसब पाया। यह औरंगजेब के मुँह लगापन तथा उसकी प्रकृति समझने के कारण अपने समय के लोगों की ईर्ष्या का पात्र हो गया। ४५ वें वर्ष में इसे खानजाद खाँ की पदवी मिली और बाद को उसमें मीर भी जोड़ा गया। इसके अनंतर मीर खाँ की पदवी हुई। ४८ वें वर्ष में तोरण दुर्ग विजय पर इसे अपने पिता की पदवी अमीर खाँ मिली। उस समय बादशाह ने कहा कि 'तुम्हारे पिता मीर खाँ ने अमीर खाँ होने पर एक अक्षर "अलिफ" जोड़ने के कारण एक लाख रुपया शाहजहाँ को नजर दिया था, तुम क्या देते हो?' उसने उत्तर दिया कि 'पवित्र व्यक्तित्व के लिए हजारों हजारों जीवन बलिदान हों। मेरा जीवन तथा संपत्ति बादशाह के लिए ही है।' दूसरे दिन उसने याकूत लिपि में लिखा कुरान उपहार दिया, जिस पर बादशाह ने कहा कि 'तुमने ऐसी वस्तु भेंट दी है कि यह पृथ्वी और इसमें का कुल सामान मिल कर उसकी बराबरी नहीं कर सकता।' वाकिनकेरा लेने पर इसका मंसब पाँच सौ बढ़ कर तीन हजारी हो गया। औरंगजेब के राज्य के अंत काल में यह उसका साथी था और मुसाहिबी तथा विश्वास

में, जो इस पर था, इससे कोई बढ़ कर नहीं था। दिन रात यह साथ रहता। मआसिरे-आलमगीरी में लिखा है कि वाकिनकेरा से तीन कोस पर देवापुर में बादशाह बीमार हुआ और रोग इतना तीव्र था कि कभी-कभी वह प्रलाप करने लगता। उसकी अवस्था नब्बे तक पहुँच गई थी, इस लिए सब निराश होने लगे और देश भर इस विचार से कि क्या होगा घबड़ा उठा।

अमीर खाँ कहता है कि 'किस प्रकार उसने एक दिन बादशाह को, जब वह बहुत निर्बल था, यह शैर बहुत धीरे धीरे कहते सुना—

जब तुम अस्सी या नब्बे वर्ष को पहुँच गए।
तब इस समय में तुम बहुत कष्ट पा चुके॥
जब तुम सौ वर्ष की अवस्था को पहुँचो।
तब जीवन के रूप में यह मृत्यु है॥

जब यह मेरे कान में पड़ा तब मैंने झट कहा कि बादशाह जीवित रहें, शेख गंजवी निजामी ने ये शैर कहे थे पर वे इस शैर की भूमिका थे—

तब यह बेहतर है कि तुम प्रसन्नता रखो।
और उस प्रसन्नता में ईश्वर का ध्यान करो॥

बादशाह ने कहा कि 'शैर को दुहराओ।' मैंने ऐसा कई बार किया तब उन्होंने लिख कर देने का इशारा किया। मैंने लिख कर दिया और उन्होंने देर तक पढ़ा। शक्तिदाता ने उन्हें शक्ति दी और सुबह वह अदालत में आए। बादशाह ने कहा कि तुम्हारे शैर ने हमें पूर्ण स्वस्थता दी और निर्बलता के बदले ताकत दी।'

खाँ तीव्र मेधाशक्ति तथा अच्छी विचार शक्ति का पुरुष

था। बीजापुर के घेरे के लिए एक दिन बादशाह तख्ते रवाँ पर एक दमदमा देखने जा रहे थे, जो दीवाल के बराबर ऊँचा किया गया था और किले से गोले उस नालकी पर से निकल जा रहे थे। उस समय अमीर खाँ ने, जो केवल जाय निमाज खाने का दारोगा मात्र था और प्रसिद्ध नहीं हुआ था, यह तारीख तुरंत बताया और कागज के एक टुकड़े पर पेन्सिल से लिख कर भेंट किया। 'फत्हे बीजापुर जूदे मीशवद' अर्थात् बीजापुर शीघ्र विजय होगा। (सन् १०९९ हि० सन् १६८८ ई०)। बादशाह ने इसको शुभ सगुन माना और कहा। 'खुदा करे ऐसा हो' उसी सप्ताह में दुर्ग वालों ने अधिकार दे दिया। गोलकुंडा दुर्ग लेने पर अमीर खाँ ने यह तारीख कहा, 'फत्हे किला गोलकुंडा मुबारक बाद' अर्थात् गोलकुण्डा दुर्ग की विजय मुबारक हो (सन् १०९९ हि०)। इसकी भी बादशाह ने प्रशंसा की। इसमें घमंड तथा ऐंठ के दुर्गुण थे इसलिए इसने अहंकार की टोपी की चोटी अपने अविनय के शिर पर टेढ़ी रखा। यद्यपि यह छोटे मंसब का था पर मुख्य अफसरों से भी अपने को ऊँचा समझता था। उसका ऐसा प्रभाव बढ़ गया था कि उच्चतम अफसर भी इसकी प्रार्थना करता था। जब यह आज्ञा दी गई कि उनके सिवा, जिन्हें शाही सरकार से पालकी दी गई थी, कोई शाहजादा या अफसर, जिन्हें पालकी में सवार होने का स्वत्व प्राप्त है, गुलालबार में भीतर न आवे, तब इसको जिसे उस समय मुल्तफत खाँ की पदवी मिली थी और जुम्लतुल् मुल्क असद खाँ दोनों को थोड़े ही दिनों बाद पालकी पर भीतर आने की आज्ञा मिल गई। इसके बाद बहरमंद खाँ, मुखलिस खाँ और रुहुल्ला खाँ को

भी आज्ञा मिल गई। इससे ज्ञात हो जाता है कि इसका कितना प्रभाव था और बादशाह के हृदय में इसका कैसा स्थान था। इसका विश्वास भी बहुत था। इसकी आज्ञा पर व्यापारी लोग हर एक प्रांत का माल आधे और तिहाई दाम पर भेज देते थे। यह इसे समझ जाता और गुप्त रूप से जाँच कर ठीक दाम मालूम कर लेता था। औरंगजेब की मृत्यु पर इसने मुहम्मद आजमशाह का साथ दिया पर इसके पास सेना तो थी ही नहीं इसलिए यह सामान के साथ ग्वालियर में रह गया। जब बहादुर शाह बादशाह हुआ और पहिले के अफसरों को चाहे वे अनुगामी या विरोधी थे, तरक्की मिली तब अमीर खाँ को भी तीन हजारी ५०० सवार का मंसब मिला पर इसका वह प्रभाव तथा ऐश्वर्य नहीं रह गया। यह निराश्रय सा हो गया और आगरा दुर्ग की अध्यक्षता स्वीकार कर एकांतवासी हो गया और न देखने योग्य को नहीं देखा। मुनइम खाँ खानखानाँ ने, जो गुण तथा सद्यता में अपने समय का अद्वितीय था, इसके पुराने समय का विचार कर इसे आगरा की अध्यक्षता दी। बाद को उस पद से हटाया जाकर यह केवल दुर्ग का अध्यक्ष रह गया।

मुहम्मद फर्रुखसियर के राज्य के मध्य में बारहा के सैयदों के कारण जब राज्य प्रबंध में ढिलाई पड़ने लगी और औरंगजेब के अफसरों से राय लेने की आवश्यकता पड़ी तब इनायतुल्ला खाँ, हमीदुद्दीन खाँ बहादुर और मुहम्मद नियाज खाँ सभी पर फिर कृपा हुई तथा अमीर खाँ भी आगरे से बुलाया गया और खवासों का दारोगा नियुक्त हुआ। बादशाह के गद्दी से उतारे जाने पर जब बारहा के सैयदों के हाथ में राज्य की बागडोर

चली गई तब अमीर खाँ अफजल खाँ के स्थान पर सद्रुस्सुदूर नियत हुआ। कहते हैं कि कुतुबुल् मुल्क इसके पहिले प्रभाव का विचार कर इसकी प्रतिष्ठा करता रहा और अपने मसनद के कोने पर बैठाता था। इसी समय इसकी मृत्यु हुई। इसके एक भी पुत्र ने ख्याति नहीं पाई। वे अपने पिता की कमाई ही से संतुष्ट थे। केवल अबुल् खैर खाँ ने खानदौरों ख्वाजा आसिम के संबंध के कारण मृत बादशाह के समय खाँ की पदवी पाई और अपना ऐश्वर्य बनाए रखा। यह उक्त खानदौरों के साथ ही रहता था। अमीर खाँ के बड़े भाई जियाउद्दीन खाँ का पौत्र मीर अबुल्वफा इसके लड़कों से अधिक प्रसिद्ध हुआ। औरंगजेब के राज्य के अंत में यह जायनिमाज खाना का दारोगा नियत होकर सम्मानित हुआ। बादशाह इसकी योग्यता तथा बुद्धि की तीव्रता को समझता था। इसीसे एक दिन शाहजादा बहादुर शाह का प्रार्थना पत्र, जो संकेताक्षरों में लिखा था, बादशाह के पास आया, पर वह संकेत ज्ञात नहीं था, इससे बादशाह ने अपनी खास डायरी मीर को देकर कहा कि 'इसमें दो तीन संकेतों का विवरण हमने लिखा है, जिनसे मिलान कर इसका अर्थ लिख लाओ, मीर ने अपनी बुद्धि तथा शीघ्रता से संकेताक्षर का पता लगा उसे लिख डाला और बादशाह को दे दिया, जिसने उसकी प्रशंसा की।

---

६१. अरब खाँ

इसका नाम नूरमहम्मद था। शाहजहाँ के राज्य-काल में इसे मंसब मिला और तीसरे वर्ष में जब बुर्हानपुर में बादशाह थे और तीन सेनाएँ तीन सेनापतियों के अधीन खानजहाँ लोदी को दंड देने के लिए और निजामुल्मुल्क दक्षिणी के राज्य को लूटने के लिए भेजी गईं, जिसने खानजहाँ को शरण दी थी, तब यह आजम खाँ के साथ भेजा गया था। इसके बाद यह दक्षिण की सेना में नियुक्त हुआ और ७ वें वर्ष में जब शाहजादा शुजाअ परेंदा लेने के लिए दक्षिण आया और खानजमाँ आगे भेजा गया तब यह जफर नगर में ५०० सवारों के साथ मार्ग की रक्षा के लिए नियत हुआ। उस वर्ष के अंत में इसे अरब खाँ की पदवी और डेढ़ हजारी ८०० सवार का मंसब मिला। ९ वें वर्ष जब फिर बादशाह दक्षिण गए और साहू भोंसला को दंड देने और आदिलशाह का राज्य लूटने को सेना भेजी गई तब यह खानदौराँ के साथ गया और आदिल खाँ के मनुष्यों को दंड देने में अच्छा कार्य किया। १० वें वर्ष दो हजारी १५०० सवार दो अस्पा सेह अस्पा का मंसब हो गया और फतहाबाद धारवर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। इसके बाद ५०० सवार की तरक्की हुई। २४ वें वर्ष में डंका मिला। इसके अनंतर जब धारवर दुर्ग की रक्षा करते हुए इसको सत्रह वर्ष हो गए तब यह २७ वें वर्ष सन् १०६३ हि० (१६५३ ई०) में मर गया। इसका पुत्र किलेदार खाँ था, जिसका वृत्तांत अलग दिया हुआ है।

---

६२. अरब बहादुर

अकबर के समय में यह पूर्वीय जिलों में एक अफसर था और अपनी बहादुरी तथा लाभदायक सेवा के लिए इसने नाम कमाया। बिहार में पर्गना सहस्राँवँ इसे जागीर में मिला था। उस ओर के अफसरों ने जब बलवा किया तब इसने भी राजद्रोह को धूल अपने माथे पर डाली और विद्रोह कर दिया। २५ वें वर्ष में जब बंगाल के प्रांताध्यक्ष मुजफ्फर खाँ ने खानजहाँ हुसेन कुली का सामान दरबार भेजा और बहुत से सैनिक तथा व्यापारी साथ थे, तब मुहिब्ब अलीखाँ ने कारवाँ के बिहार पहुँचने पर हब्श खाँ को कुछ सैनिकों के साथ उसकी रक्षा को भेजा। अरब ने कारवाँ का पीछा किया और चौसाघाट से उसके पार होने पर उन हाथियों को जो पीछे पड़ गए थे, इसने लूट लिया। इसके बाद इसने उक्त प्रांत के दीवान राय पुरुषोत्तम पर उस समय आक्रमण किया, जो बक्सर में सिपाही भर्त्ती कर रहा था और जब वह गंगा के किनारे पूजा कर रहा था। उसने अपनी रक्षा की, पर घायल होकर मैदान में गिर पड़ा और दूसरे दिन मर गया। मुहिब्बअली ने जब यह सुना तब वह आकर अरब से लड़ा और उसे भगा दिया। इसके अनंतर दरबार से शहबाज खाँ वहाँ भेजा गया और उसने दलपत उज्जैनिया के राज्य में पहुँच इसे परास्त कर सआदत अली खाँ को कंतित के दुर्ग में नियत किया, जो रोहतास के अंतर्गत है। अरब ने दलपत से मिलकर दुर्ग पर आक्रमण किया। घोर युद्ध हुआ, जिसमें सआदत अली खाँ अपना कार्य करते हुए

मारा गया। अरब बहादुर ने नीचता से उसका कुछ खून पिया और कुछ अपने सिर में लगाया। इसके बाद यह मासूम खाँ फरंखुंदी से जा मिला और शहबाज खाँ के साथ के दो युद्धों में योग दिया। उसके परास्त होने पर अलग हो संभल में उपद्रव मचाने लगा। वहाँ के जागीरदारों ने मिलकर इससे युद्ध किया, जिससे यह परास्त हो गया। तब यह बिहार गया और खानआजम कोका की भेजी हुई सेना से हार कर भागा। इसके बाद यह जौनपुर गया। जब राजा टोडरमल का पुत्र गोवर्द्धन अकबर की आज्ञा से इसे दंड देने गया तब यह पहाड़ों में चला गया। इसके अनंतर बहराइच के पार्वत्य भाग में दुर्ग बनाकर यह रहने लगा। लूटमार कर लौटने पर यहीं माल जमा करता। एक दिन यह धावे में गया हुआ था। भूम्याधिकारी खड्गराय ने अपने पुत्र दूलहराय को दुर्ग पर भेजा। अरब बहादुर के दरबानों ने इसे अरब ही समझा और नहीं रोका। जमींदार के सैनिकों ने सब माल लूट लिया। वे लौट रहे थे कि अरब, जो घात में बैठा हुआ था, उनके पहुँचते ही उन्हें छितिर बितिर कर दिया। दूलहराय, जो पीछे रह गया था, आ पहुँचा और इसे परास्त कर दिया। अरब और दो आदमी एक स्थान पर गिरे तथा जमींदार ने वहाँ पहुँच कर अरब को समाप्त कर दिया। यह घटना ३१ वें वर्ष सन् ९९४ हि० (१५८६ ई०) में हुई थी। शेख अबुल् फजल अकबरनामे में लिखता है कि इसके तीन दिन पहिले अरब नामक मीर शिकार झेलम में गिर गया था, तब बादशाह दोआब में चिनहट में थे और वहीं कहा कि 'मैं समझता हूँ कि अरब के दिन समाप्त हुए।'

६३. अर्शद खाँ मीर अबुल् अला

यह अमानत खाँ खवाफी का भाँजा और संबंधी था और बहुत दिनों तक काबुल प्रांत में नियत था। औरंगजेब के ४२ वें वर्ष में दरबार आकर किफायत खाँ के स्थान पर खालसा का दीवान हुआ। अपनी सचाई, दियानतदारी और कार्य-कुशलता से बादशाह का विश्वासपात्र हो गया, जिससे और लोग इससे ईर्ष्या करने लगे। द्वेषी आकाश किसी की सफलता को प्रसन्न आँखों से नहीं देख सकता और सदा मनुष्य की इच्छारूपी शीशे के घर पर पत्थर फेंकता रहता है। इसने कुछ दिन भी आराम से व्यतीत नहीं किये थे कि ४५ वें वर्ष सन् १११२ हिजरी (सन् १७०१ ई०) में मर गया। इसके बड़े पुत्र मीर गुलाम हुसेन को किफायत खाँ की पदवी मिली थी। इसके दो लड़के थे, जिनमें से एक मीर हैदर था, जिसको अंत में पिता की पदवी मिली और दूसरे मीर सैयद मुहम्मद को उसके दादा की पदवी मिली।

६४. अर्सलाँ खाँ

यह अलावर्दी खाँ प्रथम का पुत्र था और इसका नाम अर्सलाँ कुली था। औरंगजेब के ५ वें वर्ष में यह ख्वाजा सादिक बख्शी के स्थान पर बनारस का फौजदार हुआ। ७ वें वर्ष ठट्टा प्रांत में यह सिबिस्तान के फौजदार जियाउद्दीन खाँ के स्थान पर नियत हुआ और एक हजारी ९०० सवार का मंसब बढ़ा कर मिला, जिसमें ७०० दो अस्पा सेह अस्पा थे, तथा अर्सलाँ खाँ की पदवी मिली। १० वें वर्ष में यह सुलतानपुर बिलहरी का फौजदार हुआ और दो हजारी ८०० सवार दो अस्पा सेह अस्पा का मंसबदार हुआ। ४० वें वर्ष में ५०० सवार बढ़े। इससे अधिक वृत्तांत नहीं मिला।

६५. मुल्ला अलाउल्मुल्क तूनी उर्फ फ़ाज़िल खाँ

यह प्रकृति संबंधी तथा मस्तिष्क के विषयों में अपने समय के अद्वितीय पुरुषों में से था। भूगोल तथा ज्योतिष के ज्ञान में सबसे बढ़ा-चढ़ा था। अपने गुणों के आधिक्य और अपने सुव्यवहार के कारण यह विद्वानों में मान्य समझा जाता था। शाहजहाँ के ७ वें वर्ष में फारस से हिन्दुस्तान आकर नवाब आसफजाह के पास पहुँचा, जो स्वयं अनेक गुणों का कोष था और उसकी मुसाहिबी में रहने लगा। उस सर्दार की मृत्यु पर १५ वें वर्ष बादशाही सेवा में भर्ती हो पाँच सदी ५० सवार का मंसबदार हुआ।

लाहौर की साढ़े अड़तालीस कोस लंबी नहर अलीमरदान खाँ के एक अनुयायी द्वारा, जो इस काम को अच्छी तरह जानता था, रावी नदी के उद्गम के पास से उक्त खाँ की तत्त्वावधानता में एक लाख रुपये व्यय करके लाई गई थी पर उस शहर के आस पास तक पानी नहीं पहुँचता था इसलिए एक लाख रुपया और इस काम के लिए दिया गया। इसमें से भी काम के न जानने के कारण पचास सहस्र रुपये मरम्मत में खर्च हो गए और लाभ कुछ भी न हुआ। मुल्ला अलाउल्मुल्क ने, जो अन्य विद्याओं के साथ इस काम को भी जानता था, पुराने नहर के पांच कोस को उसी प्रकार रहने देकर तीस कोस नया खुदवाया और तब लाहौर में बिना रुकावट के काफी पानी आने

लगा। १६ वें वर्ष यह दीवान तन नियत हुआ। १९ वें वर्ष दारोगा अर्ज नियत हुआ। इसके अनंतर खानसामाँ नियत हुआ और बराबर तरक्की होती रही। बलख और बदख्शाँ पर अधिकार होने के पहिले उस प्रांत के विजय होने का नजूम से पता लगाकर शाहजहाँ से कह चुका था। उक्त प्रांत के विजय होने पर इसका मंसब बढ़कर दो हजारी ४०० सवार का हो गया। २३ वें वर्ष फाजिल खाँ पदवी मिली। २८ वें वर्ष तीन हजारी मंसबदार हो गया।

७ रमजान सन् १०६८ हि० (१६५८ ई०) को ३२ वें वर्ष में जब दाराशिकोह आलमगीर से युद्ध कर लौटा और विजयी शाहजादा युद्ध-स्थल से दो कूच पर नूरमंजिल बाग में, जो आगरे के पास है, आकर ठहरा तब शाहजहाँ ने फाजिल खाँ को अत्यंत विश्वासपात्र और उस समय इसे अपना खास आदमी समझकर लिखित फरमान के साथ जबानी संदेश देकर औरंगजेब के पास भेजा। इसका विवरण संक्षेप में यह है कि 'जो कुछ *भाग्य में* लिखा था वही हुआ। उन सब निश्चय रूप से होने वाले कार्यों को ध्यान में न रखना अपने को पहचानना और खुदा को जानना है। कठिन रोग से मुक्ति मिली है और वास्तव में दूसरा जीवन मिला है, इसलिए मिलने की बड़ी इच्छा है, जल्दी भेंट करने आओ।' फाजिल खाँ ने अच्छे विचार और दोनों पक्ष की भलाई की इच्छा से बादशाही फरमान और संदेश देकर इस प्रकार मीठी बातें की कि शाहजादा पिता की सेवा में जाने के लिए तैयार हो गया और प्रणाम करने तथा सेवा में पहुँचने के बारे में प्रार्थना-पत्र लिख भेजा। फाजिल खाँ के जाने के बाद

कुछ सर्दारों ने उसके विचार बदलवा दिए। जब दूसरी बार उक्त खाँ आनंददायक संदेश शाहजहाँ की ओर से लाया तब यहाँ का दूसरा रंग देखा और उसके बहुत कुछ समझाने पर भी कोई आशा नहीं पाई गई। अंत में जो होनेवाला था वही हुआ। औरंगजेब को फाजिल खाँ की बुद्धिमानी और राजभक्ति पर पूरा विश्वास था इसलिए शाहजहाँ के जीवन ही में स्वभाव पहचानने और भाषा ज्ञान के कारण बादशाह की पेशकारी और बयूतात का काम उसे सौंपा। द्वितीय जुलूस के दूसरे वर्ष इसका मंसब चार हजारी २००० सवार का हो गया और दीवान-कुल तथा प्रधान मंत्री के संबंध के बड़े बड़े कागज तथा फरमान इसके प्रबंध में रहने लगे। इसके अनंतर कुछ संदेशों के साथ शाहजहाँ के पास भेजा गया। चौथे वर्ष शाहजहाँ के भेजे हुए रत्नों और जड़ाऊ बर्तनों को औरंगजेब के पास ले गया। पाँचवें वर्ष पाँच हजारी मंसबदार हो गया। ६ ठे वर्ष जब बादशाह काश्मीर में थे तब दीवानी कार्यों के मुतसद्दी रघुनाथ के समय में मर गया।

उक्त खाँ अपने गुणों, बुद्धिमत्ता तथा गांभीर्य के कारण मंत्री के उच्च पद के योग्य था। १५ जीकद: सन् १०७३ हि० को उस उच्च पद पर नियत हुआ। यह ईर्ष्यालु आकाश, जो पुराना शत्रु और संसार को कष्टकर है तथा सदा योग्य पुरुषों से वैमनस्य रखता है, उक्त खाँ को चैन नहीं लेने दिया, जिसे मंत्रित्व का खिलअत अच्छी तरह शोभा देता था। इस सेवा के स्वीकार कर लेने के बाद इसके पेट में शूल उठा और थोड़े समय में बहुत तीव्र हो गया। इसकी अवस्था बहुत हो चुकी थी और

इसमें बीमारी के सहन करने के लिए शक्ति नहीं रह गई थी, इसलिए कोई दवा लाभदायक न हुई। उसी महीने की २७ को केवल सत्रह दिन मंत्री रहकर यह मर गया। इसकी वसीयत के अनुसार शव लाहौर भेजकर इसके बनवाए हुए मकबरे में बाग के बीच गाड़ा गया। कहते हैं कि मंत्री होने के कुछ दिन पहिले इसने कहा था कि मैं वजीर हूँगा परंतु अवस्था साथ न देगी। दीवान होने के बाद प्रायः यह शैर कहता—

शैर

बाँधकर उम्मीद निकला पर नहीं कुछ फायदा।
है नहीं उम्मीद फिर लौटेगी बीती उम्र अब ॥

कहते हैं कि फाजिल खाँ ने नजूम से शाहजहाँ और औरंगजेब के विषय में जो कुछ लिखा था वह प्रायः ठीक उतरा। कहते हैं कि उस घटना की भी, जो ४० वें वर्ष के अंत में खवासपुर में आलमगीर को पहुँची थी, सूचना दे दी थी और उसको दमन करने में किसी ने कुछ नहीं छोड़ा था। यह हर एक को अपनी शक्ति और योग्यता से कुछ न समझता था। कहते हैं कि एक दिन शाहजहाँ 'बेहबिहिश्त' नामक नहर को सैर को निकला, जो नई खुदकर दिल्ली पहुँची थी। सादुल्ला खाँ भी साथ था। बातचीत में जैसा साधारणतः कहा जाता है उसने नहर कहा। फाजिल खाँ ने कहा कि नह्‌र कहना चाहिए। सादुल्ला खाँ ने जवाब में कलमा 'अनल्लाहो मुबतलैकुमबिन्नहर' पढ़ा। फाजिल खाँ ने अन्याय-पूर्वक हठकर कहा कि अरबी का एक शैर इसका गवाह है। बादशाह ने कहा कि क्या कुरान की

मान्यता शैर से कम है। फाजिल खाँ चुप हो रहा। इसे संतान नहीं थी इसलिये इसकी मृत्यु पर इसके भतीजे बुरहानुद्दीन को, जो इसी बीच ईरान से अपने चचा के पास आया था, योग्य मंसब मिला। उसका वृत्तांत अलग लिखा जायगा।

---

६६. अलिफ खाँ अमान बेग

यह वंश परंपरा से चगत्ताई बर्लास था। इसके पूर्वजों ने तैमूरी वंश की सेवा की थी। तैमूर का एक विश्वासी अफसर अली शेर खाँ इस का पूर्वज था। इसका पिता मिर्जा जान बेग, जिसका स्वभाव ऐसा बिगड़ा कि उसका चरित्र खराब हो गया, खानखानाँ मिर्जा अब्दुर्रहीम की सेवा में था और अच्छा पद पा चुका था। जब वह मरा तब अमान बेग ने अपने पूर्वजों की प्रथा को पुनर्जीवित किया और शाहजहाँ का सेवक हो गया। इसे डेढ़ हजारी १५०० सवार का मंसब मिला और यह कंधार का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। यह इस पद पर बहुत दिन रहा और २६ वें वर्ष में इसे अलिफ खाँ की पदवी मिली। उसी वर्ष सन् १०६३ हि० (१६५३ ई०) के अंत में यह मर गया। इसे युवा योग्य लड़के थे। इनमें एक कलंदर बेग था, जिसे पहिले शाहजहाँ के समय छः सदी मंसब मिला था। दाराशिकोह के साथ के पहिले युद्ध के बाद, जो आगरा जिले में इमादपुर के पास सामूगढ़ में हुआ था, इसे औरंगजेब से खाँ की पदवी मिली और बीदर प्रांत के कल्याण दुर्ग का अध्यक्ष नियत हो कर यह दक्षिण चला गया। यह मानों वैसा था कि यह वंश दरबार में दुर्गाध्यता के लिए नियत किया गया था। खाँ तथा उसके लड़के दक्षिण के दुर्गों की रक्षा में जीवन व्यतीत करते रहे। कल्याण में बहुत दिनों तक रह कर यह अहमदनगर में नियत हुआ और १५ वें वर्ष में मुखतार खाँ के स्थान पर यह जफराबाद बीदर दुर्ग का फौजदार तथा अध्यक्ष नियत हुआ।

जब नल दुर्ग शाही सेवकों के हाथ में आया तब यह उसका अध्यक्ष नियत हुआ। इसके बाद अंत में यह गुलबर्गा दुर्ग का अध्यक्ष हुआ और सैयद मुहम्मद गेसू दराज के मकबरे के रक्षक से जरा सी बात पर बिगड़ गया, जिसमें मार काट तक नौबत पहुँच गई। बीजापुर विजय के एक वर्ष पहिले यह मर गया। इसके लड़कों में, जो सब अपने काम में लगे थे, मिर्जा पर्वेज बेग मुलखेड़ (मुजफ्फरनगर) दुर्ग का अध्यक्ष था, जो गुलबर्गा से आठ कोस पर है। दूसरा नूरुल्अयाँ था, जिसे जानबाज खाँ की पदवी मिली थी और जो बाद को पहिले दादा की और फिर पिता की पदवी से प्रसिद्ध हुआ। यह आरंभ में मुर्तजाबाद मिरिच दुर्ग का अध्यक्ष हुआ और इसके बाद बंकापुर के अंतर्गत नसीराबाद धारवर की अध्यक्षता के समय इसकी मृत्यु हुई। परंतु पर्वेज बेग सबसे अधिक प्रसिद्ध हुआ। पहिले इसे भी जानबाज खाँ की पदवी मिली पर बाद को बेगलर खाँ कहलाया। यह कई दुर्गों का अध्यक्ष रहा। जब ओंकर फीरोज गढ़ विजय हुआ तब यह उसका अध्यक्ष नियत हुआ पर एक वर्ष भी न हुआ कि मर गया। इसके लड़कों में बेग मुहम्मद खाँ अदोनी का और मिर्जा मआली गुलबर्गा का अध्यक्ष नियत हुआ। यहाँ से यह कंधार गया और मर गया। इसका पुत्र बुर्हानुद्दीन कलंदर बहुत दिनों तक मुलखेड़ का दुर्गाध्यक्ष रहा। यह किसी वस्तु को मूल्यवान नहीं समझता था और सीधा सादा कलंदर था। यह नश्वर पीले पत्थर को अनित्य चार दीवालों ही से संतुष्ट था, जिसे ईश्वर ने बनाया था।

६७. अली अकबर मूसवी

यह मीर मुइज्जुल्मुल्क मशहदी का छोटा भाई था। अकबर के राज्यकाल में यह भी तीन हजारी मंसब पाकर अपने बड़े भाई के साथ बादशाही कार्य करता रहा। २२ वें वर्ष में इसने अकबर के सामने उसके जन्म की कहानी अर्थात् मौलूद नामा पेश किया, जिसे काजी गियासुद्दीन जामी ने लिखा था और जो अभिव्यक्ति तथा अन्यगुणों से विभूषित था और हुमायूँ के समय में सदर था। उसमें लिखा था कि बादशाह के जन्म की रात्रि में हुमायूँ ने स्वप्न देखा था कि खुदा ने उसे एक पुत्र प्रदान किया है और जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर नाम रखने की आज्ञा दी है। अकबर उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और मीर को कृपाओं से पुरस्कृत किया तथा नदिया पर्गना उसे दिया। उसके भाई की जागीर बिहार (आरा) में थी, उसमें इसे भी साझी कर दिया। २४ वें वर्ष जब बिहार के बहुत से सरदार विद्रोही हो गए तब इन दोनों भाइयों ने पहिले उनका साथ दिया पर दूरदर्शिता से शीघ्र उनका साथ छोड़कर मुइज्जुल् मुल्क जौनपुर आया और मीर अली अकबर गाजीपुर से छः कोस पर जमानिया में ठहर गया। इस पर भी संदेशों और षड्यंत्रों से विद्रोह की ज्वाला भड़काती रही। जब इसके भाई की नाव २४ वें वर्ष में जमुना में डूब गई तब खानआजम को, जो बंगाल और बिहार का अध्यक्ष था, आज्ञा गई कि मीर अली

अकबर को कैद कर हथकड़ी बेड़ी सहित भेज दे। इसने कोक-लताश को चापलूसी तथा चालाकी से धोखा देना चाहा पर उस अनुभवी मनुष्य ने उसकी कहानियों का विश्वास न कर रक्षकों के अधीन दरबार भेज दिया। बादशाह ने दया कर प्राणदंड न दे उसे कैदखाने भेज दिया।

६८. अली कुली खाँ अंदरावी

हुमायूँ का एक कृपापात्र था। जिस वर्ष में हुमायूँ ने बैराम खाँ के विषय में झूठी बातें सुनी थीं और काबुल से कंधार आया था, तभी अली कुली को काबुल का अध्यक्ष नियत किया था। इसके बाद यह हुमायूँ के साथ भारत आया और अकबर के राज्यारंभ में अली कुली खानेजमाँ के साथ हेमू बक्काल की लड़ाई में उपस्थित था। इसके बाद ख्वाजा खिज्र खाँ के साथ सिकंदर सूर की लड़ाई पर नियत हुआ और ६९ वें वर्ष में यह शम्शुद्दीन मुहम्मद खाँ अतगा के साथ बैराम खाँ का सामना करने गया। इसके सिवा और कुछ ज्ञात नहीं हुआ।

६९. अली कुली खानजमाँ

इसका पिता हैदर सुलतान उजबेक शैबानी था। जाम के युद्ध में इसने फारस वालों का साथ दिया था, जिससे वह एक अमीर बन गया। हुमायूँ के फारस से लौटने पर यह अपने दो पुत्रों अली कुली तथा बहादुर के साथ नौकर हो गया और कंधार लेने में अच्छा कार्य किया। जब बादशाह काबुल की ओर चले तब मार्ग में जल-वायु के वैपरीत्य से पड़ाव में महामारी फैली और बहुत से आदमी मर गए। इन्हीं में हैदर सुलतान भी था। अली कुली बराबर युद्धों में अच्छा कार्य करता रहा था और विशेषतः भारत विजय में खूब वीरता दिखलाई, जिससे अमीर पद पाया। जब कंबर दीवाना दोआब और संभल में कुछ आदमी एकत्र कर लूट मार करने लगा तब अली कुली उसे दमन करने को वहाँ नियत हुआ। इसने शीघ्र उसे पकड़ लिया और उसका सिर दरबार भेज दिया। अकबर के गद्दी पर बैठने के बाद अली कुली खाँ एक भारी अफगान सर्दार शाही खाँ से लड़ रहा था पर इसने जब हेमू के दिल्ली की ओर प्रस्थान करने का समाचार सुना, तब उसे अधिक महत्व का समझ कर दिल्ली की ओर चला गया। इसके पहुँचने के पहिले तर्दी बेग खाँ परास्त हो चुका था। यह समाचार इसे मेरठ में मिला तब यह बादशाह के पास चला गया। अकबर भी हेमू के इस घमंड-पूर्ण कार्य को सुन कर पंजाब से लौट रहा था। अली कुली

हाजिर होकर दस सहस्र सवार के साथ हरावल नियत हो सरहिंद से आगे भेजा गया। दैवात् पानीपत में, जहाँ बाबर तथा सुलतान इब्राहीम लोदी के बीच युद्ध हुआ था, घोर युद्ध हुआ और एकाएक एक तीर हेमू की आँख में धँस गया, जिससे उसकी सेना साहस छोड़कर भागी और अकबर तथा बैराम खाँ युद्ध-स्थल में पहुँचे थे कि उन्हें विजय का समाचार मिला। जिन अफसरों ने युद्ध में ख्याति पाई थी उन्हें योग्य पदवियाँ मिलीं और अली कुली को खानजमाँ पदवी तथा मंसब और जागीर में तरक्की मिली। इसके बाद संभल के सीमाप्रांत में कई भारी विजय पाईं और उस ओर लखनऊ तक के विद्रोही शांत हो गए। इसने बहुत संपत्ति तथा हाथी प्राप्त किये। ३ रे वर्ष एक ऊँटवान का लड़का शाहम बेग, जिसके शरीर का गठन सुंदर था और जिस कारण वह हुमायूँ के शरीर रक्षकों में नियत था तथा जिससे खानजमाँ का कुवृत्ति के कारण बहुत दिन से प्रेम था, दरबार से भागकर खानजमाँ के पास चला आया। खानजमाँ ने साम्राज्य के महत्व का ध्यान न कर और मावरुन्नहर की कुप्रथा के अनुसार उसे बादशाहम् (मेरे राजा) कहा करता तथा उसके आगे झुककर सलाम करता था। जब इन बातों का पता दरबार में लगा तब यह बुलाया गया और ऊँटवान के लड़के के विषय में इसे आज्ञाएँ दी गईं पर उनका इस पर कुछ असर नहीं हुआ। अली कुली के विषय में बादशाह के हृदय में मालिन्य आने का यहीं से आरंभ होता है। उसने इसकी कई जागीरों को दूसरे आदमियों को दे दिया पर खानजमाँ घमंड तथा अहंता से हठी बन बैठा। बैराम खाँ ने उदाशयता से इस पर ध्यान नहीं

दिया पर मुल्ला पीर मुहम्मद खाँ शरवानी, जो खानखानाँ का वकील और उच्च अधिकारी था, खानजमाँ से चिढ़ता था। ४ थे वर्ष इसकी बची जागीर जब्त कर जलायर सरदारों को दे दी गई और यह जौनपुर में नियत किया, जहाँ अफगान षड्यंत्र रच रहे थे।

खानजमाँ ने अपने विश्वासी सेवक बुर्ज अली को क्षमा याचना करने तथा दरबार को शांत करने भेजा। प्रथम दिन पीर मुहम्मद खाँ ने, जो फिरोजाबाद दुर्ग में था, बुर्ज अली से झगड़ा करना शुरू किया और अंत में कहा कि 'इसे दुर्ग के मीनार से नीचे फेंक दें'। इससे उसका सिर फट गया। खानजमाँ ने समझा कि उसके शत्रु शाहम बेग के बहाने उसे नष्ट करना चाहते हैं। इसपर इसने उस निर्दोष को बिदा कर दिया और जौनपुर जाकर कई युद्ध कर उस विस्तृत प्रांत में शांति फैलाई। जब बैराम खाँ हटाया गया तब उस प्रांत के अफगानों ने यह समझ कर कि अब अवसर आ गया है, अदली के लड़के को गद्दी पर बिठा कर उसे शेरशाह की उपाधि दी। भारी सेना तथा ५०० हाथी के साथ जौनपुर पर आक्रमण किया। खानजमाँ ने चारो ओर से अफसरों को एकत्र कर युद्ध किया पर शत्रु विजयी होकर नगर की गलियों में घुस गए। खानजमाँ ने पीछे से आकर जो खोया था उसे पुनः प्राप्त कर लिया। शत्रु को भगाकर बहुत हाथी तथा लूट पाया। पर इसने इन दैवी विजयों में प्राप्त लूट को दरबार नहीं भेजा और साथ ही इसका घमंड बहुत बढ़ गया। अकबर पूर्वीय प्रांत की ओर ६ ठे वर्ष के जीकदा महीने (जुलाई सन् १५६२ ई०) में रवाना हुआ।

खानजमाँ अपने भाई बहादुर खाँ के साथ कड़ा में, जो गंगा पार है, बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और उस प्रांत की अमूल्य वस्तुएँ तथा प्रसिद्ध हाथी भेंट दिया, जिस पर उसे लौट जाने की आज्ञा मिली।

इसी वर्ष फतह खाँ पटनी या पन्नी तथा दूसरों ने सलीम शाह के पुत्र को युद्ध की जड़ बनाकर बिहार में भारी सेना एकत्र की और खानजमाँ की जागीर पर अधिकार कर लिया। खानजमाँ दूसरे अफसरों के साथ वहाँ गया और युद्ध करने का अनवसर समझ कर सोन के किनारे दुर्ग की नींव डाली और मोर्चा बाँधा। अफगानों ने आक्रमण किया तब इसे बाध्य होकर बाहर निकल युद्ध करना पड़ा। युद्ध होते ही उन सब ने शाही सेना को परास्त कर दिया। खानजमाँ दीवाल की आड़ में था और यह मरना निश्चित कर एक बुर्ज पर गया तथा एक तोप छोड़ी। दैवात् वह गोला हसन खाँ पटनी के हाथी को लगा, जिससे सेना में बड़ा शोर मचा और सैनिक गण भागे। खानजमाँ को वह विजय प्राप्त हुई, जिसकी उसे आशा नहीं थी। संसार कैसा मदिरा के समान काम करता है। मिसरा—
जो जैसा है वैसा ही होता है।

खानजमाँ ने ऐश्वर्य तथा धन के घमंड में स्वामी का स्वत्व नहीं समझा और १० वें वर्ष उजबेग सर्दारों के साथ मिल कर विद्रोह कर दिया और उस प्रांत के जागीरदारों से लड़ाई आरंभ कर दी। बादशाही सेना के आने की खबर सुनकर गंगा उतर गाजीपुर में पड़ाव डाला। अकबर जौनपुर आया और खानखानाँ मुनइम खाँ को उसपर भेजा। उस ईमानदार तुर्क ने खानजमाँ

की बनावटी क्षमा याचना स्वीकार कर ली और इसके लिए प्रार्थना की। ख्वाजाजहाँ के साथ, जो उसकी प्रार्थना पर खानजमाँ को शांत करने के लिए दरबार से भेजा गया था, यह एक नाव में बैठकर खानजमाँ से मिला पर उसने धूर्तता से स्वयं अकबर के सामने जाना स्वीकार नहीं किया और इब्राहीम खाँ को, जो उजबेगों में सबसे बड़ा था, अपनी माता तथा प्रसिद्ध हाथियों के साथ भेजा। यह भी उसी समय निश्चय हुआ था कि जब तक बादशाह लौटें तब तक वह गंगा पार न करे। पर उस अहम्मन्य आदमी ने बादशाह के लौटने की प्रतीक्षा नहीं किया और गंगा उतर कर अपनी जागीर पर अधिकार करने चला गया। अकबर मुनइम खाँ की भर्त्सना कर स्वयं उस पर रवाना हुआ। खानजमाँ यह सुनकर अपना खेमा, सामान आदि छोड़कर बाहर चल दिया। इसने वहाँ से फिर खान-खानाँ से क्षमा-प्रार्थना की और एक बार पुनः वह खाँ के द्वारा क्षमा किया गया। मीर मुर्तजा शरीफी और मौलाना अब्दुल्ला मखदूमुल्मुल्क खानजमाँ के पास गए और उससे दृढ़ तोबा कराया।

इसके बाद जब अकबर मुहम्मद हकीम की गड़बड़ी को दमन करने लाहौर गया तब खानजमाँ ने जिसकी नार ही विद्रोह में कटी थी, फिर विद्रोह किया और मुहम्मद हकीम के नाम खुतबा पढ़ा। उसने अवध सिकंदर खाँ और इब्राहीम खाँ को दिया तथा अपने भाई बहादुर खाँ को कड़ा मानिकपुर में आसफ खाँ और मजनूँ खाँ को रोकने भेजा। इसने स्वयं गंगा जी के किनारे तक के प्रांत पर अधिकार कर लिया और कन्नौज पहुँचा। इसने वहाँ के जागीरदार मुहम्मद यूसुफ खाँ मशहदी को शेरगढ़

में घेर लिया, जो कन्नौज से चार कोस पर है। इन भयानक समाचारों को सुन कर अकबर पंजाब से आगरा आया और तब पूर्व की ओर चला। खानजमाँ ने जब यह सुना तब इस बात पर कि उसने यह नहीं समझा था कि बादशाह इतनी शीघ्रता से लौटेंगे, यह शैर पढ़ा—

उसका सुनहले नाल वाला तेज घोड़ा सूर्य के समान है। कि पूर्व से पश्चिम पहुँच गया और बीच में केवल एक रात बीती।

यह निरुपाय होकर दुर्ग छोड़ बहादुर खाँ के पास मानिकपुर गया। यहाँ से परगना सिंगरौर की सीमा पर गंगा पर पुल बाँधकर उसे पार किया। बादशाह ने बरिया कस्बा से रवाना हो मानिकपुर में दस बारह आदमियों के साथ हाथी पर सवार हो गंगा पार किया। वह थोड़े मनुष्यों के साथ, जो लगभग एक सौ सवार के थे, शत्रु के पड़ाव के आध कोस पर पहुँच कर रात्रि के लिए ठहर गया। मजनूँ खाँ और आसफ खाँ अपनी सेना के साथ आ पहुँचे, जो हरावल था, और अकबर को बराबर एक के बाद दूसरा समाचार भेजते रहे। दैवयोग से उस रात्रि खानजमाँ और बहादुर खाँ एकदम असतर्क थे और अपना समय मदिरा पान करने में व्यतीत कर रहे थे। जो कोई बादशाह के शीघ्र कूच करने या पार पहुँचने का समाचार लाता वह कहानी कहता हुआ समझा जाता था। सुबह सोमवार १ ली हिज्जा सन् ९७४ हि० (९ जून १५६७ ई०) को मजनूँ खाँ को दाईं ओर और आसफ खाँ को बाईं ओर रखकर सकरावल गाँव के मैदान में, जो इलाहाबाद के अंतर्गत है और बाद को फतहपुर कहलाया, खानजमाँ पर जा पहुँचे। अकबर बालसुंदर

हाथी पर सवार था। उसने मिर्जा कोका को अमारी में बिठा दिया और स्वयं महावत के स्थान पर जा बैठा। बाबा खाँ काकशाल ने पहिले धावे में शत्रु को भगा दिया और खानजमाँ पर जा पहुँचा। इस गड़बड़ी में एक भगैल खानजमाँ से टकरा गया, जिससे उसकी पगड़ी गिर गई। बहादुर खाँ ने बाबा खाँ पर आक्रमण कर उसे हटा दिया। इसी बीच बादशाह घोड़े पर सवार हुए। स्वामिद्रोही असफल होता है, इस कारण बहादुर पकड़ा गया और उसकी सेना भागी। खानजमाँ कुछ देर तक डटा रहा और अपने भाई का हाल पूछ ही रहा था कि एकाएक एक तीर उसे लगा। दूसरा तीर उसके घोड़े को लगा और वह गिर पड़ा। वह पैदल खड़ा होकर तीर निकाल रहा था कि मध्य के शाही हाथी आ पहुँचे। महावत सोमनाथ ने नरसिंह हाथी को उस पर रेला। खानजमाँ ने कहा कि 'हम सेना के सर्दार हैं, बादशाह के पास ले चलो, तुम्हें सम्मान मिलेगा।' महावत ने कहा 'तुम्हारे से हजारों आदमी बिना नाम या ख्याति के मर रहे हैं। राजद्रोही का मरना ही अच्छा है।' तब उसने इसको हाथी के पाँव के नीचे कुचल डाला। खानजमाँ के विषय में कोई कुछ नहीं जानता था, इसलिए बादशाह ने युद्ध स्थल ही में कहा कि जो कोई मुगल का एक सिर लावेगा उसे एक अशर्फी और एक हिंदुस्तानी का सिर लावेगा उसे एक रुपया मिलेगा। एक लुटेरा खानजमाँ का सिर काटकर लिए था कि मार्ग में दूसरे ने अशर्फी के लोभ से उससे उसे ले लिया। कहते हैं कि अर्जानी नामक एक हिंदू, जो खानजमाँ का प्रिय सेवक था, कैदियों में खड़ा सिरों को देख रहा था। जब उसने खानजमाँ

का सिर देखा तब उसे उठा लिया और अपने सिर पर उसे पटक कर बादशाह के घोड़े के पैर के पास उसे डाल कर कहा कि 'यही अली कुली का सिर है'। अकबर घोड़े से उतर पड़ा और ईश्वर को धन्यवाद दिया। दोनों भाइयों के सिर आगरे तथा अन्य स्थानों में दिखलाने के लिए भेजे गए।

किता का अर्थ:—

तुम्हारे शत्रुओं का सिर बख्शा जाय क्योंकि आप ही उनको सिर नहीं है। तुम्हारे शत्रु के सिर पर कविता किता किया (अर्थात् किता बनाया या काटा) क्योंकि उससे अच्छा वधस्थल नहीं है।

'फतह अकबर मुबारक' से तारीख निकली (९७४ हि०)।

दूसरे ने यह किता कहा है—

आकाश के अत्याचार से अली कुली और बहादुर मारे गए। ऐ प्रिय मुझ हृदयहीन से मत पूछो कि यह कैसे हुआ। उनके मारे जाने की तारीख अपनी वृद्ध-बुद्धि से पूछा तो हृदय ने आह खींची और कहा कि 'दो खून शुद' (दो खून हुए)।

खानजमाँ का पाँच हजारी मंसब था और वह प्रसिद्ध तथा ऐश्वर्यशाली पुरुष था। साहस, कार्य शक्ति और युद्ध-कला के लिए वह विख्यात था। यद्यपि यह उजबेग था पर फारस में पालन होने तथा माता के ईरानी होने से वह शीआ था। यह इसके लिए कोई बहाना नहीं करता था। यह कविता करता था और इसका उपनाम 'सुलतान' था।

७०. अली खाँ, मीरजादा

यह मुहतरिम बेग का लड़का और अकबर का एक अफसर था। इसे एक हजारी मंसब मिला और ९ वें वर्ष में यह अन्य अफसरों के साथ अब्दुल्ला खाँ उजबेग का पीछा करने भेजा गया जो मालवा से गुजरात भाग गया था। १७ वें वर्ष में जब बादशाह गुजरात गए और खानकलाँ आगे भेजा गया तब अली खाँ इसके साथ था। १९ वें वर्ष में जब बादशाह पूर्वीय प्रांत की ओर गए तब यह उसके साथ था। इसके बाद यह सेना के साथ कासिम खाँ उर्फ कासू का पीछा करने भेजा गया, जो बिहार में अफगानों के एक दल के सहित उपद्रव मचा रहा था। इसने अच्छा कार्य किया और इसके बाद मुजफ्फर खाँ के साथ प्रसिद्धि प्राप्त की। २१ वें वर्ष यह दरबार आया। २३ वें वर्ष जब शहबाज खाँ राणा प्रताप (कोका) को दमन करने गया तब यह भी उसके सहायकों में था। २५ वें वर्ष में खान आजम के साथ पूर्वीय जिलों में नियत हुआ। यहाँ इसने अच्छा कार्य नहीं किया, इसलिए ३१ वें वर्ष में कश्मीर के अध्यक्ष कासिम खाँ के यहाँ भेजा गया। ३२ वें वर्ष में कश्मीरियों के साथ युद्ध करने में, जब सैयद अब्दुल्ला की पारी थी और शाही सेना परास्त हुई थी, यह सन् ९९५ हि० (१५८७ ई०) में मारा गया।

---

७१. अली गीलानी, हकीम

यह विज्ञानों का और मुख्यकर तिब तथा गणित का पूर्ण विद्वान था। यह अपने समय के योग्यतम हकीमों में से था। कहते हैं कि यह विदेश से बड़ी दरिद्रता में भारत आया। सौभाग्य से यह अकबर के सेवकों में भर्ती हो गया। एक दिन अकबर की आज्ञा से बहुत से रोगियों तथा पशु गदहे का पेशाब शीशियों में इसके पास जाँच करने के लिए लाया गया। इसने सबका मिलान अपनी विद्वत्ता से किया और उस समय से इसकी प्रसिद्धि तथा प्रभाव बढ़ा, यहाँ तक कि यह बादशाह का अंतरंग मित्र हो गया। इसका प्रभुत्व बढ़ा और यह उच्चतम अफसरों के बराबर हो गया। इसके बाद यह बीजापुर राजदूत बनाकर भेजा गया। वहाँ का शासक अली आदिल शाह इसके स्वागत के लिए आया और इसे बड़े समारोह से नगर में ले गया। अपने राज्य की अलभ्य वस्तुएँ इसे भेंट दीं और बिदा करना चाहता था कि एकाएक सन् ९८८ हि०, १५८० ई० (२३ सफर, १२ अप्रैल) को उसके जीवन का प्याला भर गया। यद्यपि फरिश्ता लिखता है कि इस घटना के पहिले हकीम अली गीलानी प्राप्त हुए योग्य भेंट को लेकर बिदा हो चुका था और उस समय हकीम ऐनुल-मुल्क शीराजी राजदूत होकर आया था तथा इस अवश्यम्भावी घटना के कारण बिना उपहार के लौट गया था। परन्तु इस ग्रंथ के लेखक की सम्मति में अत्यंत विद्वान् अबुल्फजल का वर्णन ही ठीक है।

अली आदिल शाह के मारे जाने की घटना वैचित्र्य से रिक्त नहीं है, इसलिए उसका वर्णन यहाँ दे दिया जाता है। वह अपने वंश में अत्यंत न्याय प्रिय और उदार था पर इन उत्तम गुणों के होते वह व्यभिचारी भी था। सुंदर मुखों पर बहुत मस्त रहने के कारण बहुत प्रयत्नों के बाद बीदर के शासक से दो सुंदर खोजे माँग लिए। जब एकांत कमरे के अंधकार में उसकी विषय वासना प्रायः संतुष्ट हो चली थी तब उसने इन दोनों में से बड़े से अपनी कामवासना पूरी करने के लिए कहा। पवित्रता के उस रत्न ने अपनी प्रतिष्ठा तथा पवित्रता का विचार कर अपना शरीर उसे देना ठीक नहीं समझा और छूरे से सुलतान को मार डाला, जिसे उसने दूरदर्शिता से छिपा रखा था। यह आश्चर्यजनक है कि मौलाना मुहम्मद रजा मशहदी 'रजाई' ने 'शाहजहाँ शुद शहीद' (सुलतान शहीद हुआ ९६८) में तारीख निकाली।

हकीम अली ने ३५ वें वर्ष में एक अजीब बड़ा तालाब बनवाया, जिसमें से होकर एक रास्ता भीतरी कमरे में जाता था। आश्चर्य यह था कि तालाब का पानी कमरे में नहीं जाता था। मनुष्य नीचे जाते और उसकी परीक्षा करने में कष्ट सहते तथा कितने इतना कष्ट पाते कि आधे रास्ते से लौट आते। अकबर भी देखने गया और कमरे में पहुँचा। यह तालाब के एक कोने में पानी के नीचे दो तीन सीढ़ी उतरा था कि वह कमरे में पहुँच गया। यह सुसज्जित तथा प्रकाशित था और उसमें दस बारह आदमियों के लिए स्थान था। सोने के लिए गद्दे, कपड़े आदि रखे थे। कुछ पुस्तकें भी रखी हुई थीं। हवा, जल का एक बूंद

भी भीतर नहीं आने देती थी। बादशाह कुछ देर तक भीतर रह गए, इससे बाहर वालों में विचित्र ख्याल पैदा होने लगा। ४० वें वर्ष तक हकीम को सात सदी का मंसब मिल चुका था। इसके सफल उपचार से संसार चकित हो जाता था। जब अकबर पेट चली रोग से ग्रसित था तब हकीम के उपाय निष्फल हो गए। बादशाह ने क्रुद्ध होकर उससे कहा कि 'तुम एक विदेशी पसारी मात्र थे। यहाँ तुम दरिद्रता का जूता उतार रहे हो। हमने तुमको इस पदवी तक इसीलिए पहुँचाया था कि तुम किसी दिन काम आवोगे।' इसके अनंतर अत्यधिक क्रुद्ध होने से दो बंद उस पर मारे। हकीम ने झोले में से कुछ निकाल कर पानी की एक सुराही में डाल दिया, जो तुरंत जम गया। उसने कहा 'हमारे पास ऐसी दवा है पर वह किस काम की जब वर्तमान रोग में लाभ ही नहीं पहुँचता।' बीमारी के कारण घबराहट तथा बेचैनी में बादशाह ने कहा कि 'चाहे जो हो यही दवा दे दो।' इस पर इस दवा के कारण शरीर में कब्जियत हो गई। इससे पेट में दर्द होने लगा और बेचैनी बढ़ गई। इस पर हकीमों ने फिर रेचक दिया, जिससे दस्त आने लगे और वह मर गया।

अकबर की इस बीमारी का आरंभ भी एक आश्चर्यजनक बात है। कहते हैं कि जहाँगीर के पास गिराँबार नामक एक हाथी था, जिसकी बराबरी शाही फीलखाने का कोई हाथी नहीं कर सकता था। सुलतान खुसरो के पास एक हाथी आपरूप था, जो युद्ध में प्रथम कोटि का था। इस पर अकबर ने आज्ञा दी कि दोनों भारी पहाड़ लड़ें।

शैर—

दो लोहे के पहाड़ अपने अपने स्थान पर से हिले।
तुमने कहा कि पृथ्वी एक छोर से दूसरे छोर तक हिल गई॥

बादशाह ने अपना एक खास हाथी रणथंभन सहायक नियत किया कि उनमें से यदि एक विजयी हो और महावत उसे न रोक सके तो यह आड़ से निकल कर पराजित की सहायता करे। ऐसे सहायक हाथी को तपांचा कहते हैं और यह बादशाह के आविष्कारों में से है। अकबर झरोखे में बैठकर तमाशा देखता था और शाहजादा सलीम तथा खुसरो घोड़ों पर सवार हो कर देख रहे थे। ऐसा हुआ कि गिराँबार ने खूब युद्ध के बाद प्रतिद्वंद्वी को दबा दिया। अकबर चाहता था कि तपांचा सहायता को आवे पर सलीम के मनुष्यों ने उसे रोका और रणथंभन पर पत्थर मारने लगे, जिससे महावत को जो बहादुरी से उसे आगे बढ़ा रहा था, एक पत्थर सिर पर लग गया और रक्त बहने लगा। दरबारियों ने जल्दी मचा कर बादशाह को घबड़ा दिया, जिससे उसने सुलतान खुर्रम को, जो पास में था, उसके पिता के पास भेजा कि जाकर कहे कि 'शाहबाबा कहते हैं कि वास्तव में सभी हाथी तुम्हारे हैं, तब क्यों यह असंतोष है।' शाहजादे ने उत्तर दिया कि 'मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता और महावत को मारना हम भी नहीं उचित समझते।' सुलतान खुर्रम ने कहा कि 'तब हम जाकर हाथियों को अतिशबाजी से अलग करा देते हैं।' पर सब प्रयत्न असफल रहे। अंत में रणथंभन भी हार गया और आपरूप के साथ जमुना में घुस गया। सुलतान खुर्रम लौटा

और अकबर को मीठी बातों से शांत किया। इसी बीच सुलतान खुसरो शोर मचाता आया और अकबर से अपने पिता के विषय में कुवचन कहे, जिससे उसका क्रोध भड़क उठा। रात्रि भर वह ज्वर से बेचैन रहा और स्वास्थ्य बिगड़ गया। सुबह हकीम अली गीलानी बुलाया गया और अकबर ने कहा 'खुसरो के कुवाच्यों से हम क्रुद्ध हो गए और इस अवस्था को पहुँच गए।' अंत में ज्वर से पेट चली हो गया और उसकी मृत्यु का कारण हुआ।

कहते हैं कि बीमारी के अंत में हकीम अली ने तरबूज का पथ्य बतलाया था, इसलिए जहाँगीर ने राजगद्दी होने पर उसे बदनाम किया कि उसी के नुसखे ने उसके पिता को मारा है।

अपने राज्य के ३ रे वर्ष (सन् १०१८ हि०, १६०९ ई०) में जहाँगीर भी हकीम अली के घर गया और तालाब देखा। उसका निरीक्षण कर लौटने के बाद हकीम अली पर फिर कृपा हुई और उसे दो हजारी मंसब मिला। इसके कुछ दिन बाद यह मर गया। कहते हैं कि यह प्रति वर्ष ६ सहस्र रुपये की दवा और पथ्य गरीबों में बाँटता था। इसके पुत्र हकीम अब्दुल् वहाब ने १५ वें वर्ष में लाहौर के कुछ सैयदों के विरुद्ध अस्सी हजार रुपयों का दावा किया, जिसे उसके पिता ने उन्हें ऋण दिया था। इसने एक काजी के मुहर सहित एक दस्तावेज तथा दो गवाह कानून के अनुसार दावा साबित करने को पेश किया। सैयदों ने इनकार किया पर उस दावे से बचना संभव नहीं था। आसफ खाँ इसे निपटाने को नियत हुआ। धूर्त डरता है, इसके अनुसार अब्दुल् वहाब ने

सैयदों से संधि का प्रस्ताव किया। आसफ खाँ ने भी जाँच किया, जिससे अब्दुल् वहाब को सच्ची बात कहनी पड़ी कि उसका दावा झूठा है। इसपर उसका पद और जागीर छिन गई।

---

७२. अलीबेग अकबर शाही, मिर्जा

इसका जन्म तथा पालन बदख्शाँ में हुआ था और यह अच्छे गुणों से विभूषित था। जब यह भारत आया तब इसकी राजभक्ति का सिक्का अकबर के हृदय में जम गया और यह अकबर शाही की पदवी से सम्मानित हुआ। युद्ध में इसने प्रसिद्धि प्राप्त की। दक्षिण की चढ़ाई में यह शाहजादा सुलतान मुराद के साथ था। जब शाहजादा संधि कर अहमद नगर से लौटा तब ४१ वें वर्ष में सादिक खाँ ने बुद्धिमानी से महकर में अपना निवासस्थान बनाया। अजदर खाँ और ऐन खाँ तथा अन्य दक्षिणियों ने उपद्रव मचाया। सादिक खाँ ने मिर्जा के अधीन चुनी सेना भेजी, जो एकाएक उनके पड़ाव पर टूट पड़ी और अखाड़ा के हाथी, स्त्रियाँ तथा बहुत सा लूट पाया। इस सफलता पर खुदावंद खाँ तथा अन्य निजाम शाही अफसरों ने दस सहस्र सवारों के साथ युद्ध करना निश्चय किया। गंगा के किनारे सादिक खाँ ने मिर्जा अलीबेग को हरावल में नियत कर पाथरी से आठ कोस पर युद्ध किया। मिर्जा ने उक्त दिवस बड़ी वीरता दिखलाई और खुदावंद खाँ को परास्त कर दिया, जिसने पाँच सहस्र सेना के साथ आक्रमण किया था। ४३ वें वर्ष में दौलताबाद के अंतर्गत राहूतरा दुर्ग को एक महीने के घेरे पर ले लिया। इसी वर्ष में पत्तन कस्बा को इसने अपने प्रयत्न से विजय किया, जो गोदावरी के तट पर एक प्राचीन नगर है।

इसी वर्ष के अंत में लोहगढ़ दौलताबाद दुर्ग भी निजा प्रयास से ले लिया। ये दोनों दुर्ग पानी के अभाव से गिरा कर छोड़ दिए गए और अब तक वे उसी हाल में हैं। शेख अबुल् फजल के सेनापतित्व-काल की चढ़ाइयों में मिर्जा भी लड़ा था और अच्छा कार्य किया था। अहमदनगर के घेरे में शाहजादा दानियाल के सेवकों की बहुत सहायता की। ४६ वें वर्ष में इसे पुरस्कार में डंका-निशान मिला। इसके बाद खानखानाँ के साथ साथ बहुत दिनों तक दक्षिण में रहा। जहाँगीर के समय में चार हजारी मंसब के साथ काश्मीर का अध्यक्ष हुआ। इसके बाद इसे अवध की जागीर मिली और जब जहाँगीर अजमेर में था तब यह दरबार आया और मुईनुद्दीन के दरगाह की जियारत की। यह शाहबाज खाँ कंबू की कब्र में चिपट गया, जो उसके भीतर थी, और कहा कि यह हमारा पुराना मित्र था। इसके बाद वहीं मर गया और उसी स्थान पर गाड़ा गया। यह घटना ११ वें वर्ष के २२ रबीउल् अव्वल सन् १०२५ हि० (३० मार्च १६१६ ई०) को हुई थी।

यद्यपि यह कम नौकर रखता था पर वे सभी अच्छे होते और पूरी वेतन पाते। यह विद्वानों तथा पवित्र मनुष्यों का प्रेमी था। यह अफीमची था, इससे इसका मिष्टान्न विभाग अत्यंत सुव्यवस्थित था। इसके जलसों में अनेक प्रकार की मिठाइयाँ, पेय पदार्थ तथा पकान्न दिखलाई पड़ते थे। यह कविता प्रेमी था और कविता बनाता भी था।

७३. अली मर्दान खाँ, अमीरुल् उमरा

इसका पिता गंज अली खाँ जिग कुर्दिस्तान-निवासी था। यह शाह अब्बास प्रथम का पुराना सेवक था। जब शाह अब्बास बच्चा था और हिरात में रहता था तब गंज अली मुख्य सेवक था और उसके राज्य में अच्छी सेवा तथा साहस से, जो उसने उजबेगों के साथ के युद्धों में दिखलाया था, उच्चपद पाया और अर्जुमंद बाबा पदवी मिली। यह तीस वर्ष तक किर्मान का शासक रहा। इसने बराबर न्याय तथा प्रजाप्रियता दिखलाई। जहाँगीर के समय जब शाह ने कंधार घेर लिया और पैंतालीस दिन में अब्दुल् अजीज खाँ नक्शबंद से उसे ले लिया, तब उसका अधिकार इसी को मिला। एक रात्रि सन् १०३४ हि० (१६२५ ई०) में यह कंधार दुर्ग के बरामदे में सोया था और कोच बरामदे की रेलिंग से सटी हुई थी। रेलिंग टूटी और यह सोते तथा कुछ जागते बिना किसी के जाने हुए नीचे गिर पड़ा। कुछ देर के बाद इसके कुछ सेवक उधर आ गए और इसे मरा हुआ पाया। शाह ने उसके पुत्र अली मर्दान को खाँ की पदवी सहित कंधार का अध्यक्ष बनाया और उसे बाबा द्वितीय पुकारता।

शाह की मृत्यु पर जब उसका पौत्र शाह सफी गद्दी पर बैठा तब निराधार शंकाओं पर अब्बासी अफसरों को नीचे गिराया। अली मर्दान भी इस कारण डर गया और उसने यह सोचकर कि शाहजहाँ से मिल जाने ही में अपनी रक्षा है काबुल के



अमीरुल्उमरा अली मर्दान खाँ

(पेज २६८)

शासक सईद खाँ से पत्र व्यवहार करने लगा। इसने दुर्ग की दीवालों तथा बुर्जों को दृढ़ किया और कोहलकः पर, जो कंधार दुर्ग का एक अंश है, एक दुर्ग चालीस दिन में बनवाया। जब शाह ने इसे सुना तब इसको नष्ट करने का विचार कर पहिले इसके पुत्र को बुला भेजा। अली मर्दान भेजने को बाध्य हुआ पर जब शाह ने जिन जिन पर शक था सबको मार डाला तब यह प्रकट में विद्रोही हो गया। शाह ने सियावश कुल्लर काशी को, जो मशहद भेजा गया था, इसके विरुद्ध भेजा। अलीमर्दान ने शाहजहाँ को प्रार्थना पत्र भेजा कि शाह उसका प्राण लेना चाहता है और यदि बादशाह अपने एक अफसर को भेज दें तो वह दुर्ग उसे सौंप कर दरबार आवे।

११ वें वर्ष में सन् १०४७ हि० (१६३७–३८ ई०) में काबुल का अध्यक्ष सईद खाँ, लाहौर का अध्यक्ष कुलीज खाँ तथा गजनी, भक्कर और सिविस्तान के अध्यक्ष आज्ञानुसार कंधार चले। कुलीज खाँ के पहिले पहुँच जाने पर सईद खाँ ने यह निश्चय किया कि जब तक सियावश कंधार के आसपास रहेगा तब तक लोग ठीक ठीक अनुगत न होंगे, इसलिए यद्यपि अलीमर्दान के साथ इसकी कुल सेना आठ सहस्र सवार थी पर कंधार से एक फर्संख दूर पर इसने सियावश पर आक्रमण कर दिया, जिसके अधीन पाँच छः सहस्र सेना थी। घोर युद्ध हुआ और पारसीक ऐसे भागे कि उन सब ने तब तक बाग नहीं खींची जब तक वे अर्गन्दाब नदी के उस पार अपने पड़ाव तक नहीं पहुँच गए। सईद खाँ ने उन्हें ठहरने का समय नहीं दिया और उन पर आक्रमण कर दिया, जिससे सब सामान छोड़कर वे चले गए। पारसियों के खेमों में

बहादुरों ने रात्रि व्यतीत की और सुबह सब सामान समेट कंधार लौट आए। कुलीज खाँ के पहुँचने पर, जो कंधार का अध्यक्ष नियत हुआ था, अली मर्दान दरबार गया और १२ वें वर्ष लाहौर में चौखट चूमी। आने के पहिले ही इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब, डंका तथा झंडा मिल चुका था, इसलिए उस दिन उसे छ हजारी ६००० सवार का मंसब दिया गया और एतमादुद्दौला का महल, जो अब खालसा हो गया था, मिला। इसके दस मुख्य सेवकों को योग्य मंसब मिले। विशेष कृपा के कारण अली मर्दान को, जो फारस के जलवायु में पला था और भारत की गर्मी नहीं सह सकता था, कश्मीर की अध्यक्षता मिली। जब बादशाह काबुल की ओर चले, तब अली मर्दान छुट्टी लेकर अपने पद पर गया। १३ वें वर्ष सन् १०४९ हि० (सन् १६३९–४० ई०) के आरंभ में लाहौर में जब बादशाह रहने लगे तब अली मर्दान को वहाँ बुला लिया और उसका मंसब सात हजारी ७००० सवार करके काश्मीर की अध्यक्षता के साथ पंजाब का भी प्रांताध्यक्ष नियत किया, जिसमें गर्मी तथा सर्दी दोनों ऋतुओं को वह आराम से ठंढे तथा गर्म स्थानों में व्यतीत कर सके। १४ वें वर्ष (सन् १०५० हि०) आश्विन सं० १६९८ में यह सईद खाँ के स्थान पर काबुल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। १६ वें वर्ष जब बादशाह आगरे में था तब यह वहीं बुलाया गया और इसे अमीरुल् उमरा की पदवी दी गई तथा एक करोड़ दाम (ढाई लाख रुपये) और एतकाद खाँ का गृह इनाम में दिया गया। जमुना के किनारे अफसरों के बनवाए गृहों में यह सबसे अच्छा था और इसे एतकाद ने

बादशाह के कहने पर पेशकश के रूप में भेंट कर दिया था। इसके बाद इसे काबुल लौट जाने की आज्ञा मिली।

१८ वें वर्ष तर्दी अली कतगान ने, जो नज्र मुहम्मद खाँ के पुत्र सुभान कुली खाँ का अभिभावक था और जिसे नज्र मुहम्मद खाँ ने यलंग तोश के स्थान पर कहमर्द तथा उसके पास के प्रांत का अध्यक्ष नियत किया था, जमींदावर के बिलूचियों पर दुष्टता से आक्रमण किया और हलमंद के किनारे बसे हुए हजारा जाति को लूट लिया। इसके बाद बामियान से चौदह कोस पर ठहर गया कि अवसर मिलने पर दूसरा आक्रमण करे। अली मर्दान ने अपने विश्वासी सेवकों फरेंदू और फर्हाद को उस पर भेजा और वे फुर्ती से कूच कर उजबेग पड़ाव पर जा टूटे। कतगान लड़भिड़ कर भाग गया। उसकी स्त्री, उसके संबंधी और उसका कुल सामान छिन गया। इसी वर्ष अमीरुल् उमरा दरबार आया और बदख्शाँ जाकर उसे विजय करने की आज्ञा पाई, जहाँ नज्र मुहम्मद खाँ अपने लड़के तथा सेवकों के विरुद्ध हो गया था। असालत खाँ मीर बख्शी उसके साथ नियत हुआ। अलीमर्दान खाँ ने १९ वें वर्ष में एक सेना काबुल से कहमर्द पर भेजी। उस दुर्ग में बहुत कम आदमी थे, इसलिए वे बिना तीर-तलवार खींचे भाग गए और उस पर अधिकार हो गया। यह सुनकर अमीरुल् उमरा काबुल की सेना के साथ रवाना हुआ। मार्ग में मालूम हुआ कि कहमर्द की सेना ने कादरता से उजबेग सेना के पहुँचते ही दुर्ग उसे दे दिया और रास्ते में एमाक आदि जातियों द्वारा लूट भी ली गई। ऐसी हालत में खाद्य पदार्थ तथा घास आदि की कमी से सेना का आगे बढ़ना कठिन ही

नहीं असंभव था, इसलिए उक्त दुर्ग पर फिर से अधिकार करना अन्य अवसर के लिए छोड़ कर अली मर्दान ने बदख्शाँ की ओर दृष्टि की। जब वह गुलबिहार पहुँचा तब पंजशेर के थानेदार (दौलतबेग) ने, जो मार्ग जानता था, कहा कि भारी सेना को घाटियों तथा दर्रों को पार करना कठिन होगा। साथ ही पंजशेर नदी को ग्यारह स्थानों पर पार करना होगा, जो बिना पुल बनाए नहीं हो सकता। तब अमीरुल् उमरा ने असालत खाँ को खंजान पर भेजा। वह गया और सोलह दिन में लौट आया तथा अलीमर्दान के साथ काबुल गया। ऐसे समय जब तूरान में गड़बड़ मची थी इस प्रकार जाना और आना शाहजहाँ को पसंद नहीं आया।

उसी वर्ष १०५६ हि० (१६४६ ई०)के आरंभ में शाहजादा मुराद, अलीमर्दान, अन्य सर्दारगण और पचास सहस्र सवार बलखबदख्शाँ लेने तथा उजबेगों और अलमानों को दंड देने को नियत हुए। इसी समय शाह सफी की मृत्यु पर शोक मनाने और अब्बास द्वितीय की राजगद्दी पर बधाई देने के लिए जान निसार खाँ फारस भेजा गया था, जिसके साथ यह भी लिखा गया था कि अमीरुल् उमरा के बड़े पुत्र को लौटा दिया जाय, जो शाह के पास जमानत में था। शाह ने पुरानी मित्रता नहीं तोड़ी और उसे भेज दिया। अमीरुल् उमरा मुराद बख्श के साथ तूल दर्रे से गया। जब वे सरआब पहुँचे तब नज्र मुहम्मद खाँ का द्वितीय पुत्र सुलतान खुसरो, जो कंदज का अध्यक्ष था, अलमान डाँकुओं के प्रभाव के कारण वहाँ ठहर न सका और शाहजादे से आ मिला। इसके बाद जब शाहजादा

खुरम पहुँचा, जहाँ से बलख तीन पड़ाव पर है, तब उसने बादशाह का पत्र नज्र मुहम्मद खाँ को भेजा, जिसमें संतोषप्रद समाचार थे और अपने आने का कारण उसके सहायतार्थ प्रकट किया। उसके उत्तर में उसने कहा कि कुछ प्रांत साम्राज्य का है और वह भी सेवा कर मक्का जाना चाहता है पर संभव है कि उजबेग दुष्टता से उसे मार डालें और उसका सामान लूट लें। अमीरुल् उमरा फुर्ती से शाहजादा के साथ कूच कर जब मजार के पास पहुँचा तब ज्ञात हुआ कि नज्र मुहम्मद खाँ इस प्रकार बहाने कर समय ले रहा है। उसने बलख से दो कोस पर पड़ाव डाला। संध्या को नज्र मुहम्मद के लड़के बहराम सुलतान और सुभान कुली सुलतान कई सर्दारों के साथ आए तथा अधीनता स्वीकार कर छुट्टी ले लौट गए। सुबह नज्र मुहम्मद से मिलने बलख गए और वह बाग मुराद में जलसा की तैयारी करने गया। वह कुछ रत्न तथा अशर्फी लेकर वहाँ से भागा और शिरगान में सेना एकत्र करने का प्रबंध करने लगा। बहादुर खाँ रुहेला तथा असालत खाँ ने उसका पीछा किया और लड़े। नज्र मुहम्मद उनकी शक्ति देख कर अंदखूद भागा और वहाँ से फारस चला गया। २० वें वर्ष शाहजहाँ के नाम खुतबा पढ़ा गया और सिक्का ढाला गया। बारह लाख रुपये के मूल्य के सोने चाँदी के बर्तन, २५०० घोड़े तथा ३०० ऊंट मिले। लेखकों से ज्ञात हुआ कि नज्र मुहम्मद के पास सत्तर लाख नगद और सामान था। इसमें से कुछ नज्र मुहम्मद के बड़े लड़के अब्दुल् अजीज ने ले लिया, बहुत सा धन उजबेगों ने लूट लिया और कुछ नज्र मुहम्मद के हाथ लग गया। खुसरो के सिवा, जो दरबार जा चुका था,

बहराम और अब्दुर्रहमान दो लड़के और तीन लड़कियाँ तथा तीन स्त्रियाँ काबुल में बादशाह की कृपा में रहीं।

तारीख का मुअम्मा यों है—

नज्र मुहम्मद बलखबदख्शाँ का खाँ था। वहीं उसने अपना सोना, स्त्रियाँ तथा भूमि छोड़ी।

नवविजित देश के पूरी तौर शांत होने के पहिले ही शाहजादा मुराद बख्श ने लौटने का विचार किया और बादशाह के मना करने पर भी जब नहीं माना तब उस देश का कार्य गड़बड़ हो गया। इस पर शाहजहाँ ने शाहजादे पर क्रोध प्रदर्शित कर उसकी जागीर तथा पद छीन लिया और सादुल्ला खाँ को उक्त देश शांत करने को आज्ञा दी। अमीरुल् उमरा को आदेश मिला कि कंदुज के विद्रोहियों को दंड दे और बदख्शाँ के प्रांताध्यक्ष के पहुँचने पर काबुल लौट आवे। उसी वर्ष सन् १०५७ हि० (सन् १६४७ ई०) में शाहजादा औरंगजेब उस प्रांत का अध्यक्ष नियत होकर वहाँ भेजा गया। अमीरुल् उमरा भी साथ गया। जब ये बलख पहुँचे तब ज्ञात हुआ कि नज्र मुहम्मद खाँ का बड़ा पुत्र अब्दुल् अजीज खाँ, जो बोखारा का अध्यक्ष था, कर्शी से जैहून नदी तक बढ़ आया है और बेग ओगली के अधीन तूरान की सेना आगे भेजी है। उसने आमूयः नदी पार कर आकचा में डेरा डाला है। कतलक मुहम्मद सुल्तान, जो मुहम्मद सुलतान का दूसरा पुत्र था, उससे आ मिला है। शाहजादा बलख में न जाकर उसी ओर मुड़ा। तैमूराबाद में युद्ध हुआ और अमीरुल् उमरा शत्रु को परास्त कर कतलक मुहम्मद सुलतान के पड़ाव पर पहुँचा, जो ओगली से बहुत दूर

था। इसने कतलक के और उसके आदमियों के खेमे, सामान, पशु आदि लूट लिए और उन्हें लेकर बचकर लौट गया। दूसरे दिन बेग ओगली ने अपनी कुछ सेना के साथ अमीरुल् उमरा पर आक्रमण किया। यह दृढ़ रहा और शाहजादा स्वयं इसकी सहायता को आया। बहुत से उजबेग सर्दार मारे गए और दूसरे भाग गए। इसी समय अब्दुल् अजीज खाँ और उसका भाई सुभान कुली सुलतान, जो छोटे खाँ के नाम से प्रसिद्ध था, बहुत से उजबेगों के साथ आ मिला और अच्छे बुरे घोड़ों को छाँट लिया। जिसके पास अच्छे घोड़े थे, वे लड़ने निकले। यादगार टुकरिया ने एकताजों के साथ अमीरुल् उमरा पर आक्रमण कर दिया और करीब करीब उसके पास पहुँच गया। अमीरुल् उमरा ने यह देख कर तलवार खींच ली और घोड़े को एड़ मारी। और लोग भी साथ हुए और युद्ध होने लगा। अंत में यादगार मुख पर तलवार खाकर घायल हुआ और उसका घोड़ा गोली से चोट खाकर गिरा, जिससे वह अमीरुल् उमरा के नौकरों द्वारा पकड़ा गया। यह उसे शाहजादे के सामने लाया, जिससे इसकी प्रशंसा हुई।

सात दिन खूब युद्ध हुआ और पाँच छः सहस्र उजबेग मारे गए। शाहजादा लड़ते लड़ते बलख आया और अपना पड़ाव उसी नगर में छोड़ कर शत्रु का पूरे वेग से पीछा करना निश्चित किया। अब्दुल् अजीज ने बाग मोड़ी और एक दिन में जैहून नदी को पार कर लिया। उसके बहुत से अनुगामी डूब मरे। इसके बाद जब बलख बदख्शाँ नज्र मुहम्मद को मिल गया तब अमीरुल् उमरा काबुल आया और वहाँ का कार्य देखने लगा। २३ वें वर्ष में यह दरबार आया और इसे लाहौर प्रांत का शासन

मिला। कुछ दिन बाद इसे काश्मीर जाने की आज्ञा मिली, जहाँ का जलवायु इसके अनुकूल था। जब शाहजादा दारा शिकोह कंधार के कार्य पर नियुक्त हुआ तब काबुल प्रांत यद्यपि उसके बड़े पुत्र सुलेमान शिकोह को मिला था पर उसकी रक्षा के लिए अमीरुल् उमरा वहाँ भेजा गया। इसके बाद यह फिर काश्मीर गया। ३० वें वर्ष के अंत में यह दरबार बुलाया गया पर वहाँ पहुँचने के बाद इसे पेटचली रोग हो गया, जिससे ३१ वें वर्ष के आरंभ में (सन् १०६७, १६५७ ई०) इसे कश्मीर लौट जाने की आज्ञा मिल गई। मच्छीवाड़ा पड़ाव पर (१६ अप्रैल सन् १६५७ ई० को) मर गया और इसका शव लाहौर में इसकी माता के मकबरे में गाड़ा गया। इसकी लगभग एक करोड़ की संपत्ति नगद तथा सामान जब्त हुआ। यद्यपि फारस में सफवी वंश के नौकरों की चाल के विरुद्ध इसने बर्ताव किया और राजद्रोह तथा नमकहरामीपन के दोष किए पर भारत में अपनी राजभक्ति, साहस तथा योग्यता से बहुत सम्मान पाया और सब अफसरों से बढ़कर प्रतिष्ठित हुआ। शाहजहाँ से इसका ऐसा बर्ताव था कि इसे वह यार वफादार कहता था।

इसका एक कार्य, जो समय के पृष्ठ पर बराबर रहेगा, लाहौर में नहर लाना था, जो उस नगर की शोभा है। १३ वें वर्ष सन् १०४९ हि० (१६६९–७० ई०) में अली मर्दान खाँ ने बादशाह से प्रार्थना की कि उसका एक सेवक, जो नहर खुदाने के कार्य का पूर्ण ज्ञाता है, लाहौर में नहर लाने को तैयार है। एक लाख व्यय का अनुमान किया गया, जो स्वीकार कर लिया गया। उस आदमी ने रावी नदी के किनारे से, जो

उत्तरी पार्वत्य प्रांत में है, उस स्थान की समतल भूमि से लाहौर तक माप किया, जो पचास कोस था। उसने नहर खुदवाना आरंभ किया और एक वर्ष से कुछ अधिक में उसे समाप्त कर दिया। १४ वें वर्ष उस नहर के किनारे तथा नगर के पास नीची ऊँची भूमि पर इसने एक बाग लगवाया, जो शालामार कहलाया और जिसमें तालाब, नहर तथा फुहारे थे। यह आठ लाख रुपये में १६ वें वर्ष में खलीलुल्ला खाँ हसन के निरीक्षण में तैयार हुआ। वास्तव में भारत में ऐसा दूसरा बाग नहीं था—

शैर

यदि पृथ्वी पर स्वर्ग है, तो यही है, यही है, यही है।

जल काफी नहीं आता था, इसलिए एक लाख रुपया और कारीगरों को व्यय करने को मिला। मुख्य कारीगर ने अनुभव-हीनता से पचास सहस्र रुपये मरम्मत में व्यर्थ व्यय कर दिये तब कुछ लोगों की सम्मति से, जो नहर आदि के कार्य जानते थे, पुरानी नहर पाँच कोस तक रहने दी गई और बत्तीस कोस नई बनाई गई। इससे जल बिना रुकावट के बाग में आने लगा।

जब अली मर्दान खाँ लाहौर का शासक था, तब इसने उन फकीरों को, जो निमाज और रोजा नहीं मानते थे तथा अपने को निरंकुश कह कर व्यभिचार तथा नीचता के कारण हो रहे थे, कैद कर काबुल भेजा। इसका ऐश्वर्य, शक्ति तथा कर्मठता हिंदुस्तान में प्रसिद्ध थी। कहते हैं कि बादशाह को जलसा देने में एक बार एक सौ सोने की रिकाबियाँ मै ढकने के और उसी प्रकार तीन सौ चाँदी की काम आई थीं। इसके पुत्रों में इब्राहीम खाँ का,

जिसने ऊँची पदवी पाई थी, और अब्दुल्ला बेग का, जिसे औरंगजेब के समय गंज अली खाँ की पदवी मिली थी, अलग वृत्तांत दिया है। इसके दो अन्य लड़के इसहाक बेग और इस्माइल बेग थे, जिन्हें पिता की मृत्यु के बाद प्रत्येक को डेढ़ हजारी ८०० सवार के मंसब मिले थे। ये दोनों सामूगढ़ युद्ध में बादशाही सेवा में मारे गए, जो दारा शिकोह की ओर थे।

७४. अली मर्दान खाँ हैदराबादी

इसका नाम मीरहुसेनी था और हैदराबाद के शासक अबुल्हसन का एक मुख्य सेवक था। औरंगजेब के ३० वें वर्ष में गोलकुंडा विजय के बाद यह बादशाह का सेवक हो गया और छ: हजारी मंसब के साथ अली मर्दान खाँ की पदवी पाई। यह हैदराबाद कर्णाटक में कांची (कांजीवरम) में नियत हुआ। ३५ वें वर्ष में जब संता जी घोरपदे जिंजी के सहायतार्थ आया, जिसे शाही सेना ने घेर रखा था, तब इसने उसे परास्त करने में प्रयत्न किया। युद्ध में यह कैद हो गया और इसके हाथी आदि लुट गए। दो वर्ष बाद भारी दंड देने पर छूटा। इस अनुपस्थिति में इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब मिला। इसके बाद यह कुछ दिन बरार का शासक रहा और फिर मुहम्मद बेदार बख्त का बुर्हानपुर में प्रतिनिधि रहा। यह ४९ वें वर्ष में मरा। इसका पुत्र मुहम्मद रजा इसकी मृत्यु पर रामगढ़ दुर्ग का अध्यक्ष और एक हजारी ४०० सवार का मंसबदार हुआ।

७५. अली मर्दान बहादुर

यह अकबर का एक सरदार था। ४० वें वर्ष में इसका मंसब साढ़े तीन सदी था। ठट्टा के कार्य्य में पहिले पहिल इसकी नियुक्ति खानखानाँ अब्दुर्रहीम के साथ हुई और इसने वहाँ अच्छा काम किया। ३८ वें वर्ष में खानखानाँ के साथ दरबार आया और सेवा में उपस्थित हुआ। इसके बाद यह दक्षिण में नियत हुआ और ४१ वें वर्ष में उस युद्ध में, जो मिर्जा शाहरुख तथा खानखानाँ के साथ दक्षिणी सर्दारों का हुआ था, यह अल्तमश में नियुक्त था। इसके अनंतर इसे तेलिंगाना सेना की अध्यक्षता मिली। ४६ वें वर्ष में यह अपने उत्साह से पाथरी के पास शेर ख्वाजा की सहायता को आया। इसी बीच इसने सुना कि बहादुर खाँ गीलानी परास्त हो गया, जिसे वह कुछ सेना के साथ तेलिंगाना में छोड़ आया था और इस लिए तुरंत उधर लौटा। शत्रु का सामना हो गया और इसके बहुत से मनुष्य भाग गए पर यह डटा रहा और कैद हो गया। उसी वर्ष जब राजनैतिक कारणों से अबुल्फज्ल ने दक्षिणी सर्दारों से संधि कर ली तब यह छूटा और शाही सर्दारों में आ मिला। ४७ वें वर्ष में मिर्जा एरिज तथा मलिक अंबर के बीच के युद्ध में यह बाएँ भाग का अध्यक्ष था और इसमें शाही सेवकों ने भारी विजय प्राप्त की। जहाँगीर के ७ वें वर्ष में यह अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग के अधीन नियत हुआ। आज्ञा दी गई थी कि वे गुजरात की सेना के साथ नासिक के मार्ग से

दक्षिण जायँ और द्वितीय सेना के साथ, जो खानजहाँ लोदी के अधीन है, संपर्क बनाए रखें तथा शाही कार्य मिल कर करें। जब अब्दुल्ला खाँ हठ से शत्रु के देश में पहुँचा और दूसरी सेना का उसे चिन्ह तक न मिला तब वह गुजरात लौट चला। अली मर्दान खाँ ने मरना निश्चय किया और पीछा करती शत्रु सेना से लड़ गया। यह घायल हो कर कैद हो गया और अंबर के बर्गियों द्वारा पकड़ा गया। यद्यपि जर्राहों का उपचार हुआ पर दो दिन बाद सन् १०२१ हि० (१६११ ई०) में यह मर गया। इसकी एक कहावत प्रसिद्ध है। किसी ने एक अवसर पर कहा कि 'फत्ह आसमानी है' जिस पर इस बहादुर ने उत्तर दिया कि 'ठीक, फत्ह अवश्य आसमानी है पर मैदान हमारा है।' इसका पुत्र करमुल्ला शाहजहाँ के समय एक हजारी १००० सवार का मंसबदार था और वह कुछ समय के लिए दक्षिण में ऊदगिरि का अध्यक्ष रहा। यह २१ वें वर्ष में मरा।

---

७६. अली मुराद खानजहाँ बहादुर कोकल्ताश खाँ जफर जंग

इसका नाम अली मुराद था और यह सुलतान जहाँदार शाह का धाय भाई था। यह एक ऊँचे वंश का था। जब जहाँदार शाह शाहजादा था, तभी इसने उसके हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया था और जब वह मुलतान प्रांत का शासक था तब यह वहाँ का प्रबंध करता था। बहादुर शाह के समय कोकल्ताश खाँ की पदवी मिली। बहादुर शाह की मृत्यु पर और तीन शाहजादों के मारे जाने पर जब भारत की सल्तनत जहाँदार शाह के हाथों में आई तब इसको नौ हजारी ९००० सवार का मंसब, खानजहाँ बहादुर जफ़र जंग पदवी और मीर बख्शी का पद मिला। इसका छोटा भाई मुहम्मद माह, जिसकी पदवी जफर खाँ थी, और साढू ख्वाजा हुसेन खाँ दोनों को आठ हजारी मंसब मिले। पहिले को आजम खाँ की पदवी और आगरा की अध्यक्षता मिली। दूसरे को खानदौराँ की पदवी और द्वितीय बख्शीगिरी मिली। यही खानदौराँ जहाँदार शाह के लड़के मुहमम्द इज्जुद्दीन का अभिभावक नियत हुआ था, जो मुहम्मद फर्रुखसियर का सामना करने भेजा गया था। अपनी कायरता के कारण मियान से बिना तलवार खींचे और सैनिक की नाक से बिना एक बूँद रक्त गिरे यह रात्रि के समय शाहजादे के साथ पड़ाव छोड़कर आगरे चल दिया।

कोकल्ताश खाँ स्वामिभक्ति में कम नहीं था पर इसके तथा जुल्फिकार खाँ के बीच प्रतिद्वंद्विता के कारण द्वेष बढ़ गया और सम्मतियों में वे एक दूसरे की बात काटते थे तथा कभी किसी कार्य के लिए एक मत हो कर कुछ निश्चय नहीं करते थे। इस पर बादशाह लालकुँअर पर फिदा थे, विचार तथा बुद्धिमत्ता को त्याग दिया था और राज्य कार्य नहीं देखते थे। सफलता की कली खिली नहीं और इच्छा के पत्तों ने पतझड़ का रुख पकड़ा। सन् ११२३ हि० (सन् १७११–१२ ई०) में आगरा के पास फर्रुखसियर से जो युद्ध हुआ उसमें खानजहाँ दृढ़ता से जमा रहा और स्वामि कार्य में मारा गया।

७७. अली मुहम्मद खाँ रुहेला

कहते हैं कि यह वास्तव में अफगान नहीं था। उस खेल के एक आदमी के साथ यह बहुत दिनों तक रहा जो अमीर और निस्संतान था तथा इस लिए उसने इसे सब का मालिक बना दिया। अली मुहम्मद ने संपत्ति लेकर पहिले आँवला और वंकर में निवास किया, जो पर्गने कमायूँ की तराई में दिल्ली के उत्तर हैं। इसने कुछ दिन वहाँ के जमींदारों तथा फौजदारों की सेवा की और उसके बाद लूट मार करते बाँस बरेली और मुरादाबाद नष्टःप्राय कर दिया, जो एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ की जागीर थी। एतमादुद्दौला ने अपने मुतसद्दी हीरानंद को वहाँ शांति स्थापित करने भेजा, जिसका अली मुहम्मद ने सामना कर पूर्णतया पराजित कर दिया और बहुत सा लूट तथा भारी तोपखाना पाया। एतमादुद्दौला इसका कुछ उपाय न कर सका। इसके अनंतर अली मुहम्मद विद्रोही हो गया और रुह से, जो अफगानों का घर है, बहुत से आदमियों को बुला लिया तथा बादशाही और कमायूँ नरेश की बहुत सी भूमि पर अधिकार कर लिया। इसने हिंदुस्तान के बादशाह के समान बहुत बड़ा लाल खेमा तैयार कराया, जिस पर बादशाह स्वयं इसको दमन करने रवाना हुए। शाही सेना के दुष्टगण ने आगे बढ़ कर आँवला में आग लगा दिया। अंत में वजीर के मध्यस्थ होने पर, जो अपने मुतसद्दी हीरानंद के लुट जाने पर भी

उम्दतुल्मुल्क तथा सफदर जंग से ईर्ष्या रखने के कारण इसका पक्ष लेता था, संधि हो गई और इसने आकर सेवा की। इसको यहाँ की जागीर के बदले सरहिंद सरकार मिला। जब सन् ११६१ हि० (१७४८ ई०) में अहमद शाह दुर्रानी आया, तब यह भी सरहिंद से चला आया और आँवला तथा बंकर पुरानी जागीर पर अधिकृत हो गया। उसी वर्ष यह मर गया। इसके लड़के सादुल्ला खाँ, अब्दुल्ला खाँ, फैजुल्ला खाँ आदि थे। प्रथम (सन् १७६४ ई० में) रोग से मर गया। दूसरा हाफिज रहमतुल्ला के साथ (१७७४ ई० में) मारा गया और तीसरा लिखते समय रामगढ़ में था। उसके साथियों में हाफिज रहमत खाँ और दूँदी खाँ थे, जो चचेरे भाई थे, और पहिले का उस अफगान (दाऊद) से पास का संबंध था, जो अली मुहम्मद का स्वामी था। उसने अली मुहम्मद के राज्य पर अधिकार कर लिया और मुखिया होने का नाम कमाया। दूँदी (सन् १७७४ ई० के पहिले) मर गया। पहिला रहमत खाँ बहुत दिन जीवित रहा। जब सफदर जंग अबुल् मंसूर के लड़के शुजाउद्दौला ने सन् ११८८ हि० (१७७४–७५ ई०) में उस पर चढ़ाई की तब वह युद्ध में मारा गया। इसके बाद उसकी जाति के किसी पुरुष ने प्रसिद्धि नहीं प्राप्त की।

---

७८. अली वर्दी खाँ मिर्जा बंदी

कहते हैं कि यह और हाजी अहमद दो भाई थे और दोनों हाजी मुहम्मद के पुत्र थे, जो शाहजादा मुहम्मद आजम शाह का बावर्ची था। अलीवर्दी का दरिद्रावस्था में बंगाल के नाजिम शुजाउद्दौला से परिचय था, इस लिए मुहम्मद शाह के राज्यकाल में वह हाजी अहमद के साथ घर छोड़ कर बंगाल चला गया। शुजाउद्दौला ने दोनों भाइयों पर कृपा कर उनको वृत्तियाँ दीं। उसने इन्हें मित्र बना लिया और हर कार्य में इनसे सलाह लेता। उसने दरबार को लिख कर अलीवर्दी के लिए योग्य मंसब तथा खाँ की पदवी मँगा दी। जब पटना का प्रांत बंगाल से संयुक्त होने से उसे मिला तब अलीवर्दी को वहाँ अपना प्रतिनिधि नियत कर दिया। इसने शुजाउद्दौला के समय ही पटना में घमंड का बर्ताव किया और बादशाह से महाबत खाँ की पदवी तथा अपने लिए पटना की स्वतंत्र सूबेदारी ले ली। शुजाउद्दौला उस प्रांत का अधिकार छोड़ने को बाध्य हुआ। शुजाउद्दौला की मृत्यु पर उसका पुत्र अलाउद्दौला सरफराज खाँ बंगाल का शासक हुआ और उसने कंजूसी से, जो सर्दारी के विरुद्ध है, बहुत से सैनिकों को निकाल दिया। अलीवर्दी ने सन् ११५२ हि० (१७३९ ई०) में बंगाल विजय करने का निश्चय कर दृढ़ सेना के साथ मुर्शिदाबाद को सर्फराज से भेंट करने के बहाने चला। इसने अपने भाई हाजी अहमद से, जो सर्फराज की सेवा में था,

अपनी इच्छा कह दी, जिसने इसकी इसमें सहायता की। जब महाबत जंग पास पहुँचा तब सर्फराज खाँ की निद्रा टूटी और वह थोड़ी सेना के साथ उससे मिलने गया। वह साधारण युद्ध कर सन् ११५३ हि० (१७४० ई०) में मारा गया। मुर्शिद कुली खाँ, जिसका उपनाम मखमूर था और जो शुजाउद्दौला का दामाद था, उस समय उड़ीसा का सूबेदार था। उसने एक सेना एकत्र की और अलीवर्दी से लड़ने आया पर (बालासोर के पास) परास्त हो कर दक्षिण में आसफजाह के पास चला गया। मीर हबीब अर्दिस्तानी, जो मुर्शिद कुली खाँ का बख्शी था, रघूभोंसला के पास गया, जो बरार का मुकासदार था और उसे बंगाल विजय करने पर बाध्य किया। रघूजी ने एक भारी सेना अपने दीवान भास्कर पंडित तथा अपने योग्यतम सेना-पति अली करावल के अधीन मीर हबीब के साथ अलीवर्दी पर बंगाल भेजा। एक महीने युद्ध होता रहा और तब अलीवर्दी ने संधि प्रस्ताव किया। उसने भास्कर पंडित, अली करावल तथा बाईस दूसरे सर्दारों को निमंत्रण दे कर अपने खेमे में बुलाया और सब को मरवा डाला। सेना भाग गई। रघू और मीर हबीब असफल लौट गए पर प्रति वर्ष बंगाल में लूट मार करने को सेना जाती थी। अंत में अलीवर्दी ने रघू को चौथ देना निश्चित किया और उसके बदले उड़ीसा दे कर प्रांत को नष्ट होने से बचाया। इसने तेरह वर्ष शासन किया। इसकी मृत्यु पर इसका दौहित्र सिराजुद्दौला दस महीने गद्दी पर रहा। इस बीच इसने कलकत्ता लूटा। इसके अनंतर यह फिरंगी टोप-वालों की सेना से परास्त हुआ और नाव में बैठ कर भागा।

जब यह राजमहल पहुँचा तब इसके एक सेवक निजाम ने इसे कैद कर लिया और इसके बख्शी मीर जाफर के पास इसे भेज दिया, जो फिरंगियों से मिला हुआ था और जिसका अलीवर्दी खाँ की बहिन से विवाह हुआ था। इसका सिर काट लिया गया और फिरंगियों की सहायता से मीरजाफर शम्शुद्दौला जाफर अली खाँ की पदवी प्राप्त कर बंगाल का शासक बन बैठा। सन् ११७२ हि० (सन् १७५८–९ ई०) में सुलतान आली गौहर की सेना जब पटना आई और उसे घेर लिया तब मीरजाफर का पुत्र सादिक अली खाँ प्रसिद्ध नाम मीरन उसको उठाने के लिए भेजा गया। यह युद्ध में दृढ़ रहा और घायल हुआ। जब शाहजादा मुर्शिदाबाद की ओर चला तब मीरन जल्दी लौट कर अपने पिता से जा मिला। इसके बाद यह पुर्निया गया जहाँ का नाएब सूबा खादिम हसन खाँ विद्रोही हो रहा था। जब वह बेतिया के पास पहुँचा, जो पुर्निया के अंतर्गत है, तब सन् ११७३ हि० (जुलाई १७६०) की एक रात्रि को उस पर बिजली गिरी और वह मर गया। तारीख है 'बनागह बर्क उफ्‌ताद: ब मीरन' (एकाएक बिजली मीरन पर गिरी, ११७३ हि०)।

इस घटना के बाद जाफर अली के दामाद कासिम अली खाँ ने अपने श्वसुर को हटा कर गद्‌दी पर अधिकार कर लिया। इस पर जाफर अली कलकत्ता चला गया। परंतु कासिम अली की ईसाइयों से नहीं बनी और जाफर अली द्वितीय बार शासक हुआ। कासिम अली चला आया और बादशाह तथा शुजाउद्दौला को बिहार पर चढ़ा लाया पर कुछ सफलता नहीं हुई।

बहुत दिनों तक यह अवसर की आशा में बादशाह के साथ रहा। जब सफलता नहीं मिली तब बाहरी प्रांत को चल दिया। यह नहीं पता कि उसका अंत कैसे हुआ। जाफरअली सन् ११७८ हि० (१७६५ ई०) में मरा और उसका लड़का नज्मुद्दौला गद्दी पर बैठा पर दूसरे ही वर्ष ११७९ हि० में वह भी मर गया। इसके अनंतर सैफुद्दौला कुछ वर्षों तक और मुबारकुद्दौला कुछ महीने तक शासक रहे। सन् ११८५ हि० (१७७१–७२ ई०) में कुल बंगाल और बिहार टोपवालों के हाथ में चला गया।

७१. अल्लाह कुली खाँ उजबेग

यह प्रसिद्ध अलंगतोश का पुत्र था, जो तूरान का कज्जाक और मशहूर घुड़सवार था। यह अलअमान खेल का था और जत्ती नाम था। एक युद्ध में इसने खुली छाती से आक्रमण किया था, जिससे अलंगतोश कहलाया, क्योंकि तुर्की में अलंग का अर्थ नग्न और तोश का अर्थ छाती है। यह बलख के शासक नज मुहम्मद खाँ का सेवक था और इसे जागीर में कहमर्द, उसका प्रांत तथा हजारा जात वगैरह मिला था। इसे वेतन कम मिलता था, इस लिए यह लुटेरा हो गया था और कंधार तथा गजनी तक लूट मार कर कालयापन करता था। खुरासान में भी यह बराबर धावे मारता था। फारस के शाह अपने खेतिहरों की इससे रक्षा नहीं कर सकते थे। क्रमशः यह डकैती से सैनिक कार्य करने लगा और अपनी शक्ति दूर तक फैलाई। हजारा जाति को दमन करने के लिए, जिनका निवास गजनी की सीमा के भीतर था और जो पहिले से गजनी के शासक को कर देते आए थे, इसने एक दुर्ग बनवाया। जहाँगीर के १९ वें वर्ष में इससे तथा खानजादा खाँ खानजमाँ से युद्ध हुआ, जो अपने पिता महाबत खाँ की ओर से काबुल में उसका प्रतिनिधि अध्यक्ष था। बहुत से उजबेग तथा अलअमान मारे गए और अलंगतोश परास्त हुआ। जहाँगीर की मृत्यु पर और शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में नज मुहम्मद ने यह विचार कर कि काबुल विजय

करने का यह अवसर है, एक सेना चढ़ाई के लिए तैयार की। अलंगतोश ने काबुल के पास के निवासियों को लूटने में कुछ उठा नहीं रखा। अंत में जब नज्र मुहम्मद की शक्ति का अंत होने को था और उसका सौभाग्य पस्त हो रहा था तब उसने बिना किसी दोष के अलंगतोश की जागीर लेकर अपने पुत्र सुभान कुली को दे दी। इसी प्रकार उसने अपने कई अफसरों को कष्ट दिया, जिससे अंत में वही हुआ जो होना था। नज्रमुहम्मद खाँ के अपने बड़े भाई इमाम कुली खाँ को गद्दी से हटाने तथा समरकंद और बुखारा को बलख में मिलाने के पहिले अल्लाह कुली अपने पिता से अलग हो कर शाहजहाँ की सेवा करने के विचार से १३ वें वर्ष में काबुल चला आया। बादशाह ने अपनी उदारता से उसको अटक के खजाने पर पाँच सहस्र रुपये का वेतन दिया और पाँच सहस्र रुपये काबुल के अध्यक्ष सईद खाँ को भेजा, जिसने उसको अगाऊ दिया था। १४ वें वर्ष यह जब सेवा में उपस्थित हुआ तब इसे एक हजारी मंसब मिला। शाहजहाँ ने बराबर तरक्की दे कर दो हजारी कर दिया। २२ वें वर्ष में रुस्तम खाँ तथा कुलीज खाँ के साथ कंधार में पारसीकों से युद्ध में प्रसिद्धि प्राप्त करने पर इसका पाँच सदी मंसब बढ़ाया गया। २४ वें वर्ष जब जाफर खाँ बिहार का प्रांताध्यक्ष हुआ तब यह भी उसी प्रांत में नियत हुआ। २६ वें वर्ष में यह दरबार आया और ढाई हजारी १५०० सवार का मंसबदार हुआ।

---

८०. अल्लह यार खाँ

इसका पिता इफ्तखार खाँ तुर्कमान था, जो जहाँगीर के समय बंगाल में नियत था। जब इस्माइल खाँ चिश्ती उस प्रांत का अध्यक्ष हुआ तब उसने शुजाअत खाँ शेख कबीर के अधीन एक सेना उसमान खाँ लोहानी पर भेजी, जो वहाँ विद्रोह मचाए हुए था। इफ्तखार खाँ बाएँ भाग का सर्दार नियत हुआ। जब युद्ध होने ही को था और दोनों सेना आमने सामने थीं तब उसमान ने एक लड़ाकू हाथी शाही हरावल पर रेला और उसे परास्त कर वह इफ्तिखार खाँ पर आया। यह डटा रहा और लड़ने लगा। अपने कई सैनिकों तथा सेवकों के मारे जाने पर यह भी मारा गया।

अल्लह यार अपने पिता की वीरता के कारण जहाँगीर का कृपापात्र हो गया और कुछ समय में अमीर बन गया। उस बादशाह के राज्य के अंत में और शाहजहाँ के आरंभ में इसका मंसब ढाई हजारी था तथा पुरानी चाल पर बंगाल की सहायक सेना में यह नियत हुआ। बंगाल के प्रांताध्यक्ष कासिम खाँ ने अपने लड़के इनायतुल्ला को उक्त खाँ के साथ हुगली बंदर लेने भेजा, जो बंगाल का एक प्रधान बंदर है। अधिकार तथा अध्यक्षता खाँ को मिली थी। इस विजय में इसने अच्छा कार्य किया और अपनी वीरता तथा सेनापतित्व से ५ वें वर्ष में कुफ्र की जड़ और फिरंगियों की हुकूमत खोद डाली, जिसने उस प्रांत में अपने रगोरेशा

तक फैला रखा था और नाकूस की जगह खुदा का अजाँ पुकारी जाने लगी। इसके पुरस्कार में सवार और पदवी में तरक्की हुई। इसके बाद इस्लाम खाँ (मशहदी) के शासनकाल में उस के भाई मीर जैनुद्दीन अली सयादत खाँ के साथ बंगाल के उत्तर कूच हाजू एक सेना ले गया और आसामियों को नष्ट करने में अच्छा प्रयत्न किया, जो कूच हाजू के राजा की सहायता करना चाहते थे तथा जिसने शाही राज्य की सीमा के कुछ महालों पर अधिकार कर लिया था। यह विद्रोहियों को अधीन कर लूट सहित सकुशल लौट आया। इसका मंसब तीन हजारी ३००० सवार का हो गया। २३ वें वर्ष सन् १०६० हि० (१६५० ई०) के आरंभ में उसी प्रांत में मरा। इसके लड़के तथा संबंधी थे। इसके पुत्रों असफंदियार, माहयार और जुल्फिकार को उस प्रांत में योग्य जागीर तथा नियुक्ति मिली थी। द्वितीय पुत्र अपने पिता के सामने ही २२ वें वर्ष में मर गया और तीसरा बाद को २६ वें वर्ष में मरा। अल्लह यार के भाई रहमान यार को २५ वें वर्ष में उस प्रांत के शासक शाहजादा मुहम्मद शुजाअ के कहने पर डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब और जहाँगीर नगर (ढाका) की फौजदारी मिली। इसके बाद इसे रशीद खाँ की पदवी मिली और २९ वें वर्ष में यह उड़ीसा में मुहम्मद शुजाअ का प्रतिनिधि नियत हुआ। इसने जाने में ढिलाई की और पहिले ही काम में दत्तचित्त रहा। जब शुजाअ औरंगजेब के आगे से भागा तथा वह दरिद्र हालत में बंगाल आया और मुअज्जम खाँ खानखानाँ को रोकने का व्यर्थ प्रयास किया तथा औरंगजेब के २ रे वर्ष

में वर्षा बिताने के लिए टांडा में ठहर गया, तब उसने सुना कि रशीद खाँ अलग हो रहा है और उस प्रांत के बहुत से जमींदार उससे मिल गए हैं तथा वह शाही बेड़ा लेकर मुअज्जम खाँ से मिलना चाहता है। इस पर उसने अपने बड़े लड़के जैनुद्दीन को सैयद आलम बारहा के साथ भेजा कि ढाका पहुँचने पर रहमान यार को मार डाले। बहाने तथा धोखे से एक दिन उसने उसको दरबार में बुलाया और अपने आदमियों को इशारा किया। वे अपने शस्त्र लेकर रहमान यार पर टूट पड़े और उसे मार डाला।

८१. अल्लह यार खाँ मीर तुजुक

यह औरंगजेब का उसकी शाहजादगी के समय से सेवक था और महाराज जसवंत सिंह के साथ के युद्ध में यह भी था। दाराशिकोह की पहिली लड़ाई में इसने ख्याति पाई। राज्य के प्रथम वर्ष में इसे खाँ की पदवी मिली और यह शाही पड़ाव से मुलतान के सेना-व्यय के लिए कोष ले गया, जो खलीलुल्लाह खाँ के अधीन दाराशिकोह का पीछा कर रही थी। मुहम्मद शुजाअ के साथ युद्ध होने पर यह साथ रहनेवाले सेवकों का दारोगा नियत हुआ और डेढ़ हजारी १५०० सवार का मंसब पाया। ५ वें वर्ष में होशदार खाँ के स्थान पर यह गुसलखाने का दारोगा बनाया गया तथा झंडा पाया। ६ ठे वर्ष सन् १०७३ हि० (१६६३ ई०) में मर गया।

८२. अशरफ खाँ ख्वाजा बर्खुरदार

यह महाबत खाँ का दामाद और नक्शबंदी मत का एक ख्वाजाजादा था। कहते हैं कि जब महाबत खाँ ने जहाँगीर को बिना सूचना दिए अपनी पुत्री का ख्वाजा से विवाह कर दिया तब उसने क्रुद्ध होकर ख्वाजा को अपने सामने बुलाकर काँटेदार कोड़े से पिटवाया था। जब महाबत खाँ शाहजहाँ से जा मिला तब ख्वाजा भी उसके साथ था और उसकी सेवा में भर्ती हो गया। शाहजहाँ के १ ले वर्ष में इसे एक हजारी ५०० सवार का मंसब मिला। ८ वें वर्ष में डेढ़ हजारी ८०० सवार का मंसब मिला। २३ वें वर्ष में ७०० घोड़े की वृद्धि होकर उसके जाती मंसब के बराबर हो गया। २८ वें वर्ष में यह दक्षिण के ऊसा दुर्ग का अध्यक्ष नियत हुआ और इसे दो हजारी २००० सवार का मंसब मिला। औरंगजेब के राज्यारंभ में इसे अशरफ खाँ की पदवी मिली। दूसरे वर्ष यह उक्त दुर्ग की अध्यक्षता से हटाए जाने पर दरबार आया। इसकी मृत्यु का सन् नहीं ज्ञात हुआ।

८३. अशरफ खाँ मीर मुंशी

इसका नाम मुहम्मद असगर था और यह मशहद के हुसेनी सैयदों में था। तबकाते अकबरी का लेखक इसे अरब शाही सैयद लिखता है और इन दोनों वर्णन में विशेष भेद भी नहीं है। अबुल्फजल का यह लिखना कि यह सब्जवार का था, अवश्य ही भ्रम है। वह पत्र-लेखन तथा शब्द-सौंदर्य समझने में कुशल था और शुद्धता से बाल भर भी नहीं हटा। यह सात प्रकार के खुशखत लिख सकता था। यह तआलीक तथा नस्ख तआलीक में विशेष कुशल तथा अद्वितीय था। जादू विज्ञान को काम में लाता था। यह हुमायूँ की सेवा में रहता था और मीर मुंशी कहलाता था। हिंदुस्तान के विजय पर यह मीर अर्ज और मीर माल नियत हुआ। तर्दी बेग खाँ तथा हेमू बक्काल के युद्ध में यह और दूसरे सर्दार भाग गए। जिस दिन तर्दी बेग खाँ को प्राणदंड मिला उसी दिन यह सुलतान अली अफजल खाँ के साथ बैरम खाँ द्वारा कैद किया गया और बाद को मक्का गया। ५ वें वर्ष सन् ९६८ हि० (१५६० ई०) में यह अकबर के पास उपस्थित हुआ जब वह मच्छीवाड़ा से बैरम खाँ का कार्य निपटाकर सिवालिक जा रहा था। इसके बाद इससे अच्छा व्यवहार हुआ और तरक्की होती रही। ६ ठे वर्ष अकबर के मालवा से लौटने पर इसे अशरफ खाँ की पदवी मिली। यह मुनइम खाँ खानखानाँ के साथ बंगाल जा गया। यह ९८३ हि०

(सन् १५७५–७६ ई०) में गौड़ में मलेरिया से मर गया, जो जलवायु की खराबी से कितने ही अच्छे सर्दारों का मृत्युस्थल हो चुका था। यह दो हजारी मंसब तक पहुँचा था। कविता की ओर इसकी रुचि थी और यह कभी-कभी कविता भी करता था। निम्नलिखित पद उसके हैं—

ऐ खुदा, क्रोध की आग में न मुझे जला।
मेरे हृदय-रूपी गृह में ईमान का दीपक प्रकाशित कर॥
यह सेवा-वस्त्र दोषों से फट गया है॥
क्षमा रूपी सूत्र से कृपापूर्वक सी दे।

आगरे में मौलाना मीर द्वारा बनवाए कूएँ पर इसने यह तारीख कही—

ईश्वर के मार्ग पर मुल्ला मीर ने दरिद्रों तथा याचकों की सहायता को कूप बनवाया। यदि कोई प्यासा कूप बनाने का साल पूछे तो कहो कि पवित्र स्थान का जल लो।

इसके पुत्र मीर मुजफ्फर ने अकबर के राज्य में योग्य मंसब पाया और ४८ वें वर्ष में अवध के शासन पर नियत हुआ। अशरफ खाँ के पौत्र हुसेनी और बुर्हानी शाहजहाँ के समय छोटे-छोटे पदों पर थे।

---

८४. अशरफ खाँ मीर मुहम्मद अशरफ

यह इस्लाम खाँ मशहदी का सबसे बड़ा पुत्र था। इसमें धार्मिक गुण भरे थे और मानवी गुणों के लिए भी यह प्रसिद्ध था। जब इसका पिता दक्षिण का नाजिम था तब उसने इसे बुर्हानपुर का अध्यक्ष नियुक्त किया था। जब इसके पिता की मृत्यु हुई तब पाँच सदी २०० सवार की वृद्धि हुई और इसका मंसब डेढ़ हजारी ५०० सवार का हो गया। २६ वें वर्ष यह दाग का दारोगा हुआ। जब २७ वें वर्ष में शाहजादा दारा शिकोह भारी सेना के साथ कंधार गया तब अशरफ को ५०० की वृद्धि मिली और यह एतमाद खाँ की पदवी के साथ उस सेना का दीवान नियत हुआ। इसके बाद शाही पुस्तकालय का अध्यक्ष हुआ। ३१ वें वर्ष के अंत में जब शाहजहाँ के राज्य का प्रायः अंत था तब यह सुलेमान शिकोह की सेना का बख्शी और दीवान नियत हुआ। वह मिर्जा राजा जयसिंह की अभिभावकता में शुजाअ के विरुद्ध भेजा गया था। सामूगढ़ युद्ध तथा दारा शिकोह के पराजय के बाद जब आलमगीर का संसार-विजय के लिए झंडा फहराने लगा तब अशरफ सुलेमान शिकोह का साथ छोड़कर इस्लामाबाद मथुरा से सेवा में उपस्थित हुआ और मंसब में वृद्धि पाई। उसी समय जब शाही सेना दारा शिकोह का पीछा करते हुए सतलज पार गई तब अशरफ लश्कर खाँ के स्थान पर काश्मीर का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ।

१० वें वर्ष में इसे खिलअत मिला और रिजवी खाँ बुखारी के स्थान पर यह बेगम साहिबा की रियासत का दीवान हुआ। १३ वें वर्ष में इसे तीन हजारी मंसब मिला और यह खानसामाँ नियत हुआ। इस कार्य पर यह बहुत दिन रहा और २१ वें वर्ष में वाकेआनवीस नियुक्त हुआ। २४ वें वर्ष में जब हिम्मत खाँ मीर बख्शी मर गया तब अशरफ प्रथम बख्शी नियत किया गया और इसने अच्छा कार्य किया। ९ ज़ीक़दा सन् १०९७ हि० (१७ सितम्बर सन् १६८६ ई०) को ३० वें वर्ष में यह मर गया, जब बीजापुर के विजय को पाँच दिन बीत चुके थे। यह शांति, दातृत्व तथा पवित्रता के गुणों से सुशोभित था। इसका सूफीमत की ओर झुकाव था इसलिए मौलाना की मसनवी से इसने एक संग्रह चुना था और उसको पढ़ने में आनंद पाता था। यह नस्ख, शिकस्त, तआलीक और नस्तालीक अच्छा लिखता था। इसके शिकस्त लेख को छोटे बड़े अपने लेखन का आदर्श मानते थे। इसके पुत्र न थे।

---

८५. असकर खाँ नज्मसानी

इसका नाम अब्दुल्ला बेग था। शाहजहाँ के राज्यकाल के १२ वें वर्ष में इसे योग्य मंसब तथा कालिंजर दुर्ग की अध्यक्षता मिली। इसके बाद यह दारा शिकोह की ओर हो गया और मीर बख्शी नियत हुआ। ३० वें वर्ष इसे असकर खाँ की पदवी मिली और जब महाराज जसवंत सिंह को पराजय कर औरंगजेब आगरे को चला तब यह दारा शिकोह की ओर से खलीलुल्ला खाँ के साथ धौलपुर उतार की रक्षा पर नियत हुआ और युद्ध के दिन यह हरावल में था। दूसरे युद्ध में यह गढ़ा पथली के पास खाई में था। जब दारा शिकोह बिना सूचना दिए घबड़ा कर गुजरात को चला गया तब अब्दुल्ला बेग ने यह समाचार रात्रि के अंत में सुना और सफशिकन खाँ से अमान पाकर उससे आ मिला। यह सेवा में ले लिया गया और इसे खिलअत मिला। इसके बाद यह खानखानाँ मुअज्जम खाँ के सहायकों में नियत होकर बंगाल गया। औरंगजेब के ८ वें वर्ष में यह बुजुर्ग उमेद खाँ के साथ चटगाँव लेने गया। इससे अधिक कुछ नहीं ज्ञात हुआ।

८६. असद् खाँ आसफुद्दौला जुम्लतुल्मुल्क

इसका नाम मुहम्मद इब्राहीम था और यह जुल्फिकार खाँ करामानल्लू का पुत्र था। यह सादिक खाँ मीर बख्शी का दौहित्र और यमीनुद्दौला आसफ खाँ का दामाद था। अपने यौवनकाल ही से सौंदर्य तथा वाह्य गुणों के कारण यह शाहजहाँ का कृपा पात्र था और अपने समसामयिकों में विशिष्ट स्थान रखता था। २७ वें वर्ष में इसे असद खाँ की पदवी मिली और पहिले मीर आख्त:बेगी तथा बाद को द्वितीय बख्शी नियत हुआ।

जब आलमगीर बादशाह हुआ तब इस पर बहुत कृपा हुई और द्वितीय बख्शी का कार्य बहुत दिनों तक करने पर ५ वें वर्ष में यह चार हजारी २००० सवार का मंसबदार हुआ। १३ वें वर्ष में मुअज्जम जाफर खाँ दीवान की मृत्यु पर यह नाएब दीवान नियत हुआ और जड़ाऊ छूरा तथा दो बीड़ा पान बादशाह के हाथ से पाया। आज्ञा दी गई कि यह शाहजादा मुहम्मद मुअज्जम का रिसाला लिखे और दियानत खाँ नजूमी उसका मुहर किया करे। उसी वर्ष यह द्वितीय बख्शी के पद पर से हटाया गया और १४ वें वर्ष लश्कर खाँ के स्थान पर यह मीर बख्शी नियत हुआ। १६ वें वर्ष के जी हिज्जा के प्रथम दिन असद खाँ ने नाएब दीवानी से त्यागपत्र दे दिया तब आज्ञा हुई कि खालसा का दीवान अमानत खाँ और दीवान-तन किफायत खाँ दोनों मुख्य दीवान के हस्ताक्षर के नीचे हस्ताक्षर कर दीवानी का कार्य

संपन्न करें। १९ वें वर्ष के १० शाबान को खाँ को जड़ाऊ दवात मिली और यह प्रधान अमात्य नियत हुआ। २० वें वर्ष के अंत में जब खानजहाँ बहादुर कोकल्ताश की भर्त्सना हुई और दक्षिण से हटाया गया तब वहाँ का कार्य दिलेर खाँ को अस्थायी रूप से तब तक के लिए सौंपा गया, जब तक नया प्रांताध्यक्ष नियत न हो। जुम्लतुलमुल्क भारी सेना तथा उपयुक्त सामान के साथ दक्षिण भेजा गया और औरंगाबाद पहुँचा। उस समय वहाँ का बहुत सा उपद्रव का वृत्तांत बादशाह को लिखा गया तब शाह आलम वहाँ का नाजिम नियत कर भेजा गया और असद खाँ लौटते हुए २२ वें वर्ष के आरंभ में अजमेर प्रांत के किशनगढ़ में बादशाह के पास उपस्थित हुआ। २५ वें वर्ष जब औरंगजेब शंभा जी भोसला को दंड देने के लिए दक्षिण गया, जिसने शाहजादा अकबर को शरण दिया था, तब जुम्लतुलमुल्क शाहजादा अजीमुद्दीन के साथ अजमेर में छोड़ा गया कि वहाँ के राजपूत कोई उपद्रव न मचावें। इसके बाद २७ वें वर्ष में इसने अहमदनगर में सेवा की और बीजापुर विजय के बाद वजीर नियत हुआ। तारीख है कि 'जेबाशुद: मसनदे वजारत' अर्थात् अमात्य की गद्दी सुशोभित हुई (सन् १०९७ हि०, १६८६ ई०)। गोलकुंडा पर अधिकार हो जाने पर एक हजार सवार बढ़ाए गए और इसका मंसब सात हजारी ७००० सवार का हो गया।

३४ वें वर्ष में यह कृष्णा नदी के उस पार के शत्रुओं को दंड देने, दुर्ग नंदबाल अर्थात् गाजीपुर लेने और हैदराबाद कर्णाटक के बालाघाट प्रांत के शासन का प्रबंध करने को नियत हुआ। नंदबाल लेने पर जुम्लतुल्मुल्क ने कड़प्पा में पड़ाव डाला जो कर्णाटक

की सीमा पर है। शाहजादा कामबख्श को वाकिनकेरा दुर्ग लेने की आज्ञा हुई। जब उस कार्य पर रूहुल्ला खाँ नियत हुआ, तब वह जुम्लतुल्मुल्क की सहायता को वाकिनकेरा गया। बादशाही सेना के कड़प्पा पहुँचने पर २७ वें वर्ष में आज्ञा मिली कि दोनों सेनाएँ जुल्फिकार खाँ की सहायता को जायँ, जो जिंजी घेरे हुए है। वहाँ पहुँचने के बाद शाहजादा और जुम्लतुल्मुल्क में कुछ बातों पर मनो-मालिन्य हो गया। कुप्रवृत्ति वाले कुछ मनुष्यों के प्रयास से यह और भी बढ़ा। कुछ गुप्त पत्र-व्यवहार के लिखित सबूत के जोर पर, जिन्हें फल न सोचने वाले मनुष्यों के द्वारा दुर्ग के अध्यक्ष रामाई के पास शाहजादे ने भेजे थे, जुम्लतुल्मुल्क ने बादशाह को लिखा और उसे अधिकार मिल गया कि वह राव दलपत बुंदेला को बराबर शाहजादे के पास रक्षा के लिए रखे और सवारियों, दीवान तथा अजनबियों के आने जाने को रोके। इसी समय दुर्ग में जाने वाले चरों से ज्ञात हुआ कि कामबख्श ने जुम्लतुल्मुल्क के द्वेष के कारण अंधेरी रात्रि में दुर्ग में चले जाने का निश्चय किया है। इस पर असद खाँ ने अपने पुत्र जुल्फिकार खाँ तथा अन्य अफसरों से राय कर शाहजादे के निवासस्थान में घमंड के साथ गया और उसे नजर कैद कर लिया। यह आज्ञानुसार जिंजी से हट गया और शाहजादे को दरबार भेज दिया। स्वयं यह सक्खर में ठहर गया। इसके बाद दरबार बुलाए जाने पर इसे शाहजादे के कारण कई बातों का भय हुआ। उपस्थित होने के दिन जब यह सलाम करने के स्थान पर गया तब खवासों के दारोगा मुलतफात खाँ ने, जो तख्त के पास खड़ा था, धीरे से

कहा कि 'क्षमा करने में जो प्रसन्नता है वह बदले में नहीं है।' बादशाह ने कहा कि 'तुमने अवसर पर ठीक कहा।' इसे बंदगी करने की आज्ञा दे दी और इसपर कृपा किया।

जब ४३ वें वर्ष सन् १११० हि० (१६९८–९९ ई०) में औरंगजेब ने इस्लामपुरी प्रसिद्ध नाम ब्रह्मपुरी में चार वर्ष तक ठहरने के बाद अपना संसार-विजयी पैर संसार-भ्रमणकारी घोड़े की रिकाब में धार्मिक युद्ध रूपी प्रशंसनीय विचार से रखा कि शिवा भोसला के दुर्गों पर अधिकार करे और उसके राज्य को लूटपाट कर नष्ट कर दे, उस समय अपनी पुत्री नवाब जीन-तुन्निसा बेगम को हरम के साथ वहीं छोड़ा और जुमलतुल्मुल्क को रक्षा का भार दिया। ४५ वें वर्ष में खेलना के कार्य के आरंभ में यह दरबार बुला लिया गया और इसे अमीरुल् उमरा की पदवी मिली। फतहुल्ला खाँ, हमीदुद्दीन खाँ और राजा जयसिंह खेलना दुर्ग लेने में इसके अधीन नियत हुए। इसके विजय होने पर अमीरुल् उमरा की बीमारी के कारण आज्ञा निकली कि यह दीवाने अदालत के भीतर से, जिसे दीवाने मजालिम नाम दिया गया था, जाकर हुजरा से एक हाथ हटकर कठघरे में बैठे। तीन दिन यह वहाँ बैठा था, जिसके बाद इसे छड़ी मिली।

औरंगजेब की मृत्यु पर शाहजादा मुहम्मद आजमशाह ने भी असद खाँ की प्रतिष्ठा की और इसे वजीर बनाया। जब बहादुर शाह से लड़ने के लिए यह ग्वालियर से निकला तब इसे सम्मान के साथ वहीं छोड़ा और अपनी सहोदरा भगिनी

जीनतुन्निसा बेगम को भी वहीं रहने दिया, जिसे बाद को बहादुर शाह ने बेगम साहिबा की पदवी दी। जब ईश्वर की कृपा से विजय की हवा बहादुर शाह के झंडों को फहराने लगी तब उस नम्र बादशाह ने असद खाँ को उसकी पुरानी सेवा और विश्वसनीय पद का विचार कर दो बार बुला भेजा। कुछ दरबारियों ने कहा भी कि यह आजमशाह का मुख्य साथी था। बादशाह ने उत्तर दिया कि 'उस उपद्रव-काल में यदि मेरे लड़के दक्षिण में होते तो उन्हें भी अपने चचा का साथ देना पड़ता।' सेवा में उपस्थित होने पर इसे निजामुल्मुल्क आसफुद्दौला की पदवी मिली, वकील नियत हुआ, जो पहिले समय में नैतिक तथा कोष के कुल कार्य का स्वामी होता था, और बादशाह के सामने तक बाजा बजवाने का अधिकार पाया। मुनइम खाँ खानखानाँ को, जो स्थायी वजीर आजम अपने अनेक स्वत्वों को साबित कर हो चुका था, संतुष्ट रखना भी अत्यंत महत्व का कार्य था और यह उचित था कि वजीर दीवान के सिरे पर खड़े रह कर हस्ताक्षर के लिए कागजात वकील मुतलक को दे, जैसा कि अन्य विभागों के मुख्य अफसर करते थे, पर खानखानाँ को यह ठीक नहीं जँचा। तब यह प्रबंध हुआ कि आसफुद्दौला वृद्ध हो गए और आराम करते हैं इसलिए वह दिल्ली जायँ जहाँ शांति से दिन व्यतीत करें और जुल्फिकार खाँ वकालत का कार्य उसका प्रतिनिधि बन कर करे। खानखानाँ का मान भी अक्षुण्ण रखने के लिए वजारत की मुहर के बाद वकालत की मुहर कागजात और आज्ञाओं पर करने के सिवा और कोई वकालत का कार्य नहीं सौंपा गया। आसफुद्दौला ने राजधानी में पाँच

बार सफलता का बाजा बजाया और धनी जीवन व्यतीत करने के लिए उसके पास खूब संपत्ति थी।

जब जहाँदार शाह बादशाह हुआ और जुल्फिकार खाँ साम्राज्य के सब कार्यों का प्रधान हो गया तब असद खाँ ने अपने पद के सब चिह्न त्याग दिए। दो तीन बार यह जब दरबार में गया तब इसकी पालकी दीवाने आम तक गई और वह तख्त के पास बैठा। बादशाह बातचीत में उसे चाचा कहते थे। जहाँदार शाह पराजित होने और आगरे से भागने पर आसफुद्दौला के घर आया और सेना एकत्र कर दूसरा प्रयत्न करने का विचार किया। जुल्फिकार खाँ भी आया और वह भी यही चाहता था पर असद खाँ ने, जो अनुभवी वृद्ध, अच्छी प्रकृति तथा आराम पसंद था, इसका समर्थन नहीं किया और पुत्र से कहा कि 'मुइज्जुद्दीन पियक्कड़, व्यसनी, कुसंग-सेवी तथा अगुणग्राहक है और राज्य करने योग्य नहीं है। ऐसे आदमी का साथ देना, सोए हुए झगड़े को जगाना और देश को हानि पहुँचाना तथा दुनिया को नष्ट करना है। ईश्वर जानता है कि अंत क्या होगा? यही उचित है कि तैमूरी वंश का जो कोई राज्य के योग्य हो उसका साथ दें।' उसी दिन इसने जहाँदार शाह को कैद कर दुर्ग में भेज दिया। वह नहीं जानता था कि भाग्य उसके कार्य पर हँस रहा है तथा यह विचार और स्वार्थ-पर बुद्धि ही उसके पुत्र के प्राणहानि और घर के ऐश्वर्य तथा मान के नाश का कारण होगी। भाग्य और उसके रहस्य को समझना मनुष्य की शक्ति के परे है, इसलिए ऐसे विचार के लिए निर्बल मनुष्य क्यों निंदनीय या भर्त्सना-योग्य हो? समय के

उपयुक्त कार्य और अंत के लिए जो सर्वोत्तम हो वह एक ही वस्तु है। पर लोग कहते हैं कि आत्म-सम्मान और प्रसिद्धि का ध्यान, न्याय तथा मानवीयता भी नहीं चाहती थी कि जब हिंदुस्तान का बादशाह, अपने पूरे स्वत्वों के साथ, जिस पर उसने बहुत सी कृपाएँ की थीं, उसके घर पर विश्वास के साथ ऐसे कष्ट के समय आवे और उससे आगे के कार्य में सम्मति ले तब वह उसे पकड़ कर शत्रु के हाथ कुव्यवहार के लिए दे दे। यदि वह स्वयं वार्द्धक्य के कारण अशक्त था तो उसे अपने अनुगामियों के साथ चले जाने देता। उसके बाद उसका नष्ट भाग्य उसे चाहे जिस जंगल या रेगिस्तान में ले जाता। असद खाँ को उसे जिस मार्ग पर वह जा रहा था उसपर ढकेल देना नहीं चाहता था।

अस्तु, जब मुहम्मद फर्रुखसियर ने देखा कि पराजित बादशाह तथा वजीर राजधानी चले गए, तब उसे संशय हुआ कि वे फिर न लौटें और युद्ध हो। इसलिए उसने मीर जुमला समरकंदी के हाथ पिता-पुत्र को सान्त्वना के पत्र भेजे और चापलूसी तथा प्रतिज्ञा से उनके घबड़ाए दिमाग को शांति पहुँचाई। कहते हैं कि बारहा सैयद इस बारे में बादशाह की सम्मति में शरीक नहीं थे और इस विषय में वे कुछ नहीं जानते थे। इसके विरुद्ध वे समझते थे कि पिता-पुत्र कुछ देर में आवेंगे, इसलिए क्यों न उन्हें अपना कृतज्ञ बनाया जाय। इन दोनों ने उनको समाचार भेजा कि वे उनकी मध्यस्थता में सेवा में आ जाँय, जिससे उनको कुछ भी हानि न पहुँचेगी। भाग्य के दूत कुछ और चाहते थे इसलिए पिता-पुत्र बादशाह की झूठी प्रतिज्ञा में

भूले रह गए और सैयदों की बात पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया प्रत्युत् उनके द्वारा प्रार्थना करने में अपनी हानि समझी। मीर जुमला ने जब सैयदों के समाचार की बात सुनी तो तुरंत तकर्रुब खाँ शीराजी को आसफुद्दौला के पास भेजा कि यदि वे अपने को बादशाह का कृपापात्र बनाना चाहते हैं तो वे कुतुबुल मुल्क और अमीरुल् उमरा का पक्ष ग्रहण करने से अलग रहें। कहते हैं कि उसने कुरान पर शपथ तक खाया था। संक्षेपतः जब बादशाह बारः पुनः दिल्ली पहुँचे तब आसफुद्दौला और जुल्फिकार खाँ दोनों उसके पास गए और गंभीरता के साथ सेवा में उपस्थित हुए। बादशाह ने इन दोनों को जवाहिरात और खिलअत दिए और अच्छे अच्छे शब्दों से इनकी खातिर कर छुट्टी दे दी। उसने जुल्फिकार खाँ को आज्ञा दी कि कुछ कार्य के लिए वह थोड़ी देर ठहर जाय। आसफुद्दौला ने समझ लिया कि कुछ अनिष्ट होने वाला है और वह दुखित हृदय तथा फूली आँखों के साथ घर आया। उसी दिन जुल्फिकार खाँ मारा गया, जैसा कि उसके जीवन वृत्तांत में लिखा गया है। दूसरे दिन आसफ खाँ कैद हुआ और इसका घर जब्त हो गया। इसके पास कुछ नहीं बच गया था केवल कोष से सौ रुपये रोज इसे कालयापन को मिलते थे। राजगद्दी के दिन इसको रत्न और खिलअत भेजना चाहते थे पर हुसेन अली अमीरुल् उमरा ने उसे स्वयं ले जाने का विचार प्रकट किया। कहते हैं कि जब अमीरुल् उमरा ने पुरानी प्रथानुसार अभिवादन किया तब असद खाँ ने भी पुराने चाल के अनुसार उसके आते और जाते अपना हाथ छाती पर रखा और अपने हाथ से पान देकर बिदा किया। ५ वें वर्ष

सन् ११२९ हि० (१७१७ ई०) में ९४ वर्ष की अवस्था में इस दु:खमय संसार से बिदा हुआ। ऐसे अच्छे स्वभाव का दूसरा अमीर, जिससे बहुत कम हानि किसी को पहुँची हो और जो सहिष्णु, वाह्य सौंदर्य तथा शील से विभूषित हो और जो अपने छोटों से प्रेम पूर्ण तथा नम्र व्यवहार और समान से दृढ़ तथा सम्मान-पूर्ण व्यवहार करता हो, इसके समसामयिकों में नहीं मिल सकता। अपनी संसार यात्रा के आरंभ ही से यह सफल होता आया और अपने इच्छा रूपी प्यालों में बराबर छक्के डालता रहा। उस कपटपूर्ण पासेवाले आकाश ने अंतिम हाथ कपट का खेला और दुरंगे कज्जाक ने दो घोड़ों का आक्रमण उसके शांतिमय गृह पर करा दिया जब वह उस तक पहुँच चुका था। कठोर आकाश से प्रसन्नता का प्रातः काल नहीं चमकता जब तक कि संध्या अंधकारमय नहीं होती। मीठा ग्रास थाली में नहीं दीखता जब तक कि उसमें सैकड़ों ग्रास विष न मिले हों। उस कृतघ्नी ने किस मिले हुए को दूर नहीं कर दिया! जिसके साथ बैठा उसे झट उठा दिया।

शैर

आकाश शीघ्र अपनी कृपाओं के लिए पश्चात्ताप करता है।
सूर्य सुबह एक रोटी देता है और संध्या को ले लेता है॥

जुम्लतुल् मुल्क के गुणों के विषय में कहा जाता है कि जब औरंगजेब ४७ वें वर्ष में *कोंदाना दुर्ग, जिसका बख्शिदए बख्श* नाम रखा गया था, लिए जाने पर मुहिम्माबाद पूना वर्षा व्यतीत करने आया तब दैवात् अमीरुल् उमरा के खेमे नीची

भूमि पर थे और खालसा तथा तन के दीवान इनायतुल्ला खाँ का ऊँची भूमि पर था। कुछ दिन बीतने पर जब उक्त खाँ ने अपने जनाने भाग के चारों ओर कनात खिंचवाई, तब अमीरुल् उमरा के खोजा बसंत ने, जो अंतःपुर का दारोगा था, इनायतुल्ला खाँ को समाचार भेजा कि वह उस स्थान को खाली कर दे क्योंकि नवाब के खेमे वहाँ लगेंगे। खाँ ने कहा कि 'ठीक है, पर कुछ समय दो तो दूसरा स्थान ढूँढ लूँ।' खोजे ने, जो हठी तुर्क था, कहा कि नहीं अभी खाली कर दो। लाचार इनायतुल्ला खाँ दूसरे स्थान पर चला गया। बादशाह को जब यह मालूम हुआ तो हमीदुद्दीन खाँ के द्वारा जुम्लतुल् मुल्क को यह आज्ञा भेजी कि इनायत खाँ को वही स्थान दे और स्वयं दूसरे स्थान पर हट जाय। असद खाँ ने कुछ देर की तब आज्ञा हुई कि वह इनायतुल्ला के यहाँ जाकर क्षमा माँगे। उस समय दैवयोग से इनायतुल्ला हम्माम में था। जुम्लतुल् मुल्क आकर दीवान खाने में बैठ रहा और जब इनायतुल्ला खाँ जल्दी से बाहर आया तब अमीरुल् उमरा उसे हाथ पकड़ कर अपने खेमे में लाया और नौ थान कपड़े भेंट देकर उससे क्षमा माँगली। इसने उसपर कृपा तथा मित्रता दिखलाई और बाद को भी कभी अप्रसन्नता या रंज नहीं प्रगट किया प्रत्युत् अधिक कृपा दिखलाता रहा। ऐसे भी मनुष्य आकाश के नीचे रहे। कहते हैं कि इसके हरम तथा गाने बजाने वालों का व्यय इतना अधिक था कि इसकी आय से पूरा नहीं पड़ता था। यह अर्श रोग के कारण कभी, जहाँ तक हो सकता था, जमीन पर नहीं बैठता था। गृह पर यह सदा कोच पर पड़ा रहता। जुल्फिकार खाँ के सिवा नवल बाई से, जो रानी

कहलाती थी, इसे एक लड़का इनायत खाँ था। यह अच्छी लिपि लिखता था। यह रत्नागार का निरीक्षक हुआ तथा इसे उपयुक्त मंसब मिला। बादशाह की आज्ञा से इसने हैदराबाद के अबुल् हसन की लड़की से ब्याह किया पर यह कुमार्ग में पड़ गया और पागल हो गया। इसे राजधानी जाने की आज्ञा मिली और वहाँ अयोग्य कार्य किया। दिल्ली से बराबर इसकी बुराई लिखकर आती। वहीं यह इसी हालत में मर गया। इसके पुत्र सालिह खाँ को जहाँदार शाह के समय एतकाद खाँ की पदवी और अच्छा मंसब मिला। इसका भाई मिर्जा काजिम नाचने गाने वालों का साथ कर नाम खो बैठा और कुकर्मों से जीवन के लिए अप्रतिष्ठा का द्वार खोल दिया।

८७. असद् खाँ मामूरी

यह अब्दुल् वहाब खाँ का पुत्र था, जिसका 'इनायती' उपनाम था और जो मुजफ्फर खाँ मामूरी का छोटा भाई था। यह भी अच्छे लेखन कला के कारण उच्चपदस्थ हुआ था और इसने एक दीवान लिखा है। जहाँगीर के समय में असद् खाँ पहिले कंधार का अध्यक्ष था। इसके बाद जब खुसरो का पुत्र सुलतान दावर बख्श खान-आजम की अभिभावकता में गुजरात का शासक नियत हुआ तब यह उसका बख्शी हुआ और वहीं मर गया। असद् खाँ सैनिक कार्य पसंद करता था। जब यह अपने चाचा मुजफ्फर के साथ ठट्टा गया तब अगूनिया जाति के युवकों को अपनी सेवा में लेकर साहस के लिए प्रसिद्ध हुआ। बादशाह की भी इस पर दृष्टि पड़ चुकी थी और जब महाबत खाँ की अभिभावकता में सुलतान पर्वेज शाहजहाँ का पीछा करने गया तब यह भी सहायकों में था। महाबत खाँ ने बुर्हानपुर लौटने पर इसे एलिचपुर का अध्यक्ष बनाया। जब दक्षिण के अन्य अफसर और मंसबदार मुल्ला मुहम्मद लारी आदिल शाही की सहायता को नियत हुए तब यह भी उनमें था। दैवात् भातुरी की लड़ाई में आदिल शाह पूर्णतया परास्त हुआ, जो मुल्ला मुहम्मद और मलिक अंबर के बीच हुई थी और कुछ शाही अफसर कैद हो गए। असद खाँ अपनी फुर्ती से मैदान से निकल आया और बुर्हानपुर पहुँचा। जब शाहजहाँ ने बंगाल से लौटकर इस दुर्ग को घेर लिया तब

राव रत्न के साथ इसने उसकी रक्षा की। शाहजादा को घेरा उठाना पड़ा और असद खाँ दक्षिण का बख्शी बनाया गया।

कहते हैं कि खानजहाँ लोदी, जो सुलतान पर्वेज की मृत्यु पर दक्षिण का प्रांताध्यक्ष नियुक्त हुआ, फाजिल खाँ आका अफजल को अभ्युत्थान देता था पर असद खाँ के लिए नहीं उठता था, जिससे इसको बहुत अप्रसन्नता हुई और कहता कि 'एक मुग़ल को अभ्युत्थान देता है पर मुझ सैयद को नहीं देता।' शाहजहाँ के राज्यारंभ में यह उस पद से हटाया गया और १४ हाथी पेशकश देकर दरबार पहुँचा। बुर्हानपुर के घेरे के समय इसके आदमी शाहजहाँ के सैनिकों के सामने गाली बके थे, जिससे यह बहुत डरा हुआ था पर शाहजहाँ दया तथा क्षमा का सागर था इसलिए इसका अच्छा स्वागत किया और सांत्वना दी। २ रे वर्ष यह लक्खी जंगल का फौजदार नियत हुआ और ढाई हजारी २५०० सवार का मंसबदार ५०० जाती तरक्की मिलने से हो गया ४ थे वर्ष सन् १०४१ हि० (१६३२ ई०) में लाहौर में मरा।

८८. असालत खाँ मिर्जा मुहम्मद्

यह मशहद के मिर्जा बदीअ का पुत्र था, जो उस पवित्र स्थान के बड़े सैयदों में से था। इसके पूर्वज पवित्र आठवें इमाम अली बिन मूसा रजा के मकबरे के रक्षक थे। मिर्जा १९ वें वर्ष में हिंदुस्तान आया और शाहजहाँ की सेवा में भर्ती हो गया। इसे योग्य पद मिला और इसका विवाह शाहनवाज खाँ सफवी की पुत्री से हुआ। २२ वें वर्ष जब शाहजादा मुरादबख्श दक्षिण का प्रांताध्यक्ष नियत होकर वहाँ गया तब शाहनवाज खाँ सफवी, जो इस्लाम खाँ की मृत्यु के बाद उस प्रांत की रक्षा को नियत हुआ था, शाहजादे का वकील तथा अभिभावक नियुक्त हुआ। मिर्जा भी अपने विवाह के कारण शाहनवाज के साथ गया और शाहजादा की प्रार्थना पर इसे दो हजारी १००० सवार का मंसब मिला। शाहनवाज खाँ ने इसे दक्षिण का सेनापति बनाकर देवगढ़ के राजा पर भेजा। मिर्जा पहिले पारसीय शाहों के दरबारी नियम का मानने वाला था, जिससे बादशाही सेवक, जो अपने को इसके बराबर समझते थे तथा साथी-सेवक मानते थे, इससे अप्रसन्न थे। इसके बाद इसने हिंदुस्तानी चाल पकड़ी और अपनी पहिली नापसंदी को ठीक करने का प्रयत्न किया। यह बुद्धिमान था इसलिए इसने शीघ्र उक्त प्रांत को विजय कर वहाँ शांति स्थापित की। इसके बाद शाहनवाज खाँ वहाँ पहुँचा और मिर्जा के विचारानुसार देवगढ़ का प्रबंध किया। जब यह बुर्हान-पुर लौटा तब पुत्र होने के कारण बड़ी मजलिस की, जिसमें

शाहजादा मुराद बख्श तथा सभी अफसरों को निमंत्रित किया और खूब सोना लुटाया। जब २३ वें वर्ष में मालवा की सूबेदारी शाहनवाज खाँ को मिली तब मिर्जा उस प्रांत में नियत हुआ और उसे मंदसोर की फौजदारी तथा जागीर मिली। २५ वें वर्ष यह मांडू का फौजदार हुआ। जब ३० वें वर्ष शाहजादा औरंगजेब को आदिलशाही राज्य चौपट करने की आज्ञा मिली तब मिर्जा उसी के साथ नियत हुआ। वह कार्य अभी पूरा नहीं हुआ था कि समय पलटा और भारी बादशाहत में उपद्रव तथा अशांति मच गई। मिर्जा दक्षिण में रह गया। जब औरंगजेब बुर्हानपुर से आगरे को चला तब मिर्जा को असालत खाँ की पदवी और चार हजारी २००० सवार की पदवी, डंका तथा निशान दिया। राज्य का आरंभ हो जाने पर ५०० सवार मंसब में बढ़े और यह दक्षिण भेजा गया। यह शाहजादे मुहम्मद अकबर को, जो दूध पीता बच्चा था, महलसरा के साथ राजधानी ले गया। इसी समय यह एकांतवासी हो गया पर ३ रे वर्ष फिर कृपापात्र हो गया और पाँच हजारी ३००० सवार का मंसब पाकर कासिम खाँ के स्थान पर मुरादाबाद का फौजदार नियत हुआ। ७ वें वर्ष १००० सवार और बढ़े। बहुत बीमार रह कर ९ वें वर्ष सन् १०७९ हि० (१६६९ ई०) के अंत में यह मरा। इसका भाई मीर महमूद १४ वें वर्ष आलमगीरी में फारस से दरबार आया और पाँच हजारी ४००० सवार का मंसब तथा अकादत खाँ की पदवी पाई। रूहुल्ला खाँ प्रथम की पुत्री काबुली बेगम का इससे विवाह हुआ पर यह शीघ्र ही मर गया।

८६. असालत खाँ मीर अब्दुल् हादी

जहाँगीर के राज्य के २ रे वर्ष मीर मीरान यज्दी अपने पिता खलीलुल्ला के साथ फारस से वहाँ के अत्याचार के कारण शांति-निकेतन भारत चला आया। मीर खलीलुल्ला से शाह अब्बास सफवी अप्रसन्न हो गया और इससे ऐसा क्रुद्ध हुआ कि मीर का सौभाग्य दिवस अंधकारमय रात्रि में बदल गया। निराश्रय होकर वह विदेश भागा। जब वह खतरे की जगह से अर्द्ध जीवित अवस्था में निकल भागा तब वह अपने पौत्रों अब्दुलहादी और खलीलुल्ला को उनके सुकुमार वय तथा समय के अभाव के कारण नहीं ला सका। इसलिए वे फारस ही में रह गए। जब खानआलम राजदूत होकर फारस गया तब जहाँगीर ने मीर मीरान पर अपनी कृपा तथा स्नेह के कारण पत्र में इन लड़कों के विषय में लिखा और खानआलम को उन्हें लाने के लिए कह दिया। शाह ने उन दो पीड़ितों को हिंदुस्तान भेज दिया और इनके कष्ट चौखट चूमने पर धुल गए।

शाहजहाँ के ३ रे वर्ष में मीर अब्दुल् हादी कृपापात्र हो गया और असालत खाँ की पदवी पाई। अपने अच्छे गुणों, राजभक्ति तथा उत्साह के कारण यह विश्वासपात्र हो गया और ५ वें वर्ष में यमीनुद्दौला के साथ आदिल शाह को दंड देने और बीजापुर लूटने भेजा गया। जब वे भालकी पहुँचे और उसे घेर लिया तब दुर्गवाले तोप बंदूक दिन में छोड़ कर रात्रि के अंधकार

में वह स्थान त्याग कर ऐसी जगह से चले गए जहाँ मोर्चा नहीं था। असालत खाँ, जो इस चढ़ाई में प्रधान था, दुर्ग के ऊपर चढ़ गया, जहाँ लकड़ी का मचान बना था और जिसके नीचे आतिशबाजी के सामान भरे थे। एकाएक आग लग जाने से असालत खाँ मचान सहित आकाश में उड़ गया और एक बड़े मकान में जा गिरा। उसके एक हाथ तथा मुख का कुछ अंश जल गया पर वह ईश्वर की कृपा से बच गया। ६ ठे वर्ष इसका डेढ़ हजारी ५०० सवार का मंसब हो गया और यह उस सेना का बख्शी नियत हुआ, जो शाह शुजाअ के अधीन परेंदा दुर्ग जा रही थी। उसमें अपनी कार्य शक्ति से ऐसी ख्याति पाई कि महाबत खाँ अमीरुल् उमरा अपनी टेढ़ी प्रकृति के होते भी इसकी ओर आकृष्ट हुआ और इसे रसीद तथा आज्ञाओं पर हस्ताक्षर करने का अधिकार दिया और अपना सहकारी बना लिया। जब यह उस चढ़ाई पर से दरबार आया तब ८ वें वर्ष बाकिर खाँ नज्मसानी के स्थान पर दिल्ली का अध्यक्ष नियत हुआ। इसके मंसब में डेढ़हजारी जात और १७०० सवार बढ़ाकर, जो उस प्रांत के प्रबंध के लिए आवश्यक था, इसे तीन हजारी २५०० सवार का मंसबदार बनाकर झंडा, एक हाथी और खास खिलअत दिया। जब मऊ के भूम्याधिकारी जगता ने कृतघ्न हो कर विद्रोह किया तब तीस सहस्र सवार की तीन सेनाएँ उसपर भेजी गईं, जिनमें एक का सेनाध्यक्ष असालत खाँ था। खाँ ने नूरपुर घेर लिया और प्रतिदिन घेरा अधिक कड़ा होता जाता था। मऊ के ले लिए जाने पर, जिस पर जगता का पूरा विश्वास था, नूरपुर की भी सेना अर्द्धरात्रि को भाग गई और उस पर सहज ही अधिकार हो

गया। इसके बाद असालत खाँ औरों के साथ तारागढ़ लेने गया। यह कार्य भी पूरा हो गया। १८ वें वर्ष यह सलाबत खाँ के स्थान पर मीर बख्शी के ऊँचे पद पर नियत हुआ।

जब बादशाह ने बलख विजय करना निश्चय किया तब अमीरुल् उमरा को, जो काबुल का प्रांताध्यक्ष था, आज्ञा भेजी कि बदख्शाँ की सेना के पहुँचने के पहिले जितने भाग पर हो सके अधिकार कर ले। सन् १०५५ हि० (१६४५ ई०) में असालत खाँ और कई अन्य मंसबदार तथा अहदी काबुल भेजे गए कि चगत्ता, काबुल तथा दर्रों की जातियों से काम करनेवाले आदमी सेना के लिए भर्ती करें। अमीरुल् उमरा उनकी जाँच करे और कुछ को मंसब देकर बाकी को अहदियों में भर्ती कर ले। इन लोगों को यह भी काम मिला था कि तूरान के रास्तों को देखकर सबसे सुगम मार्ग को ठीक करें। असालत खाँ के यह सब कार्य कर लेने तथा शाही सेना के पहुँचने पर १९ वें वर्ष में अमीरुल् उमरा इसके साथ गोरबंद गया और बदख्शाँ पर एक प्रयत्न करना चाहा। जब वे कुल्हार पहुँचे तब अत्यंत दुर्गम मार्ग मिला और वहाँ सामान भी नहीं मिल सकता था। अमीरुल् उमरा की राय से असालत खाँ दस सहस्र सवारों तथा आठ दिन के सामान के साथ खनजान और अंदराब पर आक्रमण करने गया। हिंदू कोह पार कर अंदराब पहुँच कर वहाँ के निवासियों के असंख्य पशु तथा दूसरे सामान लूट लिया। अली दानिश मंदी तथा यलाक करमकी के कुछ लोगों को और इस्माइल अताई तथा मौदूदी के ख्वाजा जादों और अंदराब के हजारा के मीर कासिम बेग को साथ लेकर उतनी ही फुर्ती से लौट आया।

जब इस वर्ष शाहजादा मुराद बख्श विजयी सेना के साथ बलख भेजा गया तब असालत खाँ दाएँ भाग के मध्य में नियत हुआ। इसने काबुल से आगे शीघ्रता से कूच किया और मार्ग के संकुचित भागों को चौड़ा करने में उत्साह तथा शक्ति से काम लिया। शाही सेना के बलख पहुँचने पर २०वें वर्ष के आरंभ में इसने बहादुर खाँ रुहेला के साथ तूरान के शासक नजर मुहम्मद खाँ का पीछा किया और रेगिस्तान के आवारों को भगा दिया। इसका मंसब एक हजार बढ़कर पाँच हजारी हो गया। जब शाहजादे ने उस प्रांत में रहना ठीक नहीं समझा तब वह लौट गया और वहाँ का प्रबंध बहादुर खाँ तथा असालत खाँ को सौंप गया। पहिले को विद्रोहियों को दंड देने का तथा दूसरे को सेना और कोष का कार्य तथा किसानों की रक्षा का भार दिया गया। २० वें वर्ष के अंत में सन् १०५७ हि० (१६९७ ई०) में खूशी लबचाक पाँच सहस्र अलअमान सवारों के साथ बुखारा के शासक अब्दुल् अजीज खाँ की आज्ञा से दर्रागज और शादमान पर आक्रमण करने के लिए अज्ञात उतार से पार उतरा, जहाँ शाही सेना के पशु चरते थे। असालत खाँ ने इनको दंड देना अपना कार्य समझा और इसलिए फुर्ती से चलकर उनपर जा पहुँचा, जब वे कुछ पशु लेकर जा रहे थे। उसने रुस्तम की तरह आक्रमण किया और बहुतों को मार कर पशुओं को छुड़ा लिया। इसके बाद तलवार से बचे हुओं का पीछा किया। रात्रि हो जाने पर यह दर्रागज में ठहर गया और स्नान के लिए अपना चिलता उतार डाला। हवा लग जाने से ज्वर आ गया और तब बलख लौटा। इससे यह निर्बल हो खाट पर पड़ गया

और दो सप्ताह में मर गया। वह जीवन्मार्ग पर चालीस मंजिल नहीं पूरी कर चुका था पर इसी बीच बहुत से अच्छे कार्य किए थे इसलिए बादशाह ने इसकी मृत्यु पर शोक प्रकाश किया और कहा कि यदि मृत्यु उसे समय देती तो वह और बड़ा कार्य करता और ऊँचे पद पर पहुँचता। 'असालत खाँ अपने गुणों तथा सच्चरित्रता के लिए प्रसिद्ध था और नम्रता तथा सुशीलता के लिए अद्वितीय था। इसने कड़ी भाषा कभी नहीं निकाली और किसी को हानि नहीं पहुँचाई। साहस और सुसम्मति साथ साथ रहती। इसके लड़के सुलतान हुसेन इफ्तखार खाँ, मुहम्मद इब्राहीम मुल्तफत खाँ और बहाउद्दीन थे। उनका यथा स्थान उल्लेख हुआ है। अंतिम ने विशेष प्रसिद्धि नहीं पाई।

६०. अहमद नायता, मुल्ला

नवाएत खेल नवागंतुक था और अरब के अच्छे वंशों में से था। नवागंतुक से बिगड़ कर नवाएत हो गया। कामूस का लेखक कहता है कि नवाती समुद्री मल्लाह हैं और उसका एकवचन नोती है। पर यह स्पष्ट है कि व्याकरण के अनुसार नायत या नायतः का बहुवचन नवाएत है। नवाती से नवाएत का कोई संबंध नहीं है। इसलिए साधारण लोग जो नवाएत को मल्लाह कहते हैं और कामूस पर भरोसा करते हैं भूल करते हैं। कहते हैं कि यूसुफ के पुत्र अत्याचारी हज्जाज ने वहाँ के वंशजात, पवित्र तथा विद्वान पुरुषों को नष्ट भ्रष्ट करने का निश्चय किया तब बहुत से मनुष्य जिन्हें जहाँ सुरक्षित स्थान मिला चले गए। कुरेश खेल के कुछ लोग सन् १५२ हि० (सन् ७६९ ई०) में मदीना छोड़कर जहाज पर चले आए और भारत समुद्र के तटस्थ दक्षिण प्रांत में कोंकण में उतरे और उसे अपना घर बनाया। समय बीतने पर वे फैले और गाँव बसा लिया। हर एक ने अपनी भिन्नता प्रकट करने को नए नए अल्ल किसी भी वस्तु से, जिससे जरा भी संबंध था, ग्रहण कर लिया। विचित्र अल्ल प्रचलित हो गए।

मुल्ला अहमद विद्वत्ता तथा अन्य गुणों से विभूषित था और एक विशेषज्ञ था। भाग्य से यह बीजापुर के सुलतान अली आदिल शाह का कृपापात्र हो गया और कुछ ही समय में अपनी

बुद्धि तथा विवेक से राज्य का एक स्तंभ हो गया। कुछ दिन बाद अली आदिल शाह कारण-वश इस पर कम कृपा रखने लगा या स्यात् इसीने अपनी अहम्मन्यता में बीजापुरी सेवा से उच्च तर आकांक्षा रखकर औरंगजेब की सेवा में चले आने का विचार किया। यह अवसर देख रहा था कि ८ वें वर्ष में मिर्जाराजा जयसिंह शिवा जी का काम निपटा कर भारी सेना के साथ बीजापुर पर आक्रमण करने आए। आदिलशाह अपने दोषों को समझ कर बेकारी की गहरी निद्रा से जागा और मुल्ला को, जो अन्य अफसरों से योग्यता में बढ़कर था, राजा के पास संधि के लिए भेजा। मुल्ला ने, जिसकी पुरानी इच्छा अब पूर्ण हुई, इसे सुअवसर समझा और सन् १०७६ हि० (१६६५-६६ ई०) में पुरंधर दुर्ग के पास राजा से मिल कर अपनी गुप्त आकांक्षा प्रगट कर दी। बादशाह को इसकी सूचना मिलने पर यह आज्ञा हुई कि वह दरबार भेज दिया जाय। इसे छ हजारी ६००० सवार का मंसब मिला। कहते हैं कि मिर्जाराजा को गुप्त रूप से कहा गया था कि मुल्ला के दरबार पहुँचने पर उसकी पदवी सादुल्ला खाँ होगी और वह योग्य पद पर नियत किया जायगा।

आज्ञानुसार राजा ने इसे सरकारी कोष से दो लाख रुपये और इसके पुत्र को पचास सहस्र रुपये देकर दरबार विदा किया। भाग्य से, जिससे कोई नहीं बच सकता, मुल्ला मार्ग में बीमार होकर अहमदनगर में मर गया। ज्ञात होता है कि पुराने नमक का इसने विचार नहीं किया, इसीलिए नए ऐश्वर्य से यह लाभ नहीं उठा सका। इसका पुत्र मुहम्मद असद शाही आज्ञानुसार ९ वें वर्ष के आरंभ में दरबार आया और डेढ़ हजारी १०००

सवार का मंसब और इकराम खाँ की पदवी पाई। मुल्ला अह-मद का छोटा भाई मुल्ला यहिया, जो अपने भाई से पहिले ६ ठे वर्ष में बीजापुर से दरबार आकर दो हजारी १००० सवार का मंसब पा चुका था, दक्षिण में नियत हुआ। मिर्जाराजा के साथ बीजापुर राज्य को नष्ट करने में इसने अच्छी सेवा की। इसके बाद इसे मुखलिस खाँ की पदवी मिली और औरंगाबाद में रहने लगा। इसके पुत्र जैनुद्दीन अली खाँ और दामाद अब्दुल्-कादिर मातबर खाँ को योग्य मंसब मिला।

जब मातबर खाँ कोंकण का फौजदार हुआ तब उस प्रांत को, जिसमें दुष्ट मराठे बसे हुए थे, इसने शांत करके दरबार में नाम पैदा कर लिया। इसका ऐसा विश्वास हो गया था कि यह जो करता वही ठीक मान लिया जाता था। बादशाह जब उस विद्रोही प्रांत से सुचित्त हुए तब बहुधा कहते कि मातबर खाँ सा सेवक रहना ठीक है। इसे पुत्र नहीं था पर इसने एक संबंधी के पुत्र अबू मुहम्मद को अपना पुत्र मान लिया था। इसका ताल्लुका इसके साले जैनुद्दीन अली खाँ को मिला। अंतिम के पास यह ताल्लुका बहुत दिन रहा और मुहम्मद शाह के समय यही दूसरी बार इसे मिला। फर्रुखसियर के राज्य के आरंभ में हैदर कुली खाँ खुरासानी दक्षिण का दीवान नियत होकर औरंगाबाद आया। साधारण दीवानों से इसका प्रभुत्व हजार गुणा बढ़कर था इसलिए इसने जैनुद्दीन खाँ से खालसा भूमि के कर का हिसाब माँगा, जो इसके पास रह गया था। हुसेन अली खाँ अमीरुल् उमरा के प्रबंध-काल में यह सआदतुल्ला खाँ नायता के यहाँ अर्काट चला गया। उसी खेल का होने से और पुराने खानदान

के विचार से उसने इसका आना सम्मान समझा। उस भले आदमी की सहायता से इसने अपनी बची आयु शांति से व्यतीत कर दी। इसके पुत्र ने पिता की पदवी पाई और कर्णाटक में मौजूद है। मुल्ला यहिया का गृह औरंगाबाद के प्रसिद्ध गृहों में से है। यह प्रांताध्यक्षों के निवासस्थान के पास था इसलिए आसफजाह ने सआदतुल्ला खाँ से क्रय करने का प्रस्ताव किया, जिस पर उसने अपने उत्तराधिकारी से राय कर उसके पास बख्शिशनामा लिख कर भेज दिया।

११. अहमद् खाँ नियाजी

यह मुहम्मद् खाँ नियाजी का पुत्र था और अपनी वीरता तथा उदारता के लिए प्रसिद्ध था। इसमें बहुत से अच्छे गुण थे। जहाँगीर के राज्यकाल में निजाम शाह् के एक अफसर रहीम खाँ दक्षिणी ने भारी सेना के साथ एलिचपुर आकर उस पर अधिकार कर लिया। यद्यपि वहाँ शाही सेना काफी नहीं थी पर अहमद खाँ ने, जिसका यौवन काल था, थोड़ी सेना के साथ उससे कई युद्ध कर उसे नगर से निकाल दिया और प्रसिद्धि प्राप्त की। उस समय से दक्षिण के युद्धों में यह बराबर ख्याति पाता रहा। दौलताबाद के घेरे में यह खानजमाँ बहादुर के साथ कोष और सामान लाने के लिए रोहनखेड़ा दर्रे गया, जहाँ वह सब बुर्हानपुर से आ पहुँचा था। खानजमाँ ने अहमद खाँ को, जो अस्वस्थ था, जफर नगर में पहाड़ सिंह बुंदेला के पास छोड़ दिया। ऐसा हुआ कि इन दोनों सर्दारों ने गाँव के पास पहुँचने पर अपनी सेनाएँ खानजमाँ के साथ भेज दिया और एकाएक याकूब खाँ हब्शी ने, जिसने आदिलशाह् का साथ दिया था तथा जो भारी सेना के साथ खानजमाँ पर आक्रमण करने जा रहा था, इन पर मैदान में मिलते ही धावा कर दिया। अहमद खाँ और पहाड़ सिंह थोड़े सैनिकों के साथ ऐसा डटकर लड़े कि दुष्ट शत्रु आश्चर्य की उँगली काटकर भाग गए। अंबर कोट लेने में भी अहमद ने प्रसिद्धि पाई और इसके बहुत से अच्छे

सैनिक मारे गए। महाबत खाँ कहा करते थे कि इस विजय में अहमद खाँ मुख्य साझीदार था। परेंदा की चढ़ाई में जिस दिन महाबत खाँ ने शत्रु पर विजय पाया, उसमें अहमद खाँ ने भी वीरता के लिए नाम पाया था। सेनापति खाँ ने उसको सम्मान तथा तरक्की दिलाने में प्रयत्न किया था इसलिए इसने खानाजाद की पदवी स्वीकार की।

९ वें वर्ष में जब शाहजहाँ दौलताबाद आया तब अहमद खाँ का मंसब पाँच सदी ५०० सवार बढ़कर ढाई हजारी २००० सवार का हो गया और यह शायस्ता खाँ के साथ संगमनेर और नासिक लेने भेजा गया। उत्साह के कारण सेनापति की आज्ञा लेकर यह रामसेज दुर्ग लेने गया और साहू के आदमियों से उसे ले लिया। इसके बाद इसे डंका मिला और शाही रिकाब के साथ हुआ। यह गुलशनाबाद का फौजदार नियत हुआ। यह वहीं पला था, इसलिए प्रसन्नता-पूर्वक वहाँ चला गया। २३ वें वर्ष में इसका मंसब तीन हजारी ३००० सवार का हो गया और अहमदनगर का यह दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। सन् १०६१ हि० (१६५१ ई०) में २५ वें वर्ष के आरंभ में यह मर गया। साहस तथा औदार्य वंशपरंपरा में मिली और इसमें दूसरे भी गुण पूर्ण रूप से थे। इसके आफिस में कोई वेतनभोगी निकाल बाहर नहीं किया जाता था और जिसको एक बार जीविका में जमीन मिल गई वह उसकी संपत्ति हो जाती थी। यदि उसका मूल्य दूना भी हो जाता तब भी कोई कुछ न बोलता। ऐश्वर्य का आडम्बर होते हुए भी यह प्रत्येक से नम्र रहता और अपने दिन नम्रता तथा दान पुण्य में बिताता। अपने बहुत से संतान तथा संबंधियों का

अच्छा प्रबंधक था। इसके पिता ने बरार के अंतर्गत आष्टी को अपना निवासस्थान और कब्रिस्तान बनाया था, इसलिए अहमद खाँ ने उक्त स्थान की उन्नति में प्रयत्न किया और एक बाग बनवाया। इसने एक ऊँची मसजिद और पिता के लिए मकबरा बनवाया। बहुत दिनों तक यहाँ निमाज होती रही और जन-साधारण का तीर्थ रहा। इस समय कुछ पुराने मकबरों को छोड़कर प्रसिद्ध निवासियों तथा उनके घरों का चिन्ह भी नहीं रह गया है।

---

१२. अहमद खाँ बारहा सैयद

सैयद महमूद खाँ बारहा का छोटा भाई था। अकबर के राज्य के १७ वें वर्ष में यह भाई के साथ, खानकलाँ के अधीन नियत हुआ, जो अग्गल सेना के साथ गुजरात जाता था। अहमदाबाद विजय के अनंतर बादशाह ने इसको शेर खाँ फौलादी के पुत्रों का पीछा करने भेजा, जो पत्तन से निकल कर अपने परिवार तथा संपत्ति के साथ ईडर की ओर जा रहे थे। यद्यपि वे बड़े वेग से भाग रहे थे और पहाड़ी दर्रे में चले भी गए थे पर उनका बहुत सा सामान शाही सैनिकों के हाथ में पड़ गया। खाँ ने लौट कर सेवा की। इसके बाद जब शाही पड़ाव पत्तन में था तब यह मिर्जा खाँ को सौंपा गया और वहाँ का प्रबंध-कार्य सैयद अहमद को मिला। उसी वर्ष मुहम्मद हुसेन मिर्जा और शाह मिर्जा ने विद्रोह का झंडा उठाया और शेर खाँ के साथ आकर पत्तन घेर लिया। खाँ ने दुर्ग को दृढ़ कर उसकी इतने दिन रक्षा की कि खानआजम कोका भारी सेना के साथ आ पहुँचा और मिर्जों ने घेरा उठा दिया। २० वें वर्ष में यह अपने भतीजों सैयद कासिम और सैयद हाशिम के साथ उन विद्रोहियों को दमन करने भेजा गया, जिनका राणा से संबंध था और जिसने जलाल खाँ कोची को मार कर बलवा मचा रखा था। अच्छी सेवा के कारण इस पर खूब कृपा हुई। सन् ९८० हि० (१५७२-७३) में यह मरा। यह दो

हजारी मंसब तक पहुँचा था। इसके पुत्र जमालुद्दीन को बादशाह जानते थे। चितौड़ के घेरे में जब दो खानें बारूद से भरी जा कर उड़ाई गईं तब एक रुक कर उड़ी, जिसमें बहुत आदमी मरे। इसने भी अपने यौवन पुष्प को उसमें जला दिया।

६३. अहमद बेग खाँ

इब्राहीम खाँ फतहजंग का भतीजा था। जब इसका चाचा बंगाल का शासक था तब यह उड़ीसा का शासक था। जहाँगीर के १९ वें वर्ष में यह करधा के जमींदार को दंड देने भेजा गया, जिसने विद्रोह किया था। एकाएक समाचार मिला कि शाहजहाँ तेलिंगाना होते हुए बंगाल आ रहा है। अहमद बेग खाँ इस चढ़ाई से लौटने को बाध्य हुआ और उस प्रांत की राजधानी पिपली को चला गया। इसमें सामना करने की सामर्थ्य नहीं थी इसलिए यह अपनी संपत्ति सहित कटक चला गया, जो बंगाल की ओर बारह कोस दूर था। यहाँ भी अपनी रक्षा न देखकर बर्दवान के फौजदार सालेह बेग के पास चला गया। वहाँ से भी रवाने होकर अपने चाचा से जा मिला। शाहजहाँ की सेना से जिस दिन इब्राहीम खाँ ने युद्ध किया उस दिन सात सौ सवारों के साथ अहमद पीछे के भाग में था। जब घोर युद्ध होने लगा और इब्राहीम का हरावल टूटा तथा अहमद की सेना में आ मिला, तब यह वीरता से लड़कर घायल हुआ। युद्ध भूमि में इब्राहीम के मारे जाने पर अहमद चोटों के रहते भी वीरता से ढाका चला गया, जहाँ इसके चाचा की संपत्ति तथा परिवार था। शाहजहाँ की सेना नदी से इसका पीछा करती हुई वहाँ पहुँची और इसको अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। शाहजादे के दरबारियों के कहने से इसने सेवा स्वीकार कर

लो। जब शाहजहाँ बादशाह हुआ तब उसने अहमद खाँ को दो हजारी १५०० सवार का मंसब देकर सिविस्तान का फौजदार और तयूलदार नियत किया। इसके बाद यह यमीनुद्दौला का सहकारी नियत होकर मुलतान का फौजदार हुआ। वहाँ से हटने पर यह बादशाह के पास उपस्थित हुआ और लखनऊ के अंतर्गत अमेठी तथा जायस परगनों का जागीरदार नियुक्त किया गया। २५ वें वर्ष में यह मकरम खाँ सफवी के स्थान पर बैसवाड़ा का फौजदार हुआ और पाँच सदी ५०० सवार मंसब में बढ़े। २८ वें वर्ष में कुछ काम के कारण यह पद से हटाया गया और कुछ दिन मंसब तथा जागीर से रहित रहा। ३० वें वर्ष में फिर बहाल हुआ।

६४. अहमद बेग खाँ काबुली

यह चगत्ताई था और इसके पूर्वज वंश परंपरा से तैमूर के वंश की सेवा करते आए थे। इसका पूर्वज मीर गियासुद्दीन तर्खान तैमूर का एक सर्दार था। इसने स्वयं काबुल में बहुत दिनों तक मिर्जा मुहम्मद हकीम की सेवा की और यह मिर्जा के यकताजों में समझा जाता था। जो नवयुवक वीरता के लिए प्रसिद्ध थे और मिर्जा के साथियों में से थे, इसी नाम से पुकारे जाते थे। मिर्जा की मृत्यु पर यह अकबर के दरबार में आया और इसे सात सदी मंसब मिला। सन् १००२ हि० (१५९४ ई०) में जब कश्मीर मुहम्मद यूसुफ खाँ रिजवी से ले लिया गया और भिन्न २ जागीरदारों में बाँट दिया गया, तब यह उनमें मुखिया था। बाद को जब मुहम्मद जाफर आसफ खाँ की बहिन से इसने विवाह किया तब अहमद बेग का महत्व और प्रभुत्व बढ़ा। जहाँगीर के समय में यह एक बड़ा अफसर हो गया और तीन हजारी मंसब के साथ खाँ की पदवी पाई। यह कश्मीर का प्रांताध्यक्ष भी नियत हुआ। १२ वें वर्ष में यह उस पद से हटाया गया और दरबार आया। इसके कुछ दिन बाद यह मर गया। यह साहसी और योग्य था तथा सात सौ चुने हुए सवार तैयार रखता था। इसके लड़के सैनिक और वीर थे। इनमें अग्रणी सईद खाँ बहादुर जफरजंग था, जो उच्चतम मंसब को पहुँचा और अपने वंश का यश था। इसने

अपने पूर्वजों का नाम जीवित रखा। वर्तमान समय तक बहुत सी बातें भारत में इसके नाम से संबंध रखती हैं। बड़े छोटे सभी इसके विषय में बात करते हैं। इसका विवरण अलग दिया गया है। सब से बड़ा लड़का मुहम्मद मसऊद अफगानों के विरुद्ध तीरा की चढ़ाई में मारा गया था। दूसरा पुत्र मुखलिसुल्ला खाँ इफ्तिखार खाँ शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में पाँच सदी २५० सवार की तरक्की पा कर दो हजारी १००० सवार का मंसबदार हो गया और उक्त पदवी पाई। २ रे वर्ष १००० सवार की तरक्की के साथ जम्मू का फौजदार हुआ। इसमें पाँच सदी और बढ़ा तथा ४ थे वर्ष में यह मर गया। एक और पुत्र अबुल्बका ने अपने (सहोदर) बड़े भाई सईद खाँ बहादुर का साथ दिया। ५ वें वर्ष में यह नीचे बंगश का थानेदार हुआ और १५ वें वर्ष में जब कंधार शाही अधिकार में आ गया, तब सईद खाँ को कजिलबाशों के विरुद्ध युद्ध करने के उपलक्ष में बहादुर जफरजंग पदवी मिली और इसको डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब तथा इफ्तखार खाँ की पदवी मिली।

६५. अहमद खाँ मीर

ख्वाजा अब्दुर्रहीम खाने बयूतात का यह दामाद था। यह सच्चा सैनिक था। औरंगजेब के समय यह बख्शी और शाह आलीजाह मुहम्मद आजम शाह का वाकेआनवीस नियत हुआ, जो गुजरात का शासक था। यद्यपि यह सत्यता तथा ईमानदारी के साथ कड़ाई तथा उद्दंडता के लिए ख्याति पा चुका था पर शाहजादा, जो लेखकों को नापसंद करता था, इसपर प्रसन्न था और कृपा रखता था। इसके बाद यह मुहम्मद बेदार बख्त की सेना का दीवान नियत हुआ और ४८ वें वर्ष में यह शाहजादे का प्रतिनिधि होकर खानदेश में नियुक्त हुआ। जिस समय शाह आलम कामबख्श के साथ युद्ध करने के बाद लौटा और बुर्हानपुर में पड़ाव डाला, उस समय उसकी इच्छा करारा के रमने को देखने और अहेर खेलने की हुई, जो आनंद-दायक तथा अहेर के योग्य स्थान था। यह बुर्हानपुर से तीन कोस पर है और एक अत्यंत स्वच्छ जल की नदी उसमें बहती है। पहिले करारा के सामने एक बाँध था, जो सौ गज चौड़ा और दो गज ऊँचा था तथा जिस पर से झरना गिरता था। शाहजहाँ ने, जब शाहजादगी में दक्षिण का शासक होकर इस स्थान में ठहरा हुआ था, तब एक बाँध अस्सी गज और ऊपर बनवाया, जिससे बीच में एक झील सौ गज लम्बी तथा अस्सी गज चौड़ी बन गई। इस दूसरे बाँध के ऊपर से भी झरना

गिरता था। झील के किनारे दोनों ओर इमारतें बन गईं और एक छोटा बाग भी उसके पास बन गया। परंतु राजपूतों तथा सिखों के विद्रोह का जब समाचार आया तब वह बिना रुके ३ रे वर्ष सन् ११२१ हि० (सितम्बर सन् १७०९) के शाबान महीने के आरंभ में रवाना हो गया और उक्त खाँ को नगर की रक्षा के लिए छोड़ गया। ४ थे वर्ष में एकाएक एक मराठा सर्दार की पत्नी तुलसी बाई ने भारी सेना लेकर इस पर आक्रमण कर दिया और रावीर नगर को लूट कर, जो बुर्हानपुर से सात कोस पर है, दुर्गाध्यक्ष को घेर लिया, जो सम्मुख युद्ध नहीं कर सकने के कारण दुर्ग में जा बैठा था। दुर्ग दृढ़ नहीं था, इस लिए करीब था कि यह कैद हो जाय पर अपने घमंड और प्रतिष्ठा के सूक्ष्म विचार से शहीद होने से जीवन बचाना उचित नहीं समझा और स्त्री-शत्रु से युद्ध करने में पीछे हटना नहीं चाहा। मिसरा—

वह पुरुषार्थ ही क्या जो स्त्रीत्व से कम हो ?

इसने स्वाधिकार की बाग एक दम छोड़ दिया और बिना सेना एकत्र किए तथा आक्रमण और भागने का प्रबंध किए ही यह बहादुरपुर आया और युद्ध को निकला। इसने दूतों को मंसबदारों तथा सेवकों को बुलाने को भेजा। जो लोग खाँ के साहस और उद्दंडता को जानते थे, उन सबने प्राण से प्रतिष्ठा को बढ़कर समझा और अपने अनुयायी एकत्र किए, जो अधिकतर पियादे या लेखक थे। दूसरे दिन खाँ केवल सात सौ सवारों के साथ दायाँ बायाँ भाग ठीक कर युद्ध को निकल पड़ा। मार्ग ही में सामना हो गया और युद्ध होने लगा। सेनापति के

पौत्र तथा अन्य संबंधी गण ने मरने का निश्चय कर लिया और शत्रुओं को मारा पर डाँकुओं ने अपने लंबे भालों से बहुतेरे बहादुरों को मार डाला और घायल किया। गोलियों से सेनापति भी पिंडली में दो बार घायल हुआ। इसी बीच शेख इस्माइल जफर मंद खाँ, जो जामूद का फौजदार था और बची हुई सेना का अध्यक्ष था, आ पहुँचा और काफिरों के विजयी ज्वाला को तलवार के पानी से बुझा दिया। मुसलमान सेना रावीर दुर्ग पहुँची। दो दिन और रात तीर गोलियाँ चलीं। जब डाँकुओं ने देखा कि प्रतिद्वंद्वियों की दृढ़ता नहीं कम हो सकती तब वे नगर में चले गए। नगर के काजी और रईसों ने रक्षा के लिए बहुत प्रयत्न किया पर बाहरी भाग लूट की झाड़ू से साफ हो गया और अन्याय की अग्नि में जल गया। १० वीं सफर को खाँ रात्रि में आक्रमण करने निकला और रावीर दुर्ग से आगे बढ़ा। अनुभवी मनुष्यों ने शुभ-चिंतन से रात्रि के समय जाने से मना किया पर इसने नहीं सुना। यह जब नगर के पास आया तब दुष्ट जान गए और मार्ग रोका। युद्ध आरंभ हो गया। दोनों ओर के बहादुर वीरता दिखलाने लगे। मीर अहमद खाँ अपने अधिकांश पुत्रों तथा संबंधियों और दो तिहाई सैनिकों के साथ युद्ध-स्थल में मारा गया। जफरमंद खाँ वायु से वेग में बढ़ गया और ऐसी स्थिति में जब धूल भी वायु मार्ग से नगर में नहीं पहुँच सकती थी तब वह नगर में मृत खाँ के एक पुत्र तथा कुछ अन्य लोगों के साथ पहुँचा। बचे हुओं में कुछ घायल हुए और कुछ कैद हुए। खाँ के बाद दो पुत्र जीवित रहे। एक मीर सैयद मुहम्मद था, जो दर्वेश की चाल पर

रहता था और इसी विचार से सम्मानित भी होता था। दूसरा मीर मुहामिद था, जिसे पिता की पदवी मिली। इसका अलग वृत्तांत दिया गया है।

---

९६. मीर अहमद खाँ द्वितीय

मृत मीर अहमद खाँ का यह पुत्र था, जिसने बुर्हानपुर की अध्यक्षता के समय मराठा काफिरों से युद्ध करते प्राण खोया था। इसका पहिला खिताब महामिद खाँ था और इसने बाद को पिता की पदवी पाई थी। कुछ समय तक यह पंजाब के चकला अमनाबाद का फौजदार था। भाग्यवशात् इसकी स्त्री, जिस पर उसका अधिक प्रेम था, यहीं मर गई और यह रोने में लग गया। यह हृदय-विदारक घाव इसके हृदय में तर्बूज के कतरे के समान था। यह उसके मकबरे के बनवाने और सजाने में लग गया तथा बाग लगवाया। इसके बाद इनायतुल्ला खाँ कश्मीरी का प्रतिनिधि हो कर काश्मीर का प्रांताध्यक्ष हुआ। वहाँ सफल न हुआ और इसका जीवन अप्रतिष्ठा में समाप्त हुआ। विवरण यों है कि महतवी खाँ मुल्ला अब्दुन्नबी, जो अपने समय का एक विद्वान और मंसबदार था, सदा अपनी स्वार्थपूर्ण इच्छाओं को पूरी करने के लिए इस्लाम की रक्षा की ओट में अवसर देखता रहता था। कट्टरता तथा झगड़ालू प्रकृति के कारण यह कभी कभी उस प्रांत के हिंदुओं पर जाँच के रूप में अत्याचार करता था।

साम्राज्य के विप्लव तथा अशांति के कारण घमंडियों तथा विद्रोहियों के उपद्रव हो रहे थे, इससे उस बलवाई ने मुहम्मद शाह के राज्य के २ रे वर्ष (सन् १७२० ई०) में नगर के नीचों और मूर्खों को धार्मिक बातें समझा कर अपना अनुयायी बना लिया। क्रमशः इसने नायब सूबेदार तथा काजी पर आक्रमण किया

और जिम्मियों के नियमों को चलाने के लिए उन्हें बाध्य करना चाहा, जैसे घोड़ों पर सवारी करने से और कवच पहिरने से मना करना आदि। साथ ही काफिरों को जनसाधारण में अपना पाखंड-पूजन करने से रोकने को कहा। उन दोनों ने उत्तर दिया कि हिंदुस्तान की राजधानी तथा अन्य नगरों के नियम ही यहाँ माने जायँगे। वर्तमान सम्राट् की आज्ञा बिना नए नियम नहीं चलाए जा सकते। उस उपद्रवी ने शासकों से अलग होकर हिंदुओं का जब अवसर पाता अपमान करता। दैवात् इसी समय नगर का एक प्रधान मनुष्य मजलिस राय ब्राह्मणों के साथ एक बाग में आया और वहाँ ब्रह्मभोज करने लगा। उस ओछे आदमी ने वहाँ आकर 'पकड़ो बाँधो' का शोर मचाया और तुरंत उन्हें मारने और बाँधने लगा। मजलिस राय भाग कर मीर अहमद के घर आया कि वहाँ उसकी रक्षा होगी पर उस अन्यायी ने लौट कर नगर के हिंदू भाग में आग लगा कर उसे नष्ट कर दिया। इतने से भी संतुष्ट न होकर उसने खाँ के घर को घेर लिया। जिसे पकड़ पाता उसे अपमानित करता। खाँ ने अपने को उस दिन बेइज्जती से किसी प्रकार बचा लिया। दूसरे दिन यह कुछ सैनिक एकत्र कर शाही बख्शी तथा मंसबदारों को साथ लेकर उसे दमन करने चला। उस विद्रोही ने अपने आदमी इकट्ठा कर तीर चलाना और तलवार मारना आरंभ किया। उसके इशारे पर शहर के मुसलमानों ने भी विद्रोह कर दिया। कुछ ने उस पुल को जला दिया, जिससे खाँ उतरा था। सड़क तथा बाजार के दोनों ओर से तीर गोली और पत्थर चलाए जा रहे थे तथा ईंटें फेंकी जाती थीं।

औरतें तथा लड़के जो पाते उसीको छत और दरवाजे से फेंकते थे। इस भयंकर शोर में खाँ का भाँजा और कई मनुष्य मारे गए। खाँ इस मारकाट से उदास होकर प्रार्थी हुआ क्योंकि यह न आगे बढ़ सकता था और न पीछे हट सकता था और घृणा-युक्त जीवन बचा लेना ही लाभ समझता था। इसके बाद उस उपद्रवी अब्दुन्नबी ने हिंदुओं के बचे मकान लूट और नष्ट कर दिए और मजलिस राय तथा बहुतों को रक्षा-स्थल से बाहर लाकर उनके अंग भंग किए। सुन्नत करते समय उनके अंग ही काट दिए गए। दूसरे दिन महतवी खाँ जुम्मा मसजिद में गया और मुसलमानों को एकत्र कर मीर अहमद खाँ को शासक पद से उतार कर दीनदार खाँ की पदवी से स्वयं शासक बन गया। पाँच महीने तक, जिस बीच दरबार से कोई प्रांताध्यक्ष नहीं आया, यह अपनी आज्ञाएँ निकालता रहा। यह मसजिद में बैठकर आर्थिक और नैतिक कार्य देखता था। जब इनायतुल्ला खाँ का प्रतिनिधि मोमिन खाँ नज्मसानी शांति स्थापन करने को और नया प्रबंध करने को नियत होकर काश्मीर से तीन कोस पर शव्वाल महीने के अंत में पहुँचा तब महतवी खाँ, जो अपने कुकर्मों से लज्जित था, नगर के कुछ विद्वान् तथा मुख्य आदमियों के साथ मंसबदार ख्वाजा अब्दुल्ला को लेकर, जो वहाँ का प्रसिद्ध मनुष्य था, स्वागत करने आया और आदर के साथ नगर में ले गया। ख्वाजा ने मित्रता से या शरारत से, जो उस प्रांत के निवासियों की प्रकृति है, उसे सम्मति दी कि पहिले मीर शाहपूर खाँ बख्शी के गृह जाकर जो कुछ हो चुका है उसके लिए क्षमा माँगो, जिसके बाद तुम्हें क्षमा मिल जायगी।

उसके पाप-प्रक्षालन का समय आ चुका था, इसलिए मृत्यु-दूत को बात सुन ली और तुरंत वहाँ गया। गृह स्वामी, जिसने कुछ गक्खर मंसबदारों आदि तथा जूदी मली ओर के मनुष्यों को घर के कोने में छिपा रखा था, जब कुछ कार्य के बहाने बाहर चला गया तब वे सब उस मनुष्य पर टूट पड़े और पहिले उसके दो युवा पुत्रों को मार डाला, जो सर्वदा उसके आगे आगे मुहम्मद के जन्म-गीत गाते चलते थे, तथा उसके बाद उसे भी कष्ट के साथ मार डाला। दूसरे दिन उसके अनुयायियों ने अपने सर्दार का बदला लेने को युद्ध की तैयारी की और जूदी मलो मुहल्ले पर, जिसके निवासी शीआ थे, तथा हरनाबाद मुहल्ले पर धावा कर दिया। दो दिन तक युद्ध होता रहा पर इस ओर (महतवी पक्ष) आम बलवा था, इसलिए ये विजयी हुए और उन दोनों भाग के दो तीन सहस्र मनुष्यों तथा कुछ मुगल-यात्रियों को मार डाला। इन सब ने स्त्रियों की इज्जत लूटी और दो तीन दिन तक धन और सामान आदि लूटते रहे। इसके अनंतर वे काजी और बख्शी के गृह पर गए। एक तो किसी कोने में ऐसा छिपा कि पता न लगा और दूसरा निकल भागा। उन मकानों का बलवाइयों ने इक ईंटा साबूत नहीं छोड़ा। जब मोमिन खाँ नगर में आया तब उसने 'ढालुआ हो जाओ और बहाओ मत' सिद्धांत ग्रहण किया और मीर अहमद खाँ को रक्षकों के साथ बिदा कर दिया, जो राजधानी पहुँच गया। इसके बाद कमरुद्दीन खाँ बहादुर एतमादुद्दौला ने इसे मुरादाबाद की फौजदारी दी। यहाँ इसने बहुत कष्ट पाया, इसका मृत्यु समय नहीं मिला।

६७. शेख अहमद

फतहपुर के शेख सलीम चिश्ती का द्वितीय पुत्र था, जिसका वंश देहली का था। इसका पिता शेख बहाउद्दीन फरीद शकर गंज था। शेख अरब में बहुत दिन तक रहा और बहुधा यात्रा करता रहा तथा शेखुल् हिंद के नाम से उस प्रांत में प्रसिद्ध था। भारत में लौटने पर यह सीकरी में बस गया, जो आगरे से बारह कोस पर बिआना के अंतर्गत है। इस आनंददायक स्थान में बाबर ने राणा साँगा पर विजय प्राप्त की थी, इसलिए इसने उसका शुकरी नाम रखा। उस ग्राम के पास की एक पहाड़ी पर शेख सलीम ने एक मसजिद तथा खानकाह बनवाया और फकीरी करने लगा। यह आश्चर्य की बात थी कि अकबर को जो चौदहवें वर्ष में गद्दी पर बैठा था, दूसरे चौदह वर्ष तक अर्थात् अट्ठाईस वर्ष की अवस्था तक जो संतान हुई वह जीवित न रही। जब उसने शेख के विषय में सुना तब उसी अवस्था में उसे इच्छा हुई कि उससे सहायता लें। शेख ने उसे सुसमाचार दिया कि तुम्हें तीन पुत्र होंगे। उसी समय जहाँगीर की माता में गर्भ के लक्षण दीख पड़े। ऐसी हालत में निवास-स्थान का परिवर्तन शुभ माना जाता है। वह पवित्र स्त्री आगरे से शेख के गृह पर भेजी गई और बुधवार १७ रबीउल् अव्वल सन् ९७३ हि० (३१ अगस्त सन् १५६९ ई०) को जहाँगीर पैदा हुआ। शेख के नाम पर इसका सुलतान मुहम्मद सलीम नामकरण हुआ।

जन्म की तारीख 'दुर्रे शहवार लजहे अकबर' से (एक उज्वल मोती बड़े समुद्र से) निकलती है। इसके बाद जब सुलतान मुराद और सुलतान दानियाल का जन्म हुआ तथा शेख का प्रभाव मान्य हुआ तब सीकरी शहर हो गया और उच्च खानकाह तथा मदरसा पाँच लाख खर्च कर बनवाया गया। तारीख हुई 'व लायरा फिल बुलाद सानीहा' (नगरों में कोई दूसरा ऐसा नहीं मिलेगा, ९८२ = १५७४–५)। आनंददायक महल, प्रस्तर-निर्मित बड़े बाजार और सुंदर बाग तैयार हुए। जब नगर बस रहा था तभी गुजरात का उर्वर प्रांत विजय हुआ। अकबर इसका नाम फतेहाबाद रखना चाहता था पर फतहपुर नाम पड़ गया और उसे बादशाह ने पसंद किया। शेख सन् ९७९ हि० (१५७१–२ ई०) में मरा। तारीख हुई 'शेख हिंदी'। शेख और अकबर में जो सत्यनिष्ठा और सम्मान था उसके कारण उसके पुत्र, दामाद, पौत्रादि ने अच्छे पद पाए और उसकी स्त्री तथा पुत्रियों का दूध के नाते सुलतान सलीम से संबंध था। शेख के वंशज उसके धाय भाई हुए और उसके राज्य में कई पाँच हजारी मंसब तक पहुँचे तथा डंका निशान पाया।

तात्पर्य यह कि शेख अहमद में कई अच्छे सांसारिक गुण थे। यह जनसाधारण को गाली नहीं देता था और कितनी अश्लील बातों को देखकर भी शोक में निमग्न नहीं हो जाता था। राजभक्ति तथा शाहजादे के धाय भाई होने से यह प्रसिद्ध हो गया और बड़े अफसरों में गिना जाने लगा। यद्यपि यह पाँच सदी मंसब ही तक पहुँचा था पर इसका बहुत प्रभाव था। २२ वें वर्ष मालवा की चढ़ाई में इसे ठंढ लग गई और राजधानी

लौटने पर कुछ अपथ्य करने से वहीं लकवा हो गया। उसी वर्ष यह उस दिन मरा जब अकबर अजमेर को रवाना हुआ और इसे बुला भेजा था। इसने अपनी अंतिम बिदाई ली और गृह पहुँचने पर सन् ९८५ हि० (१५७७ ई०) में मर गया।

---

६८. अहसन खाँ, सुलतान हसन

इसका दूसरा नाम मीर मलंग था और यह मुहम्मद मुराद खाँ का भाँजा था। यह औरंगजेब के समय के प्रसिद्ध पुरुषों में था और योग्य पद पर नियत था। ५१ वें वर्ष में जब बादशाह ने अपने में निर्बलता देखी और मुहम्मद आजमशाह के, जो साहस के लिए प्रसिद्ध था और प्रधान अफसरों को जिसने मिला लिया था, कामबख्श पर कुदृष्टि रखने का उसे ज्ञान हुआ तब उसने अहसन खाँ को कामबख्श का बख्शी नियत कर इसे उसका काम सौंपा क्योंकि इस शाहजादे पर उसका प्रेम अधिक था। इसी कारण यह बराबर उसके आने जाने पर ध्यान रखता था। मुहम्मद आजमशाह बराबर कामबख्श के विरुद्ध बादशाह से कहा करता था पर उसका कुछ असर नहीं होता था। अंत में उसने अपनी सगी बहिन जीनतुन्निसा बेगम को पत्र में लिखा कि 'उस उद्दंड की मूर्खता का दंड देना कोई बड़ी बात नहीं है पर बादशाह की प्रतिष्ठा मुझे रोकती है।' यह पत्र पढ़ने पर बादशाह ने लिखा कि 'इस सबके लिए मत घबड़ाओ। हम कामबख्श को बिदा कर रहे हैं।' इसके बाद उस शाहजादे को शाही चिन्ह देकर बीजापुर भेज दिया। उसके परेंदा दुर्ग पहुँचने के बाद औरंगजेब की मृत्यु का समाचार मिला और बहुत से अफसर उसे बिना सूचना दिए ही चल दिए। सुलतान हसन ने बचे हुओं को मिलाकर रखने का प्रयत्न किया और बीजापुर

पहुँचने पर उसी के प्रयास से अध्यक्ष सयद नियाज खाँ ने दुर्ग की ताली दे दी तथा शाहजादे का साथ दिया। शाहजादे ने सुलतान हसन को पाँच हजारी मंसब, अहसन खाँ की पदवी और मीर बख्शी का पद दिया। जब शाहजादे ने बीजापुर से कूच कर गुलबर्गा पर अधिकार कर लिया तब वह वाकिनकेरा आया, जिस पर पीरमा नायक जमींदार अधिकृत हो गया था। अहसन खाँ ने इसे लेने का प्रयत्न किया। इसके बाद शाहजादे के पुत्र को प्रथानुसार साथ लेकर यह कर्नूल गया। वहाँ से धन लेकर यह अर्काट गया जहाँ दाऊद खाँ पट्टनी फौजदार था। जरा-जरा सी बात पर, जो शाहजादे के लिए लाभदायक था, इसने ध्यान रखा और धन की कमी तथा अन्य अड़चनों के रहते भी काम बराबर चलाने में दत्तचित्त रहा। यह फिर शाहजादे से जा मिला। जब यह हैदराबाद से चार मंजिल पर था तब वहाँ के अध्यक्ष रुस्तम दिल खाँ सब्जवारी को प्रसन्न कर शाहजादे की सेवा में लिवा आया। हकीम मुहसिन खाँ, जिसे तकर्रुब खाँ की पदवी मिली थी और जो वजीर था, अहसन खाँ से ईर्ष्या कर, जिससे पुराने समय से राज्य चौपट होते आए, शाहजादे को बराबर उल्टी बातें समझाता रहा और उसको इसके विरुद्ध कर दिया। जिस समय अहसन खाँ और रुस्तमदिल खाँ के बीच शाहजादे के प्रति भक्ति बढ़ रही थी, उसी समय तकर्रुब खाँ ने समझाया कि वे शाहजादे को कैद करने का षड्यंत्र रच रहे हैं। शाहजादा की प्रकृति कुछ पागलपन की ओर अग्रसर हो रही थी और उस समय चिंताओं के कारण वह घबरा भी रहा था, इससे रुस्तम दिल को मार कर, जैसा कि उसकी जीवनी

में लिखा गया है, खाँ को बुला भेजा और इसे भी कैद कर बड़े कष्ट से मार डाला। कहते हैं कि यद्यपि लोगों ने इसे सूचित किया कि शाहजादा उसे कैद करना चाहता है पर इसने, जो सदा उसका हितेच्छु रहा, इस पर विश्वास नहीं किया। यह घटना सन् ११२० हि० (१७०८ ई०) में घटी। इसका बड़ा भाई मीर सुलतान हुसेन बहादुरशाह के द्वितीय वर्ष में बहादुर शाह की सेवा में पहुँचा और एक हजारी २०० सवार का मंसब तथा तालायार खाँ की पदवी पाई।

---

६६. आकिल खाँ इनायतुल्ला खाँ

अफजल खाँ मुल्ला शुक्रुल्ला का यह भ्रातृष्पुत्र तथा गोद लिया हुआ था। इसके पिता का नाम अब्दुल् हक था, जो शाहजहाँ के राज्य-काल में एक हजारी २०० सवार का मंसबदार था तथा अमानत खाँ कहलाता था। वह नस्ख लिपि बहुत अच्छी लिखता था। १५ वें वर्ष में मुमताजुज्जमानी के गुबंद पर लेख लिखने के पुरस्कार में इसने एक हाथी पाया। वह १६ वें वर्ष में मर गया। उक्त खाँ १२ वें वर्ष में 'अर्जमुकर्रर' नियत हुआ और बाद को आकिल खाँ की पदवी पाई। मुल्तफत खाँ का स्थानापन्न होकर यह बयूतात का दीवान नियुक्त हुआ। १५ वें वर्ष में इसका मंसब दो हजारी ५०० सवार का हो गया तथा मीर सामान नियत हुआ। १७ वें वर्ष में मूसवी खाँ की मृत्यु पर यह प्रांतों का तथा उपहार-विभाग का अर्ज विक़ाया नियत हुआ, जिस पद पर मूसवी खाँ भी था। १८ वें वर्ष में २०० सवार बढ़ाए गए और प्रांतों के अर्ज विक़ाया का पद मुल्ला अलाउल् मुल्क को दिया गया। १९ वें वर्ष में इसका मंसब ढाई हजारी ८०० सवार का हो गया। इसके अनंतर जब इसके स्थान पर अला-उलमुल्क तूनी खानसामाँ नियत हुआ तब इसके मंसब में २०० सवार बढ़ाए गए और वह दूसरा बख्शी और प्रांतों का अर्ज विक़ाया बनाया गया। २० वें वर्ष में यह कुछ सेना के साथ गोर के थानेदार शाहबेग खाँ के पास पचीस लाख रुपये पहुँचाने को

भेजा गया। उसी वर्ष इसका मंसब तीन हजारी १००० सवार का हो गया और इसे झंडा मिला। २२ वें वर्ष सन् १०५९ हि० (१६४९ ई०) के अंत में जब बादशाह काबुल में थे तभी यह एकाएक मर गया। यह कविता तथा हिसाब किताब में दक्ष था। सती खानम की, जिसके हाथ में बादशाह का हरम था, पोष्य-पुत्री से इसका विवाह हुआ था।

वह खानम माजिंदरान के एक परिवार की थी और तालिब आमली की बहिन थी, जिसे जहाँगीर के समय मलिकुश्शोअरा की पदवी मिली थी। काशान के हकीम रुकना के भाई नसीरा अपने पति की मृत्यु पर वह सौभाग्य से मुमताजुज्जमानी की सेवा में चली आई। बोलने में तेज, कायदों की जानकार तथा गृहस्थी और दवा की ज्ञाता होने के कारण वह शीघ्र अन्य सेविकाओं से बढ़ गई और मुहरदार नियत हुई। कुरान पढ़ना तथा फारसी साहित्य के जानने के कारण वह बेगम साहिबा की गुरुआइन नियत हुई और सातवें आसमान शनीचर तक ऊँची हो गई। मुमताजुज्जमानी की मृत्यु पर बादशाह ने उसके गुणों को जानकर उसे हरम का सरदार बना दिया। इसे कोई संतान नहीं थी इसलिए तालिब की मृत्यु पर उसकी दोनों पुत्रियों को गोद ले लिया। बड़ी आकिल खाँ को और छोटी जियाउद्दीन को व्याही गई, जिसे रहमत खाँ की पदवी मिली थी और जो हकीम रुकना के भाई हकीम कुतबा का लड़का था। २० वें वर्ष में जब बादशाह लाहौर में थे तब छोटी पुत्री, जिसे खानम बहुत प्यार करती थी, प्रसूति में मर गई। खानम घर गई और कुछ दिन शोक मनाया। इसके बाद बादशाह ने उसे बुलाया और महल

के भीतर उस गृह में, जो उसका था, उसे बैठवाकर स्वयं वहाँ आया तथा उसे महल में लिवा गया। बादशाह का सब कार्य पूरा करने पर अपने नियत स्थान पर गई और वहीं मर गई। बादशाह ने कोष से दस सहस्र रुपये उसके संस्कार तथा गाड़ने के लिए दिए और आज्ञा दी कि वह अस्थायी कब्र में रखी जाय। एक वर्ष के ऊपर हो जाने के बाद उसका शव आगरे गया और वहाँ तीस सहस्र व्यय कर महद अलिया के मकबरे के चौक में पश्चिम की ओर बने मकबरे में गाड़ा गया। तीन सहस्र वार्षिक आय का गाँव उसकी रक्षा के लिए दिया गया।

१००. आकिल खाँ मीर असाकरी

यह खवाफ का रहने वाला था और औरंगजेब का एक वालाशाही सैनिक था। जब वह शाहजादा था तब यह उसका द्वितीय बख्शी था। अपने पिता की बीमारी के समय जब शाहजादा दक्षिण से उत्तरी भारत आ रहा था तब आकिल खाँ को औरंगाबाद नगर की रक्षा को छोड़ गया था। औरंगजेब की राजगद्दी पर यह दरबार आया और आकिल खाँ की पदवी पाकर मध्य दोआब का फौजदार नियत हुआ। ४ थे वर्ष यह हटा दिया गया और बीमारी के कारण दस सहस्र वार्षिक पेंशन पर लाहौर जाकर एकांतवास करने लगा। ६ ठे वर्ष जब बादशाह काश्मीर से लाहौर लौटे तब इस पर दया हुई और यह एकांत से बाहर निकला। इसे खिलअत और दो हजारी ७०० सवार का मंसब मिला। इसके बाद यह गुसलखाना का दारोगा नियत हुआ। ९ वें वर्ष पाँच सौ जात बढ़ा और १२ वें वर्ष में यह फिर एकांतवास में रहने लगा, तब इसे बारह सहस्र वार्षिक वृत्ति मिलती थी। इसके ऊपर फिर कृपा हुई और २२ वें वर्ष में यह सैफ खाँ के स्थान पर बख्शी-तन नियुक्त हुआ। २४ वें वर्ष यह दिल्ली प्रांत का अध्यक्ष नियुक्त हो सम्मानित हुआ। ४० वें वर्ष, सन् ११०७ हि० (१६९५–९६) में यह मर गया। यह दरिद्र होते स्वतंत्र प्रकृति का था और दृढ़ चित्त भी था।

इसने बड़े सम्मान के साथ सेवा की और अपने समकक्षों से घमंड रखता था।

जब महाबत खाँ मुहम्मद इब्राहीम लाहौर का शासक नियत हुआ तब उसने दुर्ग तथा शाही इमारतों को देखने की आज्ञा माँगी। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई और आकिल खाँ को इस कार्य के लिए आज्ञा भेजी गई। इसने उत्तर में लिख भेजा कि कुछ कारणों से वह महाबत खाँ को नहीं दिखला सकता, क्योंकि पहिले हैदराबादी मनुष्य शाही इमारतें देखने याग्य नहीं है और दूसरे दरवाजे रक्षा के लिए बंद पड़े हैं तथा कमरे में दरियाँ नहीं बिछी हैं। केवल उसके निरीक्षण के लिए उन सबकी सफाई कराना तथा दरी बिछवाना उचित नहीं है। तीसरे वह जैसा व्यवहार मुझसे चाहेगा वह नहीं दिखलाया जायगा। इन सब कारणों से उसे भीतर नहीं आने दिया जायगा। महाबत के खाँ दिल्ली आने पर तथा संदेशा भेजने पर इसने इनकार कर दिया। बादशाह ने भी इसकी पुरानी सेवा, विश्वास तथा राजभक्ति का विचार कर इसकी इस अहंता तथा हठ की उपेक्षा की और ऊँचे पद इसे दिए। यह बाह्यगुण-विहीन नहीं था। यह बुर्हानुद्दीन राजे-इलाही का शिष्य था, इसलिए राजी उपनाम रखा था। इसका दीवान और मसनवी प्रसिद्ध हैं। मौलाना रूम की मसनवी की खूबियों को समझाने की योग्यता में अपने को अद्वितीय समझता था। यह उदार प्रकृति और सहृदय था। यह इसका शैर है, जिसे इसने जब औरंगजेब जैनाबादी की मृत्यु के दिन घोड़े पर सवार होकर जा रहा था तब पढ़ा था—

इश्क था आसान कितना ? आह, अब दुश्वार है।

हिज्र था दुश्वार, आसाँ यार ने समझा उसे ॥

शाहजादे ने इस शैर को दो तीन बार पढ़ने के लिए कहा और तब पूछा कि यह किसका कहा हुआ है। आकिल ने उत्तर दिया कि 'यह उसके बनाए हैं, जो अपने स्वामी की सेवा में रह कर अपने को कवि नहीं कहना चाहता।'

१०१. आज़म खाँ कोका

इसका नाम मुज़फ्फरहुसेन था पर यह फिदाई खाँ कोका के नाम से प्रसिद्ध था। यह खानजहाँ बहादुर कोकल्ताश का बड़ा भाई था। शाहजहाँ के राज्य-काल में अपनी सेवाओं के कारण विशेष सनमान और विश्वास का पात्र हो गया था। आरंभ में अदालत का दारोगा नियत हुआ और उसके बाद बीजापुर के राजदूत के साथ शाहजहाँ की भेंट लेकर वहाँ के शासक आदिलशाह के यहाँ गया। २२ वें वर्ष तुज़ुक का काम इसे सौंपा गया और २३ वें वर्ष अहदियों का बख्शी हुआ। २४ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ४०० सवार का हो गया और काबुल के मंसबदारों का बख्शी और वहाँ के तोपखाने का दारोगा नियत हुआ। २६ वें वर्ष यह दरबार आकर मीर तुज़ुक हुआ। इसके अनंतर खास फीलखाने का दारोगा हुआ और उसके अनंतर कुल फीलखाने का दारोगा हो गया। २९ वें वर्ष गुर्जबरदारों का दारोगा हुआ और तरबियत खाँ के स्थान पर फिर मीर तुज़ुक का काम करने लगा। बादशाह ने कृपा करके इसका मंसब पाँच सदी २०० सवार बढ़ाकर ३० वें वर्ष के आरंभ में फिदाई खाँ की पदवी दी थी। इसके बाद जब औरंगजेब बादशाह हुआ तब धाय-भाई के संबंध के कारण यह बादशाह का कृपापात्र हुआ। जिस समय दारा शिकोह का पीछा करते हुए दिल्ली के पास एज्जा बाद बाग में बादशाह ठहरे हुए थे, उस समय इसको डंका

देकर अमीरुल् उमरा शायस्ता खाँ के साथ सुलेमान शिकोह पर, जो लखनऊ से फुर्ती से चलता हुआ पिता के पास जाने की इच्छा रखता था, नियत हुआ। उक्त खाँ ने अमीरुल् उमरा से आगे बोरिया की ओर जाकर पता लगाया कि सुलेमान शिकोह चाहता है कि श्रीनगर के राजा पृथ्वी सिंह की सहायता से हरिद्वार उतर कर लाहौर की ओर जाय। एक दिन रात में अस्सी कोस का धावा कर ये लोग हरिद्वार पहुँचे। खाँ के वहाँ पहुँचने पर विद्रोही हैरान होकर पार न जा सका और श्रीनगर के पहाड़ी देश में चला गया। फिदाई खाँ वहाँ से लौट कर दरबार आया और वहाँ से खली-लुल्ला खाँ के पास भेजा गया, जो दारा शिकोह का पीछा कर रहा था। इसी समय जब औरंगज़ेब मुलतान जाने की इच्छा से कसूर ग्राम में ठहरा हुआ था तब यह आज्ञानुसार दरबार आकर इरादत खाँ के स्थान पर अवध का सूबेदार हुआ और वहाँ की तथा गोरखपुर की फौजदारी भी इसे मिली। शुजाअ के युद्ध तथा उसके भागने पर यह मुअज्जम खाँ मीर जुमला के साथ नियत हुआ कि सुलतान मुहम्मद के साथ रहकर उस भगैल का पीछा करे। यहाँ से जब सुलतान मुहम्मद अपने चाचा के साथ खूब युद्ध करते समय मोअज्जम खाँ की हुकूमत से घबड़ा कर शुजाअ के पास चला गया पर वहाँ से उसकी दरिद्रता और खराब हालत देखकर लज्जित हो बादशाही सेना में फिर लौट आया तब मुअज्जम खाँ ने आज्ञानुसार फिदाई खाँ को कुछ सेना के साथ उक्त अदूरदर्शी शाहजादे को अपनी रक्षा में लेकर दरबार पहुँचाने को भेजा। ४ थे वर्ष सफशिकन खाँ के

स्थान पर यह मीर आतिश हुआ। ६ ठे वर्ष के आरंभ में औरंग-जेब कश्मीर की ओर रवाना हुआ। नियाजी अफगानों की जातियों में एक सम्भल जाति होती है, जो सिंध नदी के उस पार बसती है। उनमें से कुछ पहिले धनकोट उर्फ मुअज्जम नगर में, जो नदी के इस पार है, आकर उपद्रव मचाते थे। फौजदारों तथा अधिकारियों ने आज्ञा के अनुसार उन्हें इस तरफ से उधर भगा दिया। इसी समय उस जाति ने अपनी मूर्खता से फिर सिंध नदी के इस पार आकर बादशाही थाने पर अधिकार कर लिया। उक्त खाँ ने, जो तोपखाने के साथ चिनाब नदी के किनारे ठहरा हुआ था, उस झुंड को दमन करने के लिऐ नियुक्त होकर बहुत जल्द उनको नष्ट कर डाला। यह उस प्रांत को प्रबंध ठीक कर खंजर खाँ को, जो वहाँ का फौजदार था, सौंप कर लौट गया। इसी वर्ष बादशाह लाहौर से दिल्ली लौटते समय जब कुछ दिन तक कानवाधन शिकार गाह में ठहरे तब फिदाई खाँ को जालंधर के विद्रोहियों को दंड देने के लिए नियत किया, जिन्होंने मूर्खता से उपद्रव मचा रखा था। ७ वें वर्ष इसका मंसब चार हजारी २५०० सवार का हो गया। १० वें वर्ष इसका मंसब ५०० सवार बढ़ने से चार हजारी ४००० सवार का हो गया और यह गोरखपुर का फौजदार तथा इसके बाद अवध का सूबेदार भी हो गया। १३ वें वर्ष यह दरबार आकर लाहौर का सूबेदार हुआ। जब रास्ते में काबुल के सूबेदार महम्मद अमीन खाँ के पराजय का विचित्र हाल मिला तब यह लाहौर से पेशावर जाकर वहाँ का प्रबंधक नियत हुआ और उसके बाद

जम्मू की चढ़ाई पर गया। जब उसी समय १७ वें वर्ष बादशाह हसन अब्दाल की ओर चला तब फ़िदाई खाँ महाबत खाँ के स्थान पर काबुल का सूबेदार होकर भारी सेना और बहुत से सामान के साथ वहाँ गया। अगर खाँ को हरावल नियत कर उपद्रवी अफगानों को दंड देने के लिए बाजारक और सेह-चोबा के मार्ग से युद्ध करते हुए पेशावर से जलालाबाद पहुँचा और वहाँ से काबुल गया। लौटने के समय बहुत से अफगानों ने एकत्र होकर इसका रास्ता रोका और गहरा युद्ध हुआ। हरावल की फौज के पीछे हटने पर बहुत सा तोपखाना और सामान लुट गया और पास था कि भारी पराजय हो परंतु इसने बड़ी वीरता से मध्य की सेना को दृढ़ रखा। अगर खाँ को गंदमक थाने से बुलाकर हरावल नियत किया और दूसरी बार दुर्गम घाटी कतल जलक पर लड़ाई का प्रबंध हुआ। तीर और गोली के सिवा हाथी के बराबर बड़े बड़े पत्थर पहाड़ की चोटियों से लुढ़काए गए कि बादशाही सेना तंग आ गई। केवल ईश्वर की कृपा से कुछ वीरता-पूर्ण धावों से अफगान भाग खड़े हुए। फ़िदाई खाँ विजय के साथ जलालाबाद पहुँच कर थाने बैठाने में लगा और उस उपद्रवी जाति को दमन करने में जहाँ तक संभव था प्रयत्न किया कि वे लूट मार न करने पावें। दरबार से इन सेवाओं के पुरस्कार में इसे आजम खाँ कोका की पदवी मिली। २० वें वर्ष दरबार आकर अमीरुल् उमरा के स्थान पर बंगाल प्रांत का नाजिम हुआ। १२ वें वर्ष जब उक्त प्रांत का शासन शाहजादा महम्मद आजम शाह को मिला तब यह उक्त शाहजादा के वकीलों के स्थान पर बिहार का प्रांताध्यक्ष

हुआ। यहीं ९ रबीउल् आखिर सन् १०८९ हि० (सन् १६७८-९ ई०) को मर गया। उक्त खाँ की हवेली लाहौर की अच्छी इमारतों में से है और बहुत दिनों तक वह सूबेदारों का निवास-स्थान रही। इसके बड़े पुत्र सालह खाँ का वृत्तांत, जिसे फिदाई खाँ की पदवी मिली, अलग दिया हुआ है। दूसरा पुत्र सफदर खाँ खान-जहाँ बहादुर का दामाद था और औरंगजेब के ३३ वें वर्ष ग्वालियर की फौजदारी करते समय गढ़ी पर आक्रमण करने में तीर लगने से मर गया।

१०२. आजम खाँ मीर महम्मद बाकर उर्फ इरादत खाँ

यह सावा के अच्छे सैयदों में से था, जो एराक का एक पुराना नगर है। मुहम्मद के द्वारा वहाँ के समुद्र का सूखना प्रसिद्ध है। मीर आरंभ में जब हिंदुस्तान आया तब आसफ खाँ मीर जाफर की ओर से स्यालकोट, गुजरात और पंजाब का फौजदार हुआ। इसके अनंतर उक्त खाँ का दामाद होकर प्रसिद्ध हुआ और जहाँगीर से इसका परिचय हुआ। इसके अनंतर तरक्की कर यमीनुद्दौला आसफ खाँ के द्वारा अच्छा मनसब और खानसामाँ का पद पाया। इस काम में राजभक्ति और कार्य-कौशल अधिक दिखलाने से बादशाह का कृपापात्र होकर १५ वें वर्ष खानसामाँ से काश्मीर का सूबेदार हो गया। वहाँ से लौटने पर भारी मनसब पाकर मीर बख्शी हुआ। जहाँगीर के मरने पर शहरयार के उपद्रव के समय यमीनुद्दौला का हर काम में साथी होकर राजभक्ति दिखलाई और यमीनुद्दौला से पहिले लाहौर से आगरे आकर शाहजहाँ की सेवा में पहुँचा। इसका मनसब पाँच सदी १००० सवार बढ़ने से पाँच हजारी ५००० सवार का हो गया और डंका तथा झंडा पाकर मीरबख्शी के पद पर नियत हो गया। इसके अनंतर यमीनुद्दौला की प्रार्थना पर पहिले वर्ष के ५ रज्जब को दीवान आला का वजीर नियत हुआ। दूसरे वर्ष दक्षिण के सूबों का प्रबंधक नियत हुआ। तीसरे वर्ष के

आरंभ में जब शाहजहाँ बुर्हानपुर पहुँचा तब इरादत खाँ ने सेवा में पहुँचकर आजम खाँ की पदवी पाई और पचास सहस्र सवार की सेना का अध्यक्ष होकर खानजहाँ लोदी को दंड देने और निजामशाह के राज्य पर अधिकार करने को नियत हुआ। उक्त खाँ ने वर्षा ऋतु देवल गाँव में बिताकर गंगा के किनारे मौजा रामपुर में पड़ाव डाला। जब मालूम हुआ कि अभी खानजहाँ बीर से बाहर नहीं निकला है तब पड़ाव को मछलीगाँव में छोड़कर रात्रि में चढ़ाई की और खानजहाँ के सिर पर एकाएक पहुँच गया। उसने भागने का रास्ता बंद देखकर लड़ाई की तैयारी की, लेकिन जब बादशाही सेना के आदमी लूटमार में लगे हुए थे और सेना नियमित नहीं थी तब खानजहाँ अवसर पाकर पहाड़ से निकला और लड़ने की हिम्मत न करके भाग गया। यद्यपि ऐसी प्रबल फौज से बाहर निकल जाना कठिन था और बहादुर खाँ रुहेला तथा कुछ राजपूतों ने परिश्रम करने में कसर नहीं किया पर बादशाही सेना तीस कोस से अधिक चल चुकी थी इसलिए पीछा नहीं कर सकी। इसके अनंतर वह दौलताबाद चला गया, इसलिये आजम खाँ निजामशाह के राज्य में अधिकार करने गया। जब यह धारवर से तीन कोस पर पहुँचा तब इसकी इच्छा थी कि केवल कस्बे पर आक्रमण करें और दुर्ग को दूसरे किसी समय विजय करें। यह दुर्ग अपनी अजेयता और अपनी सामान की अधिकता के लिए दक्षिण में प्रसिद्ध था। यह ऊँचे पर बना हुआ था, जिसके दोनों ओर गहरी दुर्गम खाई थी। दुर्गवालों ने तीर और गोली मारकर इन लोगों को रोका और बस्ती के आदमियों ने अपने असबाब और

माल को खाई के भीतर सुरक्षित कर युद्ध का प्रयत्न किया। लाचार होकर कुछ सेना खंदक में पहुँची और बहुत माल लूट लाई। आजम खाँ ने बड़ी वीरता से रात में पैदल खंदक में पहुँचकर निरीक्षण कर मालूम किया कि एक ओर एक खिड़की है, जो पत्थर और मसाले से बन्द की हुई है और जिसको खोलकर दुर्ग में जा सकते हैं। इसके पास पत्थर फेंकनेवाले अस्त्र नहीं थे और यह किलेदारी की चाल को भी अच्छी तरह नहीं जानता था परंतु दुर्ग लेने की इच्छा की। दुर्ग के रक्षक इनकी कार्य दक्षता और युद्ध की वीरता देखकर घबड़ा गए। २३ जमादिउल् आखीर सन् १०४० हि० को चौथे वर्ष आक्रमण कर आजम खाँ सरदारों के साथ उस खिड़की से भीतर चला गया। दुर्गाध्यक्ष सीदी सालम, एतबार राव का परिवार और मलिकबदन का चाचा शम्स तथा निजामशाह की दादी बहुत लोगों के साथ गिरफ्तार हुई। बहुत सामान लूट में मिला। दुर्ग का नाम फतेहाबाद रखकर मीर अब्दुल्ला रिजवी को उसका अध्यक्ष नियत किया। आजम खाँ को छः हजारी ६००० सवार का मंसब मिला। इस प्रकार जब निजामशाह का काम बिगड़ गया और उसका सेनापति मोकर्रब खाँ आजम खाँ से क्षमा प्रार्थी होकर बादशाही सेवा में चला आया तब उक्त खाँ रनदौला खाँ बीजापुरी के इस संदेश पर कि यदि तुम्हारे द्वारा आदिलशाह के दोष क्षमा हो जायँगे तो प्रतिज्ञा करते हैं कि फिर उसके विरुद्ध वह न चलेंगे, मांजरा नदी के किनारे पहुँच कर ठहर गया। दैवात् एक दिन शत्रुओं के झुंड ने धावा किया और बहादुर खाँ रुहेला और यूसुफ महम्मद खाँ ताशकंदी को घायल कर पकड़ ले गए।

बादशाही सेना के बहुत से सैनिक मारे गए तथा कैद हुए। आजम खाँ चतकोबा, भालकी और बीदर के तरफ गया कि स्यात् उन सब को छोड़ाने का अवसर मिल जाय। चूँकि खाने पीने का सामान चुक गया था इसलिए गंगा के पार उतर गया। जब इसे मालूम हुआ कि निजामशाह वाले बीजापुरियों से संबंध करने के लिए बालाघाट से दुर्ग परिन्दः की ओर जा रहे हैं तो यह भी उसी तरफ चला और उक्त दुर्ग को घेर लिया। उसके चारों ओर २० कोस तक चारा नहीं मिलता था और बिना हाथी के काम नहीं चलता था इसलिए यह धारवर चला गया। उसी वर्ष आज्ञानुसार दरबार गया। शाहजहाँ ने इससे कहा कि इस चढ़ाई में दो काम अच्छे हुए हैं—एक खानजहाँ को भगा देना और दूसरे धारवर दुर्ग पर अधिकार कर लेना। साथ ही दो भूलें भी हुई—पहिला मोकर्रब खाँ की प्रार्थना पर बीदर की ओर जाना नहीं चाहता था और दूसरे परिंदः दुर्ग विजय नहीं कर सकते थे, तो भी तुम्हें ठहरना चाहता था। उक्त खाँ ने अपना दोष स्वीकार कर लिया। इससे दक्षिण का काम ठीक नहीं हो सका था इसलिए यह उस पद से हटा दिया गया।

पाँचवें वर्ष कासिम खाँ जवीनी के मरने पर यह बंगाल का सूबेदार नियुक्त होकर वहाँ गया। वहाँ बहुत से अच्छे आदमियों को एकत्र किया, जिनमें अधिकतर ईरान के आदमी थे। ८ वें वर्ष इलाहाबाद का शासक नियुक्त हुआ। नवें वर्ष गुजरात का प्रांताध्यक्ष हुआ। जब मिर्जा रुस्तम सफवी की लड़की, जो शाहजादा मुहम्मद शुजाअ से ब्याही गई थी, मर गई तब

सन् १०४९ हि० में आजम खाँ ने अपने लड़की की शाहजादा से शादी करने की प्रार्थना की। इसके गर्भ से सुलतान जैनुल्-आबदीन पैदा हुआ। आजम खाँ बहुत दिनों तक गुजरात के विस्तृत प्रांत में रहा। चौदहवें वर्ष में आवश्यकता पड़ने पर जाम के जमींदार पर चढ़ाई किया और उसकी राजधानी नवानगर पहुँचा, क्योंकि वहाँ के लोग इसकी अधीनता नहीं स्वीकार कर रहे थे। जाम घमंड भूल होश में आकर एक सौ कच्छी घोड़े और तीन लाख महमूदी सिक्का भेंट लेकर अधीनता स्वीकार करने के लिए आजम खाँ के पास पहुँचा। शत्रु का प्रदेश होने से वहाँ यही सिक्का बनता था। यह इस विद्रोही का काम समाप्त कर अहमदाबाद लौट आया। इसके अनंतर इसलामाबाद मथुरा की जागीर पर नियत होकर वहाँ मकान और सराय बनवाया। इसके बाद बिहार का शासक नियुक्त हुआ। २१ वें वर्ष में काश्मीर की सूबेदारी के लिए बुलाया गया। इसने प्रार्थना पत्र दिया कि मुझको उस प्रांत का जाड़ा सह्य नहीं है इसलिए वह मिर्जा हसन सफवी के बदले सरकार जौनपुर में नियत किया जाय। २२ वें वर्ष सन् १०५९ हि० (सन् १६४९ ई०) में ७५ वर्ष की अवस्था पाकर मर गया। उसके मरने की तारीख 'आजम औलिया' से निकलती है। जौनपुर को नदी के किनारे एक बाग अपने शासनारंभ के वर्ष के अंत में बनवाया था, उसीमें गाड़ा गया। उसके बनने की तारीख 'बिहिश्त नेहुम बर लबे आब जूय' से निकलती है। इसके लड़कों को अच्छे मनसब मिले और हर एक का वृत्तांत अलग-अलग दिया गया है। कहते हैं कि आजम खाँ अच्छे गुणों से युक्त था पर आमिलों का हिसाब

किताब पूरी तौर पर नहीं जानता था। तैमूरी राज्य में बहुत से अच्छे काम करके आरंभ से अंत तक सनमान के साथ बिता दिया। नीयत की सफाई होना चाहिए, जिससे आज तक, जिसको सौ वर्ष बीत गए, इसके वंशज हर समय प्रसिद्धि प्राप्त करते रहे, जैसा कि इस किताब से मालूम होगा।

---

१०३. आतिश खाँ जान बेग

यह बख्तान बेग रूजबिहानी का पुत्र था, जो औरंगजेब के राज्य के १ म वर्ष में मुहम्मद शुजाअ के युद्ध में मारा गया था। इसके पिता के समय ही से बादशाह जानबेग को पहिचान गए थे। इसने २१ वें वर्ष में आतिश खाँ की पदवी पाई। २५ वें वर्ष में यह सालह खाँ के स्थान पर मीर तुजुक हो चुका था। इसका एक भाई मंसूर खाँ कुछ समय के लिए दक्षिण का मीर आतिश था और उसके बाद औरंगाबाद का अध्यक्ष हुआ। द्वितीय युसुफ खाँ औरंगजेब के समय कमर नगर अर्थात् कर्नूल का फौजदार था। बहादुर शाह के समय हैदराबाद का नाजिम हुआ। इसीने बलवाई पापरा को मारा था। इसके वंशज अभी भी दक्षिण में हैं।

पापरा का संक्षिप्त वृत्तांत यों है कि वह तेलिंगाना का एक छोटा व्यापारी था। औरंगजेब के समय जब मुख्तार का पुत्र रुस्तम दिल खाँ हैदराबाद का सूबेदार था पापरा अपनी बहिन को मारकर, जो अमीर थी, प्यादे एकत्र कर लिए और पहाड़ में स्थान बनाकर यात्रियों तथा किसानों को लूटने मारने लगा। फौजदारों तथा जमींदारों ने जब उसे पकड़ने का प्रयत्न किया तब वह यह समाचार पाकर एलकंदल सरकार के अंतर्गत कौलास पर्गना के जमींदार वेंकटराम के पास जाकर उसका सेवक हो गया। कुछ दिनों के बाद वह वहाँ भी डाँके डालने लगा तब जमीं-

दार ने सबूत पाकर उसे कैद कर दिया। जमींदार का लड़का बीमार हो गया, जिससे यह अन्य कैदियों के साथ छुट्टी पाकर भुंगेर सरकार के अंतर्गत तरीकंदा परगना के शाहपुर गाँव गया, जो बीहड़ स्थान है और वहाँ के सर्वा नामक डाँकू का साथी हो गया। वहाँ एक दुर्ग बनाकर वह खुल्लमखुल्ला लूट मार करने लगा। रुस्तमदिल खाँ ने कासिम खाँ जमादार को शाहपुर के पास कुलपाक पर्गने का फौजदार नियत कर पापरा को पकड़ने के लिए आज्ञा दी। युद्ध में कासिम खाँ मारा गया और सर्वा भी युद्ध में अपने पियादों के जमादार पुर्दिल खाँ से झगड़ कर द्वंद्व युद्ध लड़ा, जिसमें वह मारा गया। अब पापरा ही सर्वेसर्वा हो गया और तारीकंदा दुर्ग बनवाने लगा। इसने वारंगल तथा भुंगेर तक धावे किए और उस प्रांत के निवासियों के लिए दुःख का फाटक खोल दिया।

मुहम्मद काम बख्श पर विजय प्राप्त कर बहादुर शाह ने यूसुफ खाँ रुजबिहानी को हैदराबाद का सूबेदार बना दिया और उसे पापरा को पकड़ने की कड़ी आज्ञा दी। उक्त खाँ ने दिलावर खाँ जमादार को योग्य सेना के साथ इस कार्य पर नियत किया, जिसने पापरा पर उस समय चढ़ाई की जब वह कुलपाक का घेरा जोर-शोर से कर रहा था। युद्ध में उसे परास्त कर कुलपाक में थाना स्थापित किया। इस बीच पापरा का साला, जो अन्य लोगों के साथ शाहपुर में बहुत दिनों से कैद था, उसके साथ कठोर बर्ताव किया जाता था। उसकी स्त्री के सिवा, जो प्रतिदिन उसे भोजन देने जाती थी, और कोई वहाँ जाने

नहीं पाता था। अपनी पत्नी के द्वारा कई रेतियाँ मँगा कर उसने उनसे अपनी तथा अन्य कैदियों की बेड़ियाँ काट डालीं। जिस दिन पापरा मछली का शिकार खेलने शाहपुर के बाहर गया, उसी दिन यह दूसरों के साथ बाहर निकल आया और पहरा देने वाले प्यादों को तथा फाटक पर के रक्षकों को मार कर दुर्ग पर अधिकार कर लिया। यह सुनकर पापरा घबड़ाकर दुर्ग के पास आया पर एक तोप दुर्ग से उसपर छोड़ी गई। उसके भाइयों ने कुलपाक के जमींदारों को ऐसा होने का समाचार दे दिया था, इसलिए यह आवाज सुनकर दिलावर खाँ तुरंत ससैन्य आ पहुँचा। शाहपुर के पास खूब युद्ध हुआ। पापरा परास्त होकर तारीकंदा भागा। जब यूसुफ खाँ ने यह समाचार सुना तब पहिले अपने सहकारी मुहम्मद अली को इस कार्य पर नियत किया पर बाद को स्वयं उपयुक्त सेना के साथ वहाँ गया और तारीकंदा को नौ महीने तक घेरे रहा। तब उसने प्रतिज्ञा का झंडा खड़ा किया कि जो दुर्ग से बाहर निकल आवेगा उसे पुरस्कार मिलेगा। पापरा भी छद्म वेश कर दुर्ग के बाहर निकला पर उसी साले के हाथ में पड़ गया और कैद हुआ। जब वह यूसुफ खाँ के सामने लाया गया तब उसके अंग अंग काटे गए और उसका सिर दरबार भेजा गया।

शैर

वृद्ध कृषक ने अपने पुत्र से क्या ही ठीक कहा कि।
'मेरे आँखों की ज्योति! तुम वही काटोगे जो बोओगे'॥

---

१०४. आतिश खाँ हब्शी

दक्षिण के शासकों का एक सर्दार था। जहाँगीर के समय यह दरबार आया और इसे योग्य मंसब मिला। इसके बाद जब शाहजहाँ बादशाह हुआ तब इसे प्रथम वर्ष दो हजारी १००० सवार का मंसब मिला और ३ रे वर्ष जब बादशाही सेना दक्षिण आई तब इसे २५००० रु० पुरस्कार मिला और जब शायस्ता खाँ खानजहाँ लोदी तथा नीजामशाह को दंड देने पर नियत हुआ तब यह साथ भेजा गया। इसके बाद यह दक्षिण की सहायक सेना में नियत हुआ था और दौलताबाद के घेरे में पहिले महाबत खाँ खानखानाँ तथा बाद को खानजमाँ के साथ उत्साह से कार्य किया। इसके अनंतर यह दरबार आया और १३ वें वर्ष खिलअत, एक घोड़ा तथा दस सहस्र रुपये पाकर बिहार में भागलपुर का फौजदार नियुक्त हुआ। १५ वें वर्ष में जब उस प्रांत के अध्यक्ष शायस्ता खाँ ने पालामऊ के भूम्यधिकारी पर चढ़ाई की तब यह उसके दाएँ भाग का नायक था। १७ वें वर्ष यह दरबार आया और एक हाथी भेंट की। ज्ञात होता है कि यह फिर दक्षिण में नियत हुआ और २४ वें वर्ष लौटने पर एक दूसरा हाथी भेंट किया। २५ वें वर्ष सन् १०६१ हि० (१६५१ ई०) में यह मर गया।

१०५. आलम बारहा, सैयद

यह सैयद हिजब्र खाँ का भाई था, जिसका वृत्तांत अलग इस पुस्तक में दिया गया है। जहाँगीर के समय में इसे पहिले योग्य मंसब मिला, जो उसके राज्य काल के अंत में डेढ़ हजारी ६०० सवार का हो गया। शाहजहाँ की राजगद्दी के समय इसका मंसब बहाल रखा गया और यह खानखानाँ के साथ काबुल गया, जो बलख के शासक नज्र मुहम्मद खाँ को, जिसने उक्त प्रांत के पास विद्रोह मचा रखा था, दमन करने पर नियत हुआ था। ३ रे वर्ष इसे खिलअत, तलवार और पाँच सदी २०० सवार की तरक्की मिली तथा यह यमीनुद्दौला के साथ बरार प्रांत के अंतर्गत बालाघाट में नियुक्त हुआ। ६ ठे वर्ष यह शाहजादा मुहम्मद शुजाअ का परेंदा के कार्य में अनुगामी रहा। शाहजादे ने इसे जालनापुर में थाना बनाकर पाँच सौ सवारों के साथ मार्ग की रक्षा के लिए छोड़ा। ८ वें वर्ष लाहौर से राजधानी लौटते समय यह इसलाम खाँ के साथ दोआब के विद्रोहियों को दमन करने में प्रयत्नशील रहा। इसके बाद यह औरंगजेब की सेना के साथ रहा, जो जुझार सिंह बुंदेला को दंड देने गई थी। ९ वें वर्ष जब दक्षिण बादशाह का द्वितीय बार निवासस्थान हुआ, तब यह साहू भोसला को दंड देने और आदिल खाँ के राज्य को नष्ट करने पर नियुक्त खानजमाँ बहादुर की सेना में नियत हुआ। १३ वें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर दो हजारी

१००० सवार का हो गया। १९ वें वर्ष यह शाहजादा मुराद-बख्श के साथ बलख-बदख्शाँ विजय करने गया। इसके बाद यह शाहजादा शुजाअ के साथ बंगाल गया और २४ वें वर्ष सुलतान जैनुद्दीन के साथ दरबार में आकर सेवा की। इसके बाद एक घोड़ा पाकर यह लौट गया। जब औरंगजेब बादशाह हुआ और भाइयों से खूब युद्ध हुए तब यह शुजाअ की ओर पहिली लड़ाई में रहा तथा दूसरी में, जो बंगाल की सीमा पर हुई थी, इसके प्राण जाते जाते बच गए। अंत में जब शुजाअ अराकान भागा और उसके साथ बारहा के दस सैयदों तथा बारह मुगल सेवकों के सिवा कोई नहीं रह गया था तब आलम भी साथ था। उसी प्रांत में यह भी गायब हो गया।

---

१०६. आसफ खाँ आसफ जाही

इसका नाम अबुल् हसन था और यह एतमादुद्दौला का पुत्र तथा नूरजहाँ बेगम का बड़ा भाई था। जहाँगीर से बेगम की शादी होने पर इसको एतमाद खाँ पदवी मिली और खानसामाँ नियत हुआ। ७ वें वर्ष जहाँगीरी सन् १०२० हि० (१६११ ई०) में इसकी पुत्री अर्जुमंद बानू बेगम की, जो बाद को मुमताज महल के नाम से प्रसिद्ध हुई और जो मिर्जा गियासुद्दीन आसफ खाँ की पौत्री थी, सुलतान खुर्रम से शादी हुई, जो शाहजहाँ कहलाता था। ९ वें वर्ष इसको आसफ खाँ की पदवी मिली और बराबर तरक्की पाते-पाते यह छ हजारी ६००० सवार के मंसब तक पहुँच गया। जिस समय जहाँगीर तथा शाहजहाँ में वैमनस्य हो गया था, उस समय कुछ बुरा चाहने वाले शंका करते थे कि आसफ खाँ शाहजादे का पक्ष लेता है और बेगम को भाई से रुष्ट करा दिया, जो साम्राज्य का एक स्तंभ था।

शैर

जब स्वार्थ प्रकट होता है तब बुद्धि छिप जाती है।
हृदय के आँखों पर सैकड़ों पर्दे पड़ जाते हैं॥

उसने इसे अपने षड्यंत्र का विरोधी समझ कर आगरे से कोष लाने के बहाने दरबार से हटा दिया, परंतु शाहजहाँ के फतहपुर पहुँच जाने के कारण आसफ खाँ आगरा दुर्ग से कोष को हटाना अनुचित समझकर दरबार लौट आया। यह मथुरा नहीं



आसफ खाँ आसफजाही

(पेज ४०२)

पहुँचा था कि शाहजादे के सम्मतिदाताओं ने राय दी कि आसफ खाँ से सर्दार को इस प्रकार चले जाने देना ठीक नहीं है और ऐसे अवसर पर ध्यान न देना बुद्धिमानी से दूर है। शाहजादे की मुख्य इच्छा पिता की कृपा प्राप्त करना था, इसलिए उसने बड़ी नम्रता का व्यवहार किया। इसके बाद जब वह पिता का सामना न कर लौटा और मालवा की ओर कूच किया तब १८ वें वर्ष में आसफ खाँ बंगाल में प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। पर जब यह ज्ञात हुआ कि शाहजादा भी बंगाल की ओर गया है तब बेगम ने अपने भतीजे की जुदाई न सह सकने के बहाने उसे बुलवा लिया। २१ वें वर्ष सन् १०३५ हि० (१६२६ ई०) में जब महाबत खाँ आसफ खाँ की असतर्कता तथा ढिलाई से झेलम के तट पर सफल होकर जहाँगीर पर अधिकृत हो गया तब आसफ खाँ ने, जो इस सब उपद्रव का कारण था, इस अशुभ कार्यवाही के हो जाने पर देखा कि उसके प्रयत्न निष्फल गए और ऐसे शक्तिशाली शत्रु से छुटकारा पाने की आशा नहीं है तब वह बाध्य होकर अटक गया, जो उसकी जागीर में था और वहाँ शरण ली। महाबत खाँ ने अपने पुत्र मिर्जा बहर:बर के अधीन सेना भेजी कि घेरा जोर शोर से किया जाय। इसके बाद स्वयं वहाँ गया और वादा तथा इकरार करके इसे बाहर निकाल कर इसके पुत्र अबू तालिब तथा दामाद खलीलुल्ला के साथ अपने पास रक्षा में रखा। दरबार से भागने पर भी आसफ खाँ को वह छोड़ने में बहाने कर रहा था पर बादशाह के जोर देने पर तथा अपने वादे और इकरार का ध्यान कर इसे दरबार भेज दिया। इसी समय आसफ खाँ पंजाब का प्रांताध्यक्ष नियुक्त हुआ और वकील का उच्च पद भी इसे

मिला। इसके बाद सात हजारी ७००० सवार का मंसब मिला। सन् १०३७ हि० (१६२७ ई०) २२ वें वर्ष में बादशाह राजौर थाने से कश्मीर से लौटे। मार्ग में उसने मदिरा का प्याला माँगा पर जब उसे ओठ में लगाया तब पी न सका। दूसरे दिन २७ सफर को अंतिम सफर को। पड़ाव में बड़ा उपद्रव मचा। आसफ खाँ ने खुसरो के लड़के दावरबख्श को कैदखाने से निकाल कर नाममात्र का बादशाह बनाया। उसको विश्वास नहीं होता था पर दृढ़ शपथ खाकर लोगों ने उसे शांत किया तब उसने कूच किया। बेगम शहरयार को बादशाह बनाया चाहती थी इसलिए आसफ खाँ तथा आजम खाँ मीर बख्शी को कैद करने का विचार किया क्योंकि दोनों साम्राज्य के स्तंभ तथा उसके कार्य के विरोधी थे। यद्यपि उसने अपने भाई को बुलाने के लिए आदमी भेजे पर इसने बहाना कर दिया और उसके पास नहीं गया। बेगम शव के साथ आ रही थी। आसफ खाँ ने चंगेज हट्टी थाने से बनारसी नामक हिंदू को, जो हथसाल का मुंशी था और अपनी फुर्ती तथा तेजी के लिए प्रसिद्ध था, शाहजहाँ के पास भेजा। लिखने का समय नहीं था इसलिए मौखिक संदेश भेजा और अपनी मुहर की अँगूठी चिन्ह रूप में दे दी। नौशहरः में रात्रि व्यतीत कर दूसरे दिन पहाड़ों के नीचे आए और भीमवर में पड़ाव डाला। यहाँ शव को कफन देने तथा ले जाने का प्रबंध किया और उसे लाहौर की नदी (रावी) के उसपार एक बाग में, जिसे बेगम ने बनवाया था, गाड़ने के लिए भेजा। हर एक ऊँचा या नीचा ठीक समझता था कि यह सब कार्यवाही शाहजहाँ का मार्ग साफ करने के लिए है और दावरबख्श भोज की भेड़ी

के सिवा कुछ नहीं है, इसलिए वे आसफ खाँ ही की आज्ञा मानते थे। यह बेगम की ओरसे स्वयं निश्शंक नहीं था और इस कारण सतर्क रहकर किसी को उससे मिलने नहीं देता था। कहते हैं कि यह उसे शाही स्थान से अपने यहाँ लिवा लाया था। जब ये लाहौर से तीन कोस पर थे तभी शहरयार, जो गंजा हो रहा था और सूजाक से पीड़ित था तथा लाहौर फुर्ती से जा पहुँचा था, सुलतान बन बैठा और सात दिन में सत्तर लाख रुपये व्यय कर एक सेना एकत्र कर ली और उसे सुलतान दानियाल के पुत्र मिर्जा बायसंगर के अधीन नदी के उसपार भेजा। स्वयं दो तीन सहस्र सेना के साथ लाहौर में रह गया और भाग्य की कृति देखने लगा।

मिसरा

आकाश क्या करता है इसकी आशा लगाए हुए।

पहिले ही टक्कर में इसकी सेना अस्त व्यस्त होकर भाग गई। शहरयार ने यह दुःखप्रद समाचार सुनकर अपनी भलाई का कुछ विचार नहीं किया और दुर्ग में जा घुसा। अपने हाथ से उसने अपना पैर जाल में डाल दिया। अफसर लोग दुर्ग में जा पहुँचे और दावरबख्श को गद्दी पर बिठा दिया। फीरोज खाँ ख्वाजा शहरयार को जहाँगीर के अंतःपुर के एक कोने में, जहाँ वह छिपा था, निकाल लाया और अलावर्दी खाँ को सौंप दिया। उसने उसकी करधनी से उसका हाथ बाँध कर दावर बख्श के सामने पेश किया और कोर्निश करने के बाद वह कैद किया गया तथा दो दिन बाद अंधा किया गया।

जब शाहजहाँ को यह सब समाचार गुजरात के महाजनों

की चिट्ठी से ज्ञात हुआ तब उसने खिदमतपरस्त खाँ रजा बहादुर को अहमदाबाद से आसफ खाँ के पास भेजा और अपने हाथ से लिखकर पत्र दिया कि ऐसे समय में, जब आकाश अशांत है और पृथ्वी विद्रोही है तब दावर बख्श तथा अन्य शाहजादे मृत्यु के मैदान में भ्रमणकारी बना दिए जायँ तो अच्छा है। २२ रबीउल् आखिर (२१ दिसं० सन् १६२७ ई०) रविवार को आसफ खाँ ने दावर बख्श को कैद कर शाहजहाँ के नाम घोषणा निकलवाई। २६ जमादिउल् अव्वल (२३ जनवरी सन् १६२८ ई०) को उसे, उसके भाई गर्शास्प, सुलतान शहरयार और सुलतान दानियाल के दो पुत्र तहमूर्स और होशंग को जीवन-कारागार से मुक्त कर दिया। जब शाहजादा आगरे पहुँचा और हिंदुस्तान का बादशाह हुआ तब आसफ खाँ दारा शिकोह, मुहम्मद शुजाअ और औरंगजेब शाहजादों के, जो उसके दौहित्र थे, तथा सर्दारों के साथ लाहौर से आगरा आया और २ रज्जब (२७ फरवरी १६२८ ई०) को कोर्निश की। आसफ खाँ को यमीनुद्दौला की पदवी मिली और पत्र-व्यवहार में इसे मामा लिखा जाता था। यह वकील नियत हुआ और औजक मुहर इसे मिली तथा आठ हजारी ८००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा का मंसब मिला, जो अब तक किसी को नहीं मिला था। इसके अनंतर जब यमीनुद्दौला ने पाँच सहस्र सुसज्जित सवार शाहजहाँ को निरीक्षण कराया तब इसे नौ हजारी ९००० सवार का मंसब मिला और पचास लाख रुपये की जागीर मिली। ५ वें वर्ष के आरंभ में यह भारी सेना के साथ बीजापुर के मुहम्मद आदिल शाह को दमन करने के लिए भेजा गया। जब यह बीजापुर में पड़ाव

डाले था तब इसने बाँधने और मारने में खूब प्रयत्न किया। रणदूलह खाँ हबशी के चाचा खैरियत खाँ और मुल्ला मुहम्मद लारी का दामाद मुस्तफा खाँ मुहम्मद अमीन दुर्ग से बाहर आए और चालीस लाख रुपया देकर संधि कर दुर्ग लौट गए। बीजापुर राजकार्य का प्रधान खवास खाँ राज्य की दुर्दशा तथा शाही सेना में अन्न-घास की कमी देखकर उसे ठीक करने का पूर्ण प्रयास करने लगा। कहते हैं कि केवल अन्न ही की मँहगी न थी प्रत्युत् सभी वस्तुओं की थी यहाँ तक कि एक जोड़ी पैताबा चालीस रुपये को मिलता था और एक घोड़े को नाल बाँधने को दस रुपये लगते थे। यमीनुद्दौला बाध्य होकर बीजापुर छोड़कर राय बाग और मिरच गया, जो उपजाऊ प्रांत थे और उन्हें खूब लूटा। वर्षा के आने पर वह लौट आया।

कहते हैं कि इसी समय आसफ खाँ आजम खाँ से एकांत में मिला तब आजम खाँ ने कहा कि 'अब बादशाह को हमारी तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।' आसफ ने कहा कि 'राज्य-कार्य हमारे तुम्हारे बिना चल नहीं सकेगा'। यह बात बादशाह तक पहुँची, जो उसे नहीं पसंद आई। उसने कहा कि 'उसके अच्छे कार्य हमें याद हैं पर भविष्य में बादशाही काम से उसे कष्ट नहीं दिया जायगा।' इन सब बातों के बाद स्थिति ऐसी हो गई कि 'प्याले को टेढ़ा रक्खो पर गिरे न।' इसके साथ प्रतिष्ठापूर्वक व्यवहार में बाल बराबर कमी नहीं हुई। महाबत खाँ की मृत्यु पर ८ वें वर्ष में यह खानखानाँ अमीरुल् उमरा नियत हुआ। १५ वें वर्ष सन् १०५१ हि० में यह लाहौर में संग्रहणी रोग से मर गया। कहते हैं कि इसे अच्छा

खाना पसंद था। इसका दैनिक भोजन एक मन शाहजहानी था पर बीमारी के अधिक दिन चलने पर इसके लिए एक प्याला चना का जूस काफी हो जाता था। 'जे है अफसोस आसफ खाँ' (आसफ खाँ के लिए आह शोक, सन् १०५१ हि० १६४१ ई०) से इसकी मृत्यु-तिथि निकलती थी। यह जहाँगीर के मकबरे के पास गाड़ा गया। आज्ञा के अनुसार एक इमारत तथा बाग बनवाया गया। जिस दिन शाहजहाँ इसे बीमारी में देखने गया था उस दिन इसने लाहौर के निवास-स्थान को छोड़ कर, जिसका मूल्य बीस लाख रुपया आँका गया था, तथा दिल्ली, आगरे और कश्मीर के अन्य मकान और बागों के सिवा ढाई करोड़ रुपये मूल्य के जवाहिरात, सोना, चाँदी और सिक्का लिखाकर बादशाह को दिखलाया था कि वे जब्त कर लिए जाँय। बादशाह ने उसके तीन पुत्रों और पाँच पुत्रियों के लिए बीस लाख रुपये छोड़ दिए और लाहौर की इमारत दारा शिकोह को दे दी। बाकी सब ले लिया गया।

आसफ खाँ हर एक विज्ञान में गम रखता था। वह विशेष कर नियमों को अच्छी तरह जानता था और इसी कारण शाही दफ्तरों में जो पदवियाँ इसके नाम के साथ लगाई जाती थीं उनमें 'अफलातूनियों की बुद्धि का प्रकाशदाता तथा तर्क शास्त्रियों के हृदय का बुद्धिदाता' लिखा जाता था। यह अच्छा लेखक था और शुद्ध मुहावरों का प्रयोग करता था। यह हिसाब किताब अच्छा जानता था। यह स्वयं कोषाधिकारियों तथा अन्य अफसरों के हिसाब को जाँचता था। इसके लिए इसे किसी प्रदर्शक की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इसके निजी कार्य के व्यय भी

इतने थे कि ध्यान में नहीं लाए जा सकते, विशेष कर बादशाह, शाहजादों तथा बेगमों के बहुधा आने जाने में अधिक व्यय होता। पेशकश तथा उपहारों के सिवा, जो बड़ी रकम हो जाती थी, इसके खान पान में क्या वैभव न रहता था और बाहर भीतर की सजावट तथा तैयारी में क्या न होता था! इसके नौकर भी चुने हुए थे और यह उन पर दृष्टि भी रखता था। अपने पिता के समान ही यह भी विनम्र तथा मिलनसार था। इस बड़े अफसर के पुत्र तथा संबंधीगण का, जो साम्राज्य में ऊँचे पदों पर पहुँचे थे, विवरण यथास्थान इस ग्रंथ में दिया गया है। इसकी पुत्री मुमताज महल बीस वर्ष की अवस्था में शाहजहाँ से ब्याही गई थी और चौदह बार गर्भवती हुई। इनमें से चार पुत्र और तीन पुत्रियाँ अपने पिता के राज्य के अंत समय जीवित थीं। बादशाहत के ४ थे वर्ष सन् १०४० हि० (१६३१ ई०) में बुर्हानपुर में इस साध्वी स्त्री ने, जिसकी अवस्था ३९ वर्ष की हो चुकी थी, गौहरआरा नामक पुत्री को जन्म देने के बाद ही अपनी हालत में कुछ फर्क होते देखकर बादशाह को बुला भेजने के लिए इशारा किया। वह घबड़ाए हुए आए और अंतिम मिलाप हुई, जिसमें वियोग—काल के कोष को संचित कर लिया। १७ जीकदा, ७ जुलाई सन् १६३१ ई० को ताप्ती नदी के दूसरी ओर जैनाबाद बाग में अस्थायी रूप से गाड़ी गई। 'जाय मुमताज-महल जन्नत बाद' अर्थात् मुमताज महल का स्थान स्वर्ग में हो (सन् १०४० हि०)।

कहते हैं कि इन दोनों उच्च वंशस्थ पति-पत्नी में अत्यंत प्रेम था, जिससे उसके मरने पर शाहजहाँ ने बहुत दिनों तक रंगीन

वस्त्र पहिरना, गाना सुनना तथा इत्र लगाना छोड़ दिया था और मजलिसें रुक गई थीं। दो वर्ष तक हर प्रकार की ऐश की वस्तु काम में नहीं लाए। उसकी संपत्ति का, जो एक करोड़ रुपयों से अधिक की थी, आधा बेगम साहिबा को मिला और आधा अन्य संतानों में बाँट दिया गया। मृत्यु के छ महीने बाद शाहजादा मुहम्मद शुजाअ, वजीर खाँ और सदरुन्निसा सती खानम शव को आगरे लाकर नदी के दक्षिण पास ही एक स्थान पर गाड़ा, जो पहिले राजा मानसिंह का और अब राजा जयसिंह का था। बारह वर्ष में पचास लाख रुपया व्यय करके उस पर एक मकबरा बना, जिसका जोड़ हिंदुस्तान में कहीं नहीं था। आगरा सरकार और नगरचंद पर्गना के तीस ग्राम, जिनकी वार्षिक आय एक लाख रुपये की थी तथा मकबरे से संलग्न सरायों और दूकानों की आय, जो दो लाख रुपये हो गई थी, सब उसके लिए दान कर दी गई।

१०७. आसफ खाँ ख्वाजा गियासुद्दीन अली कजवीनी

यह आका मुल्ला दवातदार का पुत्र था। ऐसा प्रसिद्ध है कि यह शाह तहमास्प सफवी का खास मुसाहिब था। इसके अन्य पुत्र मिर्जा बदीउज्जमाँ और मिर्जा अहमद बेग फारस के बड़े नगरों के वजीर हुए। कहते हैं कि यह शेखुल् शयूख शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी के वंश का था, जिसके गुणों के वर्णन की आवश्यकता नहीं है और जिसकी वंशपरंपरा अबेबकुस्सिद्दीक के पुत्र मुहम्मद तक पहुँचती थी। सूफी विचार में यह अपने चाचा नजीबुद्दीन सुहरवर्दी के समान ही था। यह विज्ञानों का भांडार था और बगदाद के शेखों का शेख था। यह अवारिफुल् मुआरिफ तथा अन्य अच्छी पुस्तकों का लेखक था। यह सन् ६३३ या ६३२ हि० (१२३५ ई०) में मर गया। ख्वाजा गियासुद्दीन अली अपनी वाक् शक्ति तथा मनन के लिए प्रसिद्ध था और उसमें उत्साह तथा साहस भी कम न था। जब यह हिंदुस्तान आया तब सौभाग्य से अकबर का कृपापात्र हुआ और बख्शी नियत हुआ। सन् ९८१ हि० (१५७३ ई०) में यह गुजरात की नौ दिन की चढ़ाई में साथ था और विद्रोहियों के साथ के युद्ध में, जिन सबने मिर्जा कोका को अहमदाबाद में घेर रखा था, अच्छा कार्य किया, जिससे इसे आसफ खाँ की पदवी मिली। राजधानी को विजयी सेना के प्रत्यागमन-काल में यह उस

प्रांत का बख्शी नियुक्त हुआ कि मिर्जा कोका का सेना के प्रबंध में सहयोग दे। २१ वें वर्ष में यह अन्य अफसरों के साथ ईडर में नियत हुआ, जो अहमदाबाद प्रांत के अंतर्गत है। इसे विद्रोहियों को दमन करना था। वहाँ के राज्याधिकारी नारायणदास राठौर ने घमंड से घाटियों से निकल कर युद्ध किया और उसमें द्वंद्व युद्ध भी खूब हुए। शाही हरावल हट गया और उसका अध्यक्ष मिर्जा मुक़ीम नक्शबंदी मारा गया तथा पूर्ण पराजय होने को थी कि आसफ खाँ तथा दाएँ बाएँ के सर्दारों ने बड़ा प्रयत्न किया और शत्रु परास्त हुए। २३ वें वर्ष के अंत में अकबर ने इसे मालवा तथा गुजरात भेजा, जिसमें यह मालवा के नाजिम शहाबुद्दीन अहमद खाँ का सहयोग कर मालवा की सेना में दाग की प्रथा जारी करके शीघ्र गुजरात चला जाय। वहाँ के शासक कुलीज खाँ की सहायता कर सेना की हालत ठीक करे तथा उसकी ठीक हालत जाँचे। आसफ खाँ ने शाही अज्ञानुसार कार्य किया और सचाई तथा ईमानदारी से किया। सन् ९८९ हि० (१५८१ ई०) में यह गुजरात में मरा। इसका एक पुत्र मिर्जा नूरुद्दीन था। जब सुलतान खुसरो को कैद कर जहाँगीर ने उसको कुछ दिन के लिए आसफ खाँ मिर्जा जाफर की रक्षा में रखा तब नूरुद्दीन, जो आसफ खाँ का चचेरा भाई था, आप ही खुसरो के पास गया और उसके साथ रहने लगा तथा ऐसा निश्चय किया कि अवसर मिलते ही उसे छुड़ा कर उसका कार्य करे। इसके बाद जब खुसरो खोजा एतबार खाँ की रक्षा में रखा गया तब नूरुद्दीन ने एक हिंदू को अपने विश्वास में लिया, जो खुसरो के पास जाया करता था और उसे खुसरो

के अनुगामियों की एक सूची दी। पाँच छ महीने बाद चार सौ आदमी शपथ लेकर एक हुए कि जहाँगीर पर मार्ग में आक्रमण करेंगे। इस दल के एक आदमी ने साथियों से क्रुद्ध हो कर इसकी सूचना सुलतान खुर्रम के दीवान ख्वाजा वैसी को दे दिया। ख्वाजा ने तुरंत शाहजादे से कहा और वह यह समाचार जहाँगीर को दे आया। तुरंत ये अभागे आदमी सामने लाए गए और आज्ञा हुई, जिससे नूरुद्दीन, एतमादुद्दौला का पुत्र मुहम्मद शरीफ तथा कुछ अन्य आदमी मार डाले गए। एतबार खाँ के हिंदू सेवक के पास से मिली हुई सूची को खानजहाँ लोदी की प्रार्थना पर जहाँगीर ने बिना पढ़े आग में डलवा दिया, नहीं तो कितनों को प्राण दंड होता।

१०८. आसफ खाँ मिर्जा किवामुद्दीन जाफर बेग

यह दवातदार आका मुल्लाई कजवीनी के पुत्र मिर्जा बदीउज्जमाँ का पुत्र था। शाह तहमास्प सफवी के राज्य-काल में बदीउज्जमाँ काशान का वजीर था और मिर्जा जाफर बेग अपने पिता तथा पितामह के साथ शाह का एक दरबारी हो गया था। २२ वें वर्ष सन् ९८५ हि० (सन् १५७७ ई०) में यह पूर्ण यौवन में एराक से हिंदुस्तान आया और अपने पितृव्य गियासुद्दीन अली आसफ खाँ बख्शी के साथ, जो ईडर का काम पूरा करके दरबार आया था, अकबर की सेवा में उपस्थित हुआ। अकबर ने इसे दो सदी मंसब दे कर आसफ खाँ की सेवा में भर्त्ती किया। यह इस छोटी नियुक्ति से अप्रसन्न हो गया और सेवा छोड़ कर दरबार जाना बंद कर दिया। बादशाह भी अप्रसन्न हो गए और इसे बंगाल भेज दिया, जहाँ की जल वायु अस्वास्थ्यकर थी तथा दंडित लोग भी वहाँ भेजे जाकर जीवित न रहते थे।

कहते हैं कि मावरुन्नहर का मौलाना कासिम काही, जो एक पुराना शायर था और बिलकुल स्वतंत्र चाल से रहता था, जाफर से आगरे में मिला और इसका हाल चाल पूछा। जब उसने कुछ हाल सुना तब कहा कि 'मेरे सुंदर युवक, बंगाल मत जाओ।' मिर्जा ने कहा कि 'मैं क्या कर सकता हूँ ? मैं

खुदा पर भरोसा करके जाता हूँ।' उस प्रसन्न चित मनुष्य ने कहा कि 'उस पर विश्वास कर मत जाओ। वह वही खुदा है जिसने इमाम हुसेन ऐसे व्यक्ति को कर्बला मारे जाने के लिए भेजा था।' ऐसा हुआ कि जब मिर्ज़ा बंगाल पहुँचा तब वहाँ का प्रांताध्यक्ष खानजहाँ तुर्कमान बीमार था और बाद को मर गया। मुजफ्फर खाँ तुर्बती उसका स्थानापन्न हुआ। अधिक दिन नहीं व्यतीत हुए थे कि काकशालों के विद्रोह और मासूम खाँ काबुली के उपद्रव से उस प्रांत में गड़बड़ मच गया। यहाँ तक हालत हुई कि मुजफ्फर खाँ टांडा दुर्ग चला आया और उसमें जा बैठा। मिर्ज़ा उसके साथ था। जब वह पकड़ा जाकर मारा गया तब उसके बहुत से साथी रकम दे कर छुट्टी पाने के लिए रोके गए पर यह अपनी चालाकी तथा बातों के फेर में डाल कर ऐसे देन से छूट कर निकल आया और फतेहपुर सीकरी में सेवा में उपस्थित हुआ। यह घृणा तथा असफलता में चला गया था पर सौभाग्य से फिर लौट कर भाग्य के रिकाब की सेवा में आया था इस लिए अकबर ने प्रसन्न हो कर कुछ दिन बाद इसे दो हजारी मंसब और आसफ खाँ की पदवी दी। यह काजी अली के स्थान पर मीर बख्शी भी नियत हुआ और उदयपुर के राणा पर भेजा गया। इसने आक्रमण करने, लूटने, मारने तथा ख्याति लाभ करने में कसर नहीं की। ३२ वें वर्ष में जब इस्माइल कुली खाँ तुर्कमान को दर्रों को खुला छोड़ देने के कारण भर्त्सना की गई, जिससे जलालुद्दीन रोशानी निकल गया, तब आसफ खाँ उसका स्थानापन्न नियत हुआ और सवाद का थानेदार हुआ। ३७ वें वर्ष सन् १००० हि० (१५९२

ई०) में जब जलाल रोशानी, जो तूरान के बादशाह अब्दुल्ला खाँ के यहाँ गया था पर असफल लौट आया था, तीराह में उपद्रव मचाने लगा तथा अफ्रीदी और ओरकजई अफ़ग़ान उससे मिल गए तब आसफ खाँ उसे नष्ट करने भेजा गया। सन् १००१ हि० (१५९२–३ ई०) में इसने जैन खाँ कोका के साथ जलाल को दंड दिया और उसके परिवार, वह्दत अली, जो उसका भाई कहा जाता है तथा दूसरे सगे संबंधियों को, जो लग-भग चार सौ के थे, गिरफ्तार कर लिया और अकबर के सामने पेश किया। ३९ वें वर्ष में जब मिर्जा यूसुफ खाँ से कश्मीर ले लिया गया और अहमद बेग खाँ, मुहम्मद कुली अफशार, हसनअरब और ऐमाक बदख्शी को जागीर में दिया गया तब आसफ खाँ जागीरदारों में उसे ठीक-ठीक बाँटने के लिए वहाँ भेजा गया। इसने केशर तथा शिकार को खालसा कर दिया और काजी अली के बंदोबस्त के अनुसार इकतीस लाख खरवार तहसील निश्चित किया। प्रति खरवार २४ दाम का निश्चय कर जागीर का ठीक-ठीक बँटवारा करके यह तीन दिन में काश्मीर से लाहौर पहुँच गया। ४२ वें वर्ष में आसफ खाँ कश्मीर का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ क्योंकि वहाँ के जागीरदारों के आपस के झगड़े से वह प्रांत विशृंखल हो रहा था। ४४ वें वर्ष में सन् १००४ हि० के आरंभ में यह राय पत्रदास के स्थान पर दीवाने कुल नियत हुआ और दो वर्ष तक उस कार्य को बड़े कौशल से निभाया। जब १०१३ हि० (१६०४–५ ई०) में सुलतान सलीम विद्रोह का विचार छोड़कर मरियम मकानी की मृत्यु के अवसर पर शोक मनाने के लिए अपने पिता के पास चला आया और बारह

दिन गुसुलखाने में बंद रहने पर उस पर कृपा हुई तथा यह निश्चित हुआ कि वह गुजरात का प्रांत जागीर में ले लेवे और इलाहाबाद तथा बिहार प्रांत, जिसे उसने बिना आज्ञा के अधिकृत कर रखा है, दे दे। तब बिहार की सूबेदारी आसफ खाँ को दे दी गई और उसका मंसब बढ़ाकर तीन हजारी करके उस प्रांत का शासन करने भेज दिया गया। जब जहाँगीर बादशाह हुआ तब आसफ खाँ बुलाया जाकर सुलतान पर्वेज का अभिभावक नियत हुआ। यह राणा को दंड देने भेजा गया, जो उस समय आवश्यक हो पड़ा था पर सुलतान खुसरो के विद्रोह के कारण बुला लिया गया। २ रे वर्ष सन् १०१५ हि० (१६०६–७ ई०) में जब जहाँगीर काबुल की ओर चला तब यह शरीफ खाँ अमीरुल् उमरा के स्थान पर, जो कड़ी बीमारी के कारण लाहौर में रुक गया था, वकील नियत हुआ और इसका मंसब पाँच हजारी हो गया तथा इसे जड़ाऊ कलमदान मिला। दक्षिण के प्रधान पुरुषों ने, मुख्यतः मलिक अंबर हबशी ने अकबर की मृत्यु पर उद्दंडता आरंभ कर दी और शाही अफसरों से बालाघाट प्रांत के अनेक भाग छीन लिए। खानखानाँ ने आरंभ ही में कुछ दलबंदी तथा ईर्ष्या से इन ज्वालाओं को बुझाने का प्रयत्न नहीं किया और उन्हें बढ़ने दिया। बाद को जब इधर ध्यान दिया तथा जहाँगीर से सहायता माँगी तब उसने सुलतान पर्वेज को आसफ खाँ मिर्जा जाफर की अभिभावकता में वहाँ नियुक्त कर दिया और इसके अनंतर क्रमशः बड़े बड़े अफसरों को जैसे राजा मानसिंह, खानजहाँ लोदी, अमीरुल् उमरा, खानेआजम और अब्दुल्ला खाँ को भेजा जिनमें प्रत्येक एक एक राज्य विजय कर सकता था

पर शाहजादे में सेनापतित्व के अभाव, अधिक मदिरा पान तथा लूटमार की चढ़ाइयों के कारण कार्य ठीक नहीं चला। इसके विपरीत अफसरों के कपटाचरण से हर एक बार जब जब वह सेना को बालाघाट ले गया तब तब उसे असफल होकर असम्मान के साथ लौट आना पड़ा। इन विरोधों के कारण आसफ खाँ का कोई उपाय ठीक नहीं बैठा। अंत में यह ७ वें वर्ष सन् १०२१ हि० (१६१२ ई०) में बीमारी से मर गया। 'सद हैफजे आसफ खाँ' अर्थात् आसफ खाँ केलिए सौ शोक (१०२१ हि०) से मृत्यु की तारीख निकलती है। यह अपने समय के अद्वितीयों में था। हर एक विज्ञान को खूब जानता तथा विद्वत्ता में पूर्ण था। इसकी तीव्र बुद्धि और ऊँची योग्यता प्रसिद्ध थी। यह स्वयं बहुधा कहता कि 'जो मैं सरसरी दृष्टि से देखने पर नहीं समझ सकता वह निरर्थक ही निकलता है।' कहते हैं कि यह बहुत सी पंक्ति एक साथ पढ़ सकता था। वाक्शक्ति, कौशल तथा आर्थिक और नैतिक कार्य करने में अग्रगण्य था। यह बाह्य तथा आंतरिक गुणों से शोभित था। कविता तथा मनोरंजक साहित्य में इसकी अच्छी पहुँच थी। बहुतों का विश्वास था कि शेख निजामी गंजवी के समय के बाद खुसरो और शीरीं के कथानक को इससे अच्छा किसी ने नहीं कहा है।

शैर

[यहाँ दस शैर दिए गए हैं, जिनका अर्थ देना आवश्यक नहीं है।]

कहते हैं कि फूलों, गुलाब बाड़ी, बाग तथा क्यारियों से इसे बड़ा शौक था और अपने हाथ से बीज तथा कलम लगाता।

यह प्रायः फावड़ा लेकर काम करता। इसने बहुत सी औरतें इकट्ठी कर लीं। अपनी अंतिम बीमारी के समय इसने एक सौ सुंदरियों को विदा कर दिया। इसने बहुत से लड़के लड़की पैदा किए पर कोई पुत्र प्रसिद्ध नहीं हुआ। मिर्जा जैनुल्आबदीन डेढ़ हजारी १५०० सवार के मंसब तक पहुँच कर शाहजहाँ के द्वितीय वर्ष में मर गया। इसका पुत्र मिर्जा जाफर, जो अपने पितामह का नाम तथा उपनाम रखे था, अच्छी कविता लिखता था। हर ऋतु में जानवर एकत्र करने की इसे रुचि थी। इससे जाहिद खाँ कोका और सैफ कोका के पुत्र मिर्जा साकी से घनी मित्रता थी तथा शाहजहाँ उन लोगों को तीन यार कहता था। अंत में मंसब छोड़कर यह आगरे गया। शाहजहाँ ने इसको वार्षिक वृत्ति बाँध दी, जो औरंगजेब के समय बढ़ाई गई। यह सन् १०९४ हि० (१६८३ ई०) में मरा। यहाँ तीन शैर उसीके दिए हैं, जिनका अर्थ देने की आवश्यकता नहीं है।

आसफ खाँ का एक अन्य पुत्र सुहराब खाँ था। शाहजहाँ के समय डेढ़ हजारी १५०० सवार का मंसब पाकर मरा। दूसरा मिर्जा अली असगर था। भाइयों में यह सबसे बढ़कर व्यसनी और उच्छृंखल था। जबान नहीं रोकता था और बहुधा समय तथा स्थान का बिना विचार किए बोल देता था। परेंदा की चढ़ाई में इसने शाह शुजाअ और महाबत खाँ अमीरुल् उमरा में झगड़ा करा दिया। इसके बाद जुझार बुंदेला की चढ़ाई में नियुक्त हुआ। जब धामुनी दुर्ग का अध्यक्ष रात्रि के अंधकार में बाहर निकला तब सैनिक भीतर घुस गए और लूटने लगे। खानदौराँ को बाध्य होकर इसे रोकने के लिए दुर्ग में जाना पड़ा।

एक आदमी ने पुकारा कि दक्षिण के एक बुर्ज में बहुत से शत्रु दिखलाई पड़ रहे हैं। अली असगर ने कहा कि मैं जाकर उन्हें पकड़ूँगा। खानदौराँ ने रोका कि ऐसी रात्रि में इस प्रकार के उपद्रव में जाना ठीक नहीं है जब शत्रु और मित्र की पहचान नहीं पड़ रही है, पर उसने नहीं माना और चला गया। जब वह दुर्ग की दीवाल पर चढ़ गया तब एकाएक मशाल का गुल, जिसे लुटेरों ने माल देखने के लिए बाल रखा था, बारूद के ढेर पर गिर पड़ा, जो बुर्ज के नीचे जमा था। कुल बुर्ज दोनों ओर की अस्सी अस्सी गज दीवाल सहित, जो दस गज मोटी थी, हवा में उड़ गया। अली असगर, उसके कुछ साथी तथा कुल लुटेरे, जो दीवाल पर थे, नष्ट हो गए। मोतमिद खाँ की पुत्री इसके गृह में थी पर निकाह नहीं हुआ था, इसलिए वह बादशाह की आज्ञा से खानदौराँ को ब्याही गई।

१०६. आसफुद्दौला अमीरुल् मुमालिक

यह निजामुल् मुल्क आसफजाह का तृतीय पुत्र था। इसका वास्तविक नाम सैयद मुहम्मद था। अपने पिता के जीवन ही में इसे खाँ की पदवी तथा सलाबत जंग बहादुर नाम मिला था और हैदराबाद का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ था। पिता की मृत्यु के बाद सलाबत जंग नासिर जंग के साथ मुजफ्फर जंग का विद्रोह दमन करने के लिए पांडिचेरी गया। नासिर जंग के मारे जाने पर यह मुजफ्फर जंग के साथ लौटा। जब मार्ग में मुजफ्फर जंग अफगानों द्वारा मारा गया तब सलाबत जंग गद्दी पर बैठा क्योंकि अन्य भाइयों से यही बड़ा था। बादशाह अहमदशाह से इसे मंसब में तरक्की तथा आसफुद्दौला जफर जंग की पदवी मिली। इसके बाद इसे अमीरुल् मुमालिक की पदवी मिली। इसके मंत्री राजा रघुनाथदास ने हैट पहिरने वाले फरासीसियों की पल्टन को, जो मुजफ्फर जंग के साथ आई थी, शान्त कर सेवा में ले लिया। सन् ११६४ हि० (१७५१ ई०) में सलाबत जंग औरंगाबाद आया और मराठों के प्रांत पर आक्रमण किया। अंत में संधि हो जाने पर लौट आया। मार्ग में रघुनाथ दास सैनिकों द्वारा मारा गया और रुक्नुद्दौला सैयद लश्कर खाँ प्रधान अमात्य हुआ। इसके दूसरे वर्ष इसका बड़ा भाई गाजीउद्दीन खाँ फीरोज जंग दक्षिण के शासन पर नियत होकर मराठों के साथ औरंगाबाद आया और

यद्यपि वह शीघ्र ही मर गया पर मराठों ने उसके सनदों के जोर पर खानदेश का बहुत अंश तथा औरंगाबाद का कुछ अंश ले लिया। इसका कुल गृह-कार्य इसके पूरे राज्य-काल भर अफसरों की राय पर होता रहा। जब दक्षिण का प्रबंध-भार इसके भाई निजामुद्दौला आसफजाह को बादशाह ने दे दिया, जो पहिले युवराज घोषित हो चुका था और शासन कार्य भी जिसे मिल चुका था, तब इसको अलग होना ही पड़ा। यह कैदखाने में सन् ११७७ हि० (१७६३ ई०) में मरा और प्रसिद्ध यह हुआ कि इसके रक्षकों ने इसे मार डाला।

---

११०. खानदौराँ अमीरुल् उमरा

ख्वाजा आसिम

यह अच्छे खानदान का था। इसके पूर्वज बदख्शाँ से हिंदुस्तान आकर आगरे में बस गए। इनमें से कुछ सैनिक होकर और दूसरों ने फकीरी लेकर दिन बिताये। इसका बड़ा भाई ख्वाजा महम्मद जाफर एक सच्चा फकीर था। शेख अब्दुल्ला वाएज मुलतानी और इससे जो झगड़ा धर्म के विषय में महम्मद फर्रुखसियर बादशाह के तीसरे वर्ष में चला था, वह लोगों के मुँह पर था। ख्वाजा महम्मद बासित ख्वाजा महम्मद जाफर का लड़का था। यह आरंभ में सुलतान अजीमुश्शान के वालाशाही सवारों में छोटे मंसब पर भरती हुआ। जिस समय औरंगजेब की मृत्यु पर अपने पिता के बुलाने पर यह बंगाल से आगरे को चला तब अपने पुत्र फर्रुखसियर को उक्त प्रांत में छोड़ गया और यह भी उसी के साथ नियत हुआ। यह व्यवहार-कुशल तथा योग्य था इसलिए कुछ दिनों में महम्मद फर्रुखसियर से हिलमिलकर हर एक कामों में हस्तक्षेप करने लगा। दूसरे ताल्लुकेदारों ने यहाँ तक शिकायत लिखी कि सुलतान अजी-मुश्शान ने इसको अपने यहाँ बुला लिया। जब बहादुर शाह मर गया और अजीमुश्शान अपने भाइयों से लड़कर मारा गया तब महम्मद फर्रुखसियर ने बादशाही के लिये बारहा के सैयदों के साथ अपने चचा जहाँदार शाह से लड़ने की तैयारी की तब यह उसके पास पहुँचा और इस पर कृपा तथा विश्वास बढ़ने से यह दीवाने खास का दारोगा नियत हुआ, मनसब बढ़ा और

अशरफ खाँकी पदवी पाई। इसके बाद कुछ दिनों तक दीवाने खास के दारोगा के पद के साथ मीर आतिश का भी काम करता रहा। इसके अनंतर जब महम्मद फर्रुखसियर चचा पर विजय पाकर दिल्ली पहुँचा तब पहिले वर्ष इसका मंसब बढ़कर सात हजारी ७००० सवार का हो गया और झंडा, डंका तथा समसामुद्दौला खानदौराँ बहादुर मनसूर जंग की पदवी पाई। ओछे आदमियों की राय, बादशाह की अनुभव-हीनता और बारहा के सैयदों के हठ से बादशाह और सैयदों के बीच जो मित्रता थी वह वैमनस्य में बदल गई परंतु इसने दूरदर्शिता से बादशाह की राय में शरीक रहते हुए भी सैयदों से बिगाड़ नहीं किया। दूसरे वर्ष जब अमीरुल् उमरा हुसेन अलीखाँ निजामुल् मुल्क फतेह जंग बहादुर के स्थान पर दक्षिण का सूबेदार नियत हुआ तब यह नायब मीर बख्शी नियत हुआ। उसी समय महम्मद अमीन खाँ बहादुर की जगह पर यह दूसरा बख्शी हुआ। इसके अनंतर गुजरात का सूबेदार नियत हुआ और हैदर कुली खाँ, जो सूरत बंदर में मुतसद्दी था, इसका प्रतिनिधि होकर वहाँ का काम करता रहा।

जब मुहम्मद शाह बादशाह हुआ और पहिले ही वर्ष हुसेन अली खाँ मारा गया तब उसके साथ की सेना ने झुंड-झुंड होकर और उसका भांजा सैयद गैरत खाँ ने अपनी सेना के साथ बादशाह के खेमे पर आक्रमण किया। बादशाह अपने हितैषियों की राय से हाथी पर सवार होकर खेमे के फाटक पर ठहरा। खानदौराँ ठीक युद्ध के समय अपनी सेना के साथ आकर हरावल नियत हुआ और गैरत खाँ के मारे जाने पर तथा उपद्रव के शान्त होने पर इसे अमीरुल् उमरा की पदवी मिली और मीर बख्शी

नियत हुआ। यह बहुत दिनों तक उक्त पद पर दृढ़ता से रहा। यह अच्छी चाल का था और भाषा पर अच्छा अधिकार था। विद्वानों और पंडितों का सत्संग इसे प्रिय था, इसलिए इसके साथ विद्वान लोग बराबर रहते थे। गरीबों के साथ भी अच्छा व्यवहार करता था और बराबर वालों से उचित बर्ताव रखता था। जो कोई इसकी जागीर से आता उसको सेना में भर्ती करता था, क्योंकि उसको अच्छा समझता था। बादशाही मामिलों में अनुभव नहीं रखता था।

कहते हैं कि जब बंगाल का सूबेदार जाफर खाँ मर गया और उसका संबंधी शुजाउद्दौला उसके स्थान पर नियत हुआ, तब बादशाही भेंट के सिवाय, इसके लिये भी धन भेजा। इसने भेंट के साथ वह रुपया भी बादशाही कोष में जमा कर दिया। राजा लोग बहुधा इससे परिचय रखते थे। जब मालवा में मरहठों का उपद्रव हुआ तब सन् ११४७ हि० में राजाओं के साथ उन्हें दंड देने के लिए रवाना हुआ। दूसरी सेना एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ के अधीन थी। खानदौराँ का सामना मल्हार राव होलकर से हुआ और जब कोई उपाय नहीं चला तब संधि कर लौट गया। सन् ११४९ हि० में जब बाजी राव ने दिल्ली तक पहुँचकर उपद्रव किया तब यह नगर से बाहर निकला और बाजी राव लौट गए। सन् ११५१ हि० में नादिर शाह हिंदुस्तान आया और मुहम्मद शाह उसका सामना करने की इच्छा से करनाल पहुँचा, तब अवध का सूबेदार बुरहानुल् मुल्क सआदत खाँ, जो पीछे रह गया, शीघ्र यात्रा करके सेवा में पहुँचा। उसने अपनी सेना के पिछले भाग के लूटे जाने का समाचार पाकर

ईरानी सेना पर चढ़ाई कर दी। खानदौराँ भी पीछे से उसको सहायता को अपनी सेना के साथ गया। दोनों सेनाओं में लड़ाई होने लगी। खानदौराँ दृढ़ता से खूब लड़ा और इसके बहुत से साथी मारे गए। यह स्वयं भी गोली से घायल होने पर खेमे में लाया गया और दूसरे दिन मर गया। इसके तीन लड़के, जो साथ थे और इसका भाई मुजफ्फर खाँ, जो प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका था और कुछ दिनों तक अजमेर का सूबेदार रह चुका था, इस युद्ध में मारे गए। ख्वाजा आशोरी नामक उसका लड़का, जो कैद हो गया था, मुहम्मद शाह बादशाह के राज्य में अपने पिता की पदवी पाकर सन् ११६७ हि० में मीर आतिश नियत हुआ, और आलमगीर द्वितीय के पहिले वर्ष में अमीरुल् उमरा होकर कुछ दिन बाद मर गया।

नादिर शाह का उल्लेख हुआ है इसलिए उसका कुछ हाल लिखना आवश्यक है। वह करकलू जाति का था, जो अफशार तुर्कमानों का एक भेद है। पहिले यह जाति तुर्किस्तान में बसी थी और तूरान के मुगोलियों के समय में वहाँ से निकल कर आजरबईजान में जा बसी। शाह इस्माइल सफवी के राज्य में आगे कूचकर खुरासान के अंतर्गत अनीवर्द महाल के कोंकान में, जो मशहद के उत्तर मर्व से बीस फर्सख दूर पर बसा हुआ है, आ बसी। यह सन् ११०० हि० में पैदा हुआ और दादा के नाम पर उसका नाम नजरकुली रखा गया। सुल्तान हुसेन सफवी के राज्य के अंत में दंड देने में ढिलाई होने से राज्य में उपद्रव मच गया था और हर एक को बादशाह बनने का शौक हो गया था। खुरासान और कंधार में अब्दाली तथा गिलज: अफगानों ने अधि-

कार कर लिया और रूमियों ने सीमा पर अधिकार करना आरंभ कर दिया। इसने भी अपने देश में विद्रोही होकर पहिले अपने जाति वालों को, जो उसकी बराबरी करते थे, युद्ध कर अधीन किया और फिर अफगानों को युद्ध में मार कर उनकी चढ़ाइयों को रोका। इसके अनंतर मशहद विजय कर सन् ११४१ हि० में इसफहान ले लिया। सन् ११४५ हि० में रूम की सेना को परास्त कर पाँच शर्तों पर संधि की। पहिली यह कि रूम के विद्वान् इमामिया तरिके को कथा धर्म समझें। दूसरी यह कि इस मजहब के भी आदमी हर एक भेद में शरीक होकर जाफरी नीमाज पढ़ें। तीसरी यह कि प्रति वर्ष ईरान की ओर से एक मीरहज्ज नियत होगा, जिसका सम्मान किया जाय। चौथी यह कि ईरान और रूम देश के जो गुलाम जिस किसी के पास हों वह मुक्त कर दिये जाँय और उनका बेंचना और खरीदना नियमित न हो। पाँचवीं यह कि एक दूसरे के वकील दोनों दरबार में उपस्थित रहें, जिसमें राज्य के सब काम वहीं निपटा दिए जावें। यह ११४७ हि० में गद्दी पर बैठा और ११५१ हि० में भारत आया। मुहम्मद शाह ने संधि कर बहुत धन, सामान तथा शाहजहाँ का बनवाया तख्त ताऊस सौंप दिया। ११५२ हि० में यह लौट गया और कुल देश ईरान, बलख तथा ख्वारिज्म पर अधिकृत हो गया। ११६० हि० में उसके पार्श्ववर्ती लोगों ने रात्रि में खेमे में घुस कर इसको खत्म कर दिया। इसके अनंतर इसके कई पुत्र गद्दी पर बैठे पर अंत में नाम के सिवा कुछ न बच रहा।

१११. इखलाक खाँ हुसेनबेग

यह शाहजहाँ के वालाशाही सवारों में से था। जब शाहजहाँ गद्दी पर बैठा तब पहिले ही वर्ष इसे दो हजारी ८०० सवार का मंसब और ६०००) रु० नकद पुरस्कार देकर बुर्हानपुर प्रांत का दीवान नियत किया। तीसरे वर्ष मंसब में २०० सवार बढ़ाए गए। चौथे वर्ष अजमेर का फौजदार नियत हुआ। १३ वें वर्ष सन् १०४९ हि० में इसकी मृत्यु हुई। इसका पुत्र नईम बेग पाँच सदी २२० सवार का मंसब पाकर १५ वें वर्ष में मर गया।

११२. इखलास खाँ शेख आलहदियः

यह कुतुबुद्दीन खाँ शेख खूबन के लड़के किशवर खाँ शेख इब्राहीम खाँ का पुत्र था, जिसका वृत्तांत लिखा जाता है। शेख इब्राहीम जहाँगीर के पहिले वर्ष में एक हजारी ३०० सवार का मंसब और किशवर खाँ की पदवी पाकर तीसरे वर्ष रोहतास का अध्यक्ष नियत हुआ। चौथे वर्ष दरबार आकर दो हजारी २००० सवार का मनसब पाकर उज्जैन का फौजदार हुआ। ७ वें वर्ष शुजाअत खाँ और उसमान अफगान के युद्ध में, जो उड़ीसा की ओर से लड़ने आया था, बहादुरी से लड़कर मारा गया। शेख आलहदियः योग्य मंसब पाकर शाहजहाँ के ८ वें वर्ष में शाहजादा औरंगजेब के साथ नियत हुआ, जो जुझार सिंह बुंदेला को दंड देनेवाली सेना का सहायक नियुक्त हुआ था। १७ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया और यह कालिंजर का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। १९ वें वर्ष शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई पर नियत हुआ। इसका मंसब दो हजारी १००० सवार का हो गया तथा इखलास खाँ की पदवी मिली। २० वें वर्ष जुमलतुल् मुल्क सादुल्ला खाँ के प्रस्ताव पर, जो उक्त शाहजादा के लौटने पर बलख का प्रबंध करने गया था, इसका मंसब ५०० सवार का बढ़ाया गया और झंडा मिला। २१ वें वर्ष वहाँ से लौटने पर आज्ञा के अनुसार शाहजादा औरंगजेब से

अलग होकर दरबार पहुँचा। इसके बाद झंडा पा कर प्रसन्न हुआ। २२ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी २००० सवार का हुआ और शाहजादा औरंगजेब के साथ कंधार गया। २३ वें वर्ष पाँच सदी मंसब बढ़ा और २५ वें वर्ष डंका मिला। यह दूसरी बार उक्त शाहजादा के साथ उसी स्थान को गया। २६ वें वर्ष शाहजादा दाराशिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर जाते समय खिलअत और चाँदी के जीन सहित घोड़ा पाकर सन्मानित हुआ। वहाँ से रुस्तम खाँ के साथ बुस्त पर अधिकार करने में बहादुरी दिखलाई। २८ वें वर्ष जुमलतुल् मुल्क के साथ दुर्ग चित्तौड़ उजाड़ने गया। ३० वें वर्ष मोअज्जम खाँ के साथ दक्षिण के सहायकों में नियत होकर वहाँ के सूबेदार शाहजादा औरंगजेब के पास गया। अदिलखानियों के साथ युद्ध में जंघे में भाला लगने से घायल हो गया। इसके पुरस्कार में ३१ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी १००० सवार का हो गया। इसके बाद का हाल नहीं मिला।

---

११३. इखलास खाँ इखलास केश

यह खत्री जाति के हिंदू का लड़का था। इसका असल नाम देवीदास था। इसके पूर्वज कलानौर में, जो दिल्ली से ४० कोस पर है, कानूनगोई करते थे। यह अल्पावस्था से पढ़ने लिखने में लगा था और राजधानी दिल्ली में रहते हुए इसने आलिमों और फकीरों का सत्संग करने से योग्यता प्राप्त कर ली। यह सैयद अब्दुल्ला स्यालकोटी का शिष्य था, इसलिए उसके द्वारा औरंगजेब की सेवा में पहुँचकर इखलास केश की पदवी पाई। छोटा मंसब पाकर २५ वें वर्ष में मोदीखाने का, २६ वें वर्ष नमाजखाने का और २९ वें वर्ष प्रधान पत्रों का लेखक नियत हुआ। ३० वें वर्ष यार अलीबेग के स्थान पर मीरबख्शी रुहुल्ला खाँ का पेशकार नियुक्त हुआ। ३३ वें वर्ष शरफुद्दीन के स्थान पर खानसामाँ कचहरी का वाकियानवीस हुआ और इसके बाद बीदर प्रांत के कुछ भाग का अमीन नियत हुआ। ३९ वें वर्ष महम्मद काजिम के स्थान पर इंदौर प्रांत का अमीन तथा फौजदार नियत हुआ। उसी वर्ष इसका मंसब चार सदी ३५० सवार का हुआ। ४१ वें वर्ष रुहुल्ला खाँ खानसामाँ का पेशकार पुनः नियत हुआ। ५० वें वर्ष कृपा करके इसका नाम महम्मद रखकर शाहआलम बहादुर का वकील नियत किया। औरंगजेब के मरने पर आजमशाह उक्त वकालत के कारण इससे अप्रसन्न था, इसलिए बसालत खाँ मिर्जा सुलतान नजर के द्वारा

इसकी निर्दोषिता स्वीकार कर इसे औरंगाबाद में रहने दिया। बहादुरशाह का अधिकार होने पर सेवा में उपस्थित होने पर इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी १००० सवार का हो गया और इखलास खाँ की पदवी और अर्ज-मुकर्रर का पद मिला। कहते हैं कि जब यह अपना काम सुनाने के लिए दरबार में उपस्थित होता, तब बादशाह के भी विद्वान् होने के कारण मुकद्दमों के सिलसिले में इल्मी बहस होने लगती। दूसरे पदाधिकारी चुप होकर आपस में इशारा करते थे कि अब रहस्य का पर्दा उठने वाला है, सांसारिक बातें बंद कर देना चाहिए। उस समय बादशाह और वजीर की हिम्मत बहुत ऊँचे चढ़ गई थी, इसलिए कोई दरख्वास्त पेश न हुई। उक्त खाँ ने, जो मुतसद्दीगिरी के समय अपनी कड़ाई के लिए प्रसिद्ध था, खानखानाँ से प्रगट किया कि बादशाह का कृपा-वृक्ष सिवाय अयोग्य के योग्यों के लिए फल नहीं लाता है। खानखानाँ इस अपकीर्ति की सचाई को अपने से संबंध रखता हुआ समझकर इखलास खाँ के पीछे पड़ गया। उक्त खाँ ने भी आदमियों की कहा सुनी को पसंद न कर उस काम से हाथ खींच लिया और उस पद पर मुस्तैद खाँ मुहम्मद साकी नियत हुआ। जहाँदार शाह के समय में जुल्फिकार खाँ ने पहिले पद के सिवाय दीवान-तन का पद भी देकर इसे अपना मित्र बनाया। फर्रुखसियर के समय में जब युद्ध का शोर मचा और कुछ सर्दार इस पर नजर रखे हुए थे तब कुतबुल् मुल्क और हुसेन अली खाँ ने पुरानी जान पहिचान का विचार कर इसको इसके देश कस्बा जान सहत: रवाना कर दिया और इसके बाद बादशाह से प्रार्थना कर इसकी पुरानी जागीर और

मंसब की बहाली का आज्ञा पत्र भेजवा दिया। यद्यपि यह स्वतंत्र स्वभाव के कारण नौकरी नहीं करना चाहता था पर दोनों भाइयों के कहने से इसने सेवा कर लिया और मीर मुंशी के पद पर तथा अपने समय की घटनाओं का इतिहास लिखने पर नियत हुआ। महम्मद फर्रुखसियर के हटाए जाने के बाद सात हजारी मंसब तक पहुँचा और महम्मदशाह के राज्य-काल में उसी पद पर रहा। यह सभा-चतुर मनुष्य था और सिवाय सफेद कपड़े के और कुछ नहीं पहिनता था। कहते हैं कि कम मंसब के समय भी अच्छे सर्दार इसकी प्रतिष्ठा करते थे। इसने महम्मद फर्रुखसियर की घटनाओं को लिखकर बादशाहनामा नाम रखा था। समय आने पर यह मर गया।

---

११४. इखलास खाँ, खानआलम

यह खानजमाँ शेख निजाम का बड़ा पुत्र था। औरंगजेब के २९ वें वर्ष में अपने पिता के साथ दरबार में पहुँच कर इसने योग्य मंसब पाया। ३२ वें वर्ष में जब इसके पिता ने शंभाजी को पकड़ने में बहुत अच्छी सेवा की तब यह भी उसका शरीक था। इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी ४००० सवार का हो गया और इसने खानआलम की पदवी पाई। ३९ वें वर्ष हजारी १००० सवार बढ़ाए गए। ४३ वें वर्ष महम्मद बेदार बख्त और राना भोंसला के युद्ध में बहुत प्रयत्न किया। ५० वें वर्ष मालवा प्रांत का अध्यक्ष चुना जाकर महम्मद आजमशाह के साथ नियुक्त हुआ, जिसने बादशाह के मरने के कुछ दिन पहले मालवा जाने की छुट्टी पाई थी। उस अवश्यंभावी घटना के बाद महम्मद आजम शाह का पक्ष लेकर बहादुर शाह के युद्ध के दिन सुलतान अजीमुश्शान के सामने पहुँच कर वीरता से धावा किया। बहुत बहादुरी दिखलाने के बाद तीर से घायल होकर गिर पड़ा। उसके पुत्रों में से एक खानआलम द्वितीय था, जो पिता की मृत्यु पर सरदारी पर पहुँचा। बीदर प्रांत की ओर उसे एक परगना जागीर में मिला, जहाँ वह घर की तौर पर बस गया था। अपनी विवाहिता स्त्री से बहुत प्रेम रखता था और जागीर का कुल काम उसीको सौंप दिया था। दुर्भाग्य से वह स्त्री मर गई, जिससे इसको ऐसा दुःख हुआ कि चार महीने बाद

यह भी मर गया। सोना, जवाहिर और हथियार एकट्ठा करने का इतना शौक था कि स्वयं काम में नहीं लाता था। नकद भी बहुत सा जमा किए था। सरकार में आधे से अधिक जब्त हो गया। इसको लड़का नहीं था। द्वितीय पुत्र एहतशाम खाँ था, जिसका आरंभिक हाल ज्ञात नहीं है। इसका एक पुत्र एहतशाम खाँ द्वितीय अपने चाचा खानआलम के साथ मारा गया, जिसकी पुत्री से उसका विवाह हुआ था। उससे एक लड़का था, जिसने बहुत प्रयत्न करके खानआलम की पदवी और वही पैत्रिक महाल की जागीरदारी प्राप्त की परंतु भाग्य की विचित्रता से युवावस्था ही में मर गया।

११५. सैयद इख्तसास खाँ उर्फ सैयद फीरोज खाँ

शाहजहाँ के समय के सैयद खानजहाँ बारहा का भतीजा और संबंधी था। अपने चचा के जीवन ही में एक हजारी ४०० सवार का मंसब पा चुका था और उसकी मृत्यु पर १९ वें वर्ष में पाँच सदी ६०० सवार इसके मंसब में बढ़ाए गए। २० वें वर्ष में अन्य कई मनसबदारों के साथ अल्लामी सादुल्ला खाँ के पास पचीस लाख रुपये पहुँचाने बलख गया और वहाँ से लौटने पर इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया तथा झंडा मिला। २२ वें वर्ष खाँ की पदवी पाकर सुलतान मुहम्मद औरंगजेब बहादुर के साथ कंधार की चढ़ाई पर गया। विदा होते समय इसे खिलअत और चाँदी के साज सहित घोड़ा मिला। वहाँ से रुस्तम खाँ के साथ कुलीज खाँ की सहायता को बुस्त की ओर गया और कजिलबाशों के साथ युद्ध में बहुत प्रयत्न कर गोली लगने से घायल हो गया। २५ वें वर्ष दूसरी बार उसी शाहजादे के साथ उसी चढ़ाई पर फिर गया। २६ वें वर्ष खिलअत और चांदी के जीन सहित घोड़ा पाकर सुलतान दारा शिकोह के साथ उसी चढ़ाई पर गया। २९ वें वर्ष एरिज, भांडेर और शाहजादपुर का फौजदार नियत हुआ, जो आगरे के पास खालसा महाल है और जो नजाबत खाँ के प्रबंध न कर सकने से वीरान हो रहा था तथा जिसकी तहसील तीन करोड़ चालीस

लाख दाम की थी। जब औरंगजेब बादशाह हुआ तब मिर्जाराजा जयसिंह के साथ, जो सुलेमान शिकोह से अलग होकर दरबार में उपस्थित होने की इच्छा रखता था, सेवा में पहुँचकर अमीरुल् उमरा शाइस्ता खाँ के संग सुलेमान शिकोह को रोकने के लिए हरिद्वार गया। सुलतान शुजाअ के युद्ध के बाद बंगाल की चढ़ाई पर नियत हुआ। दूसरे वर्ष के अंत में जब फीरोज मेवाती को खाँ की पदवी मिली, तब इसे सैयद इख्तसास खाँ की पदवी मिली। बहुत दिनों तक बंगाल प्रांत के पास आसाम की सीमा पर गोहाटी का थानेदार रहा। १० वें वर्ष बहुत से आसामियों ने एकत्र होकर उपद्रव मचाया और सहायता न पहुँच सकने के कारण उक्त खाँ बहुत वीरता दिखला कर सन् १०७७ हि० (सन् १६६७ ई०) में मारा गया।

---

११६. सैयद इज्जत खाँ अब्दुर्रजाक गीलानी

पहिले यह दारा शिकोह की शरण में था। शाहजहाँ के तीसरे वर्ष में उक्त शाहजादे की प्रार्थना पर इसे इज्जत खाँ की पदवी मिली और मुलतान प्रांत का शासक नियत हुआ। ३१ वें वर्ष बहादुर खाँ के स्थान पर राजधानी लाहौर का अध्यक्ष हुआ। जब दाराशिकोह आगरे के पास औरंगजेब से परास्त होकर लाहौर गया और वहाँ भी न ठहर सकने पर मुलतान चला गया तब तक यह भी साथ था परंतु जब उक्त शाहजादा साहस छोड़कर भक्कर की ओर चला तब यह उससे अलग होकर औरंगजेब की सेवा में पहुँचा और तीन हजारी ५०० सवार का मंसब पाया। मुहम्मद शुजाअ के युद्ध में यह बादशाह के साथ था। ४ थे वर्ष संजर खाँ के स्थान पर भक्कर का फौजदार नियत हुआ। १० वें वर्ष गजनफर खाँ के स्थान पर ठट्टा का सूबेदार हुआ और इसका मंसब बढ़कर साढ़े तीन हजारी २००० सवार का हो गया। आगे का वृत्तांत नहीं मालूम हुआ।

---

११७. इज्जत खाँ ख्वाजा बाबा

यह अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग का एक संबंधी था। जहाँगीर के राज्य काल में एक हजारी ५०० सवार का मंसबदार था। शाहजहाँ के बादशाह होने पर यह लाहौर से यमीनुद्दौला के साथ आकर सेवा में उपस्थित हुआ और पुराना मंसब बहाल रहा। ३ रे वर्ष डेढ़ हजारी १००० सवार का मंसब पाकर अब्दुल्ला खाँ बहादुर के साथ नियत हुआ, जो खानजहाँ लोदी के दक्षिण से भागने पर मालवा प्रांत में उसका पीछा करने को नियत हुआ था। ४ थे वर्ष इसका मंसब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया और इज्जत खाँ की पदवी, झंडा और हाथी इनाम तथा भक्कर की फौजदारी मिली। ६ ठे वर्ष सन् १०४२ हि० (सन् १६३३ ई०) में भक्कर में मर गया।

११८. इनायत खाँ

इसके वंश और निवास स्थान का पता नहीं है। न उसके पूर्वजों की खबर है और न उसके संबंधियों का पता है, केवल इतना ज्ञात हुआ कि यह खवाफी कहलाता था। औरंगजेब के १० वें वर्ष के अंत में खालसे का दीवान नियत हुआ। १२ वें वर्ष में इसने शाहजहाँ के समय से चौदह लाख रुपया आय बढ़ाई। आज्ञा हुई कि चार करोड़ रुपया खालसा नियत रखे और इतना ही खर्च रखे। कागजों को देख करके बादशाही, शाहजादों और बेगमों के व्यय के बहुत से मद कम कर दिए। यहाँ से थोड़े समय में उस भारत-साम्राज्य के विभव तथा विस्तार को और उस भारी देश के फैलाव का अन्वेषण कर लिया, जिसके सिवा दूसरे सुलतानों को कही जानेवाली सल्त-नतें इसके सेवक सर्दारों की आय को नहीं पहुँच सकती थीं। इमाम कुली खाँ और नजर मुहम्मद खाँ की, जो मावरुन्नहर, तुर्किस्तान तथा बलख बदख्शाँ पर अधिकृत थे, आय जकात आदि हर मद से एक करोड़ बीस लाख खानी अर्थात् बीस लाख रुपये की थी, जो प्रत्येक सातहजारी ७००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा मंसबदार का वेतन है और एक करोड़ दाम पुरस्कार है। यमीनुद्दौला आसफ खाँ को प्रति वर्ष जागीर से पचास लाख रुपए मिलते हैं। दारा शिकोह का मंसब अंत में साठ हजारी ४०००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा का हो गया था

और पुरस्कार छियासी करोड़ दाम तक पहुँच गया था और उसका वार्षिक वेतन दो करोड़ साढ़े सात लाख रुपये था।

कागजात के देखने से प्रगट होता है कि अकबर के समय में, जो बादशाहत का संस्थापक और राज्य के नियमों का पोषक था इस प्रकार के असाधारण और निश्चित व्यय नहीं थे। ज्यों ज्यों प्रांत पर प्रांत और देश पर देश बढ़ते गए और साम्राज्य का विस्तार बढ़ता गया उसी तरह व्यय आवश्यकतानुसार बढ़ता गया परंतु आय के मद भी एक से सौ हो गए और रुपया बहुत जमा हो गया। जहाँगीर के राज्यकाल में, जो बादशाह राज्य तथा माल का कोई काम नहीं देखता था और जिसके स्वभाव में लापरवाही थी, बेइमान और लालची मुतसद्दियों ने रिशवत लेने तथा रुपया बटोरने में हर तरह के आदमियों के साथ तथा हर एक के काम में कुछ भी रियायत नहीं किया, जिससे देश वीरान हो गया और आय बहुत कम हो गई। यहाँ तक कि खालसा के महालों की आमदनी पचास लाख रह गई और व्यय डेढ़ करोड़ तक पहुँच गया। कोष की बहुमूल्य चीजें खर्च हो गईं। शाहजहाँ के राज्य के आरंभ में जब आय और व्यय विभाग का निरीक्षण बादशाह के दरबारियों को मिला तब उस बुद्धिमान तथा अनुभवी बादशाह ने डेढ़ करोड़ रुपये के महाल, जो रक्षित प्रांत के वार्षिक निश्चित आय का १५ वाँ हिस्सा है, खालसा से जब्त करके एक करोड़ रुपया साधारण व्यय के लिए नियत किया तथा बचे हुए मदों के विशेष व्यय के लिए सुरक्षित रखा। बादशाह के सौभाग्य तथा सुनीति से प्रति दिन आय बढ़ती गई और साथ साथ खर्च भी बढ़ा। २० वें

वर्ष के अंत में आठ सौ अस्सी करोड़ दाम प्रांतों की आय से और एक सौ बीस करोड़ दाम खालसा से नियत किया, जो बारह महीने में तीन करोड़ रुपये होते हैं। अंत में चार करोड़ तक पहुँच गया था।

इससे अधिक विचित्र यह है कि बहुत सा रुपया दान, पुरस्कार, युद्ध आदि तथा इमारतों में व्यय हो जाता था। पहिले ही वर्ष एक करोड़ अस्सी लाख रुपया नकद और सामान तथा चार लाख बीघा भूमि और एक सौ बीस मौजा बेगमों, शाहजादों, सरदारों, सैयदों तथा फकीरों को दिए गए। २० वें वर्ष के अंत तक नौ करोड़ साठ लाख रुपये केवल इनाम खाते में लिखे गए। बलख और बदख्शाँ की चढ़ाई में खान-पान के व्यय के दो करोड़ रुपये के सिवाय दो करोड़ रुपये दूसरे आवश्यक कामों में खर्च हो गए। ढ़ाई करोड़ रुपए इमारतों के बनवाने में व्यय हुआ। इसमें से पचास लाख रुपया मुमताज महल के रौजा पर, बावन लाख रुपये आगरे की अन्य इमारतों में, पचास लाख रुपए दिल्ली के किले में, दस लाख जामा मसजिद में, पचास लाख लाहौर की इमारतों में, बारह लाख काबुल में, आठ लाख काश्मीर के बागों में, आठ लाख कंधार में और दस लाख अहमदाबाद, अजमेर तथा दूसरे स्थानों की इमारतों में व्यय हुए। साथ ही इसके जो कोष अकबर के इक्यावन वर्ष के राज्य में संचित हुआ था और कभी खाली न होने वाला था, बढ़ता गया। औरंगजेब, जो बहुत ठीक प्रबंध करता था, आय तथा व्यय के हिसाब को ठीक रखने में बहुत प्रयत्न करता रहा परंतु दक्षिण के युद्ध से बहुत धन नष्ट होता रहा। यहाँ तक कि दारा शिकोह आदि के अनुयायियों का

माल हिंदुस्तान से दक्षिण जाकर व्यय हो गया और साम्राज्य इस कारण वीरान होता गया और आय कम हो गई। उक्त बादशाह के राज्य के अंत समय में आगरा दुर्ग में लगभग दस बारह करोड़ रुपये थे। बहादुर शाह के समय में जब आय से व्यय अधिक था, बहुत कुछ नष्ट हुआ। इसके अनंतर मुहम्मद मुइज्जुद्दीन के समय में नष्ट हुआ और जो कुछ बचा था वह निकोसियर की घटना में बारहा के सैयदों ने ले लिया। उस समय साम्राज्य की आय बंगाल प्रांत की आय पर निर्भर थी। वहाँ भी मरहठे दो तीन वर्ष से उपद्रव मचा रहे थे। व्यय भी उतना नहीं रह गया था। इतना विषय के अतिरिक्त लिख गया।

१४ वें वर्ष में इनायत खाँ खालसा की दीवानी से बदलकर बरेली चकला का फौजदार नियत हुआ और उस पद पर मीरक मुईनुद्दीन अमानत खाँ नियत हुआ। १८ वें वर्ष मुजाहिद खाँ के स्थान पर खैराबाद का फौजदार हुआ। इसके अनंतर जब मृत अमानत खाँ ने खालसे की दीवानी से त्यागपत्र दे दिया तब आज्ञा हुई कि दीवान-तन किफायत खाँ खालसे के दफ्तर का भी काम देखे। २० वें वर्ष दूसरी बार खालसा का प्रबंधक नियत होकर एक हजारी १०० सवार का मंसबदार हुआ। २४ वें वर्ष अजमेर प्रांत में इसका दामाद तहव्वुर खाँ बादशाह कुली खाँ, जो शाहजादा मुहम्मद अकबर का कुमार्ग-प्रदर्शक हो गया था और बुरे विचार से या अपने श्वसुर के लिखने से सेवा में लौट आया था और बादशाह के सामने उपस्थित होकर राजद्रोह का दंड पा चुका था। इसी वर्ष यह खालसा की दीवानी से बदलकर कामदार खाँ के स्थान पर सरकारी बयूतातो पर नियत हुआ।

इसके दामाद तहव्वुर खाँ ने अजमेर की फौजदारी के समय राजपूतों को दंड देने में बहुत काम किया था, इसलिए उसी फौजदारी के लिए इसी वर्ष प्रार्थना की और वीर राठौरों को शीघ्र दमन करने का दावा किया। इच्छा पूरी होने से प्रसन्न हुआ और २६ वें वर्ष सन् १०९३ हि० (सन् १६८२-३ ई०) में मर गया।

११६. इनायतुल्ला खाँ

इसका संबंध सैयद जमाल नैशापुरी तक पहुँचता है। संयोग से काश्मीर पहुँचकर यह वहीं बस गया। इसका पिता मिर्जा शुकरुल्ला था और इसकी माँ मरिअम हाफिजा एक विदुषी स्त्री थी। औरंगजेब के राज्यकाल में जेबुन्निसा बेगम को पढ़ाने पर यह नियत हुई, जो महम्मद आजम शाह की सगी बहिन थी। बेगम उससे कुरान पढ़ती थी और आदाब सीखती था। उसने इनायतुल्ला को मंसब दिलाने के लिए अपने पिता से प्रार्थना की। इसे आरंभ में छोटा मंसब और जवाहिरखाने में कुछ काम मिला। ३१ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर चार सदी ६० सवार का हो गया। ३२ वें वर्ष बेगम की सरकार में खानसामाँ नियत हुआ। ३५ वें वर्ष जब खालसे का मुख्य लेखक रशीद खाँ बदीउज्जमाँ हैदराबाद प्रांत के कुछ खालसा महालों की तहसील निश्चय करने के लिए भेजा गया तब यह उक्त खाँ का नायब नियत हुआ और इसका मंसब बढ़कर छः सदी ६० सवार का हो गया और खाँ की पदवी मिली। ३६ वें वर्ष अमानत खाँ मीर हुसेन के स्थान पर यह दीवान-तन हुआ और इसका मंसब बढ़कर सात सदी ८० सवार का हो गया। कुछ दिन बाद दीवान खास खर्च का पद और २० सवार की तरक्की मिली। ४२ वें वर्ष दूसरे के नियत होने तक सदर का भी काम इसीको मिला और मंसब बढ़कर एक हजारी १०० सवार का हो गया।

४५ वें वर्ष अर्शद खाँ अबुल्अला के मरने पर खालसा की भी दीवानी इसे मिली और इसका मंसब बढ़ कर डेढ़ हजारी २५० सवार का हो गया। ४६ वें वर्ष इसे हाथी मिला। ४९ वें वर्ष दो हजारी २५० सवार का मंसब हो गया। बादशाह के साथ अधिक रहने से इस पर विशेष विश्वास हो गया था। यहाँ तक कि जब असद खाँ वृद्धावस्था तथा विषय-भोग के कारण मंत्रित्व के कागजों पर हस्ताक्षर करने में अपनी अप्रतिष्ठा समझने लगा तब आज्ञा हुई कि इनायतुल्ला खाँ उसका प्रतिनिधि हो कर दस्तखत करे। बादशाह को इस पर यह अजीब कृपा थी, जैसा कि मआसिरे आलमगीरी के लेखक ने लिखा है, जो अमीरुल् उमरा असद खाँ के नीचे लिखे हाल से ज्ञात होगा।

औरंगजेब की मृत्यु पर आजम शाह के साथ यह हिंदुस्तान इस कारण गया कि कुछ कागजात ग्वालियर में छूट गए थे, जो असद खाँ के साथ वहाँ थे। बहादुर शाह के समय में पुराने पदों पर नियत रह कर असद खाँ के साथ दिल्ली लौटा। इसका पुत्र हिदायतुल्ला खाँ इसके बदले दरबार में काम करता रहा। दक्षिण से आने पर, इस कारण कि खानसामाँ मुख्तार खाँ मर गया था, यह उस पद पर नियत हो कर दरबार पहुँचा। जहाँदार शाह के समय में काश्मीर प्रांत का नाजिम नियत हुआ। फर्रुखसियर के राज्य के आरंभ में इसका बड़ा पुत्र सादुल्ला खाँ हिदायतुल्ला खाँ मारा गया, इसलिए इनायतुल्ला खाँ ने काश्मीर से मक्का जाने का विचार किया। उक्त राज्य के मध्य में वहाँ से लौटने पर चार हजारी २००० सवार का मंसबदार हो गया और खालसा तथा तन की दीवानी के

साथ काश्मीर की सूबेदारी मिली। आज्ञा हुई कि स्वयं दरबार में रहे और अपना प्रतिनिधि वहाँ भेज दे। महम्मदशाह के राज्य में एतमादुद्दौला महम्मद अमीन खाँ की मृत्यु पर सात हजारी मंसब पाकर आसफजाह के पहुँचने तक प्रतिनिधि रूप में वजीर का और मीर सामान का निज का काम करता रहा। सन् ११३९ हि० में उसी समय मर गया।

कहते हैं कि यह साफ सुथरा, व्यवहार-कुशल और धर्मभीरु तथा प्रेमी था। 'साधुओं का सत्-संग करने के लिए प्रसिद्ध था। राज्य के नियम और दफ्तर के कामों में बहुत कुशल था। औरंगजेब इसके पत्र-लेखन को बहुत पसंद करता था। जो पत्र शाहजादों और सरदारों को इसके द्वारा भेजे गए थे वे संगृहीत हो कर रुक्कामे-आलमगीरी कहलाए और बादशाह के हस्ताक्षर किए हुए पत्र भी संगृहीत हो कर कलमाते-तईबात कहलाए। ये दोनों संग्रह प्रचलित हैं। उक्त खाँ को छः लड़के थे। पहिले सादुल्ला खाँ हिदायतुल्ला खाँ का ऊपर उल्लेख हो चुका है। दूसरे जिआउल्ला खाँ का हाल उसके लड़कों सनाउल्ला और अमानुल्ला खाँ के हाल में आ चुका है। तीसरे का नाम किफायतुल्ला खाँ था। चौथा अतीयतुल्ला खाँ था, जो पिता के बाद इनायतुल्ला खाँ के नाम से काश्मीर का शासक हुआ। पाँचवाँ उबेदुल्ला खाँ था। छठा अब्दुल्ला खाँ दिल्ली में रहता है और उसे मनसूरुद्दौला की पदवी मिली है।

१२०. इफ्तख़ार ख़ाँ ख़्वाजा अबुल् बका

यह अब्दुल्ला ख़ाँ फीरोजजंग का भतीजा और महाबत ख़ाँ खानखानाँ का भांजा था। इसे लखनऊ में जागीर मिली थी। शाहजहाँ के १८ वें वर्ष में इफ्तखार ख़ाँ की पदवी पा कर मीर ख़ाँ के स्थान पर, जो सलाबत ख़ाँ और अमर सिंह की घटना में मारा गया था, तुजुक और जड़ाऊ चोब की सेवा पर नियत हुआ। इसके अनंतर अकबर नगर की फौजदारी पर नियुक्त होते समय इसका मंसब डेढ़ हजारी ५०० सवार का हो गया। २६ वें वर्ष रुस्तम ख़ाँ दखिनी के साथ कंधार के कजिलबाशों के युद्ध में बड़ी वीरता दिखलाई। जिस समय कजिलबाश सेना ने रुस्तम ख़ाँ के दाहिने भाग पर धावा किया तब उस भाग के बहुत से वीर भाग गए, पर इफ्तखार ख़ाँ ने कुछ सरदारों के साथ, जो नहीं भागे थे, बहुत वीरता दिखलाई। इसके पुरस्कार में दरबार से इसका मंसब पाँच सदी ५०० सवार का बढ़ा कर दो हजारी २००० सवार का हो गया और इसे झंडा मिला। इसके मस्तक से बहादुरी और कार्य-कुशलता झलक रही थी इस लिए इसे कृपा के योग्य समझ कर २५ वें वर्ष और तुलादान के उत्सव पर इसका मंसब पाँच सदी बढ़ाया गया और डंका इनाम मिला। २७ वें वर्ष शाहजादा दाराशिकोह के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ। उस शाहजादा की प्रार्थना पर पाँच सदी और मंसब बढ़ाया गया। २८ वें वर्ष मालवा प्रांत के

अंतर्गत चौरागढ़ की फौजदारी और जागीरदारी पाकर इसका मंसब एक हजारी १००० सवार बढ़ने से तीन हजारी ३००० सवार का हो गया। ३० वें वर्ष शाहजादा औरंगजेब तिलंग के सुलतान अब्दुल्ला कुतुबशाह को दंड देने के लिए दक्षिण का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और बादशाही आज्ञानुसार मालवे का सूबेदार शाइस्ता खाँ इफ्तखार खाँ और अन्य सब फौजदारों, मंसबदारों के साथ, जो उस प्रांत में नियुक्त थे, मालवा से रवाना हो कर शाहजादा की सेना में जा मिला। इफ्तखार खाँ शाहजादे के आदेश से हादीदाद खाँ अनसारी के साथ उत्तरी मोर्चे में नियत हुआ। उस काम के पूरा होने पर अपने काम पर लौट गया। उसी वर्ष के अंत में जब उक्त शाहजादा बीजापुर के सुलतान आदिल शाह के राज्य पर अधिकार करने और लूटने पर नियत हुआ तब बादशाही आज्ञानुसार इफ्तखार खाँ अपनी जागीर से सीधे शाहजादे की सेना में जा मिला। शाहजादा ३१ वें वर्ष में भारी सेना के साथ कूच करता हुआ जब बीदर दुर्ग के पास पहुँचा तब उसके अध्यक्ष सीदी मरजान ने, जो इब्राहीम आदिलशाह का पुराना दास था और तीस वर्ष से उस दुर्ग की रक्षा कर रहा था, लगभग १००० सवार तथा ४००० पैदल बंदूकची धनुर्धारी और बहुत से सामान के साथ बुर्ज आदि की दृढ़ता से विश्वस्त हो कर युद्ध का साहस किया। शाहजादा ने मोअज्जम खाँ मीरजुमला के साथ दस दिन में तोपों को खाई के पास पहुँचा कर एक बुर्ज को तोड़ डाला। दैवात् एक दिन जब मोअज्जम खाँ के मोर्चे से धावा हुआ तब दुर्गाध्यक्ष जो उक्त बुर्ज के पीछे भारी गढ़ा खुदवा कर और

उसको बारूद, बान और हुक्कों से भरवा कर उसके पास स्वयं धावे को नष्ट करने के लिए खड़ा था कि एकाएक आग की चिनगारी उसमें गिर पड़ी और वह दो लड़कों के साथ उसमें जल गया। बादशाही बहादुर नक्कारा पीटते हुए शहर में घुस गए। दुर्गाध्यक्ष मौत के चंगुल में फँसा था, इस लिए अपने लड़कों को दुर्ग की ताली के साथ भेजा। दूसरे दिन वह मर गया। ऐसा दृढ़ दुर्ग, जिसके चारों ओर २५ गज चौड़ी तीन तीन गहरी खाइयाँ थीं, जिनकी १५ गज गहरी दीवार पत्थर से बनी हुई थी, केवल शाहजादा के एकबाल से २७ दिन में विजय हो गया। बारह लाख रुपया नकद, आठ लाख रुपये का बारूद आदि दुर्ग का सामान और २३० तोपें मिलीं। शाहजादा अपने दूसरे पुत्र सुलतान मुहम्मद मोअज्जम को इफ्तखार खाँ के साथ उस दुर्ग में छोड़कर स्वयं दरबार की ओर रवाना हुआ। अभी यह कार्य इच्छानुसार पूरा नहीं हुआ था कि आज्ञानुसार शाहजादा वहाँ के तथा अपने जगह के सहायकों के साथ लौट गया। इसी समय महाराजा जसवंत सिंह मालवा के सूबेदार हुए और कुल जागीरदार उसके सहायक नियत हुए। उक्त खाँ भी शीघ्रता और चालाकी से सबके पहिले राजा के पास पहुँच गया। एकाएक तमाशा दिखलानेवाले आकाश ने, जो किसी मनुष्य का विचार नहीं करता, यह दृश्य दिखलाया कि ३२ वें वर्ष के आरंभ सन् १०६८ हि० में शाहजादा औरंगजेब दक्षिण की सेना के साथ आगरा जाने के लिए मालवा आया। राजा, जो रास्ता रोके हुए था और इसी दिन की अपेक्षा कर रहा था, युद्ध के लिए तैयार हुआ। इफ्तखार खाँ कुछ मंसब-

दारों के साथ सेना के बाएँ भाग में नियत हुआ और मुराद-बख्श की सेना के साथ, जो आलमगीरी सेना के दाहिने भाग में था, आक्रमण कर खूब युद्ध किया और उसी में मारा गया। कहते हैं कि यह नक्शबंदी ख्वाजाजादों में था पर इमामिया धर्म मानता था। उस धर्म की दलीलों को यहाँ तक याद किए हुए था कि दूसरों को उसको न मानना कठिन हो जाता था।

---

१२१. इफ्तखार खाँ सुलतान हुसेन

यह एसालत खाँ मीर बख्शी का बड़ा पुत्र था। जब इसका पिता शाहजहाँ के २० वें वर्ष में बलख में मर गया तब गुण-ग्राहक बादशाह ने उस सेवक की अच्छी सेवाओं को ध्यान में रखकर उसके पुत्र पर कृपा की और २१ वें वर्ष में सुलतान हुसेन को शस्त्रालय का दारोगा नियत कर दिया। २२ वें वर्ष रहमत खाँ के स्थान पर दाग का दारोगा बना दिया। २४ वें वर्ष इसे दोआब में फौजदारी मिली। ३१ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर एक हजारी ५०० सवार का हो गया और महाराज यशवंत सिंह के साथ, जो वास्तव में दारा शिकोह की राय से शाहजादा औरंगजेब का सामना करने नियत हुए थे, मालवा गया। इसी समय वह भाग्यवान शाहजादा नर्मदा नदी पार कर उस प्रांत में पहुँचा और राजा रास्ता रोक कर लड़ने को तैयार हो गया। जब बहुत से नामी राजपूत सरदार मारे गए और महाराज घबड़ा कर भाग गए तथा बहुत से सरदार सहायक गण औरंगजेब की शरण में चले गए तब सुलतान हुसेन, जो कई विश्वासियों के साथ हरावल में नियत था सबसे अलग होकर आगरे चला गया। जब औरंग-जेब बादशाह हुआ तब इसपर, जो वास्तविक बात को अच्छी तरह नहीं जानता था, बादशाही कृपा हुई, इसका मंसब बढ़ा तथा इफ्तखार खाँ की पदवी मिली। शुजा के युद्ध के बाद सैफ खाँ के स्थान पर आख्ताबेग नियुक्त हुआ और इसका

मंसब बढ़कर दो हजारी १००० सवार का हो गया। ६ ठे वर्ष फाजिल खाँ के स्थान पर, जो वजीर हो गया था, मीर सामान नियत हुआ। उक्त खाँ बादशाह के स्वभाव को समझ गया था इस लिए बहुत दिन तक वही काम करता रहा। १३ वें वर्ष बादशाह को समाचार मिला कि दक्षिण का सूबेदार शाहजादा महम्मद मोअज्जम चापलूसों के फेर में पड़कर मूर्खता और हठ से अपना मनमाना करना चाहता है, तब इसको विश्वासपात्र समझ कर दक्षिण भेजा और इससे मौखिक संदेश में कड़वी और मीठी दोनों तरह की बातें कहलाईं। इसने भी फुर्ती से वहाँ पहुँच कर अपना काम किया। शाहजादा का दिल साफ था और उस समाचार में कोई सचाई नहीं थी तो सिवाय मान लेने के कोई जबाब नहीं दिया। बादशाह को यह ठीक बात मालूम हुई तब उसका क्रोध कृपा में बदल गया। परंतु इसी समय चुगुलखोरों की चुगली से इफ्तखार खाँ पर बादशाही क्रोध उबल पड़ा और इसके दरबार पहुँचने पर इतना विश्वास और प्रतिष्ठा रहते हुए भी इसका मंसब और पदवी छीन ली गई तथा यह गुर्जबरदार को सौंपा गया कि इसे अटक के उस पार पहुँचा आवे। १४ वें वर्ष इसका दोष क्षमा किया गया और इसका मंसब बहाल कर तथा पुरानी पदवी देकर सैफ खाँ के स्थान पर काश्मीर का सूबेदार नियत किया। इसके अनंतर काश्मीर से हटाए जाने पर जब काबुल के अफगानों का उपद्रव मचा तब यह पेशावर में नियत हुआ। १९ वें वर्ष बंगश का फौजदार हुआ। २१ वें वर्ष अजमेर का शासक हुआ और यहाँ से शाहजादा महम्मद अकबर के साथ नियत हुआ। २३ वें

वर्ष जौनपुर का फौजदार हुआ। २४ वें वर्ष सन् १०९२ हि० (सन् १६८१–२ ई०) में वहीं मर गया। इसके पुत्र अब्दुल्ला, अब्दुल्-हादी और अब्दुल्बाकी ने दरबार पहुँच कर मातमी खिलअत पाए। इनमें से एक ने बहादुर शाह के समय एसालत खाँ का पदवी पाकर मुख्तार खाँ का खानसामानी में नायब हुआ। उसी राज्य-काल में दरिद्र होकर दक्षिण गया। गुण-ग्राहक नवाब आसफजाह की शरण में जाकर दक्षिण की दीवानी में नियत हुआ। अंत में हैदराबाद का अध्यक्ष नियत हुआ और वहीं मर गया। दूसरा मामूर खाँ का दामाद था। तफाखुर खाँ की पदवी पाकर महम्मद फर्रुखसियर के समय बीजापुर का बहुत दिनों तक दुर्गाध्यक्ष रहा और संतोष के साथ कालयापन करते हुए वहीं मर गया।

---

१२२. इब्राहीम खाँ

अमीरुल् उमरा अलीमर्दान खाँ का यह बड़ा लड़का था। २६ वें वर्ष सन् १०६३ हि० में शाहजहाँ ने इसे खाँ की पदवी दी। ३१ वें वर्ष में पिता की मृत्यु पर इसका मंसब चार हजारी ३००० सवार का हो गया। सामूगढ़ के युद्ध में दारा शिकोह के मध्य की सेना का प्रबंध करता था। पराजय होने के बाद अनुभव की कमी तथा अदूरदर्शिता से शाहजादा मुरादबख्श का साथी हो गया। उक्त शाहजादा ने घमंड के मारे बिना समझे बूझे शाहजहाँ के जीवित रहते हुए गुजरात में अपने नाम का खुतबा पढ़वा कर तथा सिक्का ढलवा कर अपने को मुरव्विजुद्दीन के नाम से बादशाह समझ लिया। औरंगजेब की झूठी चापलूसी और उस अनुभवी की झूठी बातों से, जो अवसर के अनुसार उस निर्बुद्धि के साथ किए गए थे, उसे बड़ा अहंकार हो गया था। दारा शिकोह के युद्ध के बाद और शाहजहाँ के राज्य त्यागने पर बादशाहत का कुल अधिकार और वैभव औरंगजेब के हाथ में चला आया, तब भी यह मूर्ख और नादान बादशाही सेवकों को पदवियाँ दे कर, मंसब बढ़ा कर और बहुत तरह से समझा कर अपनी ओर मिला रहा था, जिससे एक भारी झुंड उसके साथ हो गया। औरंगजेब ने इस बेकार झुंड के इकट्ठा होने और उस मूर्ख के कुप्रयत्नों को देख कर मित्रता के बाने में उसका काम तमाम कर दिया।

इसका विवरण इस प्रकार है कि जब औरंगजेब दारा शिकोह का पीछा करने आगरे से बाहर निकला और सामी उतार पर पहुँचा तब मुराद बख्श उसका साथ छोड़ कर बीस सहस्र सवार के साथ, जिन्हें उसने इकट्ठा कर लिया था, शहर में ठहर गया। बहुत से आदमी धन के लोभ से औरंगजेब की सेना से अलग हो कर उसके पास पहुँचे और उसका पक्ष शक्तिशाली होने लगा। औरंगजेब ने आदमी भेज कर उसके विरोध और रुकने का कारण पुछवाया। उसने धन की कमी का उज्र किया। औरंगजेब ने बीस लाख रुपया उसके पास भेज कर यह संदेश कहलाया कि इस काम के पूरा हो जाने पर लूट का तिहाई भाग और पंजाब, काबुल और काश्मीर की गद्दी उसे मिल जायगी। मुरादबख्श कूच करके साथ हो गया। जब मथुरा के पास खेमा डाला गया तब औरंगजेब ने निश्चय किया कि उसको, जो प्रति दिन नई नई बातें निकालता है, बीच से हटा दिया जावे इस लिए उसको राज्य-कार्य में राय लेने के बहाने मुलाकात के लिए बुलवाया। उसका भला चाहने वालों ने, जिन्हें कुछ धोखे की शंका हो रही थी, इसे रोका पर उस मूर्ख ने उसको कोरी शंका समझ कर जवाब दिया कि कुरान पर प्रतिज्ञा करके धोखा देना मुसलमानी चाल नहीं है। मिसरा है कि 'जब शिकार की मृत्यु आती है तब वह शिकारी की ओर जाता है'। २ शव्वाल सन् १०६८ हि० को शिकार के लिए सवार हुआ था कि औरंगजेब ने पेट की दर्द और घबड़ाहट प्रकट की। शिकारगाह में उसके पास जब यह समाचार पहुँचा तब वह कपट से अन-भिज्ञ सीधा उसके खेमे में जा पहुँचा। औरंगजेब उसका स्वागत

कर अपने एकांत स्थान में लिवा गया और दोनों भोजन करने लगे। उसके अनंतर यह तै पाया कि आराम करने के बाद राय सलाह होगी। वह बड़ी बेतकल्लुफी से शस्त्र खोल कर सो गया। औरंगजेब ने स्वयं अंतःपुर में जा कर एक दासी को भेजा कि कुल शस्त्र उठा लावे। इसी समय शेख मीर, जो घात में लगा था, कुछ सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचा। जब वह सैनिकों के हथियारों की आवाज से जागा तब दूसरा रंग देखा। ठंढी साँस भर कर कहा कि मुझ से ऐसा बर्ताव करने के बाद इस तरह धोखा देना और कुरान की प्रतिष्ठा को न रखना उचित नहीं था। औरंगजेब पर्दे के पीछे खड़ा था। उसने उत्तर दिया कि प्रतिज्ञा की जड़ में कोई फतूर नहीं है और तुम्हारी जान सुरक्षित है, परंतु कुछ बदमाश तुम्हारे चारों तरफ इकट्ठे हो गए हैं और बहुत कुछ उपद्रव मचाना चाहते हैं इस लिए कुछ दिन तक तुमको घेरे में रखना उचित है। उसी समय उसे कैद कर दिलेर खाँ और शेखमीर के साथ दिल्ली भेज दिया। शहबाज खाँ ख्वाजासरा, जो पाँच हजारी मंसबदार था और धनी भी था, दो तीन विश्वासपात्रों के साथ पकड़ा गया। जब उसकी सेना को समाचार मिला कि काम हाथ से निकल गया तब लाचार हो कर हर एक ने बादशाही सेना में पहुँच कर कृपा पाई। इब्राहीम खाँ भी सेवा में पहुँचा परंतु उस समय इसी कारण मंसब से हटाया जा कर दिल्ली में वार्षिक वृत्ति पाकर रहने लगा। दूसरे वर्ष पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब पाकर काश्मीर का सूबेदार हुआ और इसके अनंतर खलीलुल्ला के स्थान पर लाहौर का सूबेदार हुआ। ११ वें वर्ष लश्कर खाँ के

स्थान पर बिहार का सूबेदार हुआ। फिर १९ वें वर्ष नौकरी छोड़ कर एकांत-सेवी हो गया। २१ वें वर्ष फिवामुद्दीन खाँ के स्थान पर काश्मीर का शासक हुआ और इसके अनंतर बंगाल का सूबेदार हुआ। जब ४१ वें वर्ष शाहआलम बहादुर शाह का द्वितीय पुत्र शाहजादा महम्मद आजम वहाँ का शासक नियत हुआ तब यह सिपहदार खाँ के स्थान पर इलाहाबाद का नाजिम हुआ। इसके अनंतर लाहौर का शासक हुआ पर ४४ वें वर्ष में जब वह प्रांत शाहजादा शाहआलम को मिला तब उक्त खाँ काश्मीर में नियत हुआ, जिसका जलवायु इसकी प्रकृति के अनुकूल था। ४६ वें वर्ष शाहजादा महम्मद आजमशाह के वकीलों के स्थान पर, जो अपनी प्रार्थना पर दरबार बुला लिया गया था, अहमदाबाद गुजरात का प्रबंध इसको मिला। इसने पहुँचने में बहुत समय लगा दिया इसलिए मालवा का नाजिम शाहजादा बेदार बख्त उस प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। इब्राहीम खाँ अहमदाबाद पहुँचा था और अभी स्थान भी गर्म नहीं कर पाया था कि शाहजादा, जो इसीकी प्रतीक्षा कर रहा था, शहर के बाहर ही से कूच आरंभ करने को था कि औरंगजेब के मरने की खबर पहुँची।

कहते हैं कि इब्राहीम खाँ ने जो अपने को आजमशाही समझता, था शाहजादा को मुबारकबादी कहला भेजी। बेदार बख्त ने जवाब में कहलाया कि औरंगजेब बादशाह की कदर को हम लोग समझते हैं, क्या हुआ कि एक ही बार आकाश ने हमारा काम पूरा कर दिया। अब आदमी लोग जानना चाहेंगे कि किस दीवाने से काम पड़ता है। इसके अनंतर बहादुर शाह

गद्दी पर बैठा। महम्मद अजीमुश्शान ने केवल बंगाल से अप्रसन्न होकर अधिकार करने का विचार किया। खानखानाँ वंश के विचार से तथा इसकी योग्यता को समझ कर गुप्तरूप से इसका काम करने लगा। दरबार से काबुल की सूबेदारी का आज्ञापत्र और अलीमर्दान खाँ की पदवी भेजकर इस पर कृपा की गई। उक्त खाँ पेशावर पहुँच कर ठहरा परंतु उस प्रांत का प्रबंध इससे न हो सका, इसलिए वहाँ की सूबेदारी नासिर खाँ को मिली। यह इब्राहीमाबाद सौधरा, जो लाहौर से तीस कोस पर इसका निवासस्थान था, आकर कुछ महीने के बाद मर गया। इसके बड़े पुत्र जबरदस्त खाँ ने अपने पिता की सूबेदारी के समय बंगाल में रहीम खाँ नामक अफगान पर, जो फिसाद मचाए हुए था और अपने को रहीम शाह कहता था, धावा करके पूरी तौर पर उसे पराजित कर दिया। औरंगजेब के ४२ वें वर्ष में अवध का नाजिम हुआ और इसका मंसब बढ़कर तीन हजारी २५०० सवार का हो गया और ४९ वें वर्ष महम्मद आजम शाह के छोड़ने पर अजमेर प्रांत का हाकिम हुआ और मंसब बढ़कर चार हजारी ३००० सवार का हो गया। दूसरा पुत्र याकूब खाँ बहादुर शाह के समय लाहौर के सूबेदार आसफुद्दौला का नायब हुआ। पिता की मृत्यु पर इसको इब्राहीम खाँ की पदवी मिली। कहते हैं कि इसने शाह-आलम को एक नगीना या मणि भेंट दिया था, जिस पर अल्लाह, महम्मद और अली खुदा हुआ था। पहिले सोचा गया कि स्यात् नकली हो पर अंत में तय हुआ कि असली है।

---

१२३. इब्राहीम खाँ फतह जंग

एतमादुद्दौला मिर्जा गियास का यह लड़का था। जहाँगीर के समय पहिले यह गुजरात के अहमदाबाद नगर का बख्शी और वाकेआनवीस नियत हुआ। उस समय वहाँ का प्रांताध्यक्ष शेख फरीद मुर्तजा खाँ चार बख्शियों को, जो नियम पूर्वक अपना काम करना चाहते थे, अधिकार नहीं देता था। मिर्जा इब्राहीम खाँ कार्य-कुशलता और दुनियादारी से पदाधिकार का नाम न लेकर प्रतिदिन उसका दरबार करता। एक महीने के बाद शेख ने कहा कि जिस काम पर नियत हुए हो उसको नहीं करते। मिर्जा ने कहा कि मुझे काम से क्या मतलब, हमें नवाब की कृपा चाहिए। शेख ने दरबार के वकील द्वारा लिख भेजा कि जो कुछ एतमादुद्दौला को लिखा गया है वह पूरा करता है। मिर्जा शेख के गुणों के सिवाय और कुछ नहीं लिखता था पर वकील सच्ची बात जान लेता था। मुर्तजा खाँ ने मिर्जा की आराम तलबी और गंभीर चाल का इहसान माना और मंसबदारों के काम उसे सौंपकर उसे हवेली, हाथी और नकद रुपया अपने पास से दिया। इसके दो तीन दिन बाद यह मिर्जा का अतिथि हो कर उसके घर पर गया और बहुत सा सामान, सोना चांदी का बरतन आदि अपने यहाँ से उसको भेज दिया। मजलिस के अंत में गुजरात के मंसबदारों के नाम आज्ञापत्र लिखा कि वे लोग भी मेहमानदारी करें। पचास सहस्र रुपये अपने नाम से,

पचास सहस्र दूसरे मंसबदारों के नाम से और एक लाख जमींदारों के नाम से अलग करके मुतसद्दियों से कहा कि इस रुपये को हमारे कोष से मिर्जा के यहाँ पहुँचा दो और तुम लोग उसे तहसील करके खजाने में दाखिल करो। दरबार को दो बार लिखकर इसे एक साल के भीतर हजारी मंसबदार बना दिया। जब एतमादुद्दौला का सिलसिला बैठ गया तब मिर्जा ९ वें वर्ष में दरबार पहुँच कर डेढ़ हजारी ३०० सवार का मंसब और खाँ की पदवी पाकर दरबार का बख्शी नियत हुआ। इसके बाद इसका मंसब बढ़ कर पाँच हजारी हो गया और इब्राहीम खाँ फतह जंग की पदवी पाकर बंगाल और उड़ीसा का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ।

१९ वें वर्ष जब शाहजादा शाहजहाँ तेलिंगाना से बंगाल की ओर चला तब इसका भतीजा अहमद बेग खाँ, जो उड़ीसा में इसका नायब था, करोहा के जमीदार पर चढ़ाई कर वहाँ गया था। वहीं इस अद्भुत घटना का हाल सुन पीपली से, जो उस प्रांत के अध्यक्ष का निवास स्थान था, अपना सामान लेकर कटक चला गया, जो वहाँ से १२ कोस पर था। अपने में सामना करने का सामर्थ्य न देख कर वह बंगाल चला गया। *शाहजादा उड़ीसा पहुँचकर जाननिसार खाँ व एतमाद खाँ ख्वाजा* इदराक से इब्राहीम खाँ को संदेशा भेजा कि, भाग्य से हम इधर आ गए हैं। यद्यपि इस प्रांत का विस्तार हमारी आँखों में अधिक नहीं है पर यह रास्ते में पड़ गया है इसलिए न पार कर सकते हैं और न छोड़ सकते हैं। यदि वह दरबार जाने की इच्छा रखता हो तो उसके माल असबाब और स्त्रियों को कोई

छुएगा नहीं और यदि ठहरना निश्चय करे तो जिस जगह उस प्रांत में ठहरे वहीं स्वीकार है।' इब्राहीम खाँ ने, जो बादशाही सेना का समाचार पाकर ढाका से अकबर नगर आया हुआ था, उत्तर में प्रार्थना की कि 'हजरत का कहा हुआ खुदा की आज्ञा का अनुवाद है और सेवकों का जान माल हजूर ही का है परंतु स्वामिभक्ति के नियम और बादशाही कृपा का हक इसमें बाधा डालते हैं जिससे मैं न सेवा में उपस्थित हो सकता हूँ और न भागने का निश्चय कर अपने मित्रों और संबंधियों में लज्जित हो सकता हूँ। बादशाह ने यह प्रांत इस पुराने सेवक को सौंपा है तो इस जीवन के लिए, जिसकी आयुष्य का कुछ पता नहीं है और न मालूम है कि कब खत्म हो जाय, स्वामी के काम से जी नहीं चुरा सकता, इसलिए चाहता हूँ कि अपने सर को हुजूर के घोड़ों के सुमों का पायन्दाज बना दूँ, जिसमें कि मेरे मारे जाने के बाद यह प्रांत आपके सेवकों के हाथ में आये।' परंतु इसके सैनिकों में मतभेद पड़ गया था और अकबर नगर का दुर्ग बहुत बड़ा था इसलिए इब्राहीम खाँ अपने लड़के के मकबरे में जो नदी के किनारे पर एक कोस के घेरे में बड़ी दृढ़ता के साथ बना हुआ था जा बैठा, जिसमें नदी की ओर से सभी सहायता और समान नावों से मिलता रहे। उस दुर्ग के नीचे पहिले पानी बहता था पर मुद्दत से हट गया था।

शाहजादा ने इसके कथन और कार्य से विजय का शकुन समझ कर, क्योंकि वह कतल शब्द अपने मुँह पर लाया था और अपना पैर मकबरे में रखा था, उसी नगर के पास सेना का पड़ाव डाला और उस दुर्ग को घेर लिया। इसके अनंतर

युद्ध की आग बाहर और भीतर प्रबल हो उठी। अब्दुल्ला खाँ फीरोज जंग और दरिया खाँ रुहेला नदी के उस पार उतर गए क्योंकि इब्राहीम खाँ को साथियों से उस पार से सामान आदि मिलता था। इब्राहीम खाँ ने इससे घबड़ा कर अहमद बेग खाँ के साथ, जो इसी बीच आ गया था, दुर्ग से बाहर निकल कर युद्ध की तैयारी की। घोर युद्ध हुआ, जिसमें अहमद बेग खाँ वीरता से लड़ कर घायल हुआ। इब्राहीम खाँ यह देख कर ठहर न सका और धावा किया पर इससे प्रबंध का सिलसिला टूट गया और इसके बहुत से साथी भागने लगे। इब्राहीम खाँ थोड़े आदमियों के साथ दृढ़ता से डटा रहा। लोगों ने बहुत चाहा कि इसे उस युद्ध से हटा लें पर इसने नहीं माना और कहा कि यह अवसर ऐसा करने के लिए उचित नहीं है, चाहता हूँ कि अपने स्वामी के काम में प्राण दे दूँ। अभी यह बात पूरी भी न कर चुका था कि चारों ओर से धावा हुआ और यह घायल हो कर मर गया। इब्राहीम खाँ का परिवार व सामान ढाका में था इस लिए अहमद बेग खाँ वहाँ चला गया। शाहजादा भी जल मार्ग से उसी ओर चला। लाचार हो कर वह शाहजादे की सेवा में चला आया। लगभग चौबीस लाख रुपये नकद के सिवाय बहुत सा सामान, हाथी, घोड़ा आदि शाहजादा को मिला। इस कारण अहमदबेग खाँ पर बादशाही कृपा हुई और जलूस के पहिले वर्ष अच्छा मंसब पाकर ठट्टा और सिविस्तान का हाकिम हुआ, जो सिंध देश में है। इसके अनंतर यह मुलतान का हाकिम हुआ। वहाँ से दरबार लौटने पर जायस और अमेठी का परगना उसे जागीर में मिला। यहीं वह मर गया।

इब्राहीम खाँ को कोई संतान नहीं थी। इसकी स्त्री हाजीहूर-परवर खानम, जो नूरजहाँ बेगम की मौसी थी, बहुत दिन तक जीवित रही और दिल्ली के कोलजलाली स्थान में बादशाही आज्ञा से रहती थी। बहुत से लोगों के साथ आराम से रहती हुई वहीं मर गई।

---

१२४. इब्राहीम खाँ उजबेग

यह हुमायूँ का एक सरदार था। हिंदुस्तान के विजय के वर्ष में इसको शाह अबुल्म आली के साथ लाहौर में इसलिए नियुक्त किया कि यदि सिकंदर सूर पहाड़ से बाहर आकर बादशाही राज्य में लूट मार करे तो उसको रोकने का पूरा प्रयत्न हो सके। इसके अनंतर उक्त खाँ जौनपुर के पास सरहरपुर में जागीर पाकर अली कुली खाँ खानजमाँ के साथ उस सीमा की रक्षा पर नियुक्त हुआ। जब अकबर बादशाह के राज्यकाल में खानजमाँ और सिकंदर खाँ उजबक ने विद्रोह के चिन्ह दिखलाए और मीर मुंशी अशरफ खाँ एक उपदेशमय फरमान सिकंदर खाँ के सामने ले गया तब सिकंदर खाँ ने क्रोधित हो कर कहा कि इब्राहीम खाँ सफेद दाढ़ी वाला और पड़ोसी है, उसको जाकर देखता हूँ और उसके साथ बादशाह के पास आता हूँ।

इस इच्छा से वह सरहरपुर गया और वहाँ से दोनों मिल कर खानजमाँ के पास गए। वहाँ यह निश्चय हुआ कि उक्त खाँ सिकंदर खाँ के साथ लखनऊ की ओर जा कर बलवा मचावे। इस पर उक्त खाँ उस तरफ जाकर लड़ाई का सामान करने लगा।

जब मुनइम खाँ खानखानाँ ने अली कुली खाँ खानजमाँ से भेंट करके उससे बादशाह की फिर से अधीनता स्वीकार करने

की प्रतिज्ञा करा ली और ख्वाजाजहाँ के पास, जो साम्राज्य का सेनापति था, पहुँच कर चाहा कि उसके साथ खानजमाँ के खेमा में जावे और उक्त खाँ को अपनी सेना में बुलावे। यह निश्चय हुआ कि खानजमाँ अपनी माँ और उक्त खाँ को योग्य भेंट के साथ बादशाह के पास भेजे। तब खानखानाँ और ख्वाजाजहाँ बादशाह के पास चले। उक्त खाँ के गले में कफन और तलवार लटका कर बादशाह के सामने ले गए। इसके स्वीकृत होने पर और खानजमाँ के दोषों के क्षमा होने पर कफन और तलवार उसके गले में से निकाल दी गईं। जब १२ वें वर्ष में दूसरी बार खानजमाँ और सिकंदर खाँ ने विद्रोह और शत्रुता की, तब उक्त खाँ सिकंदर खाँ के साथ अवध गया और जब सिकंदर खाँ बंगाल की तरफ भागा तब उक्त खाँ खानखानाँ के द्वारा अपने दोष क्षमा कराकर खानखानाँ के अधीन नियत हुआ। इसके मरने की तारीख का पता नहीं। इसका लड़का इस्माइल खाँ था, जिसको अली कुली खाँ खानजमाँ ने संडीला कस्बा जागीर में दिया था। जब तीसरे वर्ष उक्त कसबा बादशाह की ओर से सुलतान हुसेन खाँ जलायर को जागीर में मिला तब उसको अधिकार करने में इसने रोका। इसके बाद जब वह जबरदस्ती ले लिया गया तब खानजमाँ से कुछ सेना लेकर आया पर लड़ाई में हार गया।

१२५. शेख इब्राहीम

यह शेख मूसा का पुत्र और सीकरी के शेख सलीम का भाई था। शेख मूसा अपने समय के अच्छे लोगों में से था और सीकरी कस्बे में, जो आगरे से चार कोस पर है और जहाँ अकबर ने दुर्ग और चहारदीवारी बनवा कर उसका फतहपुर नाम रखा था, आश्रम बना कर ईश्वर का ध्यान किया करता था। अकबर की कोई संतान जीवित नहीं रहती थी इस लिये साधुओं से प्रार्थना करते हुए शेख सलीम के पास भी गया था। उसी समय शाहजादा सलीम की माँ गर्भवती हुई और इस विचार से कि साधु की उस पर रक्षा रहे, शेख के मकान के पास गुर्विणी के लिये भी निवास-स्थान बनवाया गया। उसी में शाहजादा पैदा हुआ और उसका नामकरण शेख के नाम पर किया गया। इससे शेख की संतानों और संबंधियों की राज्य में खूब उन्नति हुई।

शेख इब्राहीम बहुत दिनों तक राजधानी आगरे में शाहजादों की सेवा में रहा। २२ वें वर्ष कुछ सैनिकों के साथ लाडलाई की थानेदारी और वहाँ के उपद्रवियों को दमन करने पर नियत हुआ। वहाँ इसके अच्छे प्रबंध तथा कार्य-कौशल को देख कर २३ वें वर्ष में इसे फतहपुर का हाकिम नियत किया। २८ वें वर्ष खानआजम कोका का सहायक नियत हुआ और बंगाल के युद्धों में बहुत अच्छा कार्य किया। इसके अनंतर वजीर खाँ के साथ कतलू को दमन करने में शरीक था, जो उड़ीसा के विद्रोहियों

का सरदार था। २९ वें वर्ष दरबार लौटा। ३० वें वर्ष मिरजा हकीम की मृत्यु पर जब अकबर ने काबुल जाने का विचार किया तब यह आगरे का शासक नियत हुआ और कुछ दिनों तक वहाँ काम करता रहा। ३६ वें वर्ष सन् ९९९ हि० में यह मर गया। बादशाह इसकी दूरदर्शिता और कार्य-कौशल को मानते थे। यह दो हजारी मंसबदार था।

१२६. इरादत खाँ मीर इसहाक

यह जहाँगीरी आजम खाँ का तीसरा पुत्र था। शाहजहाँ के राज्यकाल में अपने पिता की मृत्यु पर नौ सदी ५०० सवार का मंसब पाकर मीर तुजुक हुआ। २५ वें वर्ष (सं० १७०८) में इरादत खाँ की पदवी और डेढ़ हजारी ८०० सवार का मंसब पाकर हाथीखाने का दारोगा नियत हुआ। २६ वें वर्ष तरबियत खाँ के स्थान पर आख्तावेगी पद पर नियत हुआ। उसी वर्ष दो हजारी १००० सवार का मंसब और दूसरे बख्शी का खिलअत पहिरा। २८ वें वर्ष ८०० सवार की तरक्की के साथ अहमद बेग खाँ के स्थान पर सरकार लखनऊ और बैसवाड़े का फौजदार नियत किया गया। २९ वें वर्ष दरबार लौट कर असद खाँ के स्थान पर कुल प्रांतों का अर्ज-वकाय: नियत हुआ और मंसब बढ़कर दो हजारी २००० सवार का हो गया। शाहजहाँ के राज्यकाल के अंत में किसी कारण से इसका मंसब छिन गया और इसने कुछ दिन एकांतवास किया। इसी बीच बादशाही तख्त औरंगजेब से सुशोभित हुआ। इसके भाई मुलतफत खाँ और खानजमाँ उस शाहजादे के साथ रहे थे और दारा शिकोह के पहिले युद्ध में पहिला भाई जान दे चुका था। बादशाही फौज के आगरा पहुँचने पर पाँच सदी ५०० सवार इसके मंसब में बढ़ाकर इसको फिर से सम्मानित किया। उसी समय जब विजयी सेना आगरा से दिल्ली को दारा शिकोह का पीछा करने

चली तब यह अवध का सूबेदार नियत हुआ और इसका मंसब पाँच सदी ५०० सवार बढ़कर तीन हजारी ३००० सवार का, जिसमें १००० सवार दो अस्पा सेह अस्पा थे, हो गया और डंका पाकर यह सम्मानित हुआ। यह पुराना आकाश किसी की भलाई नहीं देख सकता अर्थात् यह कुछ दिन अपनी सफलता का फल उठाने नहीं पाया था कि दो महीने कुछ दिन बाद सन् १०६८ हि० (सं० १७१५) के जीहिज्जा महीने में मर गया। आसफ खाँ जाफर के भाई आका मुल्ला के लड़के मिरजा बदीउज्जमाँ की बड़ी पुत्री इस को ब्याही थी। जाहिद खाँ कोका की लड़की से दूसरा विवाह हुआ था, जिसके गर्भ से बड़ा पुत्र महम्मद जाफर हुआ। उसके मुख से सौभाग्य झलकता था पर वह मर गया। उसके दूसरे भाई मीर मुबारकुल्लाह ने औरंगजेब के ३३ वें वर्ष (सं० १७४६) में चाकण का फौजदार होकर अपने पिता की पदवी पाई। ४० वें वर्ष औरंगाबाद के आसपास का फौजदार हुआ और उसका मंसब बढ़ा कर सात सदी १००० सवार का हुआ। इसके अनंतर मालवा के मंदसोर का फौजदार नियत होकर बहादुर शाह के राज्य में खानखानाँ मुनइम खाँ का पार्श्ववर्त्ती हो गया। पटना जालंधर दोआब की फौजदारी उसे मिली। वह परिहास-प्रिय था और कविता सूक्ष्म विचार की करता था। उपनाम 'वाजह' था और उसने एक दीवान लिखा था—

शैर (उर्दू अनुवाद)

रश्क फर्माए दिल नहीं है सिवा ऐशो हुबाब।
पाया यक पैरहने हस्ती वो भी है हम कफ़न॥

महम्मद फर्रुखसियर के राज्य में यह मर गया। इसका

पुत्र मीर हिदायतुल्ला, जिसे पहिले होशदार खाँ और फिर इरादत खाँ की पदवी मिली थी, बहादुर शाह के राज्य में पंजाब प्रांत के नूरमहल का फौजदार हुआ और बहुत दिनों तक मालवा प्रांत के अंतर्गत दक पैराह: का फौजदार रहकर महम्मद शाह के छठे वर्ष में आसफजाह के साथ दक्षिण आया और मुबारिज खाँ के युद्ध के बाद मृत दयानत खाँ के स्थान पर कुछ दिन दक्षिण का दीवान और चार हजारी मसबदार रहा। कुछ दिन औरंगाबाद में पुन: व्यतीत किये। अंत में गुलबर्गा का दुर्गाध्यक्ष हुआ। त्रिचनापल्ली की यात्रा के समय यह आसफजाह के साथ था और लौटते समय औरंगाबाद के पास ११५७ हि० (सं०१८०१) में मर गया। सैनिक गुण बहुत था और इस बुढ़ौती में भी हथियार नहीं छोड़ता था। तलवार पहिचानने में बहुत बढ़कर था। शैर को प्रतिष्ठा से न देखता। औरतें बहुत थीं और इसीसे संतान भी बहुत थीं। इसके सामने ही इसके जवान लड़के मर चुके थे। लिखते समय बड़ा लड़का हाफिज खाँ बाप के मरने पर गुलबर्गा का दुर्गाध्यक्ष हुआ।

१२७. इसकंदर खाँ उजबक

यह उस जाति के सुलतानों के वंश में था। हुमायूँ बादशाह की सेवा में रहकर इसने अच्छे काम किए थे और हिंदुस्तान पर चढ़ाई करने के पहिले खाँ की पदवी पा चुका था। विजय होने के बाद यह आगरे का शासक नियत हुआ। हेमू की चढ़ाई के समय आगरा छोड़कर यह दिल्ली में तर्दी बेग खाँ के पास चला गया और उसके साथ बाएँ भाग का सेनाध्यक्ष हो कर युद्ध किया। जब दोनों तरफ के वीरों ने प्राण का मोह छोड़ कर धावे किए तब बादशाह के हरावल और बाएँ भाग ने बड़ी बहादुरी दिखलाते हुए शत्रु के हरावल और दाहिने भाग को हटाकर उनका पीछा किया। बहुत सी लूट हाथ आई और तीन हजार शत्रु मारे गए। इसी गड़बड़ में जब इस प्रकार विजय पाकर भगैलों का पीछा कर रहे थे, हेमू ने तर्दी बेग खाँ को धावा करके भगा दिया। जो बहादुर शत्रु का पीछा कर रहे थे, वे जब लौटे तो यह देखकर बड़े चकित हुए और तर्दी बेग का मार्ग पकड़ा। इन्हींके साथ इसकंदर खाँ भी लाचार होकर युद्ध से मुँह मोड़कर अकबर की सेवा में सरहिंद चला गया और अली कुली खाँ खानजमाँ की सेना में हेमू से युद्ध करने को नियत हुआ। विजय मिलने पर भगैलों का पीछा करने और दिल्ली को लुटेरों से रक्षा करने पर नियत हुआ। इसने जल्दी करके बहुत से

बदमाशों और लुटेरों को मार डाला और बहुत लूट एकत्र की, जिसके पुरस्कार में उसको खानआलम की पदवी मिली।

जब पंजाब का हाकिम खिज्र ख्वाजा खाँ सिकंदर सूर के आगे बढ़ने पर, जो उस देश का शत्रु था, लाहौर लौट आया और दुर्ग की दृढ़ता से साहस पकड़ा तब वह उस प्रांत की आय को मुफ्त की समझ कर सेना एकत्र करने लगा। अकबर ने फुर्तीबाज सिकन्दर खाँ को स्यालकोट और उसका सीमा प्रांत जागीर में देकर उक्त फौज पर जल्दी रवाने किया, जिसमें यह खिज्र ख्वाजा खाँ का सहायक हो जावे। इसके अनंतर यह अवध का जागीरदार हुआ। दुष्ट प्रकृतिवालों को आराम तथा सुख मिलने पर नीचता तथा दुष्टता सूझती है। इसी कारण दसवें वर्ष में इसने विद्रोह का सामान ठीक करके बलवा किया। बादशाह की ओर से मीर मुंशी अशरफ खाँ नियुक्त हुआ कि इन भूले हुओं को समझा कर दरबार में लावे। यह कुछ समय तक टालमटोल कर खानजमाँ के पास चला गया और उससे मिलकर विद्रोह का झंडा खड़ा करके लूटमार करने लगा। सिकंदर खाँ ने बहादुर खाँ शैबानी के साथ मिल कर खैराबाद के पास मीर मुइज्जुलमुल्क मशहदी से, जो बादशाह की ओर से इन कृतघ्नों को दंड देने के लिए नियत हुआ था, खूब युद्ध किया। यद्यपि अंत में बहादुर खाँ सफल हुआ पर सिकंदर खाँ पहिले ही परास्त होकर भाग गया। बारहवें वर्ष में जब खानजमाँ और बहादुर खाँ ने दूसरी बार बलवा किया तब सिकंदर खाँ पर, जो उस समय भी अवध में डींगें मार रहा था, मुहम्मद कुली खाँ बरलास ने भारी सेना के साथ नियुक्त होकर उसे

अवध में घेर लिया। बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा। जब खानजमाँ और बहादुर खाँ के मारे जाने की खबर पहुँची तब सिकंदर खाँ शोक का बहाना करके बाहर निकला और क्षमा-प्रार्थी हुआ। कुछ दिन इसी बहाने में बिताकर अपने परिवार के साथ कुछ नावों में बैठ कर, जिन्हें इसी अवसर के लिए तैयार कर रखा था, नदी पार हो गया और संदेश भेजा कि मैं अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ हूँ और आता हूँ। परंतु इसकी बातों का विश्वास नहीं पड़ा इसलिए सरदारों ने नदी पार होकर इसका पीछा किया। यह गोरखपुर पहुँचकर, जो उस समय अफगानों के अधिकार में था, बंगाल के हाकिम सुलेमान किरांनी के पास गया और अपने लड़के के साथ उड़ीसा विजय करने के लिए भेजा गया। जब अफगानों ने इसका अपने बीच में रहना उचित नहीं समझा और इसे पकड़ना चाहा तब उक्त खाँ यह समाचार पाकर खानखानाँ से, जो जौनपुर में था, क्षमा माँगी। सेनाध्यक्ष ने बादशाही इच्छा जानकर उसको बुला लिया। सिकंदर खाँ भी शीघ्रता करके खानजमाँ के पास पहुँचा। सत्रहवें वर्ष सन् ९७९ हि० में खानखानाँ ने इसे अपने साथ बादशाह की सेवा में ले जाकर क्षमा दिला दी और सरकार लखनऊ में इसे जागीर मिली। विदा के समय इसे चार कब (एक प्रकार का वस्त्र, कमरबंद), जड़ाऊ तलवार और सोने की जीन सहित घोड़ा मिला और यह खानखानाँ के साथ नियत हुआ। लखनऊ पहुँचने पर कुछ दिन के बाद बीमार हुआ और ९८० हि० (सं० १६८०) में मर गया। यह तीन हजारी मंसबदार था।

१२८. इस्माइल कुली खाँ जुलकद्र

यह अकबरी दरबार के एक सरदार हुसेन कुली खाँ खान-जहाँ का छोटा भाई था। जालंधर के युद्ध से जब बैराम खाँ पराजित होकर लौटा तब बादशाही सैनिकों ने पीछा करके इस्माइल कुली खाँ को जीवित ही पकड़ लिया। इसके अनंतर जब इसके भाई पर कृपा हुई तब इसने भी बादशाही कृपा पाकर भाई के साथ बहुत अच्छा कार्य किया। जब खानजहाँ बंगाल की सूबेदारी करते हुए मारा गया तब यह अपने भाई के माल असबाब के साथ दरबार पहुँच कर कृपापात्र हुआ। ३० वें वर्ष बलूचों को दंड देने के लिए, जो उद्दंडता से सेवा और अधीनता का काम नहीं कर रहे थे, नियत हुआ। जब बिलोचिस्तान पहुँचा तब कुछ विद्रोहियों के पकड़े जाने पर उन सबने शीघ्र क्षमा माँग ली और उनके सरदार गाजी खाँ, वजीह और इब्राहीम खाँ बादशाही सेवा में चले आए। इस पर बादशाह ने वह बसा हुआ प्रांत उन्हें फिर लौटा दिया। ३१ वें वर्ष में जब राजा भगवानदास उन्माद रोग के कारण जाबुलिस्तान के शासन से लौटा लिया गया तब इस्माइल कुली खाँ उसके स्थान पर नियत हुआ परंतु यह मूर्खता से झूठे बहाने कर नजर से गिर गया। जब आज्ञा हुई कि नाव पर बैठाकर इसे भक्कर के रास्ते से हेजाज रवाना कर दें तब लाचार होकर इसने क्षमा प्रार्थना की। यद्यपि वह स्वीकार हुआ परंतु

वहाँ से लौटने पर युसुफजई पठानों को दंड देने पर नियत हुआ। दैवात् स्वाद और बजौर के पार्वत्य प्रांत की हवा के कारण वहाँ बहुत सी बीमारियाँ फैल गईं जिससे उस जाति के सरदारों ने आप ही आप खाँ के सामने आकर अधीनता स्वीकार कर ली।

जब जाबुलिस्तान के शासक जैन खाँ ने जलाल रोशानी को ऐसा तंग किया कि वह तीराह से इसी पार्वत्य प्रांत में चला आया। जैन खाँ पहिले की लज्जा मिटाने के लिए, जो बीरबर की चढ़ाई के समय हुई थी, इस प्रांत में पहुँचा। सादिक खाँ दरबार से सवाद के जंगल में नियत था कि जलाल जिस तरफ जाय उसी तरफ पकड़ा जाय। इस्माइल कुली खाँ ने, जो उस जंगल का थानेदार था, सादिक खाँ के आने से फिक्र छोड़ दिया और उतार को खाली छोड़कर दरबार चल दिया। जलाल एकाएक रास्ता पाकर भाग गया। इस कारण इस्माइल कुली खाँ कुछ दिन के लिए दंडित हुआ। ३२ वें वर्ष यह गुजरात का हाकिम नियत हुआ। ३६ वें वर्ष जब शाहजादा सुलतान मुराद मालवा का प्रांताध्यक्ष हुआ तब इस्माइल कुली खाँ उसका वकील नियत हुआ। अभिभावक के कामों के साथ ठीक प्रबंध किया। ३८ वें वर्ष सादिक खाँ के उसके स्थान पर नियुक्त होने से यह दरबार लौट गया। ३९ वें वर्ष अपनी जागीर कालपी में नियत हुआ कि वहाँ की बस्ती बढ़ावे। ४२ वें वर्ष सन् १००५ हि० में चार हजारी मंसब पाकर सम्मानित हुआ। कहते हैं कि बड़ा विलासप्रिय था और गहने कपड़े बिछावन और बरतन में बड़ा तकल्लुफ रखता था। १२०० औरतें थीं। जब दरबार जाता तब इनके

इजारबंदों पर मुहर कर जाता था। अंत में सबने लाचार होकर इसे विष दे दिया। अकबर के राज्य-काल ही में इसके पुत्र इब्राहीम कुली, सलीम कुली और खलील कुली योग्य मंसब पा चुके थे।

१२९. इस्माइल खाँ बहादुर पन्नी

इसका पिता सुलतान खाँ जमादारी विभाग में काम करता रहा। इसकी पुत्री का विवाह सरमस्त खाँ के साथ हुआ था, जो अजमत खाँ का पुत्र था और जिसने सैयद दिलावर अली खाँ के युद्ध में अजदुद्दौला एवज खाँ के हाथी के सामने पैदल होकर प्राण निछावर कर दिया था। इसके बाद सरमस्त खाँ और सुलतान खाँ दोनों जागीरदार नियत हुए। इसमाइल खाँ एक सहस्र सवार के साथ सलाबत जंग और निजामुद्दौला आसफ-जाह की सरकार में नौकर था। इसका नक्षत्र तरक्की पर था इसलिए धीरे धीरे बरार प्रांत के महालों का नायब-नाज़िम और मुतसद्दी नियत हुआ। उस समय मराठों की ओर से उक्त प्रांत का ताल्लुकेदार जानोजी भोंसला था और इन दोनों में पहिले का परिचय था इसलिए वहाँ का प्रबंध ठीक रखा और मुद्दत तक वहाँ का काम करता रहा। अंत में इसके दिमाग में बराबरी का दावा पैदा हुआ और इसमें विद्रोह के लक्षण दिखलाई देने लगे। निजामुद्दौला आसफजाह ने इसकी यह चाल देखकर इसको दंड देना निश्चय किया। जिस वर्ष रघूजी भोंसला के लड़कों को दंड देने के लिए निजामुद्दौला नागपुर की ओर चला, उस समय उस उच्च-पदस्थ सरदार के कारपरदाज रुक्नुद्दौला के मारे जाने को सुअवसर समझकर यह कुछ सैनिकों के साथ सेना के पास पहुँचा पर इस पर कृपा नहीं हुई और कुवाच्य सुनने पड़े।

इसने चाहा कि मकान लौट जायँ पर इसी बीच, जो सेना इस पर नियत हुई थी, आ पहुँची। लाचार होकर तीस चालीस सवारों के साथ, जिन्होंने उस समय इसका साथ दिया, धावा कर बरकंदाजों के व्यूह को तोड़कर सवारों के बीच पहुँच गया। जो इसके पास पहुँचता उसे तलवार के हवाले करता। इसके शरीर में काफी शक्ति थी, इसलिए सेना के बीच पहुँचकर घोड़े से गिरा और सन् ११८९ हि० (सं० १८३२) में मारा गया। इसके पुत्र सलाबत खाँ और बहलोल खाँ पर कृपा हुई और बरार प्रांत में बालापुर, बदनपर पैबे: और करंजगाँव जागीर में मिला। सेना के साथ वे काम करते रहे।

१३०. इस्माइल खाँ मक्खा

यह पहिले हैदराबाद कर्णाटक में जेलखाने में नौकरी करता था। औरंगजेब के ३५ वें वर्ष में जुल्फिकार खाँ बहादुर की प्रार्थना पर पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब और खाँ की पदवी पाकर उक्त बहादुर के साथ जिंजी दुर्ग लेने पर नियत हुआ। ३७ वें वर्ष उक्त दुर्ग के घेरे के समय महम्मद कामबख्श, असद खाँ और जुल्फिकार खाँ में कुछ वैमनस्य हो गया तब जुल्फिकार खाँ ने घेरे से हाथ उठा लेना उचित समझकर अपनी सेना और तोप मोर्चे से लौटा लिया। इस्माइल खाँ, जो दुर्ग के दूसरी ओर था, जल्दी नहीं पहुँच सका। संता घोरपदे आदि शत्रु बीच में आ पड़े और इससे युद्ध करने लगे। इसके पास सेना कम थी, इसलिए यह घायल होकर पकड़ा गया और मरहठों के यहाँ एक वर्ष तक कैद रहा। इसके पुराने परिचित अचमनायर के प्रयत्न से कुछ दंड देकर इसने छुट्टी पाई। ३८ वें वर्ष दरबार में हाजिर हुआ। इसका मंसब एक हजारी बढ़ाया गया और अनन्दी से मुर्तजाबाद तक के मार्ग का रक्षक नियत हुआ। ४१ वें वर्ष अब्दुर्रज्जाक खाँ लारी के स्थान पर राहीरी उर्फ इसलाम गढ़ का फौजदार नियत हुआ। ४५ वें वर्ष बनीशाह दुर्ग का फौजदार हुआ। इसके आगे का हाल नहीं मिला।

१३१. इस्माइल बेग दोलदी

यह बाबर के सरदारों में से था। वीरता तथा युद्ध-कौशल में यह एक था। जब हुमायूँ बादशाह एराक से लौटा और दुर्ग कंधार घेर लिया तब घिरे हुए लोग बड़ी कठिनाई में पड़े तथा बहुत से सर्दार मिर्जा अस्करी का साथ छोड़कर दुर्ग के नीचे विजयी बादशाह के पास चले आए। उन्हीं में यह भी था। कंधार-विजय के अनंतर इसे जमींदावर के इलाके का शासन मिला। काबुल के घेरे के समय खिज्र ख्वाजा खाँ के साथ यह मिर्जा कामराँ के नौकर शेर अली पर नियत हुआ, जिसने मिर्जा के कहने के अनुसार काबुल से विलायत के काफिले को नष्ट करने के लिए चारीकाराँ पहुँचकर उसे नष्ट कर डाला था पर रास्तों को, जिसे बादशाही आदमियों ने बना रखे थे, नष्ट करने के लिए काबुल न पहुँच सका तब गजनी चला गया। सजावंद की तलहटी में शेर अली पर पहुँच कर इस्माइल बेग ने युद्ध आरंभ कर दिया। बादशाही आदमी विजयी होकर बहुत लूट के साथ हुमायूँ के सामने पहुँच कर सम्मानित हुए। जब कराचः खाँ, जिसने बहुत सेवा करके बहुत कृपा पाई थी, कादरता से भारी सेना को मार्ग से लेकर मिर्जा कामराँ के पास बदख्शाँ की ओर चला तब उन्हीं भूले भटकों में उक्त खाँ भी था। इस कारण बादशाह के यहाँ इसकी पदवी इस्माइल खाँ रीछ हुई। जब बादशाह स्वयं बदख्शाँ की ओर गए तब युद्ध में यह कैद

हो गया। मुनइम खाँ की प्रार्थना पर इसकी प्राण रक्षा हुई और यह उसी को सौंपा गया। भारत के आक्रमण के समय यह बादशाह के साथ था। दिल्ली-विजय पर यह शाह अबुल् मआली के साथ लाहौर में नियत हुआ। बाद का हाल ज्ञात नहीं हुआ।

१३२. इसलाम खाँ चिश्ती फारूकी

इसका नाम शेख अलाउद्दीन था और शेख सलीम फतहपुरी के पौत्रों में से था। अपने वंश वालों में अपने अच्छे गुणों और सुशीलता के कारण यह सबसे बढ़ कर था और जहाँगीर का धाय भाई होने से बादशाही मंसब, सम्मान और विश्वास पा चुका था। शेख अबुल्फजल की बहिन से इसका विवाह हुआ था। जब जहाँगीर बादशाह हुआ तब इसलाम खाँ पदवी और पाँच हजारी मंसब पाकर यह बिहार का सूबेदार नियुक्त हुआ। ३ रे वर्ष जहाँगीर कुली खाँ लालबेग के स्थान पर भारी प्रांत बंगाल का सूबेदार हुआ। वह प्रांत शेरशाह के समय से अफगान सरदारों के अधिकार में चला आता था। अकबर के राज्यकाल में बड़े बड़े सरदारों की अधीनता में प्रबल सेनाएँ नियत हुईं। बहुत दिनों तक घोर प्रयत्न, परिश्रम और लड़ाई होती रही, यहाँ तक कि वह पूरी जात दमन हो गई। बचे हुए सीमाओं पर भाग गए। इसी बीच कतलू लोहानी के पुत्र उसमान खाँ ने सरदार बनकर दो बार बादशाही सेना से लड़ाइयाँ कीं। विशेष कर राजा मानसिंह के शासनकाल में इसके लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया गया पर फिसाद के जड़ का कांटा नहीं निकला। जब इसलाम खाँ वहाँ पहुँचा तब शेख कबीर सुजाअत खाँ की सरदारी में, जो उक्त खाँ का संबंधी था, एक सेना अन्य सहायकों के साथ अकबर नगर से सज्जित कर उस पर भेजी गई।

इन बहादुरों की दृढ़ता और साहस से युद्ध के बाद, जिसमें रुस्तम और असफ़ंदियार के कारनामे नष्ट हो सकते थे और जिसका विस्तृत वृत्तांत उक्त खाँ की जीवनी में लिखा गया है, उसमान खाँ के मारे जाने पर उसके भाई ने अधीनता स्वीकार कर ली। इस अच्छी सेवा के पुरस्कार में ७ वें वर्ष छः हजारी मंसब पाकर यह सम्मानित हुआ। ८ वें वर्ष सन् १०२२ हि० में यह मर गया और इसका शव फतहपुर सीकरी भेजा गया, जहाँ उसके पूर्वजों का जन्मस्थान और कब्रिस्तान था। इसका जीवन-वृत्तांत विचित्र है। सुसम्मति और संयम में यह प्रसिद्ध था। यह जीवन भर नशा या निषिद्ध वस्तु से दूर रहा और इसी गुण के कारण बंगाल प्रांत की कुल वेश्याओं को, जैसे लोली, हुरकनी, कंचनी और डोमनी को अस्सी हजार रुपया मासिक पर नौकर रख कर साल में नौ लाख साठ सहस्र रुपये उन्हें देता था। इसके कुछ सेवक गहनों और बहुत तरह की मूल्यवान चीजों को थालियों में लिये खड़े रहते थे, जिन्हें यह पुरस्कार में दिया करता था। इसकी सरदारी की सनक इतनी बढ़ी थी कि बादशाहों की चाल पर झरोखे से दर्शन देता और गुसलखाना काम में लाता था। हाथियों की लड़ाई कराता था। कपड़ों में तकल्लुफ न करता था। पगड़ी के नीचे कुलाह नहीं पहिरता था और जामा के नीचे पैराहन पहिरता था। खाने के व्यय में एक सहस्र लंगर (सदाबर्त) चलते थे परंतु उसके आगे पहिले ज्वार, बाजरे की रोटी, साग और साठी का चावल रखा जाता था। इसका साहस और दानवीरता हातिम और मअन की उदारता से बढ़ गई थी। बंगाल की सूबेदारी के समय इसने १२०० हाथी अपने मंसब-

दारों और नौकरों को दिए थे। इसके यहाँ बीस सहस्र शेख-जादे सवार और पैदल रहते थे। इसका लड़का एकराम खाँ होशंग अबुल्फजल का भांजा था और बहुत दिनों तक दक्खिन में नियत था। जहाँगीर के राज्यकाल के अंत में यह असीर गढ़ का अध्यक्ष था। शेरखाँ तौनूर की लड़की इसके घर में थी पर उससे बनती नहीं थी। उसके भाई लोग अपनी बहिन को अपने घर ले गए। ऐसे वंश में होने पर भी यह क्रूर हृदय था। शाहजहाँ के राज्यकाल के मध्य में किसी कारण जागीर और दो हजारी १००० सवार के मंसब से हटाया गया और नकदी वृत्ति मिली। फतहपुर में रहकर शेख सलीम चिश्ती के मजार का प्रबंध करता था। २४ वें वर्ष में मर गया। इसका भाई शेख मोअज्जम उक्त रौजे का मुतवल्ली नियत हुआ। २६ वें वर्ष इसे फतहपुर की फौजदारी मिली और इसका मंसब बढ़ाकर एक हजारी ८०० सवार का हो गया। सामूगढ़ के युद्ध में यह दारा शिकोह की सेना के मध्य में नियत था और वहीं युद्ध में मारा गया।

---

१३३. इसलाम खाँ मशहदी

इसका नाम मीर अब्दुस्सलाम और पदवी इख्तसास खाँ थी। यह शाहजहाँ की शाहजादगी के समय का पुराना सेवक था। आरंभ में मुंशीगीरी करता था। सन् १०३० हि० (सं० १६७६) में जहाँगीर के १५ वें वर्ष में जब बादशाही सेना दूसरी बार दक्षिण का काम ठीक करने गई तब दरबार का वकील नियत होने पर इसे योग्य मंसब और इख्तसास खाँ की पदवी मिली। उस उपद्रव में जब जहाँगीर शाहजादे से बिगड़ गया था तब इसको दरबार से निकाल दिया। यह शाहजहाँ की सेवा में पहुँचकर उस समय उसके साथ रहा। इसके अनंतर जब जुनेर दुर्ग में शाहजादा ठहर गया और उसी समय इब्राहीम आदिलशाह मर गया तब शाहजादा ने इसको युवराज महम्मद आदिलशाह के यहाँ शोक मनाने के लिए भेजा। इख्तसास खाँ शोक और शांति के रस्मों को पूरा करके शाहजहाँ के हिंदुस्तान की राजगद्दी के वर्षारंभ में भारी भेंट और बहुमूल्य जवाहिरात लेकर दरबार में हाजिर हुआ और चार हजारी २००० सवार का मंसब तथा इसलाम खाँ की पदवी पाई। यह दूसरा बख्शी और मीर अर्ज के पद पर सम्मानित होकर नियत किया गया क्योंकि इस पद पर सिवा विश्वासपात्र के दूसरा कोई नियत नहीं होता था। जब शाहजहाँ खानजहाँ लोदी को दंड देने दक्षिण चला तब इसको हिंदुस्तान की राजधानी आगरा में

अध्यक्ष नियत किया। जब गुजरात का सूबेदार शेर खाँ तौनूर ४ थे वर्ष मर गया तब इसलाम खाँ उसके स्थान पर पाँच हजारी मंसब पाकर सूबेदार नियत हुआ। ६ ठे वर्ष के अंत में मीर बख्शी पद पर नियत हुआ, जिसकी तारीख 'बख्शिए मुमालिक' से निकलती है। ८ वें वर्ष आजम खाँ के स्थान पर बंगाल का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ। वहाँ इसे बड़ी बड़ी विजय मिली, जैसे आसामियों को दंड देना, आसाम के राजा के दामाद का कैद होना, एक दिन में दोपहर तक पंद्रह दुर्गों को जीतना, श्रीघाट और मांडू पर अधिकार करना, कूच हाजी के तमाम महालों पर थाना बैठाना और ११ वें वर्ष में पाँच सौ गड़े हुए खजानों का मिलना। मघराजा का भाई माणिकराय, जो चटगाँव का शासक था, रखंग के आदमियों के पराजित होने पर १२ वें वर्ष सन् १०४८ हि० में क्षमाप्रार्थी होकर जहाँगीर नगर उर्फ ढाका में खाँ के पास आया। १३ वें वर्ष इसलाम खाँ आज्ञा के अनुसार दरबार पहुँचकर वजीर दीवान आला नियत हुआ। जब दक्षिण का सूबेदार खानदौराँ नसरतजंग मारा गया तब १९ वें वर्ष के जश्न के दिन इसलाम खाँ छः हजारी ६००० सवार का मंसब पाकर उस प्रांत का सूबेदार नियत हुआ। इसके भाई, लड़के और दामाद मंसबों में तरक्की पाकर प्रसन्न होकर साथ गए।

कहते हैं कि खानदौराँ के मरने की खबर जब शाहजहाँ को मिली तब उसने इसलाम खाँ से कहा कि 'उस सूबेदारी पर किसको नियत किया जाय।' इसने अपने घर आकर अपने भला चाहने वाले मित्रों से कहा कि 'बादशाह ने इस तरह फरमाया है। देर तक विचार करने पर मैं समझता हूँ कि अपना

नाम लूं।' उन लोगों ने कहा कि 'क्या यह राय ठीक है। प्रधान मंत्रित्व और बादशाह के सामीप्य की तथा दक्षिण के शासन की बराबरी नहीं है।' इसने उत्तर दिया 'ठीक है, पर मैं समझता हूँ कि बादशाह सादुल्ला खाँ की वजीरी के लिए, जिस पर उनकी कृपा है, बहाना चाहता है। कहीं इस कारण हमारी अवनति न हो। इससे यही अच्छा है कि हम उसी तरह की राय दें।' उसी दिन के अंत में मामूल के विरुद्ध तलवार और ढाल बाँध कर दरबार में हाजिर हुआ। बादशाह ने पूछा तब प्रार्थना की कि 'आज्ञा हुई थी कि दक्षिण का सूबेदार किसको नियत करें, पर सिवा इस दास के दूसरा कोई ध्यान में नहीं आता।' बादशाह ने प्रसन्न होकर कहा कि 'नायब वजीर कौन बनाया जाय?' इसने कहा कि 'सादुल्ला खाँ से कोई अच्छा आदमी नहीं है।' यह स्वीकार हो गया। इसके वहाँ चले जाने पर सादुल्ला खाँ को पूरा मंत्रित्व मिल गया। इससे इसलाम खाँ की दूरदर्शिता और ठीक विचार सब पर प्रगट हो गया। २० वें वर्ष सात हजारी ७००० सवार का मंसब पाकर सम्मानित हुआ।

जब यह बुरहानपुर से औरंगाबाद लौटा तब बीमार हो गया। यह समझ कर कि अब आखिरी समय आ गया है, तब अपनी जागीर के लेखक चतुर्भुज और मुत्सद्दी ख्वाजा अंबर की राय से कुल दफ्तरों को जलवा कर सब सामान व माल को अपने लड़कों, भाइयों और महल के दूसरे आदमियों में गुप्त रूप से बँटवा दिया तथा २५ लाख रुपयों का कोष दरबार भेज दिया। १४ शव्वाल सन् १०५७ हि० (सं० १७०४) को मर गया। अपनी वसीयत के अनुसार यह उस नगर के पास ही

गाड़ा गया। मकबरा और बाग अपने तरह का एक ही है, यहाँ तक कि आज भी पुराना होने पर उसमें नवीनता मिली हुई है। ख्वाजा अम्बर कब्र पर बैठा। शाहजहाँ ने इन सब बातों पर जान बूझकर भी इसकी पुरानी सेवा के कारण ध्यान नहीं दिया और इसके लड़कों में से हर एक पर कृपा करके उनका मंसब और पद बढ़ाया। चतुर्भुज को मालवा का दीवान बना दिया। इसलाम खाँ हर एक विषय तथा पत्र-व्यवहार में कुशल था। बादशाही कामों में सदा तत्पर रहता था। यह नहीं चाहता था कि दूसरे कर्मचारी इसके काम में दखल दें। काम को बड़ी दृढ़ता तथा सफाई से करता था। दक्षिण वाले, जो खानदौराँ से दुखी थे, इससे प्रसन्न हो गए। दुर्ग के गोदामों को किफायत से बेंचकर नए सिरे से उन्हें बनवाया। हाथी, घोड़े बहुत से एकट्ठे हो गए थे और यद्यपि यह स्वयं उनपर सवारी नहीं कर सकता था लेकिन उनका प्रबंध और रक्षा बहुत करता था। इसको छः लड़के थे, जिनमें से अशरफ खाँ, सफी खाँ और अब्दुर्रहीम खाँ की अलग अलग जीवनियाँ दी गई हैं। तीसरे पुत्र मीर मुहम्मद शरीफ ने इसके मरने पर एक हजारी २०० सवार का मंसब पाया। शाहजहाँ के २२ वें वर्ष में सुलतान औरंगजेब के साथ कंधार पर चढ़ाई के समय साथ गया। २४ वें वर्ष जड़ाऊ बरतनों का दारोगा हुआ। अंत में सूरत बंदर का मुतसद्दी हुआ। जिस समय शाहजहाँ बीमार था और सुलतान मुरादबख्श बादशाह बनना चाहता था, यह कैद कर दिया गया। चौथे मीर मुहम्मद गियास ने पिता के मरने पर पाँच सदी १०० सवार का मंसब पाया। २८ वें वर्ष

बुरहानपुर का बख्शी और वाकेआनवीस नियत हुआ और वहाँ के बहरे-गूँगे घर का दारोगा भी हुआ। औरंगजेब के समय दो बार सूरत बंदर का मुतसद्दी, औरंगाबाद का बख्शी तथा वाकेआनवीस होकर २२ वें वर्ष में मर गया। छठा मीर अब्दुर्रहमान औरंगजेब के १६ वें वर्ष में हैदराबाद प्रांत में नियुक्त होकर कुछ दिन तक औरंगाबाद का बख्शी और वाकेआनवीस रहा और बहुत दिनों तक आख्तावेग और दारोगा अर्ज रहा।

१३४. इसलाम खाँ मीर जिआउद्दीन हुसेनी बदख्शी

औरंगजेब का यह पुराना वालाशाही सवार था। उस गुण-ग्राहक की सेवा में अपनी अवस्था प्रायः बिता चुका था। उसकी शाहजादगी में उसके सरकार का दीवान था। जब शाहजहाँ की हालत अच्छी नहीं थी और दारा शिकोह सल्तनत का जो कार्य चाहता था रोक लेता था, तब औरंगजेब ने प्रगट में पिता की सेवा करने के बहाने और वास्तव में बड़े भाई को हटाने के लिए १ जमादिउल् औवल सन् १०६४ हि० को अपने पुत्र सुलतान मुहम्मद को नजाबत खाँ के साथ औरंगाबाद से बुरहानपुर भेजा। उक्त मीर जो उस समय दीवानी के काम पर था, सुलतान के साथ नियत हुआ। शाहजादे के पीछे उक्त शहर पहुँच कर फरमाँबारी बाग़ में, जो शहर से आध कोस पर है, खेमा डाला। उक्त मीर को हिम्मत खाँ की पदवी मिली। जसवंत सिंह के युद्ध के बाद इसने इसलाम खाँ की पदवी पाई। दारा शिकोह के युद्ध में जब रुस्तम खाँ दक्षिणी ने बहादुर खाँ कोका को दबा रखा था तब इसने बाएँ भाग के बहादुरों के साथ दाईं ओर से शत्रु पर धावा कर दिया। दारा शिकोह के हारने पर उसका पीछा किया। महम्मद सुल्तान इसलाम खाँ की अभिभावकता में आगरे का प्रबंधक नियत हुआ। उक्त खाँ का मंसब बढ़ कर चार हजारी २००० सवार का हो गया और इसे तीस सहस्र रुपया

इनाम मिला। शुजाअ के युद्ध में यह बाएँ भाग का हरावल नियुक्त हुआ। जब राजा जसवंत सिंह, जो बाँए भाग का सेनापति था, उपद्रव करने की इच्छा से भाग गया तब उक्त खाँ उसके स्थान पर सेनापति हुआ। ठीक युद्ध के समय इसका हाथी बान की चोट खाकर अपनी सेना को नष्ट करने लगा और बहुत से सैनिक भागने लगे, इसी समय बादशाह स्वयं सहायता को पहुँच कर बची हुई सेना को, जो दृढ़ता से लड़ रही थी, उत्साहित किया। विजय होने पर इसलाम खाँ सुलतान मुहम्मद के साथ नियत हुआ, जो मोअज्जम खाँ मीर जुमला तथा अन्य सरदारों के साथ शुजाअ का पीछा करने जा रहा था।

जब शुजाअ सहायक सेनाओं के हारने पर अकबर नगर नहीं ठहर सका और टाँडे की ओर चला तब मोअज्जम खाँ ने इसलाम खाँ को दस सहस्र सवार के साथ अकबर नगर में छोड़ कर गंगा के इस पार का प्रबंध सौंपा। दूसरे वर्ष ५ शाबान को शुजाअ मोअज्जम खाँ के पीछा करने से कहीं न रुक कर जहाँगीर नगर पहुँचा कि वहाँ से सब सामान अपना लेकर रखंग की ओर जाय। उसी महीने में इसलाम खाँ उस सरदार से दुखित होकर या उसकी दुःशीलता से क्रुद्ध होकर बिना आज्ञा के दरबार की ओर रवाना हुआ। इस पर इसका मंसब छीन लिया गया पर तीसरे वर्ष फिर उसको पहिले का सनमान मिल गया। चौथे वर्ष इब्राहीम खाँ के जगह पर काश्मीर का सूबेदार हुआ। जब बादशाह उस सदाबहार प्रांत की सैर को चले तब नव शहर में, जो उस प्रांत का एक बड़ा परगना है और पहाड़ी स्थान का दूसरा पड़ाव है, उक्त खाँ छठे वर्ष के आरंभ में फरमान के

अनुसार वहाँ पहुँच कर जमींबोस हुआ। इसका मंसब एक हजारी १००० सवार बढ़ कर पाँच हजारी ३००० सवार का हो गया और आगरे का सूबेदार नियत हुआ। वहाँ पहुँचने पर पूरा एक महीना भी नहीं बीता था कि सन् १०७४ हि० के आरंभ में मर गया। कश्मीरी कवि 'गनी' ने उसके मरने की तारीख इस प्रकार कही—मुर्द (मर गया) इसलाम खाँ वाला-जाह।' यह मीर महम्मद नोमान के मकबरे में, जिस पर इसका विश्वास था, गाड़ा गया। अपने जीवन में उक्त मजार के पास एक मस्जिद बनवाई थी, जिसकी तारीख 'बानो इसलाम खाँ बहादुर' से निकलती है। काश्मीर की ईदगाह मसजिद, जो विस्तार और दृढ़ता में एक है, इसकी बनवाई हुई है। इसका औरस पुत्र हिम्मत खाँ मीर बख्शी था और इसकी एक लड़की मीर नोमान के लड़के मीर इब्राहीम से ब्याही थी। उक्त मीर छः लाख साठ सहस्र रुपये का सामान पहुँचाने के लिए, जिसे औरंगजेब ने मक्का मदीना के भले आदमियों को भेंट देने के लिए दूसरे साल भेजा था, वहाँ पहुँच कर ४ थे वर्ष मर गया। इसलाम खाँ गुणों से खाली नहीं था और अच्छा शैर कहता था। उसके दो शैर प्रसिद्ध हैं—

(उर्दू अनुवाद)

रातें-गम तेरे बिना है रोज शबखून मारती।
आँख की पुतली भी रोती खूँ में गोते मारती॥
वसअत ऐसी पैदा कर सहरा कि गम में आज शब,
आह की सेना है दिल-खेमा से निकला चाहती।

१३५. इसलाम खाँ रूमी

यह अली पाशा का लड़का हुसेन पाशा था। उस प्रांत में पाशा अमीर को कहते हैं। यह बसरा का शासक था और प्रगट में रूम के सुलतान की सेवा में था। इसका चाचा महम्मद इससे दुखी होकर इसतंबोल चला गया। उसकी इच्छा थी कि अपने भतीजे को खारिज कराकर स्वयं उस जगह पर नियुक्त होवे। जब उसका मतलब वहाँ पूरा नहीं हुआ तब वह अबशार पाशा के पास, जो रूम के अंतर्गत कुछ शहरों के हाकिमों को हटाने और नियत करने का अधिकारी था, हलब जाकर अपने भतीजे की बदसलूकी और असभ्यता का उससे बयान किया और प्रार्थना की कि वह उसे अलग कर दे कि वहाँ की आय जरूरी कामों में लगे। अबशार पाशा ने हुसेन पाशा को लिखा कि बसरा का एक महल उसके लिए छोड़ दे। इसके अनंतर जब वह बसरा आया तब हुसेन पाशा ने अबशार पाशा के लिखे हुए काम को नहीं किया और महम्मद को सान्त्वना देकर अपने पास रख लिया। जब महम्मद ने अपने भाई के साथ मिलकर कुछ उपद्रव करना आरंभ किया तब हुसेन पाशा ने दोनों को कैद कर हिंदुस्तान भेज दिया। ये दोनों बहुत से बहाने कर लहसा के किनारे जहाज से उतर कर मुर्तजा पाशा के पास बगदाद गए। महम्मद ने कपट और पेशबन्दी से हुसेन पाशा का कजिलबाशों से मित्रता रखने का बयान किया और उसके परिपूर्ण कोष को प्रगट करने का वादा किया कि यदि

तुम उसको अपनी सेना से निकाल दो और हमें बसरा का शासन दो तब उक्त कोष हम तुम्हें दिखला दें।

मुर्तजा पाशा ने यह हाल कैसर रूम से कहकर आज्ञा ले ली कि बगदाद से बसरा जाकर हुसेन पाशा को वहाँ से निकाल दे और बसरा महम्मद को सौंप दे। जब इस इच्छा को बल से पूरा करने के लिए वह बसरा पहुँचा तब हुसेन पाशा ने भी अपने पुत्र यहिया को सेना के साथ लड़ने को भेजा। यहिया ने जब यह देखा कि उसके पास सेना अधिक है और उसका सामना यह नहीं कर सकता तो अधीनता स्वीकार कर उसके पास पहुँचा। हुसेन पाशा यह समाचार सुनकर तथा घबड़ा कर अपने परिवार और सामान को शीराज के अंतर्गत भभा भेजकर कजिलबाश से रक्षा का प्रार्थी हुआ। मुर्तजा पाशा ने बसरा पहुँचकर मुहम्मद के बतलाये हुए कोष को बहुत खोजा पर उसे कहीं नहीं पाया। उसको और उसके भाई तथा कुछ फौज को वहीं छोड़ा। कुछ दिन के बाद इन टापुओं के रहनेवाले मुर्तजा पाशा की बदसलूकी और अत्याचार से घबड़ा कर मार काट करने लगे। मुर्तजापाशा हार कर बगदाद चला गया और उसके बहुत से आदमी मारे गए। यह सुसमाचार हुसेन पाशा को भेज कर वहाँ के निवासियों ने इसे बसरा बुलाया। यह अपने परिवार और माल को भभा में छोड़ कर बसरा आया और प्रबंध देखने लगा। दस बारह वर्ष तक यह यहाँ का राज्य-कार्य देखता रहा और साथ साथ हिंदुस्तान के वैभवशाली सुलतानों से व्यवहार बनाए रखा। औरंगजेब के तीसरे वर्ष के अंत में राजगद्दी की खुशी में एराकी घोड़े भेंट में भेजा।

जब रूम देश के बादशाह ने इसके विरोधी कार्य के कारण यहिया पाशा को इसकी जगह पर नियुक्त किया तब यह वहाँ नहीं रह सका और कैसर के पास भी जाने का इसका मुख नहीं था, इसलिए अपने परिवार और कुछ नौकरों के साथ देश त्याग कर ईरान की ओर रवाना हो गया। वहाँ पहुँचने पर भी जब इसे स्थान नहीं मिला तब अपने भाग्य के सहारे हिंदुस्तान की ओर आया। इसकी यह इच्छा जान कर दरबार ने इसके पास खिलअत, पालकी और हथनी गुर्जबरदार के हाथ भेजा कि उसका रास्ते में वह दे और आराम के साथ दरबार पहुँचावे तथा उसे बादशाही कृपा की आशा दिलावे। १२ वें वर्ष १५ सफर सन् १०८० हि० को जब यह दिल्ली पहुँचा तब बख्शीउल् मुल्क असद खाँ और सदरुस्सुदूर आबिद खाँ को लाहौरी फाटक तक स्वागत के लिए भेजा। फिर दानिशमंद खाँ पेशवा हो कर आया और बादशाह के सामने नियम के अनुसार आदाब बजवा कर आज्ञानुसार इसे तख्त को चूमने और इसके पीठ पर बादशाही हाथ फेरने के लिये लिवा गया। इसने २० सहस्र का एक लाल और १० घोड़े भेंट किए, बादशाह ने एक लाख रुपया नकद और दूसरे सामान दे कर इसे पाँच हजारी ५००० सवार का मंसब और इसलाम खाँ की पदवी दी। रुस्तम खाँ दक्खिणी की हवेली, जो जमुना नदी के किनारे एक भारी इमारत है, कुछ सामान और एक नाव दी कि उसी पर सवार हो कर बादशाह का दरबार करने आया करे। इसके बड़े पुत्र अफरासियाब खाँ को दो हजारी १००० सवार का मंसब और खाँ की पदवी तथा दूसरे पुत्र अली बेग को खाँ की पदवी और डेढ़ हजारी मंसब

दिया। इसके अनंतर एक हजारी १००० सवार बढ़ा कर और दस महीने का वेतन नकद खोराक सहित देकर सनमानित किया। अनंतर यह मालवा का सूबेदार नियत हुआ।

इसकी पेशानी से बहादुरी और बुद्धिमानी झलक रही थी और इसकी कुशलता तथा अमीरी इसके काम से प्रकट हो रही थी, इसलिए बादशाह ने कृपाकर इसे हिंदुस्तान का एक अमीर बना दिया। औरंगजेब चाहता था कि यह अपने परिवार को बुला कर इस देश को अपना निवास-स्थान बनावे पर यह इसी कारण अपनी स्त्रियों और अपने तीसरे पुत्र मुख्तार बेग को बुलाने में देर कर रहा था। इसी से इसने दुःख उठाया। इसका मंसब ले लिया गया और यह बादशाही सेवा से दूर होकर उज्जैन में रहने लगा। १५ वें वर्ष के अंत में दक्षिण के सूबेदार उम्दतुल् मुल्क खानजहाँ बहादुर की प्रार्थना पर यह फिर अपने मंसब पर बहाल हुआ और अच्छी सेवा पाकर हरावल का अध्यक्ष नियत हुआ। दूसरी बार आदिल शाही और बहलोल बीजापूरी के पौत्र की सेनाओं से जो युद्ध हुए उनमें इसने योग दिया। १९ वें वर्ष ११ रबीउल् आखिर सन् १०८७ हि० को ठीक युद्ध के समय शत्रुओं के बीच में जिस जगह पर यह स्थित था वहाँ बँटते समय दैवात् आग बारूद में गिर गई और हाथी बिगड़ कर शत्रु की सेना में चला गया। शत्रुओं ने घेर कर इसके हौदे की रस्सियाँ काट डालीं और जब यह जमीन पर गिरा तब इसको इसके लड़के अली बेग के साथ काट डाला। शैर—

अजल राह तै कर गिरा आके आगे।
कशाँ ओर दामे फना सैद भागे॥

इसके जीवन ने अवसर नहीं दिया नहीं तो यह अपने कार्य-कौशल, सेवा तथा दूरदर्शिता से बहुत से अच्छे काम दिखलाता। बड़प्पन और भलाई इससे शोभा पाती थी। यह कवि था। इसकी एक रुबाई नीचे दी जाती है—

यकबार किया सैरे बेनवाई मैंने।
दरगहे बुज़ुर्गी प किया गदाई मैंने॥
जिगर से टुकड़ा लिया बरस्म हदियः एक
जिससे दोस्त सग से की आश्नाई मैंने॥

इसकी मृत्यु पर अफरासियाब खाँ का मंसब बढ़कर ढाई हजारी ५०० सवार का हो गया और मुख्तार बेग का, जो १८ वें वर्ष में अपने पिता के संबंधियों के साथ गुप्तरूप से उज्जैन पहुँच कर सात सदी १०० सवार का मंसबदार हो चुका था, एक हजारी ४०० सवार का हो गया। मृत खाँ का कुल माल ३२०००० अशर्फी, जो उज्जैन और शोलापुर में जब्त हो गई थी, उसके पुत्रों को क्षमा कर दिया और आज्ञा हुई कि बाप के ऋण का जवाब करे। इसके अनंतर अफरासियाब खाँ धामुनी का फौजदार हुआ और २४ वें वर्ष फैज्जुल्ला खाँ के स्थान पर मुरादाबाद का फौजदार हुआ। उसी वर्ष मुख्तार बेग को नवाजिश खाँ की पदवी मिली और ३० वें वर्ष में मंदसोर का फौजदार तथा दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। ३७ वें वर्ष में चकला मुरादाबाद का शासक हुआ। इसके बाद माँडू का फौजदार और उसके अनंतर एलिचपुर का शासक नियत हुआ। ४८ वें वर्ष कश्मीर का सूबेदार हुआ।

---

१३६. इहतमाम खाँ

यह शाहजहाँ का एक वालाशाही सवार था। पहिले वर्ष इसे एक हजारी २५० सवार का मंसब मिला। ३ रे वर्ष जब दक्षिण में बादशाही सेना पहुँची और तीन सेनाएँ तीन सर्दारों की अध्यक्षता में खानजहाँ लोदी को दंड देने और निजामुल्मुल्क के राज्य को, जिसने उसे शरण दी थी, लूटने के लिए नियत हुई, तब यह आजम खाँ के साथ उसके तोपखाने का दारोगा नियत हुआ। युद्ध में जब आजम खाँ ने खानजहाँ लोदी पर धावा किया और उसके भतीजे बहादुर ने दृढ़ता से सामना किया तब इसने बहादुर खाँ रुहेला के साथ सबसे आगे बढ़ कर युद्ध में वीरता दिखलाई। इसके अनंतर आजम खाँ मोकर्रब खाँ बहलोल को दमन करने की इच्छा से जामखीरो की ओर चला तब इसको तिलंगी दुर्ग पर अधिकार करने के लिए नियत किया और उसे लेने में इसने बड़ी सेवा की। ४ थे वर्ष इसका मंसब एक हजारी ४०० सवार का हो गया और यह जालना का थानेदार नियत हुआ। ५ वें वर्ष २०० सवार इसके मंसब में बढ़ाए गए। ६ ठे वर्ष इसका दो हजारी १२०० सवार का मंसब हो गया। ९ वें वर्ष जब शाहजहाँ दूसरी बार दक्षिण गया और तीन सेनाएँ अच्छे सरदारों के अधीन साहू भोंसला को दंड देने और आदिलशाही राज्य पर अधिकार करने के लिए भेजी गई तब यह ३०० सवारों की तरक्की के साथ खान-

दौरों के अधीन नियत हुआ और ओसा दुर्ग के घेरे में विजय मिलने पर यह वहाँ का दुर्गाध्यक्ष हुआ। १० वें वर्ष इसे डंका मिला। १३ वें वर्ष दक्षिण के सूबेदार शाहजादा महम्मद औरंगजेब की इच्छानुसार वहाँ से हटाया जा कर यह बरार के पास खीरलः का थानेदार नियत हुआ। १४ वें वर्ष दक्षिण से दरबार आकर खिलअत, घोड़ा और हाथी पाकर हिम्मत खाँ के स्थान पर गोरबंद का थानेदार हुआ। १९ वें वर्ष शाहजादा मुराद बख्श के साथ बलख और बदख्शाँ गया और दुर्ग गोर के विजय होने पर उसका अध्यक्ष नियत हुआ। यह ज्ञात होने पर कि यह वहाँ के आदमियों के साथ अच्छा सलूक नहीं करता, यह २० वें वर्ष में वहाँ से हटा दिया गया और उसी वर्ष १०५६ हि० (सं० १७०३) में मर गया।

---

१३७. इहतिशाम खाँ इखलास खाँ शेख-फरीद फतेहपुरी

कुतुबुद्दीन खाँ शेख खूबन का यह द्वितीय पुत्र था। जहाँगीर के राज्य के अंत तक एक हजारी ४०० सवार का मंसबदार हो चुका था और शाहजहाँ के राज्य के पहिले वर्ष में पाँच सदी २०० सवार और बढ़े। चौथे वर्ष २०० सवार बढ़े और पाँचवें वर्ष उसका मंसब दो हजारी १२०० सवार का हो गया। ८ वें वर्ष ढाई हजारी १५०० सवार का मंसब पाकर शाहजादा औरंगजेब के साथ जुझारसिंह बुंदेला पर भेजी गई सेना का सहायक नियत हुआ। ९ वें वर्ष जब बादशाह दक्षिण गए तब यह शायस्ता खाँ के साथ जुनेर और संगमनेर के दुर्गों पर नियत हुआ तथा संगमनेर के विजय होने पर वहाँ का थानेदार नियत हुआ। ११ वें वर्ष एसालत खाँ के साथ परगना चन्दवार के विद्रोहियों को दंड देने गया। १५ वें वर्ष मऊ दुर्ग लेने में बहुत परिश्रम कर शाहजादा दारा शिकोह के साथ काबुल गया। जाते समय इसे झंडा मिला। १८ वें वर्ष आगरा प्रांत का सूबेदार हुआ और इसका मंसब तीन हजारी १५०० सवार का हो गया। १९ वें वर्ष शाहजादा मुरादबख्श के साथ बलख-बदख्शाँ पर अधिकार करने में बहादुरी दिखलाई। जब शाहजादा वहाँ से लौटा और बहादुर खाँ रुहेला अलअमानों को दंड देने के लिए बलख से रवाना हुआ तब इसे शहर के दुर्ग की

रक्षा सौंपी गई। २२ वें वर्ष जब यह समाचार मिला कि यह राजा बिट्ठलदास के साथ, जो काबुल में नियत हुआ था, जाने पर काम में ढिलाई करता है तब इसका मंसब और जागीर छीन ली गई। ३१ वें वर्ष इसपर कृपा करके तीन हजारी २००० सवार का मंसब दिया और शाहजादा सुलेमान शिकोह के साथ, जो शाहजादा मुहम्मद शुजाअ का सामना करने के लिए नियत हुआ था, गया और पटना की सूबेदरी तथा इखलास खाँ की पदवी पाई। औरंगजेब के राज्य के पहिले वर्ष में खानदौराँ के सहायकों में, जो इलाहाबाद विजय करने गया था, नियत होकर इहतशाम खाँ की पदवी पाई, क्योंकि इखलास खाँ पदवी अहमद खेशगी को दे दी गई थी। युद्ध के अनंतर शुजाअ के भागने पर शाहजादा महम्मद सुलतान के साथ बंगाल की चढ़ाई पर गया और उस प्रांत के युद्ध में बहादुरी दिखला कर ६ ठे वर्ष के अंत में दरबार आया। ७ वें वर्ष मिर्जा राजा जयसिंह के साथ दक्षिण में नियत हुआ और पूना विजय होने पर वहाँ का थानेदार हुआ। ८ वें वर्ष सन् १०७५ हि० में मर गया। इसके पुत्र शेख निजाम को दारा शिकोह के प्रथम युद्ध के बाद औरंगजेब ने हजारी ४०० सवार का मंसब दिया।

१३८. ईसा खाँ मुवीं

यह रनघीर जाति में से था, जो अपने को राजपूत कहते हैं। सरहिंद चकला और दोआब प्रांत में ये लूटमार और जमींदारी से जीविका निर्वाह करते थे। डाँका डालने में भी ये नहीं हिचकते थे। पहिले समय में इसके पूर्वज गण अत्याचारी डाँकुओं से अच्छे नहीं थे। इसके दादा बुलाकी ने परिश्रम कर नाम पैदा किया परंतु इस बीच चोरी और लूट जारी रखकर वह अत्याचार करता रहा। इसके अनंतर कुछ आदमियों को इकट्ठाकर हर एक स्थान में लूट मार करने लगा। क्रमशः चारों ओर की जमींदारी में भी लूट मचाकर इसने बहुत धन और ऐश्वर्य इकट्ठा कर लिया। आजम शाह के युद्ध में मुहम्मद मुइज्जुद्दीन के साथ रहकर इसने प्रयत्न कर साहस तथा वीरता के लिए नाम कमाया और बादशाही मंसब पाकर सम्मानित हुआ। लाहौर में शाहजादों का जो युद्ध हुआ था, उसमें अच्छी सेना के साथ जहाँदार शाह की ओर रहा। इस युद्ध में इसे भाग्य से बहुत बड़ी लूट मिल गई क्योंकि कोष से लदे हुए ऊँट साथ थे। इनके विषय में किसी ने कुछ पूछा भी नहीं। इस विजय के अनंतर पाँच हजारी मंसब और दोआबा पट्टा तथा लखी जंगल की फौजदारी मिली। यह साधारण जमींदार से बड़ा सरदार हो गया। अवसर पाकर काम निकाल लेना जमींदार का गुण है, विशेष कर उपद्रवियों के लिए, जो इसके लिए

सर्वदा तैयार रहते हैं। जब राज्य-विप्लव हुआ और जहाँदार शाह गद्दी से उतारा गया तब यह तुरंत अधीनता छोड़ कर लूट मार करने लगा। दिल्ली तथा लाहौर के काफलों को अपना समझ कर लूट लेता था। कई बार आस पास के फौजदारों को परास्त करने से इसे बहुत घमंड हो गया। बहुत सा माल और सामान भी इकट्ठा कर लिया। इसने बहाने बना कर और समसामुद्दौला खानदौराँ के पास भेंट आदि भेज कर उससे हेल मेल बना रखा था और रईस बनते हुए भी इसका उपद्रव तथा लूट मार बढ़ता जाता था। जागीरदारों से जो आय वाजिब थी उससे अधिक ले लेता था। व्यास नदी के तट से, जहाँ बादरिसा दुर्ग में रहता था, सतलज नदी के तटस्थ सरहिंद के पास थार गाँव तक अधिकार कर लिया था। इसके भय से शेर नाखून गिरा देता था, दूसरों की क्या शक्ति थी कि इससे छेड़ छाड़ करता।

जब लाहौर का शासक अब्दुस्समद खाँ दिलेरजंग इसके उपद्रव और लूट मार से घबड़ा उठा तब गुरु की घटना के बाद अपने संबंधी शहदाद खाँ को, जो एक वीर पुरुष था, उस प्रांत का फौजदार नियत किया और इस घमंडी को दमन करने का इशारा किया। हुसेन खाँ, जो उक्त खाँ का पोषक और बलवाइयों का सरदार था, ईसा खाँ को दमन करने में राजी नहीं हुआ, क्योंकि उसके रहते कोई इससे नहीं बोल सकता था। यह बात ठीक थी इसलिए यहाँ लिख दी गई। शहदाद खाँ नाजिम की आज्ञा का प्रबंध करने लगा। ५ वें वर्ष के आरंभ में फर्रुखसियर की आज्ञा पहुँची। यह निडर उपद्रवी, जो युद्ध करने के लिए

सदा तैयार रहता था, थार गाँव के पास, जो इसके रहने का स्थान था, तीन सहस्र बहादुर सवारों के साथ आकर युद्ध करने लगा। शहदाद खाँ युद्ध न कर सका और भागने लगा। दैवात् उसी समय उस अत्याचारी का बाप दौलत खाँ एक गोली लगने से मर गया, जो अपने पुत्र की बदौलत आराम करता था। यह बदमस्त इससे और भी क्रोधित हुआ और हाथी को एक दम बढ़ाकर शहदाद खाँ पर पहुँचा, जो एक छोटी हथिनी पर सवार था। उस पर तलवार की दो तीन चोटें चलाईं। इसी बीच एक तीर इसे लगा जिससे यह मर गया। इसका सिर काटकर नाजिम की आज्ञा से दरबार में भेज दिया गया। इसके अनंतर इसके पुत्र को जमींदार बनाया। यह साधारण जमींदार की तरह रहता था। मृत के समान इस जाति का कोई दूसरा पुरुष प्रसिद्ध नहीं हुआ।

१३६. मिर्ज़ा ईसा तरखान

इसका पिता जान बाबा सिंध के हाकिम मिर्ज़ा जानी बेग के पिता का चाचा था। जब मिर्ज़ा जानी बेग मर गया तब मिर्ज़ा ईसा शासन के लोभ से हाथ पैर चलाने लगा। खुसरू खाँ चरकिस ने, जो उस वंश का स्थायी मंत्री था, मिर्ज़ा गाजी को गद्दी पर बैठाया और चाहा कि मिर्ज़ा ईसा को कैद कर दे पर यह अपने सौभाग्य से वहाँ से हट कर जहाँगीर की सेवा में पहुँचा। जहाँगीर ने इसे अच्छा मंसब देकर दक्षिण में नियत कर दिया। जब मिर्ज़ा गाजी कंधार का शासन करते हुए मर गया तब खुसरू खाँ अब्दुल् अली को तरखानी गद्दी पर बैठा कर स्वयं प्रबंध करने लगा। जहाँगीर ने यह शंकाकर कि कहीं अब्दुल् अली खुसरू खाँ के बहकाने से उस प्रांत में उपद्रव न करे, मिर्ज़ा ईसा खाँ के नाम लिखित आज्ञापत्र भेजा। जब यह दरबार में आया तो कुछ ईर्ष्यालु मनुष्यों ने प्रार्थना की कि मिर्ज़ा बहुत दिनों से अपने पैतृक देश के लिए उपद्रव करता आया है, यदि वह स्थायी शासक हो जायगा तो कच्छ, मकरान और हरमुज के हाकिमों से, जो सब पास हैं, मिल कर शाह अब्बास सफवी की शरण में चला जायगा तो बहुत दिनों में उसका प्रबंध हो सकेगा। बादशाह ने इस पर सशंकित हो कर मिर्ज़ा रुस्तम कंधारी को वहाँ का शासक नियत किया। उसके प्रयत्न से तरखान वंश का उस प्रांत से संबंध नष्ट हो गया। मिर्ज़ा ईसा

को गुजरात में धनपुर की जागीर देकर उस प्रांत में नियुक्त किया। उस समय जब शाहजहाँ ठट्टा के पास से असफल होकर गुजरात के अंतर्गत भार प्रांत के मार्ग से दक्षिण लौटा तब मिर्जा ने अपने अच्छे भाग्य से नकद, सामान, घोड़ा और ऊँट भेंट की तौर पर भेजकर अपने लिए लाभ-रूपी कोष संचित कर लिया।

जहाँगीर की मृत्यु पर जब शाहजहाँ दक्षिण से आगरे को चला तब यह सेवा में पहुँचा और दो हजारी १३०० सवार बढ़ने से इसका मंसब चार हजारी २५०० सवार का हो गया और यह ठट्टा प्रांत का अध्यक्ष नियत हुआ। परंतु राजगद्दी होने के बाद वह प्रांत शेर ख्वाजा उर्फ ख्वाजा बाकी खाँ को मिला। मिर्जा इच्छा पूरी न होने से वहाँ से लौटकर मथुरा तथा उसके सीमा प्रांत का तयूलदार नियत हुआ। ५ वें वर्ष में मंसब में कुछ सवार बढ़ाकर इसको एलिचपुर की जागिरदारी पर भेजा गया। ८ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी ४००० सवार दो अस्पा से अस्पा का हो गया और सोरठ सरकार का फौजदार नियत हुआ। १५वें वर्ष आजम खाँ के स्थान पर यह गुजरात का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और सोरठ के प्रबंध पर इसका बड़ा पुत्र इनायतुल्ला नियत हुआ, जिसका मंसब दो हजारी १००० सवार का था। सूबेदारी छूटने पर यह सोरठ की राजधानी जूनागढ़ का शासक नियत हुआ और मिर्जा दरबार बुलाया गया। सन् १०६२ हि० (सं० १७०९) के मोहर्रम महीने में यह साँभर पहुँचा था कि वहीं मर गया। यद्यपि मिर्जा की उम्र सौ से बढ़ गई थी पर उसकी शक्ति घटी

नहीं थी और उसमें जवान की तरह ताकत थी। यह बहुत आराम पसंद, मदिरासेवी और गाने बजाने का शौकीन था। स्वयं गायन तथा वादन के गुणों से खाली नहीं था। इसे बहुत सी संतान थीं। इसका बड़ा पुत्र इनायतुल्ला खाँ २१ वें वर्ष में मर गया। यह अपने पिता की जीवित अवस्था ही में मरा था। मिर्जा की मृत्यु पर उसकी सबसे बड़ी संतान मुहम्मद सालह ने, जिसका वृत्तांत अलग दिया हुआ है, दो हजारी १५०० सवार का और फतेहउल्ला ने पाँच सदी का मंसब पाया और आकिल को योग्य मंसब मिला।

१४०. उजबक खाँ नजर बहादुर

यह यूलम बहादुर उजबक का बड़ा भाई था। दोनों अब्दुल्ला खाँ बहादुर फीरोज जंग के यहाँ नौकरी करते थे। जुनेर में रहते समय शाहजहाँ के सेवकों में भरती हुए। जब बादशाह उत्तरी भारत में आए तब इन दोनों भाइयों पर कृपा दिखलाई और हर एक ने योग्य मंसब पाया। जब महाबत खाँ खानखानाँ दक्षिण का सूबेदार हुआ तब ये दोनों उसके साथ नियत हुए। शाहजहाँ ने इन दोनों की जीविका के लिए कृपा करके वेतन में जागीर देकर इन पर रियायत की। यूलम बेग इसी समय मर गया। नजर बेग को उजबक खाँ की पदवी मिली और १४ वें वर्ष दक्षिण के सूबेदार शाहजादा महम्मद औरंगजेब की प्रार्थना पर एक हजारी १००० सवार बढ़ाकर इसका मंसब दो हजारी २००० सवार का कर दिया तथा मुबारक खाँ नियाजी के स्थान पर यह ओसा का दुर्गाध्यक्ष नियत हुआ। २२ वें वर्ष इसे डंका मिला। बहुत दिनों तक ओसा दुर्ग की अध्यक्षता करने के बाद दरबार पहुँचकर अहमदाबाद गुजरात में नियत हुआ। तीसरे वर्ष सन् १०६६ हि० (सं० १७१३) में मर गया। यह विलासप्रिय मनुष्य था। शराब और गाने का शौकीन था। इसके विरुद्ध सेना को अपने हाथ में रखता था तथा आय और व्यय भी इसके हाथ में था। अपनी जागीर की अंतिम वर्ष तक की आय से कुछ नहीं छोड़ा। सदा कहता था कि यदि मेरे मरने के बाद सिवा दो हाथ के कोई सामान

निकले तो मैं दोषी हूँ। जब शाहजादा औरंगजेब ने बादशाहत के लिए तैयारी की और बुरहानपुर के पास, जो शहर से आध कोस पर है, बहुतों को मंसब और पदवियाँ दीं तब इसका लड़का तातार बेग भी पिता की पदवी बढ़ने से सन्मानित हुआ और बराबर शाहजहाँ के साथ रहा। जब औरंगजेब बादशाह हो गया तब इसने उस प्रांत के सूबेदार अमीरुल् उमरा शाइस्ता खाँ के साथ नियत होकर शिवा जी भोसले के चाकण दुर्ग लेने में बहुत परिश्रम किया। तीसरे वर्ष उस दुर्ग के लिए जाने पर उक्त खाँ वहाँ का अध्यक्ष नियत हुआ। इसके अनंतर मराठों के निवासस्थान कोंकण गया और वहाँ पहुँच कर युद्ध में नाम कमाया। इसका भाई महम्मद वाली अरसी पदवी पा कर कुछ दिन महम्मद आजम शाह की सेना का बख्शी रहा और इसके अनंतर फतेहाबाद धारवर और आजम नगर बंकापुर का दुर्गाध्यक्ष हुआ। इसके मरने पर इसका पुत्र अबुल् मआली अपने पिता की पदवी पा कर कुछ दिन बीर का फौजदार रहा और उसके बाद दुर्ग धारवर का अध्यक्ष हुआ। आसफजाह के शासन के आरंभ में बड़े कष्ट से दक्षिण पहुँचा और जीविका का सिलसिला न बैठने पर वहीं मर गया। इस सिलसिले को जारी रखने को इसके वंश में कोई नहीं बचा था।

१४१. उलुग़ ख़ाँ हब्शी

यह सुलतान महमूद गुजराती का एक दास था। उसके राज्य में विश्वासपात्र होकर यह एक सरदार हो गया। १७ वें वर्ष में जब अकबर अहमदाबाद जा रहा था तब उक्त ख़ाँ अपनी सेना सहित सैयद हामिद बुख़ारी के साथ अन्य सर्दारों से पहिले पहुँच कर बादशाही सेवा में चला आया। १८ वें वर्ष में इसे योग्य जागीर मिली। २२ वें वर्ष में सादिक ख़ाँ के साथ ओड़छा के राजा मधुकर बुंदेला को दमन करने पर नियुक्त होकर युद्ध के दिन बड़ी वीरता दिखलाई। २४ वें वर्ष में जब राजा टोडरमल आदि अरब को दमन करने के लिए नियुक्त हुए, जिसे बाद को नयाबत ख़ाँ की पदवी मिली थी और जिसने उस वर्ष बिहार प्रांत के पास उपद्रव मचा रखा था, तब यह भी सादिक ख़ाँ के साथ उक्त राजा का सहायक नियुक्त हुआ। यह बराबर उक्त ख़ाँ का हर काम में साथी रहा। जिस युद्ध में विद्रोही चीता मारा गया था, उसमें यह सेना के बाँए भाग का अध्यक्ष था। बहुत दिनों तक बंगाल प्रांत में नियुक्त रहकर वहीं मर गया। इसके लड़कों को वहीं जागीर मिली और वे वहीं रहने लगे।

१४२. एकराम खाँ सैयद हसन

यह औरंगजेब का एक वालाशाही सवार था। बहुत दिनों तक यह खानदेश के अंतर्गत बगलाना का फौजदार रहा, जिसे शाहजहाँ ने औरंगजेब की शाहजादगी के समय पुरस्कार में दिया था। इसके अनंतर जब औरंगजेब पिता को देखने के लिए बुरहानपुर से मालवा को चला तब यह भी आज्ञानुसार साथ में गया। सामूगढ़ के पास दारा शिकोह के साथ युद्ध में बहुत प्रयास किया। प्रथम वर्ष में एकराम खाँ की पदवी पाई और शुजाअ के युद्ध में जब बाएँ भाग के सेनापति महाराज जसवंत सिंह ने कपट करके रात में अपने देश का रास्ता लिया और उसके स्थान पर इसलाम खाँ नियत हुआ तब इसने सैफ खाँ के साथ पहिले की तरह हरावल में नियत होकर खूब दृढ़ता से लड़ते हुए बहादुरी दिखलाई। जब बादशाह दारा शिकोह से लड़ने के लिए अजमेर चले तब यह रादअन्दाज खाँ के स्थान पर आगरा का दुर्गाध्यक्ष हुआ और इसके बाद यहाँ से हटाया जाकर सैयद सालार खाँ के स्थान पर आगरे के सीमांत प्रदेश का फौजदार हुआ। पाँचवें वर्ष सन् १०७२ हि० (सं० १७१९) में मर गया।

१४३. एतकाद खाँ फर्रुखशाही

इसका नाम महम्मद मुराद था और यह असल कश्मीरी था। बहादुर शाह के समय में यह जहाँदार शाह का वकील नियत हुआ और एक हजारी मंसब तथा वकालत खाँ की पदवी पाई। जहाँदार शाह के समय में उन्नति करता रहा पर महम्मद फर्रुखसियर के राज्यकाल में प्राणदंड पानेवालों में इसका नाम लिखा गया परंतु सैयदों के साथ पुराना संबंध होने के कारण यह बच गया और डेढ़ हजारी मंसब तथा मुहम्मद मुराद खाँ की पदवी पाई और तुजुक के पहलवानों में भर्ती हुआ। जब दूसरा बख्शी महम्मद अमीन खाँ मालवा भेजा गया कि दक्षिण से आते हुए अमीरुल् उमरा का मार्ग रोके, और वह कूच न कर ठहर गया तब उस पर महम्मद मुराद खाँ सजावल नियत हुआ। इसने उसे बहुत कुछ फटकारा तथा समझाया पर कोई लाभ न हुआ। दरबार आकर इसने प्रार्थना की कि उसने अधीनता छोड़ दी है, जिससे सजावल का कोई असर नहीं होता। बादशाह ने कोई उत्तर नहीं दिया तब इसने बेधड़क हो कर सम्मति दी कि यदि इस समय उपेक्षा की जायगी तो कोई कुछ नहीं मानेगा। बादशाह ने पूछा कि तब क्या करना चाहिए। इसने कहा कि इस सेवक को आज्ञा दी जावे कि वहाँ जा कर उससे कहे कि वह इसी समय कूच करे, नहीं तो उसकी बख्शीगिरी छीन लेने की आज्ञा भेज दी जायगी। इसके अनंतर जा कर इसने ऐसा

प्रयत्न किया कि उसी दिन उसने कूच कर दिया। यह साहस और राजभक्ति बादशाह को पसंद आई और बादशाह की माँ के देश का होने से इस पर अधिक कृपा हुई। बादशाह बारहा के सैयदों के विरोध तथा वैमनस्य और उनके अधिकार तथा प्रभाव के कारण दुखी रहता था। प्रति दिन उन्हें दमन करने का उपाय सोचा करता था और राय भी करता था परंतु साहस तथा चातुर्य की कमी से कुछ निश्चय नहीं कर सकता था। एक दिन वकालत खाँ ने समय पाकर इस बारे में उसे बहुत सी बातें ऊँची नीची समझा कर कहा कि बहुत थोड़े समय में उनके अधिकार को हम नष्ट कर देंगे। बुद्धिहीन तथा बेसमझ फर्रुखसियर कुछ काम न होने पर भी इस पर लट्टू हो गया और सभी कार्यों में इसको अपना सच्चा मित्र और विश्वासपात्र बनाकर सात हजारी १०००० सवार का मंसब और रुक्नुद्दौला एतकाद खाँ बहादुर फर्रुखशाही की पदवी देकर सम्मानित किया। कोई दिन ऐसा नहीं जाता था कि इसे बहुमूल्य रत्न और अच्छी वस्तु न मिलती हो। मुरादाबाद सरकार को एक प्रांत बनाकर तथा रुक्नाबाद नाम रखकर इसे जागीर में दे दिया। सैयदों को दमन करने के लिए इसकी राय से पटना से सरबुलंद खाँ, मुरादाबाद से निजामुल् मुल्क बहादुर फतह जंग और महाराजा अजीत सिंह को उनके देश जोधपुर से दरबार बुलवाया तथा हर एक से प्रति दिन राय होती थी। यदि इनमें से कोई कहता कि हम में से किसी एक को वजीर नियत कर दीजिए तो कुतबुल् मुल्क की दृढ़ता को घटा दें और उसके कुल भेदों को समझ जावें तब फर्रुखसियर कहता कि उस पद के

लिए एतकाद खाँ से अधिक कोई उपयुक्त नहीं है। सरदारगण ऐसे आदमी को, जिसकी चापलूसी और दुश्शीलता प्रसिद्ध थी, उनसे बढ़कर कहने से दुखी हो गए और वजीर होकर सच्चे दिल से काम करने का विचार रखते हुए लाचार होकर अलग हो गए। वास्तव में वह कैसा पागलपन था कि कुल परिश्रम, कष्ट और जान को निछावर तो ये लोग करें और मंत्रित्व तथा संपत्ति दूसरा पावे। शैर—

मैं हूँ आशिक, और की मकसूद में माशूक है।
गर्रए शव्वाल कहलाता है क्यों रमजाँका चाँद॥

इससे अधिक विचित्र यह था कि जिन सरदारों पर इन सब कामों का दारमदार था उन्हीं में से कितनों की जागीर और पद में रद्दबदल करके दुखी कर दिया था। कुतुबुल् मुल्क उनको दुखी समझकर हर एक की सहायता करता और समझाकर अपना अनुगृहीत बना लेता था। ये बेकार विचार और रद्दी सम्मतियाँ—मिसरा

वे राज़ कब निहाँ हैं, महफिल में जो खुले हैं।

संक्षेप में जब यह समाचार कुतुबुल् मुल्क को मिला तब उसने पहिले अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने के विचार से अमीरुल् उमरा हुसेन अली खाँ को लिखा कि काम हाथ से निकल गया, इसलिए दक्षिण से जल्दी लौटना चाहिए। बादशाह अमीरुल् उमरा के दृढ़ विचार को जानकर नए सिरे से शांति की उपाय में लगा और राय लेकर एतकाद खाँ और खानदौराँ को कुतुबुल् मुल्क के घर भेजा और धर्म को बीच में देकर नई प्रतिज्ञा की, जिससे दोनों पक्ष अपने अपने पूर्व व्यवहारों को भुला दें।

अभी एक महीना भी नहीं बीता था कि बादशाह ने अपने लड़कपन तथा अपनी कादरता से मित्रता के इस प्रस्ताव को तोड़ दिया, जिससे दोनों पक्ष की अप्रसन्नता और वैमनस्य बढ़ गया। कुछ अनुभवी सरदार अलग हो जाने ही में अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा देखकर हट गए। जब अमीरुल् उमरा दक्षिण से आया तब पहिले प्रतिज्ञा को निश्चित मानकर सेवा में उपस्थित हुआ पर बादशाह की दूसरी चाल देखकर और आदमियों को अस्तव्यस्त पाकर दूसरा उपाय सोचने लगा। ८ रबीउस्सानी को दूसरी बार सेवा में उपस्थित होने के बहाने कुतुबुल् मुल्क को अजीत सिंह के साथ दुर्ग अरक का प्रबंध करने भेजा। जिस समय एतकाद खाँ के सिवाय दुर्ग में कोई बादशाही पक्ष का आदमी नहीं रह गया तब कुतुबुल् मुल्क ने बादशाह से उसकी कृपा न रहने का बहुत सा उलाहना दिया। मुहम्मद फर्रुखसियर ने भी क्रोध में आ कर जवाब दिया, यहाँ तक कि कड़ी बातें होने लगीं। एतकाद खाँ ने चाहा कि मीठी बातों से उनको ठंढा करें पर दोनों आपे के बाहर हो रहे थे इसलिए अबदुल्ला खाँ ने उसको गाली देकर दुर्ग से बाहर निकाल दिया। बादशाह उठकर महल में चले गए। एतकाद खाँ जान बची समझ कर घर चल दिया। कुतुबुल् मुल्क ने बड़ी सतर्कता से सारी रात दुर्ग में बिताकर सुबह ९ रबीउल्आखिर को बादशाह को कैद कर लिया। उस समय तक किसी को कुछ मालूम न था कि दुर्ग में क्या हो चुका है। जनसाधारण ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि अब्दुल्ला खाँ मारा गया। एतकाद खाँ ने अपनी राजभक्ति दिखलाने के लिए अपनी सेना के साथ सवार होकर

सादुल्ला खाँ की बाजार में अमीरुल् उमरा की सेना पर व्यर्थ ही आक्रमण कर दिया। उसी समय रफीउद्दजात के गद्दी पर बैठने का शोर मचा। एतकाद खाँ को कैद कर उसका घर जब्त कर लिया। उससे अच्छे अच्छे जवाहिरात, जो उसको पुरस्कार में मिले थे और बहुत से खर्च हो चुके थे, लेकर उसकी बड़ी दुर्दशा की। फर्रुखसियर को छः साल चार महीने के राज्य के बाद, जिसमें जहाँदार शाह के ग्यारह महीने नहीं जोड़े गए हैं, यद्यपि जिसे उसने अपने राज्यकाल में जोड़ लिया था, गद्दी से हटाकर अरक दुर्ग के त्रिपोलिया के ऊपर, जो बहुत छोटी और अंधकारपूर्ण कोठरी थी, अंधा कर कैद कर दिया। कहते हैं कि आँख की रोशनी बिलकुल नष्ट नहीं हुई थी।

सैयदों के एक विश्वासपात्र संबंधी से सुना है कि जब यह निश्चय हुआ कि उसकी आँख में दवा लगा दी जाय तब कुतुबुल् मुल्क ने इसलिए कि किसी पर प्रगट न हो अपनी सुरमेदानी दरबार में नजमुद्दीन अली खाँ को दिया कि यह बादशाह की आज्ञा है। उसने जाकर फर्रुखसियर की आँख में सुरमा लगवा दिया। उस समय फर्रुखसियर ने यहाँ तक प्रार्थना की कि अंत में उसने नीचे से खींच दिया, जिससे आँख की रोशनी को हानि नहीं पहुँची। इस बात को छिपाने के लिए वह बहुत प्रयत्न करता और जब किसी चीज की इच्छा होती थी, तो कहता था। उसकी इस हालत पर वे दया दिखलाते थे और कुतुबुल् मुल्क तथा अमीरुल् उमरा मुसकराते हुए बातचीत करते थे, मानों वे उसके हाल को नहीं जानते। दुर्भाग्य से उसने अपनी सिधाई के कारण अपने रक्षकों से उचित वादा करते हुए बाहर निकालने की

बात की कि उसे राजा जय सिंह सवाई के पास पहुँचा दें। जब यह समाचार बादशाह के प्रबंधकों को मिला तो राज्य की भलाई के लिए उसे दो बार जहर दिया गया परंतु वह नहीं मरा। तब अंत में गला घोंट कर मार डाला। जिस दिन उसका ताबूत हुमायूँ बादशाह के मकबरे में ले जाया गया, उस दिन बड़ा शोर मचा। नगर के दो तीन सहस्र आदमी, जिनमें विशेषतः लुच्चे और फकीर इकट्ठे हो गए थे, रोते हुए साथ गए और सैयदों के आदमियों पर पत्थर फेंकते रहे। तीन दिन तक वे सब उसकी कब्र पर एकत्र होकर मौलूद पढ़ते रहे।

सुभान अल्लाह ! इस घटना पर आदमियों ने बड़ी वीरता दिखलाई। एक कहता है—रुबाई—

देखा तूने कि सम्मानित बादशाह के साथ क्या किया ?

सौ अत्याचार और जुल्म कच्चेपन से किया ॥

इसकी तारीख बुद्धि ने इस प्रकार कहा कि (सादात बै नमक हरामी करदंद) सैयदों ने उससे नमकहरामी किया।

दूसरा कहता—रुबाई—

दोषी बादशाह के साथ वह स्यात् ही किया।

जो हकीम के हाथ से होना चाहिए था, किया ॥

बुद्धिरूपी बुकरात ने यह तारीख लिखा कि (सादात दो आश आँचे बायद करदंद) दोनों सैयदों ने जो चाहिए था सो किया।

परंतु यह प्रगट है कि बादशाहों के पुराने और नए स्वत्व हैं जो कई पीढ़ियों के पुराने सेवकों पर मान्य हैं और जैसा कि इन दोनों भाइयों पर स्वामिभक्ति के कारण लाजिम था पर उनसे ऐसा नीच काम होना, जो वास्तव में स्वामियों के प्रति अत्याचार था

और हर एक ने उसे बड़ी दुष्टता और नीचता के साथ किया था, उचित नहीं था। वाह इन सबने अच्छी सेवा की कि जान लेने और माल हजम करने में कमी न करके भी हिंदुस्तान का बादशाह बनाया। परंतु यह न्याय की दृष्टि से उचित नहीं है, हक अदा करना नहीं है तथा स्वामिभक्ति के विरुद्ध है। परंतु अपना चाहा हुआ कहाँ होता है और दूरदर्शी बुद्धि क्या जीविका बतलाती है। किसी बुराई को उसके घटित होने के पहिले इस हद तक नष्ट कर देना उचित नहीं है पर अपना लाभ देखना मनुष्य का स्वभाव है इसलिये यदि ऐसे काम में शीघ्रता न करते तो अपने प्राण और प्रतिष्ठा खोते। यद्यपि दूसरे उपाय से भी इस बला से रक्षा हो सकती थी कि पहिले ही वे दोनों बादशाह के कामों से हटकर दूर के अच्छे कामों से संतुष्ट हो जाते पर ऐश्वर्य और राज्य की इच्छा ने, जो बुराइयों में सबसे निकृष्ट है, नहीं छोड़ा। ऐसे समय शत्रुगण किसे कब छोड़ते हैं। अस्तु, यदि ऐसा काम नहीं होता तो स्वयं फर्रुखसियर अपने राज्य की अशांति का मूल बन जाता। अनुभव की कमी और मूर्खता से उसने कई गलतियाँ कीं। पहिले मंत्रित्व के ऊँचे पद पर इनको नहीं नियुक्त करना चाहता था क्योंकि वह बारहा के सैयदों के योग्य नहीं था। बादशाह अकबर से औरंगजेब के समय तक, जो मुगल साम्राज्य का आरंभ और अंत है, बारहा के सैयदों को अच्छे मंसब दिये गए परंतु कभी किसी प्रांत की दीवानी या शाहजादों की मुतसद्दीगिरी पर वे नियुक्त नहीं किए गए। यदि गुणग्राहकता और कृपा से उनकी सेवाओं पर दृष्टि रखना आवश्यक था तब भी चाहिए था कि स्वार्थी बातें

बनानेवालों के कहने पर ध्यान न देता, जो राजभक्ति की आड़ में हजारों बुराई के काम कर डालते हैं, तब ऐसे भला चाहनेवाले सेवक जो उसके लिए अपना प्राण और धन देने में पीछे न हटते और जिनसे भविष्य में कोई बुराई होने की आशंका नहीं थी, उसे इस हालत को नहीं पहुँचाते। अब जो देखा अपनी करनी से देखा और जो कुछ पाया अपनी करनी से पाया। जब कलम चलने लगी तो न मालूम कहाँ पहुँचे।

एतकाद खाँ धन और प्रतिष्ठा का विचार छोड़ कर बहुत दिनों तक एकांतवासी रहा। जब अमीरुल् उमरा मारा गया और कुतबुल् मुल्क दिल्ली जाकर बहुत से उन नए पुराने सरदारों को मिलाने लगा, जो बहुत दिनों से असफल होकर एकांतवास कर रहे थे तब उन्हीं में से एक एतकाद खाँ को भी अच्छा मंसब तथा धन देकर सेना एकत्र करने के लिये आज्ञा दी परंतु वह जैसा चाहता था वैसा न हुआ। यह कुछ कोस से अधिक साथ न देकर दिल्ली लौट गया और वहीं एकांतवास करता हुआ मर गया। यद्यपि यह उद्दंडता तथा मूर्खता के लिए प्रसिद्ध था पर जन-साधारण में प्रिय था। थोड़े समय के प्रभुत्व में इसने बहुतों को लाभ पहुँचाया था। इस कारण लोग उसका संबंध बुरी वस्तुओं से बतलाते थे। रहस्य—मुआयल धन में कोई दोष नहीं होता—

शेर

धनवान सांसारिक ऐश्वर्य से किसी के ऐब को नष्ट नहीं करता।
जैसे कसौटी के मुख से सोना स्याही नहीं हटा सकता॥

इसके विरुद्ध स्पष्ट है—

शैर

ऐब नाकिस कब छिपा है सुनहले पोशाक में ।
माहे नौ ने पैरहन पहिरा कुलुफ दिखला पड़ा ॥

१४४. एतकाद खाँ मिरजा बहमन यार

यह यमीनुद्दौला खानखानाँ आसफ खाँ का लड़का था। यह स्वतंत्र चित्त और विलासप्रिय था। अपने जीवन को इसी प्रकार व्यतीत कर अमीरी और अहंकार के सब सामान जुटाकर आराम करता रहा। सेना या सैन्य-संचालन से कोई काम नहीं रखता था। संतोष और बेपरवाही से दिन रात बिताता। मीर बख्शीगिरी के समय जब चाहता बादशाह की सेवा से हटकर अपने आराम में लग जाता था। कभी अपने भाई शायस्ता खाँ से मिलने के लिए दक्षिण जाता और कभी इसी बहाने बंगाल पहुँचता। इसकी नई नई चाल और अनेक प्रकार की बातें लोगों के मुख पर थीं। इसके प्रसिद्ध पूर्वजों और बादशाही खानदान से उनके संबंध को, जो शाहजहाँ और औरंगजेब से थी, दृष्टि में रखकर, नौकरी के कष्टों से इसे बरी कर, इस पर कृपा रखते थे। शाहजहाँ के १० वें वर्ष इसे पाँच सदी २०० सवार का मंसब मिला। इसके उच्च-पदस्थ पिता की मृत्यु पर इसका मंसब बढ़ाया गया। १९ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर दो हजारी २०० सवार और २२ वें वर्ष तीन हजारी ३०० सवार का हो गया तथा खानजाद खाँ की पदवी मिली। २५ वें वर्ष अपने भाई शायस्ता खाँ से मिलकर यह दक्षिण से लौटा। उसी वर्ष इसे चार हजारी ५०० सवार का मंसब और

मौरूसी पदवी एतकाद खाँ, जो इसके पिता और चाचा को मिली थी, पाकर मीर बख्शी नियत हुआ। बहुधा यह बीमारी के बहाने अपने पद के कामों को पूरा नहीं कर सकता था, इसलिए २६ वें वर्ष काबुल से दिल्ली लौटते समय यह लाहौर में ठहर गया। तब इसने प्रार्थना की कि इसी जगह ठहर कर उसे दवा करने की आज्ञा दी जाय। इस पर कृपा करके बादशाह ने साठ सहस्र रुपए की वार्षिक वृत्ति नियत कर दी। अच्छे होने पर २७ वें वर्ष दरबार में आया, तब इस पर कृपा करके इसे पुराने पद पर नियत कर दिया। यह ३० वें वर्ष के अंत तक उस ऊँचे पद पर बिना लोभ और स्वार्थ के बड़ी बेपरवाही के साथ काम कर इसने नाम कमाया। सामूगढ़ में दारा शिकोह के युद्ध के बाद शिकारगाह में, जो प्रसिद्ध है, औरंगजेब की सेवा में आकर ५ वें वर्ष पाँच हजारी १००० सवार का मंसबदार हुआ। १० वें वर्ष झंडा पाकर अपने बड़े भाई के यहाँ बंगाल प्रांत में छुट्टी लेकर चला गया और मुद्दत तक वहीं आराम किया। १५ वें वर्ष सन् १०८२ हि० (सं० १७२८) में यह मर गया। खुदा उस पर दया करे। वह अजब सच्चा, बेपरवाह और ठीक कहनेवाला था। खुदा का भक्त और फकीरों का दोस्त था। कहते हैं कि एक दिन एक फकीर को देखने के लिए यह पैदल ही गया था। जब यह वृत्तांत, जो अमीरों को नहीं शोभा देता, बादशाह ने सुना तब तिरस्कार की दृष्टि से इससे पूछा कि 'वहाँ बादशाही सेवकों में से और कौन था।' इसने उत्तर में प्रार्थना की कि 'एक यही कलमुँहा था और दूसरे सब खुदा के बंदे थे।' इसका पुत्र मुहम्मदयार खाँ भी गुणों में

अपने समय का एक था। उसका हाल अलग दिया हुआ है। इसकी पुत्री फातमा बेगम, जो फाखिर खाँ नज्मसानी के लड़के मुफ्तखिर खाँ की स्त्री थी, औरंगजेब की विश्वासपात्र थी और सदरुन्निसा पद पर नियत थी।

१४५. एतकाद खाँ, मिरजा शापूर

यह एतमादुद्दौला का लड़का और आसफ खाँ का भाई था। स्वभाव के अच्छेपन, सुशीलता, आजीविका की स्वच्छता, कपड़ों के ठाट बाट, खान-पान में आडंबर तथा परिश्रम में अपने समय का एक था। कहते हैं कि उस समय यमीनुद्दौला, मिर्जा अबू सईद और बाकर खाँ नज्म सानी अपने अच्छे खाने पीने के लिए प्रसिद्ध थे और यह इन तीनों से भी बढ़ गया था। जहाँगीर के १७ वें वर्ष में यह काश्मीर का प्रांताध्यक्ष नियत हुआ और बहुत दिनों तक वहाँ रहा। इतने समय तक इसके लिए मकूद चावल और कंगीरी पान बुरहानपुर से लाया जाता था। इसकी सूबेदारी के समय में हबीब चिक और अहमद चिक, जो विद्रोहियों के मुख्य सरदार थे और उस प्रांत पर अपनी रियासत का दावा करते थे, बड़ा उपद्रव मचाते हुए नष्ट हो गए। एतकाद खाँ पाँच हजारी ५००० सवार का मंसबदार था और शाहजहाँ के पाँचवें वर्ष में काश्मीर से हटाया गया था। ६ ठे वर्ष के आरंभ में अच्छी सेवा पाकर काश्मीर की अच्छी और बहुमूल्य चीजें बादशाह को भेंट दीं। इनमें राजहंस के पर की कलगियाँ, जिसके बुने वस्त्र के तारों का सिलसिला बराबर उसी प्रकार हिलता रहता है जैसे आग के देखने से बाल पेंच खाता है और कई प्रकार के दुशाले जैसे जामेवार, कमरबंद और तरहदार पगड़ी तथा खास तौर का ऊनी वस्त्र, जो तिब्बत

प्रांत के लौस और किर्क नामक जंगली मांसाहारी जानवर से बनता है और अच्छे रंग की दुशाले पर की कालीन थीं, जो एक सौ रुपये में एक गज तैयार होती है तथा जिसके सामने किरमान की कालीनें टाट मालूम होती थीं। उसी वर्ष १७ शाबान को लश्कर खाँ के स्थान पर यह दिल्ली का सूबेदार नियत हुआ। १६ वें वर्ष शाइस्ता खाँ के जगह पर यह बिहार का सूबेदार हुआ। उस प्रांत के अंतर्गत पलामू का राजा जंगलों की अधिकता पर घमंड करके अधीनता स्वीकार नहीं करता था, इसलिए १७ वें वर्ष एतकाद खाँ ने जबर्दस्त खाँ को सुसज्जित सेना के साथ उसपर भेजा। उसने बड़ी वीरता और दृढ़तासे दुर्गम घाटियों और काँटेदार जंगलों को पार कर विद्रोहियों को काट डाला। वहाँ का राजा प्रताप एली में आकर उक्त खाँ के द्वारा एक लाख रुपये वार्षिक कर देना स्वीकार कर पटना में एतकाद खाँ से मिला। दरबार से एतकाद खाँ का मंसब बढ़ाया गया और पलामू की तहसील एक करोड़ दाम नियत कर उसे जागीर-तन बना लिया। २० वें वर्ष शाहजादा महम्मद शुजाअ जब बंगाल से दरबार बुला लिया गया तब उस प्रांत का प्रबंध, जो बस्ती, विस्तार और तहसील में एक मुल्क के बराबर था, एतकाद खाँ को मिला। जब दूसरी बार बंगाल प्रांत शाह शुजाअ को दिया गया तब एतकाद खाँ दरबार बुला लिया गया। अभी यह दरबार नहीं पहुँचा था कि अवध प्रांत की सूबेदारी का फरमान मार्ग में मिला कि जिस जगह वह पहुँचा हो वहाँ से सीधे अवध चला जाय। २३ वें वर्ष सन् १०६० हि० में एतकाद खाँ ने बहराइच से रवाना हो लखनऊ पहुँचकर इस संसार रूपी झोंपड़े को छोड़ दिया।

कहते हैं कि आगरे में नई हवेली बनवाने वालों में से तीन आदमी प्रसिद्ध थे—जहाँगीरी ख्वाजः जहाँ, सुलतान परवेज का दीवान ख्वाजा वैसी और एतकाद खाँ। इन सब में उक्त खाँ की हवेली सबसे बढ़ कर थी। वह शाहजहाँ को बहुत पसंद आई इसलिए खाँ ने बादशाह को उसे भेंट दे दिया। १६ वें वर्ष में उस हवेली को बादशाह ने अमीरुल् उमरा अलीमरदान खाँ को पुरस्कार में दे दिया।

१४६. एतबार खाँ ख्वाजासरा

यह जहाँगीर का विश्वासपात्र था। अपनी कम अवस्था के कारण बादशाह का खिद्मतगार नियत हुआ। जब खुसरू भागने व पकड़े जाने के बाद बादशाह के सामने लाया गया और बादशाह लाहौर से काबुल जा रहे थे तब शरीफ खाँ अमीरुल् उमरा, जिसे खुसरू सौंपा गया था, बीमार होकर लाहौर में ठहर गया, उस समय खुसरू एतबार खाँ को सौंपा गया। यह पहिले योग्य मंसब पाकर दूसरे वर्ष हवेली ग्वालियर का जागीर-दार नियत हुआ। पाँचवें वर्ष चार हजारी १००० सवार का मंसबदार हुआ। आठवें वर्ष में इसका मंसब बढ़कर पाँच हजारी २००० सवार का हो गया। १० वें वर्ष एक हजार सवार की और तरक्की हुई।

१७ वें वर्ष पाँच हजारी ४००० सवार का मंसबदार हुआ। इसकी अवस्था अधिक हो गई थी, इसलिए यह आगरा का सूबेदार और दुर्ग तथा कोष का अध्यक्ष नियत हुआ। १८ वें वर्ष जब शाहजादा शाहजहाँ मांडू से पिता के पास जाने के लिए आगे बढ़ा और दोनों पिता-पुत्र के बीच में युद्ध आरंभ हो गया तब शाहजादा फतहपुर पहुँच कर रुक गया। बादशाही सेना के पहुँचने पर तरह देकर यह एक ओर हट गया। इसके अनंतर बादशाह जब आगरे के पास पहुँचे तब इसका जिसने

वहाँ की अध्यक्षता पर रहकर अच्छी सेवा की थी, मंसब बढ़ाकर छ हजारी ५००० सवार का कर दिया और खिलअत, जड़ाऊ तलवार, घोड़ा तथा हाथी दिया। अपने समय पर यह मर गया।

---

१४७. एतबार खाँ नाजिर

इसका नाम ख्वाजा अंबर था और यह बाबर बादशाह का विश्वासी सेवक था। जिस साल हुमायूँ बादशाह एराक जाने का पक्का निश्चय करके कंधार के पास से रवाना हुए, उसी वर्ष इसको थोड़ी सेना के साथ हमीदाबानू बेगम की सवारी को लिवा लाने के लिए बिदा किया। इसने वह काम जाकर ठीक तौर पर किया। सन् ९५२ हि० में इसने काबुल में बादशाह के पास पहुँचकर अच्छी सेवा की। बादशाह ने इसको शाहजादा मुहम्मद अकबर की सेवा में नियुक्त किया। हुमायूँ बादशाह के मरने पर अकबर ने इसको काबुल भेजा कि हमीदाबानू बेगम की सवारी को ले आवे। इस प्रकार यह जुलूस के दूसरे वर्ष में हमीदाबानू बेगम की सवारी के साथ बादशाह की सेवा में आकर सम्मानित हुआ। कुछ दिन बाद दिल्ली का शासन पाकर वहीं मर गया।

१४८. एतमाद् खाँ ख्वाजासरा

इसका मलिक फूल नाम था। सलीम शाह के शासन-काल में अपने साहस के कारण महम्मद खाँ की पदवी पाकर सम्मानित हुआ। जब अफगानों का राज्य नष्ट हुआ तब यह अकबर बादशाह की सेवा में आकर अच्छा कार्य करने लगा। इस कारण कि साम्राज्य के मुतसद्दीगण कुप्रवृत्ति तथा गबन या मूर्खता और लापरवाही से अपना घर भरने के प्रयत्न में लूट मचाए हुए थे और बादशाही कोष में आय के बढ़ने पर भी जो कुछ पहुँच जाता था वही बहुत था। सातवें वर्ष में अकबर शम्शुद्दीन खाँ अतगा के मारे जाने के बाद स्वयं इस कार्य में दत्तचित्त हुआ। महम्मद खाँ अपनी कार्य-कुशलता के कारण बादशाह को जँच गया और इसने भी कोष के हिसाब किताब और बही खाते के काम को खूब समझ लिया था। बादशाह ने इसको एतमाद खाँ की पदवी और एक हजारी मंसब देकर कुल खालसा का हिसाब इसको सौंप दिया। थोड़े समय में परिश्रम और कार्य-कुशलता से इसने कोष के ऐसे भारी काम का ऐसा सुप्रबंध किया कि बादशाह अत्यंत प्रसन्न हुआ। नवें वर्ष मांडू बादशाह के अधीन हुआ और खानदेश के सुलतान मीरान मुबारक शाह ने उपहार भेज कर अपने कार्य-कुशल राजदूतों के द्वारा अधीनता स्वीकार करते हुए प्रार्थना कराई कि उसकी पुत्री को बादशाह अपने हरम में ले लेवें। स्वीकृत होने पर उसे लाने को एतमाद खाँ, जो विश्वासी

और हितेच्छु था, नियत हुआ। जब यह असीर दुर्ग के पास पहुँचा तब मीरान मुबारक शाह बड़े समारोह के साथ दुर्ग के बाहर उस कुमारी को लाकर अपने कुछ आदमियों के साथ दहेज का सामान देकर विदा किया। जिस समय अकबर मांडू से आगरे लौटा उस समय एतमाद खाँ पहिली मंजिल पर आ मिला। इसके बाद बहुत दिनों तक मुनइम खाँ खनखानाँ और खानजहाँ तुर्कमान के साथ बंगाल में नियुक्त होकर इसने बड़ी बहादुरी दिखलाई। वहाँ से दरबार आने पर २१ वें वर्ष सन् ९८४ हि० में सैयद मुहम्मद मीर अदल के स्थान पर भक्कर का शासक नियत हुआ, जो मालवा के अंतर्गत दैबालपुर की सीमा पर है। आवश्यकता पड़ने पर यह सेना के साथ सेहवान जाकर विजयी हुआ पर उचित समझ कर लौट आया।

सफलता और इच्छा-पूर्ति अच्छी प्रकार होने से इसका दिमाग बिगड़ गया। इस जाति वाले वास्तव में दुष्टता और कृतघ्नता के लिए प्रसिद्ध हैं और अनुभवी विद्वानों ने कहा है कि मनुष्य के सिवा प्रत्येक जानवर बधिया कर देने से विद्रोह वा शरारत नहीं करता है पर मनुष्य की विद्रोह-प्रियता बढ़ती है। इसका घमंड इतना बढ़ा कि यह अपने अधीनस्थ लोगों पर विश्वास नहीं करता था। इस दुःशीलता के कारण नौकरों से देन लेन में कठोरता के साथ बात-चीत करता था और बहानेबाजी को बुद्धिमानी समझ कर किसी का हक पूरा नहीं करता था। २३ वें वर्ष सन् ९८६ हि० में जब अकबर पंजाब में था, इसने चाहा कि अपनी सेना के घोड़ों को दगवाने के लिए दरबार रवाना करे। अपनी मूर्खता से पहिले ऋणों को, जिन्हें व्यापारियों

को दिया था, पूरा करना चाहा। उन सबने अपनी दरिद्रता बतलाई पर कुछ सुनवाई नहीं हुई। सबेरे मकसूद अली नामक एक काने नौकर ने कुछ बदमाशों के साथ इसका इकट्ठा किया हुआ धन चुरा लिया। उन्हीं में से कुछ ने अपना हाल जाकर कहना चाहा, जिसपर क्रोधित होकर यह बोला कि तुम्हारी कानी आँख में पेशाब कर देना चाहिए। यह सुनकर उसने इसके पेट पर जमधर ऐसा मारा कि इसने फिर साँस न लिया। आगरे से छ कोस पर इसने एतमादपुर नामक गाँव बसाया था और उसमें एक बड़ा तालाब, इमारतें और अपने लिए एक मकबरा भी बनवाया था, जहाँ यह गाड़ा गया।

१४९. एतमाद खाँ गुजराती

गुजरात के सुलतान महमूद का एक हिंदुस्तानी दास था। सुलतान का इस पर इतना विश्वास था कि इसको महल की स्त्रियों के शृंगार का काम सौंपा था। एतमाद खाँ ने दूरदर्शिता से कपूर खाकर अपना पुरुषत्व नष्ट कर दिया था। इसके अनंतर सांसारिक बुद्धिमानी, कार्य की दृढ़ता तथा सुविचार के कारण यह सरदार बन गया। जब ९६१ हि० में अठारह साल राज्य कर बुरहान नामक गुलाम के विद्रोह में सुलतान मारा गया तब उस दुष्ट ने सुलतान के बहाने बारह सरदारों को बुलाकर मार डाला। परंतु एतमाद खाँ दूरदर्शिता से अकेले न जाकर तथा सहायकों को एकत्र कर युद्ध के लिए पहुँचा और उस दुष्ट को मार डाला। सुलतान को कोई लड़का नहीं था, इसलिए एतमाद खाँ ने उपद्रव की शांति के लिए अहमदाबाद के बसाने वाले सुल्तान अहमद के वंश से एक अल्पवयस्क लड़के को, जिसका नाम रजी-उल्मुल्क था, गद्दी पर बिठाया और उसकी सुलतान अहमद शाह पदवी घोषित की। राज्य का कुल प्रबंध इसने अपने हाथ में ले लिया और सिवा बादशाही नाम के और कुछ उसके पास न छोड़ा। पाँच साल के बाद सुलतान अहमदाबाद से निकल कर एक बड़े सरदार सैयद मुबारक बोखारी के पास पहुँचा पर एतमाद खाँ से युद्ध में हार करके जंगल में घूमता फिरता जब एतमाद खाँ के पास फिर लौट कर आया तब इसने वही बर्ताव

फिर किया। सुलतान ने मूर्खता से अपने साथियों से इसे मारने की राय की पर एतमाद खाँ ने यह समाचार पाकर उसे पहले ही मार डाला। सन् ९६९ हि० में नन्हू नामक एक लड़के को, जो उस वंश का न था, सरदारों के सामने लाकर तथा कुरान उठाकर इसने कहा कि यह सुलतान महमूद ही का लड़का है। इसकी माँ गर्भवती थी तभी सुल्तान ने उसे हमें सौंप कर कहा कि इसका गर्भ गिरा दो परंतु पाँच महीने बीत गए थे इससे मैंने वैसा नहीं किया। अमीरों ने लाचार होकर इस बात को मान लिया और सुलतान मुजफ्फर की पदवी से उसे गद्दी पर बैठाया। पहिले ही की तरह एतमाद खाँ मंत्री हुआ पर राज्य को अमीरों ने आपस में बाँट लिया और हर एक स्वतंत्र होकर एक दूसरे से लड़ा करता था।

एतमाद खाँ सुलतान को अपनी आँखों के सामने रखता था। इस पर एतमादुल्मुल्क नामक तुर्क दास के लड़के चँगेज खाँ ने एतमाद खाँ से झगड़ा किया कि यदि उक्त सुलतान वास्तव में सुलतान महमूद का लड़का है तो क्यों नही उसको स्वतंत्र करते। अंत में वह बलवाई मिरजों की सहायता से, जो अकबर के यहाँ से भाग कर इसके पास आए थे, एतमाद खाँ से ससैन्य लड़ने आया। यह बिना तलवार और तीर खींचे सुलतान को छोड़कर डूंगरपुर चला गया। कुछ दिन बाद अलिफ खाँ और झुझार खाँ हब्शी सरदारों ने सुल्तान को एतमाद खाँ के पास पहुँचा दिया और स्वयं अलग होकर अहमदाबाद चंगेज खाँ के पास पहुँचे और उससे शंकित होकर उसको मार डाला। एतमाद खाँ यह समाचार सुनकर सुलतान को साथ लेकर अहमदाबाद आया। सरदार एक दूसरे

से लड़ा करते थे इसलिए बलवाई मिरजों ने उस प्रांत के उपद्रव को सुनकर मालवा से लौट भड़ोच और सूरत पर अधिकार कर लिया। सुलतान भी एक दिन अहमदाबाद से निकलकर शेर खाँ फौलादी के पास चला गया। एतमाद खाँ ने शेर खाँ को लिखा कि नन्हू सुलतान महमूद का लड़का नहीं है, मैं मिरजाओं को बुलाकर उन्हें सल्तनत दूँगा। जो सरदार शेर खाँ से मिले हुए थे उन्होंने कहा कि एतमाद खाँ ने हम लोगों के सामने कुरान उठाकर कहा था और अब यह बात शत्रुता से कहता है। शेर खाँ ने अहमदाबाद पर चढ़ाई की। एतमाद खाँ ने दुर्ग में बैठकर मिरजाओं से सहायता माँगी और लड़ाई शुरू हो गई। जब लड़ाई ने तूल खींचा तब एतमाद खाँ ने देखा कि वह काम पूरा नहीं कर सकता और उस अशांतिमय प्रांत में शांति स्थापित करना उसके सामर्थ्य के बाहर है। इस पर इसने अकबर से प्रार्थना की कि वह गुजरात पर अधिकार कर ले। १७ वें वर्ष सन् ९८० हि० में जब बादशाह गुजरात के पत्तन नगर में पहुँचा तब शेर खाँ के साथियों में फूट पैदा हो गई और मिरजे भड़ोच भाग गए। सुलतान मुजफ्फर, जो शेर खाँ से अलग होकर वहीं आसपास घूम रहा था, बादशाह के आदमियों के हाथ पकड़ा गया। एतमाद खाँ गुजरात के दूसरे सरदारों के साथ राजभक्ति को हृदय में दृढ़ करके सिक्कों पर और मंचों से बादशाह अकबर का नाम घोषित करके उस प्रांत के सरदारों के साथ स्वागत को निकल कर सेवा में पहुँचा। जब इसी वर्ष के १४ रज्जब को अहमदाबाद बादशाह की उपस्थिति से सुशोभित हुआ और बड़ौदा, चंपानेर तथा सूरत एतमाद खाँ और दूसरे सरदारों को

जागीर में दिया गया तब उन्हीं सब ने मिर्जा को दमन करने का भार अपने ऊपर ले लिया। जब बादशाह समुद्र की ओर सैर करने को गए तब गुजरात के सरदारों ने, जो सामान ठीक करने के बहाने शहर में ठहरे हुए थे और बहुत दिनों से उपद्रव मचा रहे थे समझा कि वे दूसरे महाल हैं, जिन पर पहिले की तरह अधिकार हो सकता है। वे भागने की फिक्र करने लगे। अख्तियारुल् मुल्क गुजराती सबसे पहिले भागा और इस पर लाचार होकर बादशाह के हितेच्छुगण एतमाद खाँ को दूसरों के साथ बादशाह के पास ले गए। बादशाह ने उसको दृष्टि से गिराकर शहबाज खाँ के हवाले किया। २० वें वर्ष फिर से कृपा करके दरबार में नियुक्त किया कि जो छोटे छोटे मुकद्दमे, खास करके जवाहिर या जड़ाऊ हथियार के, आवें उसे यह अपनी बुद्धि से तय करे। २२ वें वर्ष जब मीर अबूतुराब गुजराती की अध्यक्षता में आदमी लोग हज्ज को रवाना हुए, एतमाद खाँ भी मक्का की परिक्रमा करने के पवित्र विचार से गया और वहाँ से लौटने पर पत्तन गुजरात में ठहर गया। २८ वें वर्ष शहाबुद्दीन अहमद खाँ के स्थान पर यह गुजरात के शासन पर नियुक्त हुआ और कई प्रसिद्ध मंसबदार इसके साथ नियत हुए। बहुत से राजभक्त दरबारियों ने प्रार्थना की पर कुछ नहीं सुना गया। उनका कहना था कि जब इसका पूरा प्रभुत्व था और बहुत से इसके मित्र थे तब यह गुजरात के बलवाइयों को शांत नहीं कर सका तो अब जब यह वृद्ध हो गया है और इसके साथी एक मत नहीं हैं तब यह उस सेवा पर भेजने के योग्य किस प्रकार हो सकता है।

जब एतमाद खाँ अहमदाबाद आया तब शहाबुद्दीन अह-

मद खाँ ने दरबार जाने की तैयारी की। उसके कृतघ्न सेवक, जो पहिले धन की इच्छा से उसके साथी हो गए थे, दूसरों की राय से यह सोचकर उससे अलग हो गए कि इस समय तो जागीर उसके हाथ से निकल गई है और जब तक राजधानी न पहुँचे और खर्च न मिले या कोई कार्य न मिले तब तक रोटी का मुँह तक पहुँचना कठिन है; इसलिए अच्छा होगा कि सुलतान मुजफ्फर को, जो लोभकांती की शरण में दिन बिता रहा है, सरदार बनाकर विद्रोह करें। इस रहस्य के जाननेवालों ने एतमाद खाँ को राय दी कि शहाबुद्दीन अहमद खाँ इन सबको बिना समझाए दरबार जा रहा है और सहायक सरदार अभी तक नहीं पहुँचे हैं, इसलिए उसको जानेसे रोकना उचित है, जिसमें वह इन टुकड़ों को कुछ दिन तक एकट्ठा रक्खे या यहीं कुछ खजाना खोलकर बलवे का प्रबंध करे या इन बलवाइयों को, जो पूरी तौर से एकत्र नहीं हुए हैं, चुस्ती और चालाकी से नष्ट कर दे। पर इसने एक भी न स्वीकार करते हुए कहा कि यह फिसाद उसके नौकरों का उठाया हुआ है, वह चाहे तो मिटावे। जब सुलतान मुजफ्फर बड़ी फुर्ती से आन पहुँचा और विद्रोह ने जोर पकड़ा तब लाचार होकर एतमाद खाँ शहाबुद्दीन अहमद खाँ को लौटाने के लिए, जो अहमदाबाद से बीस कोस पर गढ़ी पहुँच गया था, फुर्ती से चला। यद्यपि भला चाहने वालों ने कहा कि ऐसे गड़बड़ के समय, जब शत्रु बारह कोस पर आ पहुँचा है, शहर को अरक्षित छोड़ देना सहज काम को कठिन बनाना है पर इसका कोई असर नहीं हुआ।

सुलतान मुजफ्फर ने शहर को खाला पाकर उसपर अधि-

कार कर लिया और सेना एकत्र कर युद्ध को तैयार हुआ। पास होते हुए भी अभी लड़ाई आरंभ नहीं हुई थी कि शहाबुद्दीन अहमद खाँ के बहुत से साथियों ने कपट करके उसका साथ छोड़ दिया, जिससे बड़ी गड़बड़ी मची। एतमाद खाँ और शहाबुद्दीन खाँ शीघ्रता से पत्तन पहुँच कर दुर्ग में जा बैठे और चाहते थे कि इस प्रांत से दूर हो जावें। एकाएक सहायक सेना का एक भाग और शत्रु से अलग हुए कुछ सैनिक इनके पास आ पहुँचे। एतमाद खाँ पहिले की घटनाओं से उपदेश ग्रहण कर धन व्यय कर प्रयत्न में लग गया और स्वयं शहाबुद्दीन खाँ के साथ दुर्ग की रक्षा के लिए ठहर कर अपने पुत्र शेर खाँ की सरदारी में अपनी सेना को शेरखाँ फौलादी पर भेज कर विजयी हुआ। इसी बीच मिर्जा खाँ अब्दुर्रहीम, जो भारी सेना के साथ सुलतान मुजफ्फर और गुजरात के विद्रोहियों को दंड देने के लिए नियत हुआ था, आ पहुँचा और एतमाद खाँ को पत्तन में छोड़कर शहाबुद्दीन खाँ के साथ काम पर रवाना हुआ। एतमाद खाँ बहुत दिनों तक वहाँ शासन करते हुए सन् ९९५ हि० में मर गया। यह ढाई हजारी मंसबदार था। तबकाते-अकबरी के लेखक ने इसको चार हजारी लिखा है। शेख अबुल्फजल कहता है कि डर, कपट, अनौचित्य, कुछ सभ्यता, सादगी और नम्रता सबको मिलाकर गुजराती नाम बनाया गया था और एतमाद खाँ ऐसों के बीच में सरदार है।

१५०. एतमादुद्दौला मिर्जा गियास बेग तेहरानी

यह ख्वाजा महम्मद शरीफ का लड़का था, जिसका उपनाम हिजरी था और जो पहिले खुरासान के हाकिम मुहम्मद खाँ शरफुद्दीन ओगली तकलू के लड़के तातार सुलतान का वजीर नियत हुआ था। इसकी कार्य-कुशलता और सुबुद्धि देखकर महम्मद खाँ ने अपने मंत्रित्व के साथ कुल कामों को उसकी बहुमूल्य राय पर छोड़ दिया था। उसके मरने पर उसके पुत्र कज्जाक खाँ ने ख्वाजा को अपना मंत्री बनाया। जब इसका काम छुट गया तब शाह तहमास्प सफवी ने इस पर कृपा कर इसे यज्द का सप्तवर्षीय मंत्रित्व देकर इसे सम्मानित किया। इसने सब काम बड़े अच्छे ढंग से किए, इसलिए इस्फहान का मंत्री नियत होकर वहीं ९८४ हि० में मर गया। इसकी मृत्यु की तारीख 'यके कम जे मिलाज वजरा' से निकलती है। इसके भाई ख्वाजः मिरजा अहमद और ख्वाजगी ख्वाजा थे। पहिला 'हफ्त इकलीम' के लेखक मिर्जा अमीन का बाप था। रई की बड़ाई इसे खालसा में मिली। इसका हृदय कवि का था। शाह ने बड़ी कृपा से कहा था—शैर।

मेरा मिरजा अहमद तेहरानी तीसरा,
खुसरू व खाकानी (पहिले दो) हैं।

दूसरा भी कवि था। उसका लड़का ख्वाजा शापूर भी कविता में प्रसिद्ध था। ख्वाजा को दो लड़के थे। पहिले आका अहमद ताहिर का उपनाम वसली था और दूसरा मिर्जा गिया-



एतमादुद्दौला मिर्जा गियास बेग

(पेज ५४०)

सुद्दीन अहमद उर्फ़ गियास बेग था, जिसका विवाह मिर्ज़ा अलाउद्दौला आक़ा मुल्ला की लड़की से हुआ था। बाप के मरने पर रोजगार की खोज में दो लड़के और एक लड़की के साथ हिंदुस्तान की ओर रवाना हुआ। मार्ग में इसका सामान लुट गया और यहाँ तक हाल पहुँचा कि दो ही ऊँट पर सब सवार हुए। जब कंधार पहुँचे तब एक और लड़की मेहरुन्निसा पैदा हुई। उस काफले के सरदार मलिक मसऊद ने, जिसे अकबर पहिचानते थे, यह हाल सुन कर उसके साथ अच्छा सलूक किया। जब फतेहपुर पहुँचे तब उसी के द्वारा बादशाह की सेवा में भर्ती हो गए। यह अपनी सेवा और बुद्धिमत्ता से ४० वें वर्ष में तीन सदी का मंसब पाकर काबुल का दीवान हुआ। इसके अनंतर एक हजारी मंसबदार होकर बयूतात्त का दीवान हुआ।

जब जहाँगीर बादशाह हुआ तब राज्य के आरंभ ही में मिर्ज़ा को एतमादुद्दौला की पदवी देकर मिर्ज़ा जान बेग वजीरुल्मुल्क के साथ संयुक्त दीवान नियत कर दिया। १०१६ हि० में इसके पुत्र महम्मद शरीफ ने मूर्खता से कुछ लोगों से मिलकर चाहा कि सुलतान खुसरू को कैद से निकाल कर जल्द विद्रोह करें परंतु यह भेद छिपा न रहा। जहाँगीर ने उसको दूसरों के साथ प्राणदंड दिया। मिर्ज़ा भी दियानत खाँ के मकान में कैद हुआ पर इसने दो लाख रुपये दंड देकर छुट्टी पाई। इसकी पुत्री मेहरुन्निसा अपने पति शेर अफगन खाँ के मारे जाने पर आज्ञा के अनुसार बादशाह के पास पहुँचाई गई। उसपर पहिले ही से बादशाह का प्रेम था, जैसा कि शेर अफगन की जीवनी में लिखा गया है, इसलिए फिर विवाह की चर्चा चलाई

गई परंतु उसने अपने पति के खून का दावा किया। जहाँगीर ने, इस कारण कि कुतुबुद्दीन खाँ कोकलताश उसके पति के हाथ से मारा जा चुका था, खफा होकर उसे अपनी सौतेली माता सलीमा बेगम को सौंप दिया। कुछ दिन उसी तरह नाकामी में बीत गए। ६ ठे वर्ष सन् १०२० हि० के नौरोज के तेहवार पर जहाँगीर ने उसे फिर देखा और पुरानी इच्छा नई हो गई। बहुत प्रयत्न के बाद निकाह हो गया। पहिले नूरमहल और उसके बाद नूरजहाँ बेगम की पदवी पाई। इस खास संबंध के कारण एतमादुद्दौला को वकील-कुल का पद, छ हजारी ३००० सवार का मंसब और डंका तथा झंडा मिला। १० वें वर्ष कुल सरदारों से बढ़कर इसे यह सम्मान मिला कि इसका डंका बादशाह के सामने भी बजता था। १६ वें वर्ष सन् १०३१ हि० में जब दूसरी बार बादशाह कश्मीर की सैर को चले और जब सवारी सबीआ के पास पहुँची तब बादशाह अकेले कांगड़ा दुर्ग की सैर को गए। दूसरे दिन एतमादुद्दौला का हाल खराब हो गया और उसके मुखपर निराशा झलकने लगी तब नूरजहाँ बेगम बहुत घबड़ाई। लाचार पड़ाव को लौट कर एतमादुद्दौला के घर गए। इसका मृत्यु-काल आ चुका था, कभी होश में आता था, कभी बेहोश हो जाता था। बेगम ने बादशाह की ओर संकेत करते हुए कहा कि इन्हें पहचानते हैं। उसने उस समय अनवरी का एक शेर पढ़ा—यदि जन्म का अंधा भी हाजिर हो तो संसार की शोभा इस कपोल पर बड़प्पन देख ले। इसके दो घड़ी बाद यह मर गया। इसके लड़कों और संबंधियों में एकतालीस आदमियों को शोक का खिलअत मिला।

एतमादुद्दौला यद्यपि कवि नहीं था पर पूर्व-कवियों की रचना इसे बहुत याद थी। गद्य-लेखन में प्रसिद्ध था। शिकस्त लिपि बड़ी सुंदर लिखता था। मुहाविरों का सुप्रयोग करता था और सत्संगी तथा प्रसन्न मुख था। जहाँगीर कहते थे कि उसका सत्संग सहस्र हीरक-प्रसन्नतागार से बढ़कर था। लिखने और मामिलों के समझने में बहुत योग्य था। सुशील, दूरदर्शी तथा शुद्ध स्वभाव का था। शत्रु से वैमनस्य नहीं रखता था। इसे क्रोध छू नहीं गया था और इसके घर में कोड़ा, बेड़ी, हथकड़ी और गाली नहीं थी। अगर कोई प्राणदंड के योग्य होता और इससे प्रार्थना करता तो छुट्टी पा कर अपने मतलब को पहुँचता। इसके साथ साथ आराम-पसंद नहीं था। दिन भर फैसला करने और लिखने में बीतता। इसकी दीवानी में मुद्दत से जो हिसाब किताब बादशाही बाकी पड़ा हुआ था वह पूरा हो गया।

नूरजहाँ बेगम में बाह्य सौंदर्य के साथ आंतरिक गुण बहुत थे और वह सहृदयता, सुव्यवहार, सुविचार और दूरदर्शिता में अद्वितीय थी। बादशाह कहते थे कि जब तक वह घर में नहीं आई थी, मैं गृह-शोभा और विवाह का अर्थ नहीं समझता था। भारत में प्रचलित गहने, कपड़े, सजावट के सामान को बहुधा यही पहिले पहिल काम में लाई, जैसे दो दामन का पेशवाज, पँच तोलिया ओढ़नी, बादला, किनारी, इत्र और गुलाब, जिसे इत्र जहाँगीरी कहते हैं, और चांदनी का फर्श। उसने बादशाह को यहाँ तक अपने वश में कर रखा था कि वह नाम ही मात्र को बादशाह रह गया था। जहाँगीर ने लिखा है कि मैंने साम्राज्य को नूरजहाँ को भेंट कर दिया है। सिवाय एक

सेर शराब और आध सेर मांस के मैं और कुछ नहीं चाहता। वास्तव में खुतबे को छोड़कर वह बाकी कुल राजचिह्न काम में लाती थी। यहाँ तक कि झरोखे में बैठकर सर्दारों को दर्शन देती थी और उसका नाम सिक्के पर रहता था। शैर—

बादशाह जहाँगीर की आज्ञा से १०० जेवर पाया और नूरजहाँ बादशाह बेगम के नाम से सिक्का।

तोगरा लिपि में बादशाही फर्मानों में यह इबारत रहती थी 'हुक्म अलीयः आलियः अहद अलिया नूरजहाँ बेगम बादशाह।' ३० हजारी मंसब के महाल इसको वेतन में मिले थे। कहते हैं कि इस जागीर के सिलसिले में हिसाब करने पर मालूम हुआ कि आधा पश्चिमोत्तर प्रांत उसमें आ गया था। इसके सभी संबंधियों और उनके संबंधियों, यहाँ तक कि दासों और ख्वाजः सराओं को खाँ और तरखान के मंसब मिले थे। बेगम की धाय हीरा दासी हाजी कोका के स्थान पर अंतःपुर की सदर नियत हुई। शैर—

यदि एक के सौंदर्य से सौ परिवार नाज करे।
तो संबंधी और संतान तुझ पर नाज करें तो शोभा देता है॥

बेगम पुरस्कार और दान देने में बड़ी उदार थी। कहते हैं कि जिस रोज स्नानघर जाती थी, उस दिन तीन सहस्र रुपये व्यय होते थे। बादशाही महल में बारह वर्ष से चालिस वर्ष तक की बहुत सी लौंडियाँ थीं, उन सबका अहदी आदि से विवाह करा दिया। यद्यपि स्त्रियाँ कितनी बुद्धिमती हों पर वास्तव में उनकी प्रकृति बुद्धि के विरुद्ध चलती रहती है। इतने गुणों के रहते हुए अंत में इसी के कारण हिंदुस्तान में बड़ा उपद्रव

मचा। इसे शेर अफगन खाँ से एक लड़की थी, जिसकी जहाँगीर के छोटे लड़के शाहजादः शहरयार से शादी करके उसे राज्य दिलाने की चिंता में यह पड़ गई। बड़े पुत्र युवराज शाहजहाँ के विरुद्ध जहाँगीर को इसने ऐसा उभाड़ा कि आपस में लड़ाई और मार काट होने लगी और बहुत से आदमी उसमें मारे गए। भाग्य के साथ न देने से, क्योंकि शाहजहाँ से बादशाही सिंहासन शोभा पा चुका था, इसके प्रयत्नों का कोई फल नहीं निकला। शाहजहाँ ने बादशाह होने पर इसे दो लक्ष वार्षिक वृत्ति दे दी। कहते हैं कि जहाँगीर के मरने पर इसने सफेद कपड़ा ही बराबर पहिरा और खुशी की मजलिसों में अपनी इच्छा से कभी न बैठी। १९ वें वर्ष सन् १०५५ हि० (सं० १७०२) में लाहौर में इसकी मृत्यु हो गई। यह जहाँगीर के रौजे के पास अपने बनवाए मकबरे में गाड़ी गई। यह कवियित्री थी और इसका मखफी उपनाम था।

यह इसकी रचना है—

दिल न सूरत प दिया और न सीरत मालूम।
बंदए इश्क हूँ, सत्तर व दो मिल्लत मालूम॥
जाहिदा हौले कयामत न दिखा तू मुझको।
हिज्र का हौल उठाया है, कयामत मालूम॥

१५१. एमादुल्मुल्क

यह निजामुल्मुल्क आसफजाह के लड़के अमीरुल्उमरा फीरोज जंग का पुत्र था और एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ का दौहित्र था। इसका वास्तविक नाम मीर शहाबुद्दीन था। जब इसका पिता दक्षिण के प्रबंध पर नियत होकर उस ओर गया तब इसको मीरबख्शीगिरी पर अपना प्रतिनिधि बनाकर अहमद शाह बादशाह के दरबार में छोड़ गया और इसे वजीर सफदर जंग को सौंप गया। इसके पिता की मृत्यु का समाचार जब दक्षिण से आया तब इसने समय न खोकर सफदर जंग से इतनी पैरवी की कि यह मीर बख्शी नियत हो गया और पिता की पदवी पाई। इसके अनंतर जब बादशाह सफदर जंग से खफा हो गया तब यह अपने मामा खानखानाँ के साथ सेना सहित दिल्ली के दुर्ग में घुसकर मूसवी खाँ को, जो सफदर जंग की ओर से चार सौ आदमियों के साथ नायब मीर आतिश नियत था, निकाल बाहर किया और उक्त पद पर खानदौराँ के पुत्र के साथ नियत हुआ। दूसरे दिन सफदर जंग ने बादशाह के सामने जाकर मीर आतिश को बहाल कराने के लिए प्रार्थना की पर कुछ सुना नहीं गया। आज्ञा हुई कि दूसरे पद के लिए प्रार्थना करे। उसने एमादुल् मुल्क के स्थान पर सादात खाँ जुल्फिकार जंग को मीर बख्शी नियत किया। बादशाह सफदर जंग से क्रुद्ध था इसलिए एमादुल् मुल्क ने चाहा कि उससे युद्ध करे। छ महीने

तक युद्ध होता रहा और इस युद्ध में मल्हार राव होल्कर को मालवा से और जयप्पा को नागौर से इसने सहायता के लिए बुलवाया। परंतु उनके पहुँचने के पहिले सफदर जंग से संधि हो गई। एमादुल्‌मुल्क, होल्कर और जयप्पा मरहठा तीनों ने मिलकर सूरजमल जाट पर आक्रमण किया। भरतपुर, कुम्भनेर और डीग को, जो जाट प्रांत के तीन दुर्ग हैं, घेर लिया। दुर्ग लेने का प्रधान अस्त्र तोप है, इसलिए सरदारों की प्रार्थना पर बादशाह के पास प्रार्थनापत्र भेजा कि कुछ तोपें महमूद खाँ कश्मीरी के अधीन भेजी जायँ, जो उसका प्रधान अफसर था। एतमादुद्दौला कमरुद्दीन खाँ के लड़के वजीर इंतजामुद्दौला ने एमादुल्‌मुल्क की जिद से तोप भेजने की राय नहीं दी। आकबत महमूद खाँ ने बादशाही मंसबदारों और तोपखाने के आदमियों को इस वादे पर कि अगर एमादुल्‌मुल्क की हुकूमत चलेगी तो तुम्हारे साथ ऐसी वा वैसी रिआयत की जायगी, अपनी ओर मिलाकर चाहा कि इंतजामुद्दौला को निकाल दें। निश्चित दिन इंतजामुद्दौला के घर पर धावा कर लड़ने लगे पर उस दिन कुछ काम न होने पर दासना को ओर भागे। बादशाही खालसा महालों और मंसबदारों की जागीरों में, जो दिल्ली के आसपास हैं, उपद्रव तथा लूटमार करने लगे। इसी समय सूरजमल जाट ने, जो घेरनेवालों के कारण बहुत दुखी था, बादशाह से सहायता के लिए प्रार्थना की। बादशाह ने प्रगट में शिकार खेलने और अंतर्वेद का प्रबंध करने के लिए पर वास्तव में जाट की सहायता को दिल्ली से बाहर आकर सिकंदरे में ठहरा और आकबत मुहम्मद खाँ को बुलवाया, जो वहीं पास में उपद्रव मचाए हुए था। वह खुर्जा से

आकर बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ और फिर खुर्जा लौट गया।

दैव योग से होल्कर ने यह समझा कि अहमद शाह ही ने तोपें भेजने में उपेक्षा की है और अब वह दुर्ग के बाहर निकल आया है, इसलिए जाकर बादशाही सेना का अन्न और घास की रसद रोक देना चाहिए। यह भी सोचकर कि यह काम बिना किसी को साथी बनाए हुए कर ले, एमादुल्मुल्क और जयप्पा को कुछ खबर न देकर रात्रि में स्वयं रवाना हो गया और मथुरा उतार से जमुना नदी पार कर उसी रात्रि को, जब आकबत मुहम्मद खाँ खुर्जा लौट गया था, होलकर ने शाही सेना के पास पहुँच कर कुछ बान छोड़े। शाही सैनिकों ने सोचा कि आकबत मुहम्मद खाँ ने फिर उपद्रव करना आरंभ कर दिया है और इस कारण साधारण काम समझ कर युद्ध का कुछ प्रबंध नहीं किया और न भागने की तैयारी की, नहीं तो ऐसी खराबी न होती। रात्रि बीतते ही यह निश्चय मालूम हुआ कि होल्कर आ पहुँचा है, तब सब घबरा उठे। क्योंकि न युद्ध का समय था और न भागने का अवसर। निरुपाय होकर अहमदशाह और उसकी माता तथा अमीरुल्उमरा खानदौराँ का पुत्र मीर आतिश समसामुद्दौला अपने परिवार और सामान को छोड़कर कुछ आदमियों के साथ राजधानी की ओर चल दिए और इस अनुभव-हीनता से बड़ी हानि हुई। होलकर ने आकर बादशाहत का कुल सामान लूट लिया और फर्रुखसियर बादशाह की लड़की तथा मुहम्मद शाह की स्त्री मलका जमानिया तथा दूसरी बेगमों को कैद कर लिया। होलकर ने इन सबकी सम्मान के साथ रक्षा की। एमादुल्-

मुल्क यह समाचार सुनकर घेरा उठा राजधानी चल दिया। जयप्पा ने भी देखा कि जब यह दोनों सरदार चले गए और अकेले हम घेरा नहीं रख सकते तो वह भी हट कर नारनौल चला गया। सूरजमल को घेरे से आपही छुट्टी मिल गई। एमादुल्‌मुल्क होल्कर के बल पर और दरबार के सरदारों, विशेषतः मीर आतिश समसामुद्‌दौला की राय से इंतजामुद्‌दौला के स्थान पर स्वयं मंत्री बन बैठा और उक्त समसामुद्दौला को अमीरुल्‌-उमरा बनाया। जिस दिन यह वजीर बना उसी दिन सुबह को खिल-अत पहिरा और दोपहर को अहमद शाह तथा उसकी माता को कैद कर मुइज्जुद्दीन जहाँदार शाह के पुत्र अजीजुद्दीन को १० शाबान सन् ११६७ हि० को शनिवार के दिन गद्‌दी पर बैठाया और द्वितीय आलमगीर उसकी पदवी हुई। इसने कैद करने के एक सप्ताह बाद अहमद शाह और उसकी माता को अंधा कर दिया, जो कुल फिसाद की जड़ थी। कुछ समय के बाद पंजाब प्रांत का प्रबंध करने के लिए, जो दुर्रानी शाह की ओर से नियुक्त मुईनुल्‌ मुल्क की मृत्यु पर उसके परिवारवालों के अधिकार में चला गया था, लाहौर जाने का विचार किया। द्वितीय आलमगीर को दिल्ली में छोड़कर और शाहजादा अलीगोहर को प्रबंध सौंपकर स्वयं हाँसी हिसार के मार्ग से लाहौर चला। सतलज नदी के किनारे पहुँच कर अदीना बेग खाँ के बुलाने पर एक सेना सेना-पति सैयद जमीलुद्‌दीन खाँ और हकीम उबेदुल्ला खाँ कश्मीरी के अधीन, जो उसका कर्मचारी, छ हजारी मंसबदार और बहाउद्दौला पदवी-धारी था, रातो रात लाहौर भेज दिया। ये सब फुर्ती से लाहौर पहुँचे और ख्वाजासराओं को हरम में भेजकर उक्त

स्त्री को, जो निश्चिंत सोई हुई थी, जगाकर कैद कर लिया और बाहर लाकर खेमा में रखा। उक्त स्त्री एमादुलमुल्क की मामी थी और उसके लड़की की एमादुलमुल्क से सगाई होने को थी। एमादुलमुल्क ने लाहौर की सूबेदारी पर अदीना बेग खाँ को तीस लाख भेंट लेकर नियत कर दिया और स्वयं दिल्ली लौट आया। जब यह समाचार दुर्रानी शाह को मिला तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ और कंधार से बड़ी शीघ्रता के साथ लाहौर पहुँचा। अदीना बेग खाँ हाँसी और हिसार के जंगलों में भाग गया। शाह दुर्रानी सेना के साथ फुर्ती से दिल्ली पहुँच कर बीस कोस पर ठहर गया। एमादुलमुल्क युद्ध का सामान न कर सका, इससे निरुपाय हो कर शाह की सेवा में पहुँचा। पहिले यह दंडित हुआ पर अंत में उक्त मुसम्मात की सिफारिश से और प्रधान मंत्री शाहवली खाँ के प्रयत्न से बच गया। भेंट देने पर वजीर भी नियत हो गया। दुर्रानी शाह ने जहाँ खाँ को सूरजमल जाट के दुर्गों को लेने के लिए नियत किया और एमादुलमुल्क ने भी उसके साथ जाकर बहुत परिश्रम किया, जिससे शाह ने उसकी प्रशंसा की। जब वजीर नियत करने की भेंट माँगी गई तब एमादुलमुल्क ने कहा कि तैमूरिया वंश का एक शाहजादा और दुर्रानी की एक सेना उसे दी जाय तो अंतर्वेदी से, जो गंगा और जमुना नदियों के बीच में स्थित है, बहुत सा धन वसूल कर खजाने में पहुँचा दे। दुर्रानी शाह ने दो शाहजादे, जिनमें से एक द्वितीय आलमगीर का लड़का हिदायत बख्श और दूसरा आलमगीर के द्वितीय भाई अजीजुद्दीन का संबंधी मिर्जा बाबर को दिल्ली से बुलवा कर जाँबाज खाँ के साथ, जो शाह का

एक खास सरदार था, एमादुलमुल्क के संग कर दिया। एमादुलमुल्क दोनों शाहजादों और जाँबाज खाँ के साथ बिना किसी तैयारी के जमुना नदी उतर कर मुहम्मद खाँ बंगश के लड़के अहमद खाँ के निवासस्थान के पास फर्रुखाबाद की ओर रवाना हुआ। अहमद खाँ ने स्वागत करके खेमे, हाथी, घोड़े आदि शाहजादों और एमादुलमुल्क को भेंट दिया। इसके अनंतर यह आगे बढ़ गंगा पार कर अवध की ओर चला। अवध का सूबेदार शुजाउद्दौला युद्ध की तैयारी के साथ लखनऊ से बाहर निकल कर साँडी और पाली के मैदान में पहुँचा, जो अवध के सीमा-प्रांत पर है। दो बार दोनों ओर के अगलों में लड़ाई हुई। अंत में सादुल्ला खाँ रुहेला की मध्यस्थता में यह तय पाया कि पाँच लाख रुपया, कुछ नकद और कुछ वादे पर, दिया जाय। एमादुलमुल्क शाहजादों के साथ सन् ११७० हि० में युद्ध-स्थल से लौटा और गंगा उतर कर फर्रुखाबाद आया। दुर्रानी शाह की सेना में बीमारी फैल गई थी, इसलिए वह आगरे से स्वदेश जाने की इच्छा से जल्द रवाना हुआ। जिस दिन वह दिल्ली के सामने पहुँचा, उस दिन द्वितीय आलमगीर ने नजीबुद्दौला के साथ मकसूदाबाद तालाब पर आकर शाह से भेंट की और एमादुलमुल्क की बहुत सी शिकायत की। इस पर शाह नजीबुद्दौला को हिंदुस्तान का अमीरुलउमरा नियत कर लाहौर की ओर चल दिया। एमादुलमुल्क नजीबुद्दौला की फिक्र में फर्रुखाबाद से दिल्ली की ओर चला और बाला जी राव के भाई रघुनाथ राव और होलकर को शीघ्र दक्षिण से बुला कर दिल्ली को घेर लिया। द्वितीय आलमगीर और नजीबुद्दौला फिर

गए और पैंतालीस दिन तक तोप और बंदूक से युद्ध होता रहा। अंत में होलकर ने नजीबुद्दौला से भारी घूस लेकर संधि की बात चीत की और उसको प्रतिष्ठा तथा सामान आदि के साथ दुर्ग से बाहर लिवा आकर अपने खेमे के पास स्थान दिया। उसके ताल्लुके की ओर, जो जमुना नदी के उस पार सहारनपुर से बोरिया चाँदपुर तक और बारहा के कुछ कस्बे हैं, उसको रवाना कर दिया। एमादुलमुल्क ने शत्रु के दूर होने पर बादशाहत का कुल काम अपने हाथ में ले लिया। दत्ता सरदार नजीबुद्दौला के शत्रु को सुकरताल में घेर रखा था और उसने एमादुलमुल्क को दिल्ली से अपनी सहायता के लिए बुलवाया था पर एमादुल् मुल्क अपने मामा खानखानाँ इंतजामुद्दौला से अप्रसन्न था और द्वितीय आलमगीर से भी उसका दिल साफ नहीं था और समझता था कि ये सब दुर्रानी शाह से गुप्तरूप से पत्र व्यवहार रखते हैं और नजीबुद्दौला का दत्ता पर विजय चाहते हैं, इसलिए खानखानाँ को, जो पहिले से कैद था, मार डाला। उसी दिन ८ रबीउल् आखिर सन् ११७३ हि० बुधवार को द्वितीय आलमगीर को भी मार डाला। उक्त तारीख को औरंगजेब के प्रपौत्र, कामबख्श के पौत्र तथा मुहीउल् सुन्नत के पुत्र मुहीउल् मिल्लत को गद्दी पर बैठा कर द्वितीय शाहजहाँ की पदवी दी। द्वितीय आलमगीर और खानखानाँ की मृत्यु पर यह दत्ता की सहायता को वहाँ गया। इसी बीच दुर्रानी शाह के आने का शोर मचा। दत्ता सुकरताल से दुर्रानी शाह का सामना करने के लिए सरहिंद की ओर गया और एमादुलमुल्क दिल्ली चला आया। जब इसने दत्ता और शाह के करावलों के युद्ध का समाचार

सुना और शत्रु पर दुर्रानियों के विजय का हाल मिला तब नए बादशाह को दिल्ली में छोड़ कर स्वयं सूरजमल जाट के यहाँ जाकर उसकी शरण में बहुत दिन तक रहा। इसके बाद उक्त बादशाह को संसार से उठा कर नजीबुद्दौला आलीगुहर शाह आलम बहादुर बादशाह के पुत्र सुलतान जवाँबख्त को गद्दी पर बैठा कर राजधानी में शासन करने लगा। तब एमादुल्मुल्क अहमद खाँ बंगश के पास फर्रुखाबाद गया और वहाँ से शुजाउद्दौला के साथ फिरंगियों से युद्ध करने गया। हारने पर जाटों के राज्य में फिर शरण लिया। सन् ११८७ हि० में जब यह दक्षिण आया, तब मरहठों ने मालवा में इसके व्यय के लिए कुछ महाल नियत कर दिया। अपने समय के बादशाह से इसे कुछ भय रहता था इसलिए सूरत बंदर जाकर वहाँ के ईसाइयों से मिलकर वहीं रहने लगा। इसी बीच जहाज पर सवार होकर मक्का हो आया। कुरान को याद किए हुए था और बहुत गुणों को जानता था। अच्छी लिपि लिखता था। साहसी तथा वीर भी था। शैर भी कहता था। एक शैर उसका इस प्रकार है—

कहाँ है संगे फलाखन से मेरी हमसंगी।
कि दूर भी जाए व सर पै गर्द न गिरे॥

इसको बहुत सी संतान थी। इसका पुत्र निजामुद्दौला आसफ-जाह के दरबार में आकर पाँच हजारी मंसब, हमीदुद्दौला की पदवी और व्यय के लिए धन पाकर सम्मानित हुआ।

१५२. एरिज खाँ

यह कजिलबाश खाँ अफशार का योग्य पुत्र था। अपने पिता के जीवन में ही बुद्धिमानी, कार्य-कौशल तथा बहादुरी में प्रसिद्ध हो चुका था और दक्षिण के तोपखानों का दारोगा रह कर नाम पैदा कर चुका था। शाहजहाँ के २२ वें वर्ष में इसका पिता अहमदनगर दुर्ग की अध्यक्षता करते हुए मारा गया तब इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी १५०० सवार का हो गया और खाँ की पदवी तथा उक्त दुर्ग की अध्यक्षता मिली। अपने साहस और स्वाभाविक औदार्य से अपने पिता के सेवकों को इधर उधर जाने नहीं दिया और सैनिक आदि सबको अपनी रक्षा में रखा। अपनी नेकी और भलमनसाहत से अपने पिता के ऋण को अपने जिम्मे लेकर सगे संबंधियों के पालन में कुछ उठा न रखा। २४ वें वर्ष इसका मंसब पाँच सदी बढ़ गया और कज्जाक खाँ के स्थान पर दक्षिण प्रांत के अंतर्गत पाथरी का थानेदार हुआ। इसके अनंतर दरबार पहुँच कर मीर तुजुक नियत हुआ। जब शाहजादा दाराशिकोह भारी सेना के साथ कंधार की चढ़ाई पर नियत हुआ तब उक्त खाँ बख्शी नियुक्त होकर तथा डंका पाकर सन्मानित हुआ। उस चढ़ाई से लौटने पर जम्मू और कांगड़े का फौजदार नियत हुआ और उस पहाड़ी प्रांत में ५७ स्थान इसे पुरस्कार में मिले। ३०वें वर्ष जब दक्षिण का सूबेदार शाहजादा औरंगजेब अली आदिल शाह को दंड देने और

उसके राज्य में लूट मार करने पर नियत हुआ तब उक्त खाँ मीर जुमला के साथ, जो भारी सेना सहित शाहजादा की सहायता को भेजा गया था, जाने की छुट्टी पाई। शाहजादा ने बीदर दुर्ग विजय करने के बाद इसको नसरत खाँ और कारतलब खाँ के साथ अहमदनगर भेजा, जहाँ शिवाजी और माना जी भोंसला उपद्रव मचाए हुए थे। शाहजहाँ की बीमारी के कारण उसके आदेश से दाराशिकोह ने, जो अपने स्वार्थ के कारण सदा अपने भाइयों को पराजित करने का प्रयत्न करता रहता था, इस काम के पूरा न होने के पहिले ही सहायक सरदारों को फुर्ती से लौट आने की आज्ञा भेज दी। एरिज खाँ दाराशिकोह का पक्षपात करता था और अपने को दाराशिकोही कहता था, इसलिए नजाबत खाँ के बड़े पुत्र मोतकिद खाँ के साथ डंका पीटते हुए हिंदुस्तान की तरफ चल दिया। कहते हैं कि शाहजादा ने बुरहानपुर के नाएब वजीर खाँ को लिखा था कि दोनों को समझा कर रोक रखे और नहीं तो कपट करके दोनों को कैद कर ले। जब ये उक्त नगर में पहुँचे तब उक्त खाँ ने इनका आतिथ्य करने की इच्छा प्रगट किया। ये चाहते थे कि उसे स्वीकार करें परंतु जब मालूम हुआ कि इसमें धोखा है, तब उसी समय कूच कर चल दिए और नर्मदा नदी पार कर शाहजादे के पास उसी के दूतों के हाथ यह शैर लिखकर भेज दिया पर प्रगट में वह वजीर खाँ को भेजा गया था।

सौ बार शुक्र है कि हम नर्बद: पार उतर आए और
सौ पाद व नव्वे घाव कि नदी पार हो गए।

जब दरबार पहुँचा तब पूर्व के एक स्थान का फौजदार हुआ और युद्ध के समय दाराशिकोह के इशारे पर अधिक

सेना लेकर आगरे को रवाना हुआ पर समय पर न पहुँच सका। जब औरंगजेब की सफलता सुनाई पड़ने लगी और दाराशिकोह भाग गया तो उक्त खाँ ने लज्जित होकर उम्दतुल्मुल्क जाफर खाँ के द्वारा क्षमा प्राप्त की। इसी समय जाफर खाँ मालवे की सूबेदारी पर भेजा गया। एरिज खाँ भी उस प्रांत के सहायकों में नियत हुआ। ३ रे वर्ष के आरंभ में उक्त प्रांत के अंतर्गत भिलसा का यह फौजदार हुआ। यहाँ से एलिचपुर की फौजदारी पर गया। जब ९ वें वर्ष दिलेर खाँ चांदा और देवगढ़ का कर वसूल करने पर नियत हुआ तब यह भी उसके साथ भेजा गया। उस काम में अच्छी सेवा करने के कारण इसका मंसब बढ़कर ढाई हजारी २००० सवार का हो गया। इसके अनंतर बहुत दिनों तक दक्षिण में नियत रहते हुए १९ वें वर्ष दूसरी बार खानजमाँ के स्थान पर एलिचपुर का फौजदार हुआ। २४ वें वर्ष बुरहानपुर प्रांत का नाजिम हुआ और इसके अनंतर बरार का सूबेदार हुआ। २९ वें वर्ष सन् १०९६ हि० की २९ वीं रमजान को मर गया और अपने बाग में गाड़ा गया, जो एलिचपुर कसबा की दीवार से सटा हुआ है। इसीके पास सराय बनवाकर नईबस्ती भी बसाई थी। कसबे के सामने नहर के किनारे, जो उसके बीच से जाती थी, निवास-स्थान बनवाया था, जिसमें उसके लोग रहें। यह बहुत अच्छी चाल का तथा मिलनसार था और खाने पीने का भी शौकीन था। अमीरी का सामान बहुत रखता था, इससे सर्वदा कष्ट में और ऋणग्रस्त रहता था। पहिले मीरबख्शी सादिक खाँ की पुत्री से इसकी शादी हुई थी, इस कारण इसका विश्वास दूसरों से बढ़ गया

था। यह स्त्री निस्संतान मर गई। उक्त खाँ को तीन लड़के थे पर किसी ने भी उन्नति नहीं की। इसका एक संबंधी मीर मोमिन इन सबसे योग्य था। यह कुछ दिन तक एलिचपुर के सूबेदार हसन अली खाँ बहादुर आलमगीरी का प्रतिनिधि रहा। इसके लड़कों में सबसे बड़ा मिर्जा अब्दुल् रजा अपने पिता के ऋणों का उत्तरदायी होकर सराय और बस्ती का अकेला मालिक हुआ। यह निस्संतान रहा। इसकी वृद्धा स्त्री बहू बेगम के नाम से प्रसिद्ध थी। अंत तक यह अपना कालयापन बस्ती की आय से करती रही। दूसरा मिर्जा मनोचेहर जवानी में मर गया। उसे लड़के थे। उक्त बहू बेगम ने अपने भाई की एक लड़की को स्वयं पालकर उससे विवाह दिया था। इसके बाद लगभग सात साल तक यह बुढ़िया जीवित रही, जिसके बाद इसका कुल सामान उसको मिल गया। दो साल बाद वह भी मर गई और उसके लड़के उस पर अब अधिकृत हैं। तीसरा मिर्जा महम्मद सईद अधिकतर नौकरी करता रहा। वह कविता भी करता था और अनुभवी था। उसका एक शैर है—

अशर्फी पर जो चित्रकारी है उसे वे सरसरी तौर पर नहीं जानते।
यह गोल लेख यह है कि परी को उपस्थित करो॥

पिता की पदवी पाकर कुछ दिन चाँदा का तहसीलदार रहा। अंत में दुखी हुआ और कोई नौकरी न लगी। तब कर्णाटक गया और कुछ दिन अब्दुन्नबी खाँ मियानः के पुत्र अब्दुल्कादिर खाँ के साथ बालाघाट कर्णाटक में व्यतीत किया। इसके बाद पाईं घाट जाकर वहीं मर गया। यह निस्संतान था। उस वृद्धावस्था में भी सौंदर्य की कमी नहीं थी। लेखक पर उसका प्रेम था।

१५३. एवज खाँ काकशाल

इसका नाम एवज बेग था और यह काबुल प्रांत में नियत था। शाहजहाँ के दूसरे वर्ष में जब काबुल के पास जोहाक थाना उजबकों के हाथ से छुटा तब इसे एक हजारी ६०० सवार के मंसब के साथ वहाँ की थानेदारी मिली। ६ ठे वर्ष इसके मंसब में २०० सवार बढ़ाए गए। ७ वें वर्ष इसका मंसब बढ़कर डेढ़ हजारी १००० सवार का हो गया। १० वें वर्ष २०० सवार और ११ वें वर्ष ३०० सवार और बढ़े। जिस समय अली मरदान खाँ ने कंधार दुर्ग बादशाह को सौंपने का निश्चय किया, तब यह गजनी में पहिले ही से प्रतीक्षा कर रहा था। काबुल के नाजिम सईद खाँ के इशारे पर यह एक सहस्र सवार के साथ उस प्रांत में जाकर दुर्ग में पहुँच गया। उस युद्ध में, जो सईद खाँ और सियावश तथा कजिलबाश सेना के बीच हुई थी, इसने बहुत प्रयत्न किया और उसके पुरस्कार में इसका मंसब ढाई हजारी २००० सवार का हो गया तथा इसे डंका, घोड़ा और हाथी मिला। राजा जगत सिंह के साथ दुर्ग जमींदावर विजय करने जाकर दुर्ग सारबान लेने और जमींदावर घेरने में अच्छी सेवा की और कुछ दिन तक दुर्गों का अध्यक्ष भी रहा। १३ वें वर्ष खानःजाद खाँ के स्थान पर गजनी का अध्यक्ष हुआ परंतु बीमरी के बढ़ने से प्रतिदिन इसकी निर्बलता बढ़ती जाती थी, इसलिये उस पद से हटा दिया गया। १६ वें वर्ष सन् १०५० हि० में मर गया।

१५४. ऐनुलमुल्क शीराजी, हकीम

यह एक प्रतिष्ठित विद्वान और प्रशंसनीय आचार विचार का पुरुष था। मातृपक्ष में इसका संबंध बहुत पुराने वंश से था। आरंभ ही से इसका साथ अकबर को पसंद था, इससे युद्ध तथा भोग-विलास में साथ रहता। ९ वें वर्ष में यह आज्ञा के साथ चंगेज खाँ के पास भेजा गया, जो अहमदाबाद का प्रधान पुरुष था। यह खाँ से भेंट लेकर आगरे आया। १७ वें वर्ष में यह एक सांत्वना का पत्र लेकर एतमाद खाँ गुजराती के पास भेजा गया और अबू तुराब के साथ उसे सेवा में लाया। १९ वें वर्ष में जब बादशाह पूर्व ओर गया तब यह भी साथ था। इसके बाद आदिल खाँ बीजापुरी को सम्मति देने के लिए यह दक्षिण में नियत हुआ और २२ वें वर्ष में दरबार लौटा। इसके बाद संभल का फौजदार नियुक्त हुआ और २६ वें वर्ष में जब अरब बहादुर, नियाबत खाँ और शाहदाना ने कुछ विद्रोहियों के साथ उपद्रव मचाया तब इसने बरैली दुर्ग दृढ़ किया और उधर के अन्य जागीरदारों के साथ उन्हें दमन करने में प्रयत्न किया। यद्यपि बलवाइयों ने इसे धमकाया तथा आशा दिलवाई कि यह उनसे मिल जाय पर इसने नहीं स्वीकार किया और उनमें भेद डालने का सफल षड्यंत्र भी किया। अंत में नियाबत खाँ राज-भक्तों की ओर हो गया। तब हकीम ने अन्य जागीरदारों के साथ मिलकर चारों ओर से युद्ध किया और शत्रुओं को परास्त

कर दिया। इसी वर्ष यह बंगाल प्रांत का सद्र नियत हुआ। ३१ वें वर्ष में यह आगरा प्रांत का बख्शी हुआ। इसके बाद खानआजम के साथ दक्षिण गया। जब उक्त खाँ ने इसकी जागीर हिंडिया को बदल दिया तब यह बिना बुलाए ३५ वें वर्ष में दरबार चला आया, इस कारण इसे दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा नहीं मिली। पूछ ताछ होने पर इसे कोर्निश की आज्ञा हुई। पर्गना हिंडिया में यह बहाल हुआ और कुछ दिन बाद वहाँ जाने की इसे छुट्टी मिली। ४० वें वर्ष सन् १००३ हि० (१५९५ ई०) में यह मरा। 'दवाई' उपनाम से कविता करता था। उसके एक शैर का अर्थ यों है—

उसके काले जुल्फों की रात्रि में,
मृत्यु के स्वप्न ने मुझे पकड़ लिया।
वह ऐसा अजीब दुःखदायक स्वप्न था,
जिसका कोई अर्थ नहीं था॥

यह पाँच सदी मंसब तक पहुँचा था।

अनुक्रम (क)

[वैयक्तिक]

आ

ल

व

अनुक्रम (ख)

(भौगोलिक)

शुद्धाशुद्ध पत्र

पृ० सं०	पं० सं०	अशुद्ध	शुद्ध
१९	१४	के	की
२०	२४	सुजफ्फर	मुजफ्फर
२४	१८	लिखना	लिखनी
४५	१३	कार्थ	कार्य
४९	१९	बर्ष	वर्ष
	२३	बहीं	वहीं
५०	१३	बड़ा	बिड़
५९	१०	बुद्धिमता	बुद्धिमत्ता
६३	६	सैथद	सैयद
	१३	फारूको	फारूकी
६४	२०	हामीदशाह	हामिदशाह
७९	२४	महचूक	माहचूचक
८८	१०	बादशार	बादशाह
	१२	जगा	लगा
९०	१	अबुलहन	अबुल्हसन
९९	१२	कौनन	कौनैन
१०५	७	जुनार	जुनेर
१०९	१३	सम्राज्य	साम्राज्य
११०	२१	कंदजा	कंदजी
१२३	१४	पूऽजों	पूर्वजों

पृ० सं०	पं० सं०	अशुद्ध	शुद्ध
१४०	५	खानजहां	खानजहाँ,
१६५	११	षसंद	पसंद
१६७	२२	बफादार	वफादार
१७२	६	ऐ	'ए
१७४	१८	३००	३०००
१८८	२४	धूमकर	घूमकर
१९१	११	पर्जे	पर्वेज
१९२	५	अहमहनगर	अहमदनगर
१९६	१५	बाध्य	वाध्य
२००	२	दाराबख्रां	दाराबख़ाँ
२१२	१३	वंदर	बंदर
२१९	१०	कोटिला	कोठिला
२२५	६	बाध्य	वाध्य
	१५	भाँगने	माँगने
२२८	२३	से	के
२३०	१०	उजड्ढता	उजड्डता
२३१	१	ठंदी	ठंढी
	५	प्रिय	प्रिय
२४०	१	शाह्जादा	शाहजादा
२५५	१४	बाध्य	वाध्य
२७६	१९	दुर्गाध्यता	दुर्गाध्यक्षता
२८९	१३	कोका	कीका
२९७	१	निजा	निजी
३०१	१०	फरेंदू	फरेंदूँ
३०३	१	खुरम	खुर्रम

पृ० सं०	पं० सं०	अशुद्ध	शुद्ध
	२२	मुहम्मह	मुहम्मद
३१८	१९	कासिमअला	कासिमअली
३२०	२	अलंगतोश	यलंगतोश
	५	,,	,,
३२९	१८	से	में
३३६	१३	आजम	आजम होने के कारण
	१४	कर हो	कर
३३९	१६	आसफ खाँ	आसफुद्दौला
३४१	११	इनायत खाँ	इनायतुल्ला खाँ
३५४	११	जा	जो
३६२	७	मकरम	मकारम
३६४	१२	बदादुर	बहादुर
३७२	८	सरे	दूसरे
३७७	१	सयद	सैयद
३८२	३	वालाशाही	वालाशाही
३८३	१३	महाबत के खाँ	महाबत खाँ के
३९७	२१	का साला	के साला के साथ
	२३	उसके साथ	+
३९९	१४	भूम्ययाधिकारी	भूम्याधिकारी
४०३	२३	भेद	भेज
४०६	११	शाहजादा	शाहजहाँ
४१२	१४	अज्ञानुसार	आज्ञानुसार
४२७	८	तरिके	तरीके
	१०	पद	यह
४३०	८	सस्तम खाँ	रुस्तम खाँ

पृ० सं०	पं० सं०	अशुद्ध	शुद्ध
४३१	१३	खानसामाँ	खानसामाँ तथा
४७४	१६	खानजमाँ	खानखानाँ
४८३	१९	सुजाअत	शुजाअत
४९५	१	सेना से	सेना की सहायत से
	८	उसके	शत्रु के
५३२	१०	दबालपुर	दैपालपुर
५३८	२४	खाला	खाली
५३९	१७	हजारा	हजारी